प्राइमरी शिक्षक

वर्ष 17 | अंक 1 | जनवरी 1992

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

प्राइमरी शिक्षक

प्रधान संपादक
राजेन्द्रपाल सिह
अकादमिक संपादक
द्वारिका नाथ खोसला
मुख्य उत्पादन अधिकारी
यू प्रभाकर राव
उत्पादन अधिकारी
डी साई प्रसाद
उत्पादन सहायक
राजेन्द्र चौहान

सम्पादकीय सम्पर्क
प्रधान संपादक, पत्रिका प्रकोष्ठ, राष्ट्रीय शैक्षिक
अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
श्री अरबिन्द मार्ग, नई दिल्ली - 110016
फोन : 652459
666047/4283

एक प्रति 4.00 रुपये, त्रैमासिक
वार्षिक मूल्य 16.00 रुपये

पत्रिका संपादन - राजकुमार गुप्त

कृपया अपना चन्दा व्यावसायिक प्रबन्धक, प्रकाशन विभाग, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् नई दिल्ली - 110016 को भेजें।

प्राइमरी शिक्षक

वर्ष 17 | अंक 1 | जनवरी, 1992

इस अंक में

सम्पादकीय

आदर्श बालक की संकल्पना	1	डा० अमर नाथ दत्तगिरि
गृहकार्य की आवश्यकता एवं महत्ता	5	मुकेश कुमार गुप्ता
प्रारम्भिक शिक्षण की सरल विधि	10	डा० राम चन्द्र कपूर
शिक्षा मे समान अधिकार	14	डा० कान्ति मोहन श्रीवास्तव
साक्षरता और समाचार पत्र	18	डा० (श्रीमती) आदर्श मदान
प्राथमिक शिक्षा की मूल समस्याएं एवं उनका निवारण	21	डा० भगवत सिंह
प्रारम्भिक शिक्षा मे शिक्षण की सुरुचिपूर्ण विधाएं	26	आर० एम० पाठक
शिक्षा व्यवस्था का प्रधान लक्ष्य	30	प्रोफेसर रामचन्द्र शुक्ल
कक्ष शिक्षण मे हास्य का महत्व	33	आर० पी० पाठक
शिक्षकों ने लिखा है		
शिशु शिक्षा समस्या का निवारण कैसे	37	हरिशकर शर्मा
विचार		
राजस्थान में साक्षरता के बढ़ते आयाम	41	हरिदास शर्मा

सम्पादकीय

गत वर्ष शिक्षा के क्षेत्र मे अनेक उपलब्धियों की चर्चा रही। एर्नाकुलम साक्षरता के क्षेत्र मे वह सब कर गया जो थोड़े समय बाद बर्दवान ने कर दिखाया। इन दो प्रयोगों ने एक बात अवश्य साबित की कि साक्षरता किसी भी प्रकार न्य से संबंधित नही है। इन दोनों स्थानों पर सफलता के कारणों मे जहां एक ओर राजनैतिक मनोबल था वहीं पर ासनिक सहायता भी थी। वास्तव मे यह निर्णय कर पाना कठिन हो गया कि क्या सफलता का श्रेय मात्र प्रशासनिक था। बात कुछ सही परन्तु अनुभव के आधार पर हम कह सकते है कि साक्षरता के लिए केवल आर्थिक सहायता पर्याप्त नहीं। बिहार तथा उत्तर प्रदेश मे हो रहे प्रयोगों से यह बात और भी अधिक सफाई से उभर कर आ जायेगी ा साक्षरता से किस विकल्प कारक का गहरा सबध है।

समस्त भारत की साक्षरता का कोई भी लक्ष्य दिवस क्यों न रखा जाए वह घिसे पिटे तरीकों से उपलब्ध होने वाली ीं है। यह बात हमारे प्रशासन ने लगभग पहचान ली है। इसलिये हमारे अपने तौर- तरीकों में कई सुधार करने होंगे। ाज के प्रत्येक निरक्षर के लिये कोटियाँ बनानी होंगी और प्रत्येक निरक्षर- समूह के लिए उपयुक्त योजना बनानी होगी। ा नीति का लचीला होना अत्यंत आवश्यक है। स्थानीय कारणों का विशेष रूप से ध्यान रखना होगा तभी जाकर केरल और पश्चिम बंगाल की बराबरी कर पायेंगे। निहित प्रश्न नीति के विकेन्द्रीकृत रूप को पहचानने का भी है न्द्रीकरण प्रायः अप्रभावी होता है, विशेषरूप से शिक्षा के क्षेत्र मे।

शिक्षा के अपने स्वरूप को भी पहचानने की आवश्यकता है। हम सूचना के भंडार को कितना पहचान सकते है। तनी सूचना प्रत्येक व्यक्ति के लिए आवश्यक है। इस बात की जानकारी भी शिक्षा मे दिशा- निर्देश के लिये आवश्यक । मुझे कभी- कभी ऐसा प्रतीत होता है कि शिक्षा के सही रूप को समाज ने अभी भी नही पहचाना। शायद यही कारण कि उसके प्रसार- विस्तार के लिए हमारे प्रयत्न अपूर्ण रह जाते है।

नव- वर्ष में हम यही कामना कर सकते हैं कि हमारे नीति- निर्णायक बन्धु- बान्धव गण कम से कम शिक्षा के स्वरूप ठीक से पहचान कर ही नीति- निर्माण करे और प्रयत्न करें कि उपलब्धि और लक्ष्य में अधिक अन्तर न हो।

❑ राजेन्द्र पाल सिंह

आदर्श बालक की संकल्पना

☐ डा. अमरनाथ दत्त गिरि

शिक्षा के द्वारा संस्कारों में इच्छानुसार परिवर्तन किया जाता है। अच्छे संस्कारों को उजागर करना तथा बुरे संस्कारों को निष्कासित करना शिक्षा का मुख्य उद्देश्य है। अच्छे संस्कारों को दृढ करने से प्रतिकूल परिस्थितियों मे भी व्यक्ति अपने लक्ष्य से भ्रष्ट नहीं हो सकता। इस प्रकार शिक्षा आदर्श पर चलने की सुदृढ़ता प्रदान करती है। आदर्श संस्कार आदर्श विचारों का रूप धारण कर आदर्श आचरण के रूप में प्रत्यक्ष होते है, जिनसे आदर्श समाज की परिकल्पना संभव की जा सकती है। इस प्रकार शिक्षा सद्संस्कारों को जाग्रत करके कुसंस्कारों का निरसन करके सद्विचारों को सदाचरण मे रूपान्तरित कर एक आदर्श समाज की संरचना में योगदान देती है। अतः आदर्श संस्कार वाले बालक को ही हम आदर्श बालक की मान्यता प्रदान करेंगे।

चेतना की ग्राह्यता

हमारे देश मे जन्मजन्मान्तर की धारणा पूर्णरूप से स्वीकृत है। अनेक जन्मोंके संस्कारों को वहन करता हुआ जीव एक योनि से दूसरी योनि में पदार्पण करता हुआ अपनी विराट यात्रा पूरी करता है। एक योनि से दूसरी योनी मे सक्रमण करने के पूर्व चेतना मे विशेष विकास की स्थिति आवश्यक है। मानव योनि उन्हीं जीवों को प्राप्त होती है जो चेतना की दृष्टि से विकसित होते है। जीव मानव आकार ग्रहण करके भी चेतना स्तर पर पूर्ण विकसित नहीं होता। चेतना को पूर्णता की स्थिति तक ले आने के लिए उसे संस्कारित करना अनिवार्य होता है। कौन- सा विद्यार्थी बालक चेतना के किस स्तर पर है, इसकी पहचान आवश्यक है। साथ ही यह भी जानना आवश्यक है कि *उसकी चेतना के विकास के लिए उसके सद्संस्कारों में* कौन- कौन सी संभावनाएं छिपी हैंऔर उन सभावनाओं मे कौन से अवरोधक व कुसंस्कार दर्द- गिर्द उपस्थित है। संभावनाओं और अवरोधों की पहचान एक दिन की बात नहीं है। विद्यालयी जी वन मे बालक के अनवरत निरीक्षण परीक्षण के पश्चात् ही सही स्थिति का ज्ञान हो सकता है।

जिन बालकों की चेतना मे ग्राहयता- शक्ति जितनी ही अधिक होगी, वह शिक्षक की बातों को उतनी ही शीघ्रता से सीखता- समझता चला जायेगा और जिन बालकों में जड़ता अधिक होगी, उनके मस्तिष्क मे कोई बात बैठाना बड़ा कठिन कार्य है। कुछ बालक तो इतने जड़ होते हैं कि उन्हें विरचि- सम गुरू मिलने पर भी कोई लाभ नहीं मिलता। आदर्श बालक वे है जिनकी चेतना मे संवेदनशीलता है, ग्रहणशीलता है तथा जिनकी बुद्धि सजग और धारणाशील है।

जागरूकता और सतर्कता

मनुष्य की सफलता और विफलता में सबसे बड़ा हाथ जागरूता तथा सतर्कता का है। जिस व्यक्तिमें मानसिक बेहोशी, सम्मोहन और मूर्छा हो, वह किसी भी क्षेत्र में सफल नही हो सकता। जागरूक व्यक्ति की दृष्टि दूरदर्शी होती है, वह जहां खड़ा है और जहां जायेगा, दोनों स्थितियों में

वह सतर्कता से कार्य करता है । हम वस्तुओं से सम्मोहित होकर मूर्छित हो जाते हैं, हम व्यक्तियों से प्रभावित होकर धोखा खा जाते हैं तथा परिस्थितिया भी हमे बेहोशी में डाल देती हैं । जब सांप चला जाता है तब हम लाठी पीटते हैं, जब समय निकल जाता है तब हम कमर कसते हैं । ठीक समय पर, ठीक स्थान में सटिक आचरण जागरूकता से ही संभव है । आदर्श बालक वही है, जिसमे जागरूकता और सतर्कता इस स्तर की हो, जैसे पतली डोर पर चलता हुआ नट सावधान और जागा हुआ रहता है ।

कर्तव्य- परायणता

व्यक्ति को कर्तव्यनिष्ठ होना चाहिए । कर्तव्य न करने पर उसके अन्दर ग्लानि होनी चाहिए । कर्म यज्ञ है, कर्म पूजा है, कर्म जीवन है, कर्म अनिवार्य है । जो अपने कर्तव्य को परमात्मा का कार्य समझ कर निष्ठा भाव से सम्पन्न करता है, उसे मुक्ति जैसी सम्पदा प्राप्त होती है । कर्तव्य का सम्बन्ध आजीविका तक ही सीमित नही है । कर्तव्य सेवा, और निष्कामता तथा "निमित्त भाव" के स्तर पर पहुंचना मोक्ष हेतु है । आदर्श बालक वही है जिसमें कर्तव्य- परायण्ता हो, जो आलस्य और प्रमाद का परित्याग कर अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए निश्चित कर्मो को तत्परता और रूचिपूर्वक सम्पन्न करता है ।

स्वास्थ्य एवं प्रसन्नता

आदर्श बालक को स्वस्थ एवं प्रसन्नचित्त होना चाहिए । शरीर के माध्यम से ही सभी कर्म सम्पन्न होते हैं। कहावत है : स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मन निवास करता है । स्वस्थ रहने से मन प्रमुदित रहता है । मोदयुक्त मन और स्वस्थ काया से कर्तव्य की पूर्ति में बड़ा सहयोग मिलता है। प्रसन्नचित्त रहने से कर्मो में ही कुशलता नहीं आती, इससे सारा व्यवहार- जगत जगमगा उठता है । व्यर्थ की मनहूसियत और उदासीनता बालक को निराशा के गर्त मे झोंक दती है ।

आशा और उत्साह

बालक के मन मे आशा- दीप सदैव प्रज्वलित रहना चाहिए । आशा से ही विश्वास टिका रहता है और कर्तव्य करने का उत्साह बना रहता है । आशा की प्रबलता से विश्वास ही दृढ़ नहीं होता, इससे संकल्प शक्ति भी बढ़ती है । संकल्पशक्ति का मूल स्त्रोत आशा की अक्षुण्णता में ही होता है । निराशा निरूत्साहित कर देती है, जिससे कर्तव्योन्मुखी चरण डगमगाने लगते है और सकल्प क्षीण हो जाता है । संकल्प- क्षीणता से व्यक्ति लक्ष्य- भ्रष्ट हो जाता है । शिक्षकों को चाहिए कि वे बालकों में आशा और उत्साह का निरन्तर संचार करते रहे, जिससे कर्तव्य करने में उनका मनोबल ऊँचा बना रहे और उनकी संकल्प- शक्ति क्षीण न हो ।

परिस्थितियों को अनुकूल बनाने की क्षमता

बालकों के जीवन में वस्तु, व्यक्ति और घटनाओं द्वारा निर्मित परिस्थितियों के कारण कभी- कभी प्रतिकूलता उत्पन्न होती है । प्रतिकूलता से ही कर्तव्य में अवरोध उत्पन्न होता है । कभी- कभी उनसे घबराकर बालक पथच्युत हो जाता है । प्रतिकूल परिस्थितियों मे निर्भय होकर अपने लक्ष्य की ओर साहसपूर्वक अग्रसर होना बालक के लिए एक आवश्यक गुण है । कभी- कभी आदर्श बालक अपने प्राणोत्सर्ग तक करने को उद्यत होकर अपने लक्ष्य की यात्रा करने को संकल्पवान् हो उठते हैं । ऐसे बालक यदि स्वयं लक्ष्य को नहींप्राप्त कर सके तो दूसरे के लिए अनुकरणीय उदाहरण तो बनते ही है । मनुष्य परिस्थितियों का दास नहीं, वह परिस्थितियों का नियंता और नियंत्रक है- ऐसी भावना से बालकों को साहसी और वीर बनाना प्रत्येक

शिक्षक का कर्तव्य है।

स्वावलम्बन

सामान्यतः व्यक्ति परमुखापेक्षी होता है। आलस्य, प्रमाद तथा शोषण के कारण वह दूसरे के कन्धे पर बैठकर जीवनयात्रा तय करना चाहता है। जिस समाज में ऐसे व्यक्तियों की संख्या बढ़ जाती है वह समाज निष्क्रिय होकर दरिद्र हो जाता है। अतः आदर्श बालक मे स्वावलम्बन की *भावना आवश्यक है। स्वावलम्बन का आशय है कि जो* हम कर सकते है उसे स्वयं करना चाहिए। इसका दूसरा आशय है- आत्मबल और आत्मविश्वास मे वृद्धि करना। सहयोग न मिलने पर हम अकेले खड़े हो सके, इसकी क्षमता उत्पन्न करना। इसी को आत्मनिर्भरता भी कहते है। आत्मनिर्भरता के लिए बालक को उसके जीवन से संबंधित क्रियाओं और कलाओं मे दक्ष करना चाहिए। उसमें श्रम करने की भावना जाग्रत करनी चाहिए। स्वावलम्बन से आत्मा का उत्कर्ष होता है तथा व्यक्ति मोक्ष जैसे पुरूषार्थ का अधिकारी बनता है।

कृतज्ञता और आज्ञापालन

कृतज्ञता और आज्ञापालन मनुष्य के दिव्य गुण हैं अहंकार को निसर्जित करने के लिए इन गुणों की नितान्त आवश्यकता है। अहंकार ही मूल अज्ञान है जो समर्पित जीवन के पथ में अवरोध उत्पन्न करता है। कृतज्ञता और आज्ञापालन से अनुशासन की वृद्धि होती है। अनुशासन से संगठित शक्ति आविर्भूत होती है। संगठित शक्ति ही सृजन, पालन और संहार की उचित भूमिका का निर्वाह कर सकती है। सामाजिक जीवन के लिए अनुशासन अनिवार्य है। कृतज्ञता का अर्थ है, अपने ऊपर किये गये उपकारों के प्रति विनम्र स्वीकार भाव। हमारे ऊपर हमारे पूर्वजों, हमारी परम्पराओ, आदर्शों, मान्यताओं, हमारे देश की मिट्टी, जल, वायु और हमारे समाज आदि का ऋण है। हमे इसे स्वीकार कर उनके प्रति श्रद्धा- विनत होना चाहिए। उनके प्रति पूज्य भाव मे तथा उनके सम्मान में हमे मर मिटना चाहिए। जिस पत्तल पर खाये, उसी मे छेद करे, यह कृतघ्नता है, जो मनुष्य की नीचता का परिचायक है। अपने माता- पिता, गुरूजनों और श्रेष्ठजनों की अज्ञापालन करने से हमे उनका आशीर्वाद ही प्राप्त नही होता, उनके सद्गुण भी अनजाने हमारे अन्दर प्रविष्ट हो जाते हैं। एक आदर्श बालक वही है जो आज्ञाकारी, अनुशासित और कृजज्ञ हो।

स्वबोध की जागृति

स्वबोध की जागृति भावना के माध्यम से की जाती है। भावना के साथ- साथ यादि साधना का भी संयोग हो जाये तो सोने मे सुगंधि आ जाती है। स्वबोध ही मूल प्रश्न है, जिसका उत्तर यदि किसी को सही रूप मे प्राप्त से जाये तो वह मनुष्य से देवता हो जाता है। फिर वह मानव पुत्र न होकर देवपुत्र कहा जाता है। बालकों में मैं कौन हूँ ? के प्रश्न के समाधान के लिए जिज्ञासा जाग्रत करनी चाहिए। शालेय जीवन में बालक के चित में यदि यह प्रश्न ही अंकित हो गया तो समय पर वह स्वतः इसका उत्तर प्राप्त कर लेगा।

राष्ट्रभक्ति

धर्म साधना मे भक्ति को प्रथम स्थान प्राप्त है। भक्ति का संबंध भगवान से है। भगवान अवतार लेते है। भक्त उनके चरित्र और लीला का गायन करता है। उन्हें सर्वशक्तिमान मान उनके प्रति अपने को सौंपता है। भगवान के समान ही भारत माता और भारत की जनता हमारे लिए पूज्य है। अतः हमें भारत माता की सेवा व रक्षा समर्पित भाव से करनी चाहिए। यहां यह स्मरण रखना नितान्त

आवश्यक है कि जो अपने को प्रेम करेगा वह अनिवार्य रूप से दूसरे को भी प्रेम करेगा। जो हम हैं वही तो हम दूसरों को दे सकते हैं। इस आधार पर राष्ट्र प्रेम विश्व प्रेम के रूप में फैलकर हमारे भारतीय आदर्श बसुधैव कुटुम्बकम् को चरितार्थ करेगा। आदर्श बालक वही है जो राष्ट्रभक्ति को अपना धर्म व कर्तव्य मानकर उसे अपने जीवन मे सर्वोच्च स्थान देता है।

अन्त में, मै यही कहना चाहूंगा कि आदर्श बालक की मेरी जो सकल्पना है तथा ऊपर जिन गुणों का वर्णन किया गया है, मुझे पूर्ण विश्वास है कि उससे जो बालक संस्कारित किया जायेगा, वह हमारे देश के आदर्शो की छबि प्रतिबिम्बित करेगा तथा एक आदर्श नागरिक के नाते विश्वमंच पर भारत राष्ट्र की सुकीर्ति फैलायेगा। ऐसे बालक यदि हमारे विद्यालयों से संस्कारित होकर सामाजिक भूमिका मे पदार्पण करेगे तो वे निश्चय ही हमारे देश के लिए वरदान सिद्ध होगे। आदर्श बालक ही देश को सुरक्षित, सुसंगठित और समृद्धशाली बनाने मे योगदान देगे। ❑

बी 4/56 बी,
हनुमान घाट,
वाराणसी

गृहकार्य की आवश्यकता एवं महत्ता

□ मुकेश कुमार गुप्ता

हम जिस वातावरण मे जीवन यापन कर रहे हैं वहां प्रत्येक वस्तु परिवर्तनशील है और यह परिवर्तन बहुत ही तीव्र गति से होता जा रहा है अतः भविष्य की समस्याऐं भी अधिकतर स्पष्ट हैं। इस स्थिति में शिक्षाविदों का यह दायित्व है कि वह इस प्रकार की शिक्षा बच्चों को प्रदान करें जो उपयोगी, भविष्य की आवश्यकताओं के अनुरूप और जीवन से सम्बन्धित हो ताकि हम बच्चों को, जोकि हमारी भविष्य की आशाएं हैं, पूर्णरूप से उन समस्याओं का सामना करने के योग्य बना सकें। छात्र केन्द्रित शिक्षा इसी दिशा मे एक कदम है जो वर्तमान समय की एक आवश्यकता भी हो चुकी है, यह हम सबके योग्य बनाने की चेष्टा करे ताकि वह कल की जिम्मेदारियों एवं आवश्यकताओं के अनुरूप अपनी योग्यता विकसित कर लें और उन सभी समस्याओं का सामना बूखी कर सकें। इसी के द्वारा ही हम देश को उन्नति के पथ पर आगे बढ़ा सकते हैं। शिक्षार्थी अपने समाज को समझ सकें एवं स्कूल के माहौल को एक नियमावली के रूप मे स्वीकार करें। शिक्षा से सम्बन्धित उसके अनुभव रूचिकर, आनन्ददायक, एवं यादगार होने के साथ- साथ अर्थपूर्ण हों जोकि सम्पूर्ण जीवन मे उसके काम आ सकें।

इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए आवश्यक है कि बच्चा पहले अपने- आपको समझे। वह किसी भी क्रिया के अनुरूप प्रतिक्रिया करे एव स्थितियों के अनुरूप कार्य को अंजाम दे। अध्यापक का कार्य शिक्षार्थी को सूचना देना ही न हो बल्कि उसको प्रोत्साहित करे, उसे सीखने मे मदद देने के लिए निरन्तर मार्गदर्शन करे ताकि वह अधिक से अधिक सीखने में समर्थ हों। सीखने की क्षमता को विकसित करने में शिक्षार्थी के ग्रहकार्य का बहुत बडा योगदान है। गृहकार्य कक्षा के अध्यापन कार्य का एक समाकलित अंग है।

गृहकार्य की उपयोगिता के बारे मे शिक्षाविदों, अध्यापकों एवं अभिभावकों के विभिन्न मत है और सभी एक मत से सहमत नही हैं, परन्तु फिर भी यह अध्ययन- अध्यापन प्रक्रिया का एक अभिन्न अग बना हुआ है। क्योंकि इसकी उपयोगिता निम्न कारणों से बनी हुई है—

(1) यह अध्यापक द्वारा पढ़ाये गये पाठ्य सामग्री के लिए फीडबैक का कार्य करता है जिससे बच्चा कितना सीख पाया इसका अनुमान स्वयं बच्चे को भी होता है।

(2) यह बच्चे को स्कूल मे अध्यापक द्वारा दी गई जानकारी का प्रयोग अपने व्यक्तित्व के विकास करने में सहायक होता है।

(3) गृहकार्य विभिन्न स्थितियों में सीखने की आदत के लिए भी आवश्यक है क्योंकि कक्षा में माहौल होता है उसमे तथा घर एवं समाज के माहौल मे बहुत अन्तर होता है। अतः गृहकार्य बच्चे को कक्षा के अन्दर एव कक्षा के बाहर के वातावरण में सीखने का अनुभव कराता है।

अतः गृहकार्य एक प्रकार का अनुभव है जो कि स्कूल, घर एव समाज को एक दूसरे से जोड़े रखता है। और बच्चे को अवसर प्रदान करता है कि वह अधिक से अधिक बेहतर बने।

गृहकार्य के बारे मे दो मत है। एक मत तो पक्षधर है कि गृहकार्य को स्कूल के कार्यकाल का ही एक हिस्सा माना जाये जबकि दूसरा मत इसके विपरीत है। हमारे लिए यह आवश्यक हो जाता है कि दोनों ही पक्षों के विचारों का अध्ययन गृहकार्य के विभिन्न आयामों के रूप मे करे। जैसे कि गृहकार्य का प्रकार एवं इसकी बारम्बारता, इसका उद्देश्य, इस पर कितना समय लगाया जाये एव किस- किस की मदद ली जाये इत्यादि। इसके लिए हम शिक्षा मनोविज्ञानिकों, अध्यापकों, अभिभावकों एवं विद्यार्थियों के विचारों पर दृष्टिपात करेगें।

शिक्षा मनोवैज्ञानिकों के मतानुसार गृहकार्य अति आवश्यक है क्योंकि इसके द्वारा बच्चे मे आत्मविश्वास, आत्मनिर्भरता, समय की उपयोगिता, सृजनात्मक योग्यता, अध्ययन सम्बन्धी आदतों में सुधार एव खाली समय को कहीं अधिक उपयोगी ढंग से इस्तेमाल करने जैसे गुणों का विकास होता है। इसका यह अर्थ भी कदापि नहीं लेना चाहिए कि गृहकार्य इतना अधिक हो जाये कि यह बच्चे के सामाजिक, शारीरिक एवं भावनात्मक विकास मे बाधक हो जाये। इसके लिए यह आवश्यक है कि गृहकार्य आनन्ददायक, एवं रूचिकार होने के साथ- साथ यादगार अनुभव हो ताकि यह बच्चे में धनात्मक अभिवृति का विकास करे। अतः गृहकार्य योग्यता आधारित होना चाहिए।

परन्तु वर्तमान समय मे गृहकार्य इतना अधिक हो जाता है कि बच्चा अनावश्यक रूप से थक जाता है और आज के गृहकार्य को पूरा करने के उपरान्त वह कल के स्कूल कार्य को करने मे, समझने मे अपने आपको असहाय सा महसूस करता है। कई बार ऐसा गृहकार्य दिया जाता है जो रूचिकार तो बिलकुल ही नहीं होता, साथ- ही- साथ उबाऊ होता है। फिर बच्चा स्कूल मे छहः घन्टे बिताकर थका होने पर अन्य खेल एव अपनी पसन्दीदा आदतों का कार्यान्वयन नही कर पाता, एक इसकी कमी यह भी है कि गृहकार्य सभी के लिए एक समान होता है और इसका बिलकुल भी ध्यान नही किया जाता कि कौन बच्चा उसको कर पायेगा और कौन नहीं। और ना ही बच्चे के घर के वातावरण तथा उसे पूरा करने में कितना समय लगेगा, क्या इतना समय वह बच्चा निकाल पायेगा आदि बातों को ध्यान मे रखा जाता है।

अध्यापकों के मतानुसार गृहकार्य एक प्रकार का अस्त्र है जिसके द्वारा वह अपनी अध्यापन शैली की प्रभाविकता को जान पाते है। गृहकार्य फीडबैक द्वारा सीखने में भी बहुत उपयोगी होता है। कुछ अध्यापक गृहकार्य को अगली कक्षा के लिए तैयारी मानतें हैं, कुछ के अनुसार गृहकार्य इसलिए देना आवश्यक है क्योंकि इसके द्वारा बच्चे का एकेडेमिक अचीवमैन्ट बढता है। और इस विश्वास की पुष्टि गोल्डस्टीन (1960) के अध्ययन से भी होती है। गोल्डस्टीन के अनुसार नियमित गृहकार्य करने पर एकेडेमिक अचीवमैन्ट मे बढ़ोतरी होती है अर्थात एकेडेमिक अचीवमैन्ट में गृहकार्य का योगदान होता है। हागन (1977) के अध्ययन का भी यही निष्कर्ष था कि वह बच्चे जो नियमित गृहकार्य करते थे मानक परीक्षणों पर अधिक अंक प्राप्त करते हैं उनकी तुलना मे जो बच्चे नियमित गृहकार्य नहीं करते।

इस प्रकार गृहकार्य अध्यापकों के लिए एक औजार के रूप मे प्रयोग किया जाता है जिसके आधार पर वह बच्चे की उन्नति के बारे में जान पाते है एवं यह भी जानतें हैं कि उनका पढ़ाया हुआ बच्चा समझ पाता है अथवा नही।

बहुत से अध्यापक गृहकार्य नहीं देना चाहते क्योंकि वह विश्वास करते है कि–

- यह अध्यापकों पर अतिरिक्त बोझा होता है क्योंकि एक तो गृहकार्य दिया जाए फिर उसकी जाच की जाये। जबकि स्कूल में पूरा समय पढ़ाने मे निकल जाता है और कक्षा में क्या- क्या पढ़ाया जाये इसकी तैयारी के लिए समय निकालना भी कठिन होता है, ऊपर से गृहकार्य देने के लिए सोचना एक अतिरिक्त बोझा ही होता है यही तथ्य कुलकर्णी एन. आर. (1973) एवं नाइक (1978) के अध्ययनों से भी स्पष्ट होता है।
- सामान्यत: एक कक्षा में 40 से 50 बच्चे होते है। यह अनुमान लगाना आसान है कि प्रत्येक की कापी खोलना उसको जांचना एवं उनमें अशुद्धियों को निकालने में कितना समय लग जाता है। यदि एक ही शिक्षक को 4 या 5 कक्षाओं में यही सब करना होगा तो समय कहाँ से निकाल पायेगा। और यदि समय निकालेगा भी तो वह अपने अन्य किसी कार्य की कीमत पर ही यह सब कर पायेगा।
- स्कूल के प्रशासक शिक्षकों से अपेक्षा रखतें है कि वह पूरा पाठ्यक्रम निर्धारित अवधि में पूरा करले साथ ही अच्छे परिणाम की आशा रखते हैं। कुछ ही प्रशासक ऐसे होते जोकि परीक्षा परिणाम को शिक्षक की योग्यता का सूचक नहीं मानते हो अन्यथा परीक्षा परिणाम का सीधा सम्बन्ध शिक्षक की योग्यता से जोड़ा जाता है।
- गृहकार्य बच्चों मे नकल करने की प्रवृत्ति को डालता है क्योंकि कई बच्चे जो गृहकार्य कर पाने में असमर्थ होते हैं और वह अपने अभिभावकों (अशिक्षित) से भी मदद नहीं ले पाते.और वह दण्ड मिलने से बचने के लिए नकल को एकमात्र सहारा मानकर नकल की प्रवृत्ति को विकसित कर लेते है।
- अन्तिम तथ्य यह भी है कि यादि प्रत्येक शिक्षक गृहकार्य देगा तो बच्चे के पास भी इतना समय कहाँ से आयेगा कि वह उसे पूरा कर सके।

विद्यार्थियों मे भी गृहकार्य के प्रति मिश्रित भावनाये होती है जो विद्यार्थी गृहकार्य करने की इच्छा रखते है उनके अनुसार–

- यह एक प्रकार से शिक्षक की आज्ञापालन करना होता है।
- इससे परीक्षा की तैयारी में मदद मिलती है।
- यह बच्चों को कक्षा मे अच्छा करने के लिए उत्साहित करने मे सहायता है क्योंकि गृहकार्य पूर्ण करने पर उन्हे जो खुशी एवं शिक्षक से प्रशंसा मिलती है उसके द्वारा वह और अच्छा करने की सोचते है।
- इसको पूरा करने पर स्कूल में शिक्षकों एवं घर पर अभिभावकों द्वारा दण्ड नहीं मिलता है।

इन कारणों के पक्ष को ज्योति (1985) का अध्ययन भी मजबूत करता है। जबकि लगभग समान रूप से कुछ विद्यार्थी गृहकार्य के पक्षधर नही हैं। यदि यह उनकी ही इच्छा पर निर्भर हो तो वह इसके निम्न कारण मानते हैं-

- यह बच्चों के लिए स्कूल एवं घर पर एक नापसन्द आने वाला अनुभव मात्र होता हैं।
- गृहकार्य एक प्रकार का मशीनी कार्यकलाप है।
- इसे पूरा करने के लिए समय का अभाव।
- गृहकार्य करने मे असमर्थ बच्चों को अभिभावकों एवं

अपने सहपाठियों से सहयोग का अभाव ।

- कभी- कभी कुछ शिक्षकों के द्वारा गृहकार्य देना एक प्रकार से दण्ड का ही रूप होता है ।
- कभी- कभी यह इतना अधिक हो जाता है कि बच्चे की क्षमता से ही बाहर हो जाता हैं ।
- शिक्षकों द्वारा इसे जाचने में रूचि का अभाव ।
- यह बच्चों को मिले खाली समय (जिसमें वह खेल का मनोरंजन करते है) को कम कर देता है ।

कुलकर्णी एवं नाइक के अध्ययनों मे भी यह तथ्य स्पष्ट होता है कि गृहकार्य की कापियां नियमित रूप से नहीं जांची जाती हैं और बच्चे का कठिन गृहकार्य एवं कुछ घरके अन्य कार्यो को करने के लिए समय का अभाव होने पर गृहकार्य को करने की प्रवृत्ति विकसित हो जाती है । एन० सी० ई० आर० टी० के सर्वे के अनुसार कक्षा 9 के बच्चे को औसतन 4 घटे प्रतिदिन गृहकार्य पर देन होते है ।

इन सब तथ्यों के आधार पर प्रश्न उठता है कि आखिर जो गृहकार्य यादगार, आनन्ददायक एवं बच्चे को स्वीकार्य हो ऐसा गृहकार्य का प्रारूप कैसा हो इसी सन्दर्भ मे कुछ सुझाव निम्न हैं--

(1) हालांकि काफी कुछ गृहकार्य के पक्ष एव विपक्ष में साक्ष्य प्रस्तुत किये गये लेकिन फिर भी इसकी उपयोगिता बढ़ाने के लिए इस क्षेत्र में अध्ययन की अति आवश्यकता है ताकि तथ्यों के आधार पर गृहकार्य का प्रारूप तैयार किया जा सके और गृहकार्य को अध्यापन- अध्ययन प्रक्रिया का महत्वपूर्ण एवं उपयोगी अंग बना सके । कुछ भी क्यों न करे हमारा प्रयास एव उद्देश्य केवल शिक्षार्थी की रूचि एवं उसकी आवश्यकताओं का ध्यान रखना है और ऐसा प्रारूप बनाना है ताकि बच्चा सीखने में रूचि ले एव शिक्षा के अनुभवों का आनन्द उठा सके ।

(2) गृहकार्य आवश्यकता आधारित एवं बच्चे के स्तर के अनुरूप होना चाहिए ।

(3) गृहकार्य मे बच्चे को सीखने की आदत को डालने एवं सीखी हुई चीज को याद रखने की प्रवृति को बढ़ावा देने की खासियत होनी चाहिए ।

(4) गृहकार्य को समूह का कार्यकलाप होना चाहिए ताकि समूह का प्रत्येक सदस्य अपनी योग्यता, रूचि एवं साधनों के अनुसार योगदान कर सकें।

(5) गृहकार्य सही रूप से बनाया गया हो ताकि पूरे पाठ्यक्रम पर आधारित हो ।

(6) बच्चे को गृहकार्य देने से पहले पर्याप्त मार्गदर्शन देना चाहिए ।

(7) गृहकार्य देने से पूर्व शिक्षक को इसके कठिनाई स्तर एव इसमे लगने वाले समय को ध्यान में रखना चाहिए ।

(8) गृहकार्य कक्षा में पढ़ाये गये पाठ्यक्रम से सम्बन्धित होना चाहिए ।

(9) दिये गये गृहकार्य की उपयुक्त जांच करके बच्चे को वापिस देना चाहिए ताकि वह गलतियों में सुधार ला सके ।

(10) गृहकार्यो की कुछ कापियों को जांच कर, दूसरे बच्चों से अन्य बच्चों की कापियों की जांच करवाई जा सकती है ताकि समय की बचत हो जाये ।

(11) ली एवं प्रयूटस (1979) के अनुसार गृहकार्य में चार बातों का विशेष ध्यान रखा जाना चाहिए जो बच्चे को अभ्यास, पाठ अथवा परीक्ष की तैयारी, सीखे हुए तथ्य का विस्तार एवं सृजनात्मक क्षमता

को विकसित करने मे सहायक हो।

गृहकार्य वास्तव में अर्थपूर्ण एवं उपयोगी शौक्षिक अनुभव है और कक्षा के कार्य का पूरक होता है यदि इसको सही ढंग से तैयार किया गया हो एवं योजना बद्ध तरीके से बच्चे की योग्यता उसके समय एवं इसी प्रकार के तथ्यों को ध्यान में रखकर दिया जाये। ☐☐

कम्यूटर प्रोग्रामर
अध्यापक शिक्षा विभाग,
राष्ट्रीय शौक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद,
नई दिल्ली

प्रारम्भिक शिक्षण की सरल विधि

☐ डा० राम चन्द्र कपूर

छः वर्ष की पूर्ण आयु वाले शिशु ही विद्यालयों मे शिक्षणार्थ प्रथम कक्षा मे प्रवेश योग्य होते है क्योंकि तभी उनका ध्यान कुछ स्थिर होला है, तथा उनकी धारणा शक्ति कुछ विकसित हो जाती है और माता पिता से कुछ समय तक अलग रहने मे वे कष्ट का अनुभव नहीं करते हैं।

यदि किसी कारणवश छः वर्ष का पूरा होने के पूर्व किसी शिशु का विद्यालय मे प्रवेश करना पडे तो भी उसकी आयु पाच वर्ष से कम नही होनी चाहिये तथा उसके छः वर्ष का पूरा होने तक उसे अनौपचारिक रूप से प्रथम कक्षा के ही शिशुओं के साथ बैठने देना चाहिए। छः वर्ष पूर्ण होने पर आवश्यक मात्रा मे मनोबुद्धि विकास से सम्पन्न शिशु शिक्षा को अविलम्ब ग्रहण कर सकेगा।

पहले पहल विद्यालय लाये जाने पर प्रायः बहुत से बच्चे घर से सहसा विच्छिन्न होने पर त्रस्त होते हैं। अतः माता पिता को चाहिये कि वे कुछ दिनों तक शिशु को विद्यालय में लाकर कुछ समय तक उसकी दृष्टिगोचरता मे रहें और फिर उसे अपने साथ ही घर ले जाये। अध्यापक भी उसे सात्वना देकर आश्वस्त करे। बच्चे शीघ्र ही विश्वस्त और विद्यालय आने के अभ्यस्त हो जायेंगे।

प्रवेशारम्भ में दस पांच दिनों तक बच्चों से लिखने पढने को न कहें। अध्यापक/अध्यापिकाओं को चाहिए कि उन्हें छोटी- छोटी शिक्षाप्रद कहानियाँ सुनावे, तथा उन्हे आपस मे घुलने- मिलने दें। यह ध्यान रखे कि वे आपस में लड़ें- झगडे नही। विद्यालय मे शिशुओं के आश्वस्त हो जाने पर पहले उन्हे उचित प्रकार से बैठना उठना तथा विभिन्न प्रकार की शीरीरिक शुद्धियों की रीतियाँ सिखलायें, यह मानकर भी कि ये बाते घर पर भी सिखाई गयी होंगी, क्योंकि संभव है माता पिता के अज्ञान के कारण उन्हें उपयुक्त शिक्षा न दी गयी हो। शुद्ध- रीति शिक्षण के अतिरिक्त शिक्षक यह भी देखें कि बच्चों के वस्त्र, बाल, दात, नेत्र, नाखून और त्वचा स्वच्छ हैं अथवा नहीं। अस्वच्छ होने पर उन्हे स्वच्छता की प्रेरणा दे और आवश्यक होने पर इस सबंध मे उनके माता पिता से कहें।

बच्चों को लिखना- पढना सिखाने से पूर्व उन्हें पूर्ण वर्णमाला तथा सौ तक संख्याये रटा दें। वर्णमाला का एक अंश तथा बीस- तीस तक सख्याये रटा दें। वर्णमाला का एक अंश तथा बीस- तीस तक संख्याये रटा कर भी आगे का कार्य आरंभ किया जा सकता है।

वर्णमाला और संख्यायें रटा देने के पश्चात् अध्यापक उनके लेख प्रतीकों की शिशुओं से पहचान करवायें। इसके लिये अक्षरों और अंकों को श्यामपट्ट पर, बच्चों की पट्टी अथवा अभ्यास पुस्तिका में तथासंभव किसी आकर्षक रंग से अन्यथा सफेद खड़िया या पेंसिल आदि से ही बड़े आकारों में लिखकर बच्चों को दिखाते हुए उनका एक- एक कर उच्चारण करे तथा बच्चों से अंगुली रखवाकर उच्चारण करवायें।

इसी समय से बच्चों का उच्चारण सुनकर सरल

शब्दार्थ पद्य सुना- सुना कर रटाये जा सकते हैं। इससे बच्चों की भाषा ज्ञान भूमिका पुष्टि होगी।

वर्णमाला तथा कुछ गिनतियों के रटा देने और उन्हे उनका कुछ अभिज्ञान करा देने के बाद बच्चों को पहले वर्णों तथा गिनतियों का लिखना सिखाये।

अध्यापक की सहायता व स्वतंत्र अभ्यास से बच्चे जब वर्णों तथा संख्याओं को लिखना सीख जाये तो फिर उनके पहचनवाने का दुबारा अभ्यास करवाना चाहिए। बहुत से बच्चे क्रम से पूरी वर्णमाला तथा सौ तक गिनतियाँ लिखना सीखकर क्रम के बाहर किसी वर्ण अथवा संख्याओं को बोलने पर लिख नही पाते हैं या अलग लिखित को पढ़ नहीं पाते हैं। थोड़े बहुत विलम्ब से तो बच्चे क्रम के बाहर भी वर्णों तथा संख्याओं का लिखना- पढ़ना सीख ही लेते हैं किंतु इसमें सुगमता तथा शीघ्रता के लिए उपाय भी करणीय हैं। बच्चों को मिले जुले वर्णों और संख्या चिन्हों मे उन्हें पहचनवाने के अतिरिक्त उनसे ये एक- एक कर आदेश देकर लिखाये जायें, तथा श्याम पट्ट आदि पर लिखकर पढ़वायें। अध्यापक के द्वारा श्रम करने पर बच्चे कुछ शीघ्रता से वर्णो तथा गिनतियों की पहचान सीख जायेंगे।

वर्णमाला चित्रपटों का (वर्णमाला सिखाने के लिए) प्रयोग न करके जिसमें बार- बार उन्हीं चित्रों को देखकर बच्चे क- कबूतर, इत्यादि रट लेते है वर्ण ध्वनियों और उनके शब्दों में प्रयोग का ज्ञान कराने के लिये बच्चों से वर्ण विशेष से प्रारंभ नाम वाले प्राणियों, वृक्षों, आदि के नाम पूछने चाहिए। विद्यालय में विभिन्न पशु पक्षियों की आकृति वाले आकर्षक सुदृढ़ और अल्प मूल्य वाले खिलौने तथा विभिन्न दृश्यों और पशु पक्षियों तथा महात्माओं और समकाल में सर्वमान्य महापुरूषों के चित्र भी होने चाहिए। अध्यापक इन खिलौनों तथा चित्रों को बच्चों को दिखायें, उनके विषय में उन्हें जो कुछ ज्ञात हो, वह उनसे पूछे तथा फिर स्वय उनके विषय में अत्यधिक विस्तार से बतायें। इससे बच्चों का सामान्य ज्ञान तथा इतिहास का ज्ञान बढ़ने तथा मनोरंजन होने के साथ उनका भाषा ज्ञान भी बढ़ेगा।

बच्चों को भाषा ज्ञान कराने के लिये सर्वत्र समान रूप से निर्धारणीय पुस्तके भी अनुपयुक्त हैं। इन भाषा पाठ्यपुस्तकों से उपलब्ध सामान्य ज्ञान सभी विद्यार्थियों के लिये समान रूप से उपयोगी भी नहीं होता। गांव में रहने वाले बच्चों के लिये अपूर्वद्रष्ट नगर के वर्णन उपयोगी नही होते तथा नगर में रहने वाले बच्चों के लिये खेती से संबंधित वर्णन व्यर्थ होता है। किसानों के जो बच्चे ग्रामीण विद्यालयों में पढ़ते हैं उन्हें निर्धारित- पाठ्य क्रम वाली भाषा- पाठ्य पुस्तकों से प्रदेय भूमि संरक्षण आदि से संबंधित ज्ञान की अपेक्षा व्यवहारिक कृषि का कहीं अधिक ज्ञान होता है। अतः कक्षा एक से कक्षा तीन तक भाषा ज्ञान कराने के लिंए पाठ्यपुस्तकों का अवलम्बन लेने की कोई आवश्यकता नही। अध्यापकों को चाहिए कि वे विद्यालीय स्थिति के अनुसार नागरिक अथवा ग्रामीण क्षेत्र मे दृष्ट और दैनिक जीवन मे उपयोगी नहीं, उद्यान, मार्ग, पक्षियों के विषय में या सत्य, दवा आदि किसी उपदेश नीति के विषय मे था सत्य, दया आदि किसी उपदेश नीति के विषय मे बालकों की बुद्धि मात्रा का ध्यान रखते हुए उन्हे बताने के लिए श्यामपट्ट पर दस- पंद्रह वाले नित्य नवीन पाठों की रचनाकर उन्हे बच्चों से पढ़वाये। इन्हे पढाने से बच्चों का भाषा ज्ञान विकसित होने के साथ उनका मनोरजन भी होगा साथ ही उनकी बुद्धिशक्ति तथा आवश्यकता के अनुसार उनका ज्ञान भी बढ़ेगा।

बच्चों को उनकी मातृ- भाषा मे उपलब्ध सरल शब्दार्थ- वाली गेय कवितायें या काव्यांश शैली में अथवा संगीत न जानने पर छन्दोलय सूचक रीति से गाकर सुनाने चाहिए तथा बच्चों से गवाने चाहियें। यहीं उनके संगीत ज्ञान का प्रारंभ होगा। अध्यापक वाद्य- यंत्र का प्रयोग कर

सकता है, किंतु शिशु विद्यार्थियों से उनका प्रयोग कराने की आवश्यकता नहीं। संगीत से बच्चों का प्रचुर मनोरजन होता है तथा इससे वे भाव- प्रवरण भी जाते हैं।

आठवीं कक्षा तक चित्र, सगीतादि कोई भी आँनंदकारिणी कला परीक्षा का विषय नहीं होनी चाहिये। कला प्रतिभा की वस्तु है। कक्षोत्तीर्णता के लिये परीक्षा प्रतिभा की उपकारिणी नहीं हो सकती। आठवी कक्षा के उपरांत कला ज्ञान की परीक्षा वैकल्पिक होनी चाहिये। जिन्हे चित्र, संगीतादि पढ़ाने की सवेतन वृत्ति करनी है वे इनमे परीक्षायें दे सकते हैं, अन्य नही।

शिशुओं को गणित पढ़ाने के लिये फूलों व पत्तियों का, जहाँ वे प्राप्य हों तथा कौड़ियों, कनेल के बीजों तथा कांच या लाख की गोलियों का प्रयोग किया जाये। फूल और पत्ते कोमलता व रंगमय होने से आकर्षक लगते है। इसी अवसर पर उनका रंग पूछ कर बच्चों को रग ज्ञान कराया जा सकता है। कौड़ियों, कनेल के बीजों तथा गोलियों का स्पर्श चिकना व सुखद होता है। जोड़ घटाना इत्यादि सिखाने में इनका प्रयोग करने में बच्चे प्रसन्न होंगे।

चौथी कक्षा से बच्चों को जब वे प्रायः दस वर्ष के होंगे, भाषा व साहित्य के ज्ञान के लिये पद्य और गद्य की प्रसिद्ध पुस्तकों मे से उनकी योग्यता के अनुसार छोटे- छोटे अश व्याख्यान करके पढ़ाने व लिखाने चाहिये। अध्यापक अपनी शक्ति से रचित गद्य या पद्य मे कोई लघु- प्रबंध बच्चों को लिखा सकता है। इनमे पूर्णतया या अंशतया उद्धत वे अंश भी होने चाहिये जिनमें ऐसे महापुरूषों के चरित्रों का वर्णन हो जिनसे बच्चे प्रेरणा ले सकें। सदव्यवहार और लोक व्यवहार की शिक्षा बातों- बातों मे मौखिक रूप से दी जाये।

प्रारंभिक सिक्षा प्राप्त करने तक अर्थात् बच्चों के बारह वर्ष का होने तक शिक्षित होने के पश्चात् संभव हे कि कुछ बच्चों को आगे विद्यालयीय शिक्षा न उपलब्ध हो अतः उन्हे इतना योग्य बना देना चाहिये कि वि उनके आधार पर हिसाब- किताब कर सकें तता जहां साधारण बातों मे भूगोल, इतिहास व सामान्य ज्ञान की आवश्यकता हो वहाँ वे अपना काम चला सके। जन साधारण के लिये भौगोलिक ज्ञान की आवश्यकता केवल इन प्रयोजनों के लिये होती है। कृषि, वाणिज्य, इत्यादि, स्वतंत्र जीविका की खोज में अन्यत्र जाकर बसना, तीर्थाटन करना तथा अन्य दर्शनीय स्थानों की यात्रा करना। अतः देश के विशाल होने पर पहले प्रांत और फिर देश के विविध भौगोलिक खंडों की रचना, उनकी जलवायु तथा उनमे उत्पन्न होने वाले विभिन्न अन्न, फलादि का ज्ञान संक्षेप मे करा देना चाहिए।

विज्ञान की शिक्षा में बच्चों को पहले उन पशु पक्षियों और कीट पतंगों के प्रमुख स्वाभाविक लक्षणों का ज्ञान कराना चाहिये जो मानव जाति के लिये लाभकर अथवा हानिकर हैं। फिर आस- पास पाये जाने वाले पीपल, नीम, आम आदि उन प्रमुख वृक्षों तथा कुछ अन्य वासकादि वनस्पतियों के विषय मे बताया जाये जिनका प्रयोग वे स्वास्थ्य कक्षा तथा रोगोपचार के लिये कर सकते हैं। इसी उद्देश्य से दो चार अति प्रमुख रासायनिक तथा खनिज द्रव्यों का संक्षिप्त परिचय भी कराया जाये। दिन रात होने, इनके छोटे बड़े होने, ऋतु परिवर्तन का कारण तथा ग्रहण होने के कारण भी चौथे पॉचवे के बच्चों को दीपक गेंद अथवा ग्लोब इत्यादि का प्रयोग करके समझाये।

बच्चे केवल परीक्षा उत्तीर्ण करने के लिये सीमित शब्दों में चुने हुए प्रश्नों के उत्तरों को रटे नहीं- इसका ध्यान प्रारंभ से ही रखना चाहिए। अतः अध्यापक गण इतिहास, भूगोल आदि में बच्चों को छोटे- छोटे प्रश्नों के छोटे- छोटे उत्तर रटने के लिये न लिखायें। इससे बच्चों में विषय को समझने की प्रवृति मर जाती है, उसके बहुत थोड़े अंश का ज्ञान हो पाता है और उसे बुद्धिस्थ किये बिना तोते की भाँति

रटने का अभ्यास हो जाता है। अतः अध्यापक गण बच्चों को अच्छी तरह समझा कर प्रश्नों के उत्तरों को उनसे अपने शब्दों में लिखने को कहें चाहे बच्चे कितना ही थोड़ा लिखें। परीक्षा नियत समय पर वर्ष में केवल एक- दो बार ही न की जाए अपितु वर्षान्त तक बच्चों को कई बार परीक्षित करके अध्यापकों के द्वारा अध्यापित विषय का पूर्ण या अधिकांश ज्ञान प्रदर्शित करने वाले बच्चों को अगली कक्षा में उत्थापित किया जाये। यह परी सभी स्तरों के लिये उचित है।

अध्यापक गण बच्चों को पढ़ाते समय सत्य और अहिंसा के तात्पर्य को समझाकर उर पर बल दें।

रसाय

क्राइस्ट च

शिक्षा में समान अधिकार

☐ डा० कान्ति मोहन श्रीवास्तव

मानव समाज मे शिक्षा का महत्वपूर्ण स्थान है। शिक्षा द्वारा ही शिशु अपने समाज का योग्य सदस्य बन पाता है, और वहीं कालान्तर मे अपने समाज की प्रगति में सहायक होता है। आज विज्ञान व प्रौद्योगिकी के विकास तथा जीवन के विविधतापूर्ण व जटिल हो जाने के कारण शिक्षा का महत्व बढ़ गया है। जनतत्रीय भावना के विकास एवं प्रसार के कारण शिक्षा को अधिकार के रूप में देखा जाने लगा है। 'मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा' मे यह कहा गया है कि सभी व्यक्तियों को बिना लिंग, जाति, सम्प्रदाय एवं आर्थिक भेदभाव के शिक्षा का अधिकार है।

भारतवर्ष में जहां शिक्षा को प्राचीन काल से ही महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता रहा है, शिक्षा के अधिकार की घोषणा का अनुपालन किया गया है। भारतीय संविधान उसे स्पष्ट रूप से स्वीकार करता है। संविधान की धारा 45 के निर्देशक सिद्धान्त मे कहा गया है कि इस संविधान के लागू होने के दस वर्ष के भीतर राज्य सब बच्चों को चौदह वर्ष की आयु पर्यन्त निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा देने का प्रयास करेगा।' इतना ही नहीं संविधान की धारा -21 (2) मे कहा गया है कि, 'केवल धर्म, मूलवंश, जाति, भाषा अथवा इनमें से किसी एक के आधार पर राज्य द्वारा पोषित अथवा राज्य निधि से सहायता प्राप्त किसी शिक्षण संस्था मे प्रवेश पाने से किसी भी नागरिक को वंचित नहीं किया जायेगा। राष्ट्रीय शिक्षा नीति - 1986 मे शिक्षा का सार और उसकी भूमिका के अन्तर्गत यह स्वीकार किया गया है कि, हमारे राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में सबके लिए शिक्षा हमारे भौतिक और आध्यात्मिक विकास की बुनियादी आवश्यकता है।

उपर्युक्त से यह स्वपष्ट है कि भारत में बिना किसी भेदभाव के सभी के लिए शिक्षा को आवश्यक माना गया है, और एक सीमा तक राज्य से इसकी व्यवस्था की अपेक्षा भी की गई है। इसे यों भी कह सकते है कि शिक्षा प्राप्त करने के लिये सभी का अधिकार समान रूप से स्वीकार किया गया है। किन्तु शिक्षा में समान अधिकार का आशय यह नहीं है कि जो जैसी भी शिक्षा चाहे प्राप्त करने का अधिकार रखता है, भले ही उसमें उसे प्राप्त करने की योग्यता और उससे लाभान्वित होने की क्षमता हो या न हो। वास्तव मे शिक्षा मे समान अधिकार से यह आशय लिया जाना उचित होगा कि देश के सभी नागरिकों को एक निश्चित स्तर तक की, और एक समान गुणता वाली शिक्षा बिना किसी बाधा के उपलब्ध हो। साथ ही उससे उच्च स्तर व अन्य प्रकार की तकनीकी व्यावसायिक शिक्षा की भी सुविधा प्रचुर मात्रा में हो, जिससे जो उसे प्राप्त करने के योग्य व इच्छुक हों उन्हे उसे प्राप्त करने मे कठिनाई न हो।

भारत मे यद्यपि 'शिक्षा में समान अधिकार' की धारणा को मान्यता है फिर भी यहां समाज के विभिन्न वर्गों एवं क्षेत्रों में शैक्षिक दृष्टि से बहुत असमानता है। स्कूल जाने वाले 6 से 14 वर्ष मय समूह के बच्चों को ही ले, तो उनमे से लगभग आधे या तो स्कूल मे प्रवेश ही नहीं लेते

या प्राथमिक स्तर पर ही स्कूल छोड़ देते हैं। हाल के ही एक राष्ट्रीय सेम्पल सर्वेक्षण के अनुसार इनमे से एक तिहाई से आधे बच्चों तक के लिए स्कूल उबाऊ, अप्रासंगिक और भयावह (अर्थात् परीक्षाओं में असफलता) है। लगभग 40 से 45 प्रतिशत अन्य बच्चों को गम्भीर आर्थिक मजबूरियों एवं घरेलू व पारिवारिक जीवन की जरूरतों के कारण स्कूल से दूर रहना पड़ता है। केवल लगभग पाँच प्रतिशत बच्चे उच्चतर माध्यमिक स्तक तक पहुंच पाते हैं और इससे भी कम उच्च शिक्षा प्राप्त करते हैं। इसी प्रकार पुरूष व महिलाओं की शिक्षा मे भी असमानता है। ग्रामीण क्षेत्रों मे महिलाओं की शिक्षा की दशा और भी खराब है। पिछड़े वर्गों विशेषकर अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति में भी तुलनात्मक रूप में शिक्षा का प्रसार बहुत कम है। कतिपय अल्पसंख्यक समुदाय व विकलांगों की शिक्षा की दशा भी संतोषजनक नहीं है। कतिपय ऐसे क्षेत्र भी है जो दुर्गम स्थानों पर बसे है। वहां आवागमन व जीवन की आवश्यकताओं के साधनों की न्यूनता है। वहां भी पर्याप्त अशिक्षा है। इस प्रकार यह पता चलता है कि देश मे शिक्षा की दृष्टि से पर्याप्त असमानता है। इसका कारण शैक्षिक सुविधाओं की न्यूनता तथा सामाजिक आर्थिक ढांचे का इस प्रकार होना है कि कई वर्गों के लोगों को शिक्षा की सुविधा से वंचित रह जाना पड़ता है।

भारतीय समाज मे शिक्षा के लिये समान अधिकार की स्वीकारोक्ति किन्तु व्यवहार में लोगों का उसे न प्राप्त होना विडम्बना ही कहा जायेगा। शिक्षा मे समान अधिकार की धारणा को मूर्त रूप देने के लिए कुछ ठोस प्रयासों की आवश्यकता है। इस दृष्टि से आगे विचार किया गया है।

यह कहा जाता है कि अच्छी शिक्षा के लिए केवल धन ही सब कुछ नहीं है, किन्तु एक न्यूनतम मात्रा मे धन इसके लिए अनिवार्य शर्त अवश्य ही है। भारत मे शिक्षा में पूंजी निवेश की स्थिति बहुत अच्छी नही दिखाई देती है। यद्यपि यह सत्य है कि पिछले वर्षों के सकल राष्ट्रीय उत्पाद में शिक्षा पर व्यय का प्रतिशत बढ़ा है। 1950-51 मे यह 1 2 प्रतिशत था वहीं 1986-87 मे यह 3 9 प्रतिशत हो गया है। किन्तु वास्तविक जरूरत व्यय के वर्तमान स्तर से कहीं ज्यादा है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968 में सकल राष्ट्रीय उत्पाद के 6 प्रतिशत को शिक्षा के लिए निर्धारित करने की बात कही गई थी किन्तु वास्तविक व्यय उससे काफी कम है। योजनागत व्यय में शिक्षा का भाग पहली योजना के 7 86 प्रतिशत से घट कर सातवीं योजना में 3 55 प्रतिशत पर आ गया है। इतना ही नहीं शिक्षा पर कुल व्यय मे शासन का भाग निरन्तर बढ़ता जा रहा है। 1950-51 में यह 57.1 प्रतिशत था जो 1979-80 में 77.9 प्रतिशत हो गया है। स्थानीय निकायों व निजा प्रयासों के योगदान मे भारी कमी आई है। अतः शिक्षा में समान अधिकार की पूर्ति की दृष्टि से यह आवश्यक प्रतीत होता है कि शिक्षा मे पूंजी निवेश में वृद्धि की जाय जो सकल राष्ट्रीय उत्पाद के 6 प्रतिशत से कम न हो। साथ ही योजनागत व्यय में भी शिक्षा के लिए अधिक प्रावधान करने को कहा जाय। यह भी सुनिश्चित करने की आवश्यकता है कि संसाधन सामाजिक एवं क्षेत्रीय असमानताओं को कम करने तथा शैक्षिक अवसरों को विस्तृत बनाने के लिए अलग से उपलब्ध कराये जाएं। साथ ही निजी प्रयासों को शिक्षा मे अधिकाधिक धन लगाने के लिए प्रेरित किया जाए।

शिक्षा के विभिन्न क्षेत्रों में परिव्यय में काफी गंभीर असंतुलन दिखाई पड़ता है पहली योजना में प्रथमिक सिक्षा का हिस्सा 56 प्रतिशत था जो कि सातवीं योजना में घटकर 29 प्रतिशत पर आ गया। उसी अवधि में विश्वविद्यालयी और आम सिक्षा पर व्यय 18 प्रतिशत से बढ़ कर 44 प्रतिशत हो गया। इस बात को ध्यान में रखते हुए कि शिक्षा के प्रारम्भिक स्तर पर किये गये व्यय से प्राप्त लाभ की दर उच्च शिक्षा से प्राप्त होने वाली लाभ की दर से कही ज्यादा है, यह अवनति अनुचित है। इससे शिक्षा में समान

अधिकार प्राप्त होने की सम्भावना प्रारम्भ से ही क्षीण होने लगती है। अतः आवश्यक प्रतीत होता है कि प्राथमिक शिक्षा पर अधिक धन आवंटित किया जाय। साथ ही महिलाओं, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़े समुदायों के लिये प्रारम्भिक शिक्षा के क्षेत्र में अलग से धनराशि का आवंटन हो, जिसे दूसरे मद में कदापि न व्यय किया जाए।

आज प्रायः देश में प्राथमिक शिक्षा निःशुल्क है। कतिपय राज्यों मे माध्यमिक शिक्षा को भी निःशुल्क बनाने का प्रयास किया गया है। किन्तु प्राथमिक शिक्षा को व्यवहार में अनिवार्य नहीं किया जा सका है। अतः कानूनन प्रथम चरण मे प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य व निःशुल्क करने के साथ ही शिक्षण संस्थाओं की सुविधा व उनके कार्यक्रमों में भी वांछित परिवर्तन किया जाना चाहिए। ग्रामीण क्षेत्रों व मलिन वस्तियों में आवश्यकतानुसार विद्यालय के समय व अवकाश में परिवर्तन किया जा सकता है। द्वितीय चरण मे यह कानून माध्यमिक स्तर तक की शिक्षा के लिए भी लागू किया जा सकता है।

वर्तमान में उच्च शिक्षा तथा तकनीकी व व्यावसायिक शिक्षा की सुविधा बढ़ती हुई जनसंख्या के आनुपातिक सन्दर्भ में बहुत कम है। अतः इस प्रकार की सुविधा का इस रूप में विस्तार किया जाना चाहिए जिससे जिनमे योग्यता और जो उसे प्राप्त करने के इच्छुक हों उन्हें उससे वंचित न होना पड़े।

संस्थाओं के सुविधा के साथ साथ आज विभिन्न संख्याओं में शैक्षणिक स्तर की दृष्टि से बहुत असमानता दिखाई देती है। कई बार उच्च प्रतिभा वाले कमजोर आर्थिक स्थिति के बच्चे अपने निकट की निम्न शैक्षणिक स्तर की संस्था मे ही अध्ययन करने के लिए विवश हो जाते हैं। इस प्रकार उनका समुचित शैक्षिक विकास नहीं हो पाता। शिक्षा के समान अधिकार के मूल में समान शैक्षिक स्तर की शिक्षा प्राप्त करने की भावना को नकारा नही जा सकता है। अतः यह आवश्यक है कि विभिन्न शिक्षण संस्थाओं के गुणता में सुधार करके उन्हे शैक्षणिक स्तर की दृष्टि से समतुल्य बनाया जाय।

आज देश में बहुत बड़ी संख्या में ऐसे लोग भी हैं जिन्होंने अपने स्कूल जाने के भय से प्रवेश नहीं लिया या प्रवेश लेकर छोड़ दिया, या विभिन्न कारणों से शिक्षा के वांछित स्तर तक योग्यता होते हुए भी नहीं जा सके। कई लोग ऐसे भी हैं जो थोड़ी शिक्षा प्राप्त करने के बाद आर्थिक उपार्जन में लग गये और अब अपनी योग्यता बढ़ाना चाहते है। ऐसी महिलायें जो घर पर रहती हैं और उन्हें अध्ययन मे रूचि है और वे आगे पढ़ना चाहती है, या दुर्गम स्थानों पर रहने वाले लोग है जो शिक्षा तो प्राप्त करना चाहते हैं किन्तु अपना स्थान नही छोड़ सकते हैं इन सभी वर्गों के शिक्षा के अधिकार की पूर्ति परम्परागत शिक्षण संस्थाओं व विधियों से होना संभव नहीं है। अतः आवश्यकता है कि इनके लिए मुक्त विद्यालय व विश्वविद्यालय की सुविधा अधिकाधिक उपलब्ध कराई जाए। जिसमे दूरस्थ शिक्षा प्रणाली के माध्यम से वे अपने शिक्षा के अधिकार की रक्षा कर सकें। इस दृष्टि से देश में इस प्रकार की संख्याओं की एक ठोस योजना के निर्माण की आवश्यकता है, यद्यपि इस दिशा मे प्रगति होने लगी है।

अब तक के विवेचन से यह स्पष्ट है कि भारत में शिक्षा के समान अधिकार की मान्यता के होते हुए भी विभिन्न वर्गों के लोगों के लिए अपने अधिकार की पूर्ति हेतु शैक्षिक सुविधाएं व सामाजिक- आर्थिक परिस्थितियाँ नहीं है। ऐसे में शिक्षा में समान अधिकार की व्यावहारिकता पर प्रश्नचिन्ह लगना स्वाभाविक है। आज शिक्षा मे समान अधिकार की रक्षा का प्रयास शिक्षण संस्थाओं में आरक्षण द्वारा न करके जिसकी स्थिति भी संतोषजनक नहीं है वरन्

शिक्षा में अधिक पूंजी निवेश करके, व्यय के वितरण को न्याय संगत बनाकर शिक्षा में व्यक्तिगत प्रयासों के योगदान में वृद्धि करके, प्राथमिक शिक्षा को कानूनन अनिवार्य व निःशुल्क प्रथम चरण में बनाकर उच्च शिक्षा तथा व्यावसायिक व तकनीकी शिक्षा की संस्थाओं की सुविधा में विस्तार करके, विभिन्न शिक्षण संस्थाओं को गुणता की दृष्टि से समतुल्य बनाकर, और मुक्त विद्यालय व विश्वविद्यालय की सुविधा का प्रसार करके किया जाना चाहिए। इस प्रकार स्तरीय एवं परम्परागत व मुक्त शिक्षा की सुविधाओं की प्रचुर व्यवस्था करके ही देशवासियों के शिक्षा में समान अधिकार की रक्षा का प्रयास किया जा सकता है, अन्यथा यह संकल्पना कोरी कल्पना मात्र रह जायेगी। इसके लिए शासन व समाज दोनों को मिल कर प्रयास करना होगा।

अध्यक्ष, शिक्षा विभाग
का० सु० साकेत स्नातकोत्तर महाविद्यालय
फैजाबाद

साक्षरता और समाचार पत्र

□ डा० (श्रीमती) आदर्श मदान

समाचार पत्र आज के युग की सबसे महत्वपूर्ण वस्तु बनती जा रही है। सुबह उठते ही अगर यह चिन्ता न हो कि आज भोजन मिलेगा या नहीं तो सबसे पहले जिस चीज़ की आवश्यकता पड़ती है तो वह है समाचार पत्र। शहरों में तो इसे सुबह की चाय के साथ ही टटोला जाता है। और गाँवों में भी जो व्यक्ति समाचार पत्र पढ़ पाता उसे बहुत आदर से देखा जाता है और देश की सभी महत्वपूर्ण सूचनाओं की जानकारी उसी से ली जाती है। परन्तु आज तक जो पक्ष बिल्कुल अछूता रहा है वह है कि साक्षरता ...न में समाचार पत्रों जैसे सशक्त माध्यम का भी उपयोग जाना चाहिए।

आज तक समाचार पत्र का उपयोग प्रायः शिक्षित ...ी करता है। या ऐसा कहे कि समाचार पत्र पढ़ना ...क्षित होने का मापदण्ड भी माना जाता है, तो गलत न ...गा। आभिजात्य संस्कृति ने जहां आडम्बर के पैर फैलाने शुरू किए वहां समाचार पत्रों की पैठ पुस्तकालयों और ...नालयों से घरों के ड्राईंग रूम, डाइनिंग टेबल और चाय में भी हो गई। और अब तो मध्यम वर्ग के परिवारों का भी यह हाल हो गया है कि घर मे समाचार पत्र न आये तो एक शून्य सा व्याप्त हो जाता है।

आजकल सरकार ने निरक्षरता उन्मूलन के लिए मानो कमर कस ली है। साक्षरता के व्यापक प्रचार प्रसार के लिए कई तरीके अपनाए जा रहे हैं। शिक्षकों से लेकर विद्यार्थी तक इसमें जुटे हुए हैं। स्वैच्छिक संस्थाओं से सरकारी तंत्र सभी इसमें सम्बद्ध हैं। सरकार इसमें काफी धन राशि खर्च कर रही है। साक्षरता थैलियों का निःशुल्क वितरण, प्रौढ़ शिक्षा केन्द्र चलाना, जन शिक्षण कार्यक्रम द्वारा जहां साक्षरता का प्रचार प्रसार करने का प्रयास किया जा रहा है वहीं नवसाक्षरों को उनके सीखे हुए ज्ञान का उपयोग करना, सतत अभ्यास से उसे याद रखना, उनके शिक्षण स्तर में वृद्धि करने आदि के प्रयास किए जा रहे हैं, साक्षरता के प्रयासों में यदि समाचार पत्रों का भी सहारा लिया जाए तो न केवल साक्षरता का प्रचार प्रसार होगा वरन् समाचार पत्रों की लोकप्रियता भी बढ़ेगी।

साक्षरता योग्यताओं में वृद्धि हेतु- इसमें चित्र कथाओं, कार्टून एवं कॉमिक्स के माध्यम से नवसाक्षरों और साक्षरता अर्जित कर रहे लोगों को पढ़ाया जा सकता है, जो धीरे- धीरे पढ़ते हैं उन्हे भी चित्रों से अधिगम में सहायता मिलती है। उन्हे समाचार पत्रों मे प्रकाशित सचित्र कार्टून कथाओं का सहारा लेकर पढ़ाया जा सकता है। विज्ञापनों और अन्य व्यावसायिक प्रकाशनों के माध्यम से गणित पढ़ाया जा सकता है।

समाजशास्त्रीय विषयों यथा इतिहास, भूगोल, और समसामयिक घटनाओं की जानकारी भी समाचार पत्रों के माध्यम से दी जा सकती है। क्योंकि अपने प्रकाशन के समय हर समाचार पत्र अद्यतन होता है।

निरक्षरता के साथ सबसे बड़ी समस्या यही है कि लोग यह बात सब पर जाहिर नहीं होने देना चाहते कि वे

निरक्षर है। यह स्वीकार करने में उन्हे कहीं हीनता महसूस होती है। यह भावना कई मामलों में उन्हे मदद मांगने मे भी प्रतिबाधित करती है। समाचार पत्रों की सबसे बड़ी विशेषता ही यही है कि उनकी पहुंच सार्वजनिक एवं व्यापकता विश्व स्तर पर है। जिस समाचार पत्र को किसी देश का राष्ट्रपति या प्रधानमंत्री पढ़ सकता है उसी समाचार पत्र को साधारण व्यक्ति भी पढ़ सकता है। उनकी पसन्द के विषय अलग हो सकते हैं। कोई दूरदर्शन के आगामी आकर्षणों में रुचि रख सकता है तो कोई बाजार भाव ही देखना चाहता है। विशिष्ट व्यक्ति शायद यह देखना पसन्द करें कि उनके विषय में क्या लिखा है। अन्य शायद इसमे रुचि रखे कि आज नगर मे क्या होने वाला है, किन्तु उल्लेखनीय बात यह है कि प्रधानमंत्री से लेकर एक सामान्य व्यक्ति समाचार पत्र पढ़ने के धरातल पर होने की यह अनुमति उसकी हीन भावना को समाप्त करने मे बहुत कारगर सिद्ध होती है।

अतः पढ़ना सीख रहे व्यक्तियों के लिए समाचार पत्र पढ़ने की तीव्र उत्कंठा जागृत करने हेतु कोई ऐसा कॉलम होना चाहिए जो उनके स्तरानुकूल हो। साक्षरता सीख रहे व्यक्ति उससे ज्ञान प्राप्त करेगे और नव साक्षरों के लिए वह ज्ञानोपयोग का माध्यम बन सकेगा। फिर धीरे- धीरे वे बच्चों का पृष्ठ कार्टून कथाएँ, चुटकुले, लघुकथाएँ, खबरों की हैडलाइन्स आदि पढ़ने लगेंगे तो अखबार से उन्हें लगाव होता जाएगा। इस प्रकार के कॉलम से न केवल अखबार की पठनीयता और लोकप्रियता बढ़ेगी बल्कि सामाजिक उत्थान में अखबार की भूमिका का एक सशक्त पक्ष भी जुड़ जाएगा।

सीमित साक्षरता प्राप्त व्यक्तियों के मन में यह पीड़ा नही रहेगी कि अपनी इस न्यूनता के कारण वे किसी वस्तु से वंचित रहते हैं। वे समाचार पत्रों का उपयोग कर पाएँगे। अपनी ललक को प्रदर्शित करने के लिए वे उन्हे साथ लेकर घूमेंगे। इस दृष्टि से वे उन लोगों के बराबर हैसियत रख पाएंगे जो पढ़ सकते हैं। अतः जहाँ तक साक्षरता मिशन का संबंध है, साक्षरता प्राप्त कर रहे व्यक्तियों को समाचार पत्र अथवा पत्रिका पढ़ने मे भागीदारी का अवसर प्रदान कर हम सर्वोदय का मार्ग अपना सकते हैं।

समाचार पत्रों को भी मात्र साक्षरता दिवस पर ही साक्षरता सम्बन्धी सामग्री छाप कर अपने कर्तव्य की इतिश्री नही समझ लेनी चाहिए। उन्हें एक जेहाद व एक मुहिम की तरह यह जिम्मेदारी महसूस करनी होगी कि वे प्रतिदिन साक्षर होते लोंगो को प्रोत्साहित करने, निरक्षरों की तादाद में कुछ कमी करने और उनमें से नए पाठक तैयार करने का बीड़ा उठाएं। समाचार पत्र यह करने से साक्षर होते लोगों के साथ भी जुड़ाव पैदा करेंगे साथ ही जो इस यज्ञ में कार्यकर्ता की हैसियत से जुड़े हुए हैं उन्हें भी सम्बल मिलेगा और समाचार पत्रों को भी अधिक पाठक मिलेंगे, समाज का उन्नयन तो होगा ही साक्षरता से जनता का जीवन स्तर और आगामी पीढ़ी की शिक्षा भी जुड़ी हुई है। बाज़ार भावों का भी समाचार पत्र में स्थान होता है। फिर छपे हुए शब्दों का जीवन बोले हुए शब्दों से अधिक होता है। समाचार पत्रों मे प्रकाशित सामग्री अधिक स्थायी होती है। उन्हे संकलित करके भी नवसाक्षर वर्ग रोचक तुलनात्मक दृष्टि पा सकते हैं।

अखबारों में पाठकों को शब्दों के अतिरिक्त चित्र, ग्राफ, कार्टून और कॉमिक्स आदि प्राप्त होते है अतः उन्हें समझने में साक्षरता हासिल कर रहे व्यक्ति को सरलता होती है। अखबारों की भाषा बोलचाल की शैली की सामयिक भाषा होती है। साथ ही वह आंशिक रूप में इतनी परिनिष्ठित एवं सशक्त भी होती है कि पाठक वर्ग अपनाना भी चाहता है इस रूप में साक्षरता की ओर अग्रसर होने वाले वर्ग को प्रायः जिन शब्दों की कमी महसूस होती है उस कमी को वे समाचार पत्रों की भाषा अपना कर पूर्ति

हैं अभिव्यक्ति नहीं कर सकते वहां वे शुरू शुरू में नाटक के रटे हुए संवाद की भांति उनका प्रयोग करते हैं फिर उन्हें उनकी रफ्त होती जाती है। इस प्रकार समाचार पत्र उनके पास कारगर अस्त्र के रूप में काम में आता है।

वस्तुतः समाचार पत्र में पढ़ने की प्रेरणा देने वाली कोई शक्ति होती है। किसी को समाचार चाहिए। कोई नौकरी खोजने के लिये देखता है। किसी को रेडियो और दूर दर्शन के प्रोग्राम देखने के लिए इनका आकर्षण रहता है। कोई अपनी इच्छित वस्तु खरीदने के लिए विज्ञापन देखना चाहता है पढ़ने की प्रेरणा स्वयं में अधिक मूल्यवान है। अमेरिका में लगभग तीन सौ समाचार पत्रों के स्वयं के साक्षरता कार्यक्रम हैं। और बहुत से अन्य पत्र स्थानीय साक्षरता आन्दोलनों की सहायता करते हैं। अतः समाचार पत्रों को यह चाहिए कि नगर में कोई साक्षरता कार्यक्रम चल रहा हो जैसे प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम आदि तो उनके साथ जुड़ जाना चाहिए वे स्वयं ही समाचार पत्रों के साथ जुड़ जाएंगे जिन्हें इस कार्यक्रम से लाभ होना हो।

साक्षरता से समाज के कई वर्ग लाभान्वित होते हैं। उदाहरणार्थ दुकानदारों को यह लाभ होगा कि वे उनके साइनबोर्ड एवं विज्ञापन आदि पढ़ पाएंगे। उनके बिल पढ़ पाएंगे। साक्षरता आन्दोलन से व्यापारियों को भी लाभ होता है। समाचार पत्रों एवं साक्षरता मिशन में लगे लोगों को वह समान धरातल ढूंढ़ना है जहां व्यापारिक व्यक्तियों और साक्षरता प्राप्त कर रहे लोगों दोनों को फायदा हो।

अध्यापन में सहायक सामग्री के रूप मे भी समाचार पत्रों का प्रयोग किया जा सकता है। समाचार पत्र ऐसी सामग्री प्रदान कर सकते हैं जो अध्यापक कक्षा में उपयोग कर सकते हैं। ऐसा भी हो सकता है कि कालान्तर में अध्यापक विद्यार्थियों को पुस्तकों के साथ समाचार पत्र खरीदने की भी अनुशंसा करें। प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रमों में भी इस प्रकार समाचार पत्रों का उपयोग किया जा सकता है।

समाचार पत्र पढ़ना लोगों का स्वभाव बन जाता है, और पाठक उसे बनाए रखना चाहते है। समाचार पत्रों को चाहिए कि पाठकों के उस स्वभाव पर कब्जा बनाए रखे। इतनी कशिश जगाएं कि व्यक्ति सुबह उठते ही समाचार पत्र की तलब महसूस करे। कोई पहेली देखे, कोई विज्ञापन और कोई मौसम की जानकारी। कोई भी आकर्षण पाठकों को समाचार पत्र से बांधे रखने में सक्षम हो सकता है। साक्षरता से जुड़े लोगों को उस दिन का पाठ और अभ्यास कार्य भी समाचार पत्र की तलब का कारण बन सकता है। प्रौढ़ों को इस प्रकार पढ़ने से जोड़ कर उन्हें समुदाय की भागीदारी का अहसास भी सुखद अनुभूति देगा।

अतः साक्षरता मिशन के अन्तर्गत समाचार पत्रों का योगदान मणिकांचन सुयोग है। पत्रों को चाहिए वे पाठकों के इतने बड़े वर्ग को सम्मिलित करके उनकी भागीदारी के लाभ से वंचित न रहें। समुदाय को इस नव जागृति में जनसंचार माध्यम के इस सशक्त पक्ष का लाभ अवश्य लेना चाहिए। और साक्षरता आन्दोलन के साथ तो यह बहुत बड़े अस्त्र के रूप में जुड़ सकेगा। अनन्त और व्यापक सम्भवनाओं का द्वार खोलने में सक्षम यह पक्ष अभी उद्घाटित होना शेष है। ☐

द्वारा आदर्श निकुंज
डा० क्षेत्रपाल के पीछे, कचहरी रोड, अजमेर

प्राथमिक शिक्षा की मूल समस्याएं एवं उनका निवारण

☐ डा० भगवत सिंह

शिक्षा वह शक्तिशाली साधन है जिसके द्वारा किसी भी राष्ट्र की जीवन धारा को गति एवं मोड़ प्रदान किया जा सकता है। यही कारण है कि स्वातन्त्रयोत्तर भारत मे शैक्षिक सुधारों तथा परिवर्तनों पर गंभीरता पूर्वक चिंतन- मनन किया गया है। हमारी शिक्षा प्रणाली जिस तरह से आलोचना का विषय बनी हुई है , उससे कोई भी अनभिज्ञ नही है। हमारे देश में प्रचलित शिक्षा व्यवस्था के मुख्य रूप से तीन स्तर हैं, यथा- प्राथमिक, माध्यमिक तथा उच्च्य। किन्तु इन समस्त स्तरों में प्राथमिक शिक्षा- जैसा कि स्वयं इसके नाम से ही स्पष्ट है जीवन की आधार शिला है। प्राथमिक शिक्षा का व्यक्ति के जीवन में वही महत्व है जो स्थायी भवन के निर्माण में उसकी सुदृढ़ नींव का होता है।

यदि देश कर्मठ, ईमानदार, देशभक्त, सहिष्णु एवं चरित्रवान नागरिक चाहता है तो असे शिक्षा में प्राथमिक स्तर की समुचित देखभाल करनी होगी। संपूर्ण देश में अराजकता एवं चरित्र- हीनता का जो सैलाब हम देख- सुन रहे है, असके मूल में भी इसी प्राथमिक शिक्षा का त्रुटिपूर्ण होना है। वास्ताव में इन सभी समस्याओं का समाधान मात्र इसी स्तर के सुधार से संभव हो सकता है। ऐसी स्थिति में कुछ मूल बिन्दु विचारणीय है।

सरकारी नीति

भारतीय संविधान की धारा 45 के अनुसार यह व्यवस्था की गई थी कि संविधान के लागू होने के दस वर्षके भीतर राज्य सरकारें 6 से 14 वर्ष तक के सभी बच्चों को अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा प्रदान करने का प्रयास करेंगी। किन्तु दुर्भाग्य है कि वह लक्ष्य अब तक अप्राप्य है। इसी क्रम में 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति मे 'आपरेशन ब्लैक बोर्ड' आदि की चर्चा की गई है किन्तु इसकी सफलता उसके ठोस क्रियान्वयन पर निर्भर करती है।

प्राथमिक शिक्षा संपूर्ण शिक्षा व्यवस्था की पहली सीढी है। संविधान के संकल्पानुसार यह सबको सुलभ भी होनी चाहिए। किन्तु यह देश का दुर्भाग्य है कि ऐसे महत्वपूर्ण कार्य को पूर्ण करने की जिम्मेदारी केन्द्र सरकार ने राज्य सरकारों को सौंप रखी है। विकेन्द्रीकरण की नीति के तहत जिला स्तर की सरकारें यह भार वहन करती हैं परन्तु समुचित संसाधनों के अभाव मे इनका कार्य संतोषजनक नहीं है।

वैसे तो शिक्षा अनवरत प्रक्रिया है। जीवन भर चलती रहती है पर प्रारम्भिक वर्षों में यदि सभी को शिक्षा सुलभ हो जाए तो प्रौढ़ शिक्षा, साक्षरता अभियान जैसे कई कार्यक्रमों को चलाने की आवश्यकता ही नहीं रहेगी। अकेले उत्तर प्रदेश की 13 करोड़ की आबादी में केवल 4 करोड़ के लगभग ही साक्षर हैं। नौ करोड़ लोग जो अपने हस्ताक्षर करने में भी अक्षम हैं उन्हें सरकार सामाजिक न्याय एवं समता कैसे दिला पायेगी। ऐसी स्थिति में भारत जैसे देश को प्राथमिक शिक्षा पर होने वाले व्यय को दो से तीन गुना

अधिक करना पड़ेगा चाहे उचसके लिए उच्च शिक्षा के विस्तार को ही रोकना पडे।

सरकार की तुष्टिकरण की नीति का परिणम है कि गांवों और शहरों की खाई बढ़ती जा रही है। एक तरफ शहर के सुविधा संपन्न पब्लिक स्कूल और दूसरी तरफ गांव के अपेक्षित सरकारी विद्यालय। इनकी टूटी फूटी इमारतें, गंदे फर्शों, अंधेरे एवं सीलन से भरे कमरे प्रथमिक शिक्षा का कलंक है। अकेले उत्तर प्रदेश में अभी भी कोई पन्द्रह हजार प्राथमिक विद्यालयों के पास भवन नहीं हैं और जो हैं भी वे इतने जीर्ण शीर्ण हैं कि उनके अन्दर बैठकर शिक्षण कार्य खतरे से खाली नही है। थोड़ा भी खर्च करने मे समर्थ माता- पिता इन सरकारी स्कूलों मे अपने बच्चों को नही भेजना चाहते किन्तु भारत के करोड़ों भावी नागरिकों की आत्माएं इन बूचड़खानों में सड़ रही हैं। इन स्कूलों मे सरकारी अधिकारियों, राजनेताओं के बच्चे नहीं पढ़ते। इसीलिए इन स्कूलों की इतनी भयंकर दुर्दशा है।

प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में, कुछ अच्छे गैर सरकारी विद्यालय भी हैं जिनमे उच्चवर्गीय संपन्न घरों के बच्चे शिक्षा प्राप्त करते हैं। ऐसे विद्यालय गरीब बच्चों के लिए कल्पना की वस्तु है। इन विद्यालयों की नकल में पहले बड़े किन्तु अब छोटे शहरों मे भी शिक्षा- व्यवसायी, निर्भीकता- पूर्वक 'नर्सरी', 'बाल मंदिर', 'माटेसरी', 'किंडर गार्टेन' जैसे आकर्षक नामों से विद्यालय खोलते चले जा रहे हैं जो गलियों के दमघोंटू कमरों मे होते हैं। यहां ऊंची दरों पर शुल्क वसूला जाता है और अभिभावक यह समझते हैं कि इन विद्यालयों मे उनके बच्चों को उत्तम शिक्षा मिल रही है। ऐसे तथाकथित अंग्रेजी माध्यम से चलने वाले स्कूल सिर्फ बालकों एवं अभिभावकों का शोषण करते हैं।

हनके संचालकों पर सरकार का अंकुश आवश्यक ' इसके लिए केवल मान्यता प्राप्त स्कूलों के छात्रों को ही उच्च स्तर पर प्रवेश की अनुमति दी जाय। परिणाम स्वरूप शिक्षा की ये तमाम दुकानें बन्द हो जायेंगी। साथ ही जबतक धनी एवं निर्धन सभी वर्ग के बच्चों को समान सुविधाएं उपलब्ध नही कराई जायेंगी तब तक सविधान का संकल्प पूरा नहीं होगा। इसके लिए गांवों की गरीबी में न्यूनता लानी होगी। शहरी- ग्रामीण अन्तर को समाप्त करना होगा, तभी जाकर बालक- बालिकाओं को खेत या घर में मां- बाप के काम मे हाथ बटाने के स्थान पर विद्यालयों मे जाने का अवसर मिलेगा। सरकार को चाहिए कि वह आंकड़ों की भूल भुलैया से निकलकर ठोस धरातल पर कार्य करने की बात सोचे। 'शिक्षा- उन्नयन पखवाड़ा' मनाने से क्या होगा? सिर्फ नारे पर्याप्त नहीं हैं। केन्द्र सरकार को चाहिए कि वह शिक्षा को अपना कर्त्तव्य समझे न कि प्रांतीय सरकारों के ऊपर यह बोझ डालकर अपने को मुक्त अनुभव करे। इसके लिए नीति- निर्माताओं को भी आख पर पट्टी बांधकर नही बल्कि संपूर्ण चेतना के साथ योजनाएं तैयार करनी होंगी और उसके क्रियान्वयन हेतु दृढ़ रहना होगा।

पाठ्यक्रम एवं शालीय क्रिया- कलाप

प्राथमिक शिक्षा अपने कार्यक्रम में भी दोषपूर्ण है। इसका उद्देश्य बच्चों में मात्र तीन कौशलों पढ़ना, लिखना और गणित का विकास करना ही नहीं अपितु उनमें जीवन के उपयोगी मूल्यों के प्रति आस्था भी पैदा करना है जिनका समाज में तेजी से ह्रास हो रहा है। सर्व प्रथम प्राथमिक स्तर पर बच्चों में स्वास्थ्य- रक्षा एवं शक्तिवर्धन के लिए प्रबल इच्छा शक्ति पैदा की जाय। दूसरे उनमे यह अनुभूति पैदा की जाय कि समाज में उनके अधिकार एवं कर्तव्य की सीमा क्या है जिससे कि वे अच्छे नागरिक बन सके। तीसरा मूल्य, सामाजिकता का विकास है। तात्पर्य यह कि बच्चों मे अपने माता- पिता , साथियों, गुरुजनों एवं बड़े- बूढ़ों के प्रति शिष्ट व्यवहार करना एवं सबके साथ सद्भाव रखने की प्रवृत्ति पैदा करना। चौथा मूल्य राष्ट्र प्रेम की भावना

उत्पन्न करना है। पांचवां मूल्य व्यक्तित्व गुण है जैसे लगन, उत्साह, धैर्य, साहस, ईमानदारी, श्रम तथा न्याय। इन मूल्यों का विकास प्रत्येक व्यक्ति में प्राथमिक स्तर से होना चाहिए क्यों कि देश के समस्त नागरिक कम से कम प्राथमिक शिक्षा पाएगा। बहुत कम ऐसे लोग होंगे जो उच्च शिक्षा प्राप्त करने में सक्षम होंगे। अस्तु अधिकांश लोगों को मूल्य ग्रहण करने का अवसर प्रारम्भ मे ही मिलना चाहिए।

अनेक धर्मों वाले लोकतांत्रिक राज्य के लिए आवश्यक है कि वह सभी धर्मों के सहिष्णुतापूर्ण अध्ययन को प्रोत्साहित करें। मुख्य धर्मों मे से प्रत्येक के सम्बन्ध मे भलीप्रकार सावधानी से चुनी हुई जानकारी देने वाला पाठ्यक्रम प्राथमिक स्तर पर होना चाहिए। ऐसी शिक्षा उन्हें 'खेल- खेल' मे कहानी सुनाकर प्रदान की जाय। 'करो और सीखो' पद्धति के सहारे उन्हे विभिन्न क्रिया- कलापों में लगाया जाय, इसमें उसे आनन्द की प्राप्ति भी होगी। असीम ज्ञान भंडार वाली संस्कृत भाषा को कक्षा तीन से अनिवार्य कर दिया जाना चाहिए। शिक्षा का माध्यम घर की भाषा हो। संपूर्ण विद्यालयी कार्यक्रम छात्र केन्द्रित हो तभी बच्चे शिक्षा एवं कौशल प्राप्त कर सकेगे अन्यथा किताबों के बोझ एवं पाठ्यक्रम के परिवर्तन से भी कोई लाभ नहीं होगा।

बालक की संस्कृति एवं वातावरण के अनुकूल उत्तम पाठ्यपुस्तकों का अभाव भी एक बड़ी समस्या है। ग्रामीण क्षेत्रों मे तो एक पाठ्यपुस्तक से कई छात्र काम चलाते हैं। निजी संस्थाएं पुस्तकों का प्रकाशन कर इस समस्या को दूर कर सकती है। राजनैतिक दबावों पर आधारित पुस्तकों को पाठ्यक्रम मे स्थान न दिया जाय। इस स्तर पर नोट्स, कुंजी आदि सस्ती परीक्षापयोगी किन्तु अहितकर साहित्य पर प्रतिबंध लगाया जाय तो बेहतर होगा।

प्राथमिक स्तर पर विशेष कर ग्रामीण क्षेत्र के प्राथमिक विद्यालयों की परीक्षा एक हास्यास्पद पहलू है। कक्षा पांच की फाइनल परीक्षा जो उप विद्यालय निरीक्षक (एस० डी० आई.) की देखदेख मे ली जाती हैं, नितान्त त्रुटिपूर्ण है। इसमे अधिकाश विद्यालयों के परीक्षाफल शत प्रतिशत होते हैं जबकि विद्यार्थी इस योग्य नही होते। एतदर्थ मंडल स्तर पर प्रश्न पत्रों का निर्माण हो तथा खंड स्तर पर परीक्षाएं आयोजित की जांय। इसमे वस्तु निष्ठता लाने हेतु संबंधित बेसिक शिक्षा निदेशक द्वारा प्रत्येक परीक्षा केन्द्र पर, उच्च शिक्षा से संबंधित महाविद्यालयों विश्वविद्यालयों के अध्यापकों मे से जिसका शिक्षण अनुभव दस वर्ष से कम न हो, एक पर्यवेक्षक नियुक्त किया जाय। उत्तर पुस्तिकाओं को मूल्यांकन हेतु जिले से बाहर भेजा जाय अथवा पर्यवेक्षक की देखरेख में इसे भी कराया जाय। इस परीक्षाफल को संबंधित अध्यापकों की पदोन्नति का आधार माना जाय।

अभिभावकों की जागरूकता

ग्रामीण व पिछडे क्षेत्र का औसत अभिभावक अपने बालक को विद्यालय भेजने की अपेक्षा उसे पारिवारिक व्यवसाय मे लगाना बेहतर समझता है। वास्तव मे संरक्षक को शिक्षा की उपादेयता बताकर उसे जागरूक बनाया जाये जिससे वह स्वतः अपने बालकों को विद्यालय भेजेगा। इससे स्कूल छोड़ने वाले बालकों की संख्या में भी न्यूनता आयेगी जो कि प्राथमिक शिक्षा की एक बहुत बड़ी समस्या है। वास्ताव मे किसी ने भी अभिभावकों को शिक्षा से व्यक्ति, परिवार तथा समाज को होने वाले लाभों से अवगत नहीं कराया है। यदि अभिभावक शिक्षा के लाभों के महत्त्व को नहीं समझोगा तो जन शिक्षा का उद्देश्य पूर्ण नही होगा।

इस क्रम मे मां का शिक्षित होना बहुत आवश्यक है क्यों कि मां जो संस्कार छोटी आयु के बच्चों मे डाल

सकती है वह किसी भी शाला में नही डाले जा सकते। भाषा के आडम्बर से इन बच्चों को दूर रखा जाय। यदि अभिभावक- अध्यापक मिलकर, समय निकाल करके, बालक के विकास हेतु कार्य करें तो इससे बालक का अत्यधिक हित होगा।

वर्तमान सामाजिक परिस्थितियां

आज के अर्थ- प्रधान युग में धन को अत्यधिक महत्व दिया जाने लगा है। फलतः अधिकाधिक धनोपार्जन की लालसा में अनुचित साधनों द्वारा समाज में बड़ा व्यक्ति बनने का स्वप्न साकार होने लगा। धनोपार्जन के पीछे दौड़ने वाले व्यक्ति को न नैतिक मूल्यों से मतलब और न गुरुजनों के सम्मान से। परिणाम स्वरूप उसने समाज के न्यून वेतन भोगी शिक्षक का तिरस्कार करना प्रारम्भ कर दिया। धनी परिवार के बच्चों को शिक्षक दंडित भी नहीं कर सकता। भीषण मंहगाई ने तो कमर ही तोड़ दी है। संपन्न व्यक्तियों ने ट्यूशन का टुकड़ा फेंक कर उसे दास बना दिया है। इस प्रकार शिक्षक का मान- सम्मान सब कुछ पैसे से खरीदा जाने लगा। उसकी स्थिति लेख पाल एवं आफिस के क्लर्क से अत्यन्त बदतर है।

सरकार को चाहिए कि प्राथमिक शिक्षकों को उच्च वेतनमान तथा अन्य सुविधाएं प्रदान करे जिससे वे इस व्यवसाय की ओर आकर्षित हों। वैसे भी प्रत्येक स्तर के अध्यापकों के मूल वेतन मे अधिक अन्तर नहीं होना चाहिए। मेरे विचार से प्राथमिक शिक्षा का महत्व निश्चय ही अन्य स्तरों की तुलना में अधिक आंका जाना चाहिए क्यों कि यह शिक्षा एवं सामाजिक व्यवस्था का मेरुदंड है।

शिक्षक के कार्य एवं उसका चरित्र

शिक्षकों की प्रतिष्ठा के ह्रास का कारण उसका स्वयं का चरित्र एवं कार्य है। बड़े बड़े शिक्षाविदों से कालेज एवं विश्वविद्यालय पटे पड़े हैं। अनेक ने विदेशों की परिक्रमा तथा बड़े- बडे ग्रन्थों की रचना की है। परन्तु वास्तविकता यह है कि इन सबको यदि कोई चिंता है तो अपनी प्रसिद्धि एवं आर्थिक लाभ की। शायद ही कोई ऐसा शिक्षाविद मिले जिसने पेस्तालाजी, फ्रोबेल एवं मांटेसरी की भांति छोटे बालकों की शिक्षा का कोई फलदायी स्वरूप स्थिर करने के लिए अपने जीवन को दांव पर लगाया हो। वास्तव में इस विषय पर चिंता एवं चितन करने की कोई आवश्यकता नहीं समझी जाती।

प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षण को बैठे- बैठाए की बेगार मानते हैं। निराश लोग ही इस व्यवसाय मे आते हैं। निष्ठापूर्वक शिक्षण मात्र का उद्देश्य लेकर आने वालों की संख्या बहुत कम होती है। कुछ लोग अच्छी नौकरी मिल जाने पर अन्यत्र चले जाते हैं। इसी में एक ऐसा वर्ग भी होता है जो सिर्फ वेतन लेता है, पढ़ाने से उसका दूर का भी सम्बन्ध नहीं होता। ऐसे लोग प्रायः अनुपस्थित भी रहते हैं। गांव की समस्त राजनीति, प्रधान के चुनाव से लेकर सांसद बनाने की जिम्मेदारी तक उन्हीं से संचालित होती है। विद्यालय के समय में भी बैठकर गप्प मारना, गंदी पत्रिकाएं पढ़ना, बच्चों के समक्ष बीड़ी- तम्बाकू पीना- खाना, कक्षाओं मे ऊंघना, पढ़ाने के नाम पर कक्षा के किसी छात्र को खड़ा करवाकर बिना स्वयं समझाए ही उससे पाठ पढ़वाना, संपूर्ण कक्षा को तेज स्वर में गिनती- पहाड़ा आदि पढ़ने का आदेश देना ताकि लोग समझें कि पढ़ाई ठीक ढंग से हो रही है या अधिक से अधिक यदि कक्षा में शोरगुल हुआ तो एकाध छात्रों को मारपीट देना आदि ही कार्य होते हैं। विद्यालय समय के पश्चात घर घर जाकर ट्यूशन पढ़ाने, स्वयं की खेती बाड़ी करने, छोटी- मोटी दुकान आदि करने या अंश कालिक कार्य में ही वे अपनी शक्ति का सदुपयोग करते हैं। तात्पर्य यह कि अधिकांश अध्यापक अपने उत्तरदायित्वों का निर्वाह नहीं करते। ऐसे लोग जहां समाज को धोखा देते हैं वही शिक्षण

कार्य की पवित्रता को भी नष्ट करते हैं। अध्यापकों मे कुछेक वरेण्य भी है किंतु कटु सत्य से भी मुंह नहीं मोड़ा जा सकता।

प्रत्येक प्रबुद्ध व्यक्ति यह जानता एवं मानता है कि सरकार की नीतियां शिक्षा के प्रति उपेक्षनीय है। आर्थिक दृष्टि से अध्यापक का जीवन बड़ा ही दयनीय है। ग्रामीण क्षेत्रों मे महिला अध्यापिकाओं की स्थिति अत्यन्त कारुणिक है। आवागमन के साधनों की कमी तथा समुचित आवासीय व्यवस्था के अभाव मे वे विद्यालय बहुत कम आती है। साथ ही शहरों की तुलना में अन्य सुविधाएं भी यहा उपलब्ध नही होती।

इन विभिन्न समस्याओं के संदर्भ मे सरकार को कुछ व्यावहारिक सुधारात्मक कदम उठाने होंगे। सर्वप्रथम प्राथमिक शिक्षकों का स्थानान्तरण उनके गृह स्थान से कम से कम पचास किलोमीटर की दूरी पर कर दिया जाय जिससे वे शिक्षण हेतु अपना बहुमूल्य समय दे सकें। आकस्मिक निरीक्षण किए जांय। अनुपस्थित अध्यापकों को कारण बताओ नोटिस जारी किए जाय। तीन बार अनुपस्थित पाए जोन वाले अध्यापकों की वेतन वृद्धि रोकदी जाय। उपस्थिति सुधार हेतु जनपद में 'फ्लाइंग स्क्वाड' की व्यवस्था भी कारगर साबित हो सकती है। उन्हें ट्यूशन पढ़ाने की अनुमति न दी जाय। पदोन्नति तथा वेतनवृद्धि हेतु उनके परीक्षाफलों पर विशेष धयान दिया जाय। ग्रामीण क्षेत्रों मे कार्यरत अध्यापक/अध्यापिकाओं को ग्रामीण भत्ता तथा महिला अध्यापिकाओं हेतु आवासीय व्यवस्था सुलभ कराई जाय। प्राथमिक शिक्षा को यदि पूर्ण रूपेण महिलाओं को सौंप दिया जाय तो बेहतर रहेगा क्यों कि पुरुष अध्यपकों की तुलना मे वे छोटे बच्चों की मनःस्थिति को भली प्रकार समझ सकती है।

विभिन्न मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के माध्यम से ऐसी मनोवृत्ति वाले लोग छांट लिए जांए जिनमें अध्यापन- कार्य के प्रति निष्ठा, रुचि एवं समर्पण का भाव हो। नौकरी में आने के लिए प्रशिक्षण तो आवश्यक हो किन्तु इसे नियुक्ति की गारंटी न माना जाय। इन्हीं सब बातों पर यदि और गहराई से चिंतन मनन किया जाय तो निश्चय ही शिक्षा- जगत की ही नही अपितु समाज एवं देश की ज्वलन्त तथा भीषण समस्याओं का समाधान भी मिल जायेगा। ❑❑

प्रवक्ता, शिक्षक- शिक्षा विभाग
रणवीर रणञ्जय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
अमेठी, सुलतानपुर

प्रारम्भिक शिक्षा में शिक्षण की सुरुचिपूर्ण विधाएं

□ आर० एम० पाठक

प्रस्तावना

शिक्षण एक बहुत ही महत्वपूर्ण प्रक्रिया है सिखाने की। बच्चों को अधिगम के लिए प्रेरित करना और रुचि उत्पन्न करना- शिक्षण का प्रमुख आयाम है। प्रारम्भिक स्तर पर तो इसकी भूमिका और भी प्रभावी एवं महत्वपूर्ण होती है। शैशवावस्था में बालक पारिवारिक परिवेश से सीखता है- फिर पूर्व प्राथमिक विद्यालयों और प्राथमिक विद्यालयों में प्रवेश लेकर शिक्षा ग्रहण करता है। संसाधन तथा अवसर की उपलब्धता के अनुसार उन्ही बालकों में से उच्च तथा उच्चतर शिक्षा के क्षेत्र मे जाते है। प्रस्तुत लेख में प्रारम्भिक स्तर पर शिक्षण की कुछ सर्वथा नवीनतम् सफल विधाओं का विवेचन किया गया है। व्यवहारिक उदाहरणों द्वारा सफल शिक्षण को समझाने का प्रयास किया गया है। विश्वास के साथ यह कहने मे कोई संकोच नहीं है कि यदि इन उदाहरणों का अनुप्रयोग प्रारंभिक शिक्षण में किया जाय तो पाठ्यवस्तु को अधिक गुणवत्ता के साथ बालकों के संज्ञान मे बैठाया जा सकता है। इससे छात्रों को अधिगम में अभिरूचि उत्पन्न होगी तथा उसके प्रति उत्सुकता भी रहेगी। साथ ही साथ कुछ ऐसे उदाहरण भी है जिनके अनुसरण से छात्रों मे नैतिक एवं सामाजिक मूल्यों की स्वयमेव स्थापना होगी एवं उनमें इन मूल्यों के प्रति सचेष्टता भी उत्पन्न होगी।

शिक्षण एवं अधिगम का आपस में बहुत गहरा संबंध है। इनकी विधियां भी अन्योन्याश्रित हैं। उन तथाकथित अन्यान्य विधियों यथा (1) सरल से कठिन की ओर तथा (2) पाठ- योजना विधि आदि के बारे में यहां कुछ नहीं कहा गया है क्योंकि इन विधियों का विस्तृत वर्णन शिक्षक- प्रशिक्षण पाठ्यक्रम मे समाहित है और शिक्षण से सम्बन्धित इनसे भलीभांति परिचित है। प्रस्तुत लेख में उल्लिखित शिक्षण की विधाए निम्नवत् हैं –

- □ भाव प्रदर्शन विधा।
- □ नैतिक मूल्यों को समाहित करने वाली विधा।
- □ सामाजिक मूल्यों को समाहित करने वाली विधा।
- □ व्यवसायिक मूल्यों को समाहित करने वाली विधा।
- □ प्रायोगिक प्रभाव को समाहित करने वाली विधा।
- □ अब हम प्रत्येक विधा की क्रमवार विवेचना करेंगे।

भाव प्रदर्शन विधा

उक्त विधा का अनुसरण साहित्यिक विषयों के शिक्षण में अधिक प्रभावी होता है। पाठ्यवस्तु के भावार्थ को समझाने मे यदि शिक्षक अपने अंग-संचालन द्वारा उस भाव को प्रकट कर सके जो कि लिए गए पद्य या गद्य में सन्निहित है तो छात्र को उस विशेष काव्य खण्ड का अर्थ समझने में बड़ी सरलता होगी। साथ ही साथ वह अर्थ शिक्षार्थी के मानसपटल पर अपना एक स्थायी भाव अंकित कर जायेगा। उदाहरण के तौर पर कबिकुल सम्राट श्री तुलसीदास जी के एक छन्द को लिया जाय।

"कबहूँ शशि माँगत आरि करैं,
कब हूँ प्रतिविम्ब निहारि डरैं।
कबहूँ करतान बजाइ के नाचत्,
मातु सबै मन मोद भरैं।"

उपरोक्त पंक्तियों के अर्थ को समझाते समय यदि शिक्षक डरने की मुद्रा द्वारा तथा हाथ से करताल बजाने की मुद्रा द्वारा इन भावों को प्रकट करें तो बालक बड़ी ही सरलता से उक्त छन्द के भाव को आत्मसात् कर लेगा।

दूसरा उदाहरण श्री रत्नाकर जी के छन्द का लेते हैं। उद्धव जी श्री कृष्ण के कहने पर निर्गुण ब्रह्म की उपासना का उपदेश लेकर गोकुल जाते है परन्तु वहां श्रीकृष्ण के प्रति गोपिकाओं के अगाध एवं अप्रतिम प्रेम को देखकर वे स्वयम् आत्म विभोर हो जाते हैं। वापस आते समय उनकी दशा का चित्रण बड़े ही मार्मिक ढंग से कवि ने किया है।

"प्रेममद छाके, पग परत वहाँ के कहाँ,
थाके अंग नैननि शिथिलता सुहाई है।
आरत उदार अति धारत धरा पे ना
सारत बहोरिन सो आँसु अधिकाई है।
एक कर राजत नवनीत जसुदा को दियो
दूजे बंशीबर राधिका पढ़ाई है।"

उक्त छन्द का अर्थ बताते समय अपने स्वयम् के पग संचालन द्वारा तथा अपनी बहोरी द्वारा आंसू पोछने की भाव मुद्रा का प्रदर्शन कक्षा मे करें तो छात्र शीघ्र ही इस पद के मार्मिक भावों को समझ जायेगा।

नैतिक मूल्यों को समाहित करने वाली विधा

इस विधा का अनुप्रयोग, भाषा-शिक्षण मे अत्यधिक उपयोगी होगा। प्रारंभिक स्तर पर वर्णों पर सही मात्राएं लगाना तथा संयुक्ताक्षर लिखने की विधि सिखाना बच्चों के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण होता है। उदाहरण से स्पष्ट है कि किस प्रकार वर्णों के युग्मन को नैतिक मूल्य से जोड़कर छात्रों के मस्तिष्क में वर्ण- युग्मन की प्रविधि को स्थायी तौर पर बैठाया जा सकता है। यथा : वर्ण 'र' का युग्मन।

वर्ण 'र' बड़ा ही विनीत वर्ण है। दूसरे वर्णों से युग्मन के समय कही तो यह नीचे तथा कही ऊपर और वह भी अलग- अलग स्वरूपों मे प्रकट होता है। कब कहां यह ऊपर और कहां नीचे लगता है - इस बात का सज्ञान देना शिक्षक का दायित्व है। शिक्षक को छात्रों को बताना चाहिए कि 'र' बडा विनम्र वर्ण (अक्षर) है। जब कोई दूसरा वर्ष इसके घर इससे मिलने आता है अर्थात् जब इसका संयुग्मन ऐसा हो कि उच्चारण में दूसरे वर्ण की ध्वनि प्रथमतः निकले 'र' की बाद में, तो वहाँ 'र' अपनी विनम्रता के कारण तथा अतिथि देवोभव की भावना से प्रेरित होकर उस वर्ण को ऊपर स्थान देता है और स्वयम् उसके पैर के पास अपना स्वरूप (—) के रूप में बदलकर बैठता है यथा प्रहार, प्रकाश, प्रक्रिया आदि। दूसरी तरफ 'र' की विनम्रता की कद्र दूसरे वर्ण भी बखूबी करते हैं। इसलिए जब 'र' किसी अन्य वर्ण के घर जाता है अर्थात् जब संयुग्मन ऐसा होता है कि 'र' का उच्चारण प्रथमतः और अन्य वर्ण का बाद मे होता है तो स्नेहवस वह वर्ण 'र' को अपने सर पर बिठाता है और तब 'र' के रूप में उस संयुक्तक्षर के ऊपर विराजमान होता है, यथा- आर्शीवाद। कबिवर तुलसीदास ने कहा भी है –

बड़े स्नेह लघुन पर करहीं।
गिरि निज सिरन सदा ऋण धरहीं।

उपरोक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि इस विधि के प्रयोग से बालकों को युग्मन की सही जानकारी तो होगी ही

साथ ही साथ विनम्रता, अतिथेय जैसे नैतिक मूल्यों के प्रति आस्था भी उत्पन्न होगी।

सामाजिक मूल्यों को समाहित करने वाली विधा

इस विधा का अनुप्रयोग भी भाषा- शिक्षण में अधिक उपयोगी होगा। व्यक्ति सामाजिक प्राणी है। उसमें समाजिकता की भावना होती है। समाज के कल्याणार्थ वह अपने वैयत्तिक स्वार्थ को त्याग सकता है परन्तु वह यह भी चाहता है कि अपने आस- पास के परिवेश मे उसकी वैयत्तिकता भी बरकरार रहे। यही मनोदशा 'म्' वर्ण की भी होती है। वह जब किसी ऐसे व्यंजनाक्षर से सयुग्मित होता है जो उसके वर्ग विशेष (प वर्ग) का नहीं है तो वह अपना मूल स्वरूप खोकर अनुस्वार के रूप में आ जाता है। जैसे अहंकार परन्तु वही 'म' जब अपने ही वर्ग के किसी अन्य वर्ण से युग्मित होता है तो युग्माक्षर तब सही कहा जाता है जब म् का अपना मूल स्वरूप उसमें दिखाई पड़े। जैसे - परम्परा। इस युग्म शब्द को 'परंपरा' लिखना गलत है। उपरोक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि इस विधि के अनुप्रयोग से छात्रों में सामाजिकता की भावना का तथा साथ ही साथ आत्म सम्मान की उत्कृष्टता का नैसर्गिक भाव उत्पन्न होगा।

व्यवहारिक मूल्यों को समाहित करने वाली विधा

इस विधा का उपयोग प्रारंभिक शिक्षण में बहुत ही उपयोगी है। मुख्यतया गणित और विज्ञान के शिक्षण में इसकी प्रमुखभूमिका है। जैसे गणित में धनात्मक और ऋणात्मक संख्याओं या पदों को जोड़ने और घटाने की क्रिया को समझाना। प्राथमिक एवम् माध्यमिक स्तर तक छात्रों को गणित मे धन (+) और ऋण (–) का संज्ञान देना तब अधिक सफल होगा यदि हम धन को संचितपूंजी और ऋण को कर्ज के रूप मे लें +4 और –3 का योग +1 है, बालक इसे आसानी से नहीं समझ पाता है। परन्तु शिक्षक यदि यह कहे कि बच्चों तुम्हारी जेबे मे 4 रुपए की संचित पूंजी है और तुमने 3 रुपए किसी से कर्ज़ लिया है तो कर्ज़ चुकाने के उपरान्त भी तुम्हारे पास एक रुपया संचित पूंजी के रूप मे बच जाएगा, तो बालक इस जोड़ को आसानी से समझ जाएगा।

दूसरा उदाहरण विज्ञान शिक्षण का है। प्रकाश सदा सीधी रेखा मे चलता है। इस बात को रेखाचित्र द्वारा समझाया जाता है। रेखाचित्र का संज्ञान सभी छात्रों को सही- सही नहीं हो पाता है। इसी बात को यदि यों कहा जाय कि चूकि दो स्थानों के बीच की सर्वाधिक कम दूरी- सीधी रेखा द्वारा व्यक्त लाम्बिक दूरी होती है – इसलिए प्रकाश सीधे मार्ग का अनुसरण करता है ताकि वह कम से कम दूरी तय करके जल्द ही गन्तव्य बिन्दु तक पहुंच सके। मनुष्य का भी यही स्वभाव होता है। शीघ्र पहुँचने के लिए मनुष्य भी सीधा रास्ता अपनाता है। ग्रामीण क्षेत्रों में लोग खेतों की मेड़ों पर से न चलकर बीच खेत से सीधा रास्ता बनाकर चलते हैं। भले ही फसलों का नुकसान हो। यांत्रिकी के गूढ़ सिद्धान्त को भी इसी परिप्रेक्ष्य में आसानी से समझाया जा सकता है।

प्रायोगिक प्रभाव को दर्शाने वाली विधा

इस विधा का अनुप्रयोग विज्ञान शिक्षण में तो होता ही है - साथ ही सामाजिक विषयों के शिक्षण में भी इसका अनुप्रयोग काफी लाभप्रद हो सकता है। विज्ञान- शिक्षण में कक्षा में प्रायोगिक- प्रदर्शन किया जाना अधिक उपयोगी होता है। सामाजिक विषयों- यथा जनसंख्या शिक्षण, पर्यावरण प्रदूषण शिक्षण आदि को इस विधि द्वारा आसान बनाया जा सकता है। उदाहरण के तौर पर जनसंख्या शिक्षण मे यह बताया जाना नितान्त आवश्यक है कि अधिक

जनसंख्या कैसे समस्यापरक होती है। इसके लिए यदि शिक्षक अपने आस- पास के ऐसे दो परिवारों का तुलनात्मक विवरण प्रस्तुत करे जिनमे एक परिवार मे अधिक बच्चे और दूसरे परिवार मे कम बच्चे हों तो दोनों परिवारों के खान- पान और रहन- सहन के स्तर के अन्तर को सामने रखकर जनसंख्या- वृद्धि के कुप्रभाव को आसानी से समझाया जा सकता है।

इसी प्रकार पर्यावरण प्रदूषण के कुप्रभाव को समझाने के लिए भी हमारे आस- पास अनेक उदाहरण उपस्थित हैं जिनको कक्षा- शिक्षण मे प्रस्तुत किया जा सकता है।

उपसंहार

निष्कर्षतः प्रारंभिक शिक्षण का कार्य बहुत ही महत्वपूर्ण और उच्चशिक्षा की आधार शिला है। इसे जितना ही सुरुचिपूर्ण बनाया जा सके, छात्रों का, हमारे समाज का उतना ही कल्याण है। कक्षा- शिक्षण की कला अपने आप में एक प्रभावी उपादान है– सफल शिक्षण को प्रस्तुत करने में शिक्षक को झिझक नहीं होनी चाहिए, चूँकि शिक्षक भी एक कलाकार होता है। जैसे किसी कलाकार को अपनी कला का भावपूर्ण प्रदर्शन बहुत बड़ी आत्मतुष्टि देता है उसी प्रकार शिक्षक को भी शैक्षिक विषयवस्तु का सुरुचिपूर्ण एवं भावपूर्ण प्रकटीकरण आत्म सन्तोण प्रदान करता है।

प्रधानाचार्य

श्री नेहरु स्मारक उ० मा० विद्यालय

नहोरा जौनपुर

शिक्षा व्यवस्था का प्रधान लक्ष्य

☐ प्रोफेसर रामचन्द्र शुक्ल

स्वतंत्र भारत में शिक्षा व्यवस्था के आधुनिकीकरणों तथा परिवर्तन पर इतना कुछ कहा सुना जा चुका है, इतने शोध प्रबन्ध लिखे जा चुके हैं, इतने कमीशन्स बिठाये जा चुके हैं, इतनी रिपोर्ट प्रकाशित हो चुकी हैं कि अब यह सब अप्रासंगिक हो चुका है, क्योंकि मूलतः हमारी शिक्षा व्यवस्था अभी भी लगभग उसी पुराने रास्ते पर चल रही है जिस पर वह स्वतंत्रता पूर्व चल रही थी। आधुनिकीकरण की बात पहले भी विदेशी विचारों की मुहताज थी और आज भी है। जब भी हम आधुतिकता की बात करते है तो हमारे मस्तिष्क में पाश्चात्य देशों की शिक्षा व्यवस्था ही रहती है। हम जब भी अपनी शिक्षा व्यवस्था को अपनाने की बात सोचते है, हमे उदाहरण पश्चिमी देशों से ही लेने पड़ते है। हमने स्वतंत्र भारत मे शुरू से ही पाश्चात्य जनतांत्तिक शिक्षा व्यवस्था को सुधारने की बात सोचते है, हमें उदाहरण पश्चिमी देशों से ही लेने पड़ते हैं हमने स्वतंत्र भारत में शुरू से ही पाश्चात्य जनतांत्रिक शिक्षा व्यवस्था को अपनाने की बात की और रास्ते पर चलने का भी प्रयास किया। आज हमारी शिक्षा व्यवस्था का जो भी रूप सामने है अथवा जो भी परिणाम सामने है उसके मूल मे पाश्चात्य शिक्षा व्यवस्था ही है। हमने सभवतः आधुनिकता का अर्थ ही समझ लिया है पाश्चात्य की नकल। जो कुछ पाश्चात्य देशों में हो रहा है उसी को आधुनिक माना। उन्हीं विचारों तथा तरीकों को हमने अपने देश में आयातित करने का पूरा प्रयास किया, यह सोचकर कि हम भी आधुनिक हो रहे है और हमारी शिक्षा व्यवस्था भी। इस तरह आयातित शिक्षा व्यवस्था, शिक्षण पद्धति एवं शिक्षा के आदर्शो पर चलते हुए हमे लगभग पैतालीस साल हो चुके हैं। मैं समझता हूं कि यह अवधि पर्याप्त है पाश्चात्य शिक्षा व्यवस्था को अपने देश में आजमाने के लिये। अब हमें इस पर विचार करना जरूरी है कि यह शिक्षा पद्धति हमारे देश में सफल हुई भी या नहीं।

पुर्ननिरीक्षण की आवश्यकता

यदि किसी देश का युवा वर्ग बेकारी की संख्या बढ़ा रहा हो, अध्यापक छात्रों का गुलाम बन गया हो, व्यापारी काला बाजारी करने लग गये हों, डाक्टर, इंजीनियर, अफसर पैसों की मीनार बनाने में लगे हों, मंत्री कुर्सी दौड़ मे व्यस्त हो गये हों तो यही समझ लेना चाहिये कि वहां की शिक्षा व्यवस्था पूरी तरह बेकार साबित हो चुकी है, सड़गलत चुकी है। यदि किसी देश मे एकता न हो , भाई चारा न हो, देशप्रेम न हो, आपसी सदभावना न हो, बेगुनाहों का खून बहाया जा रहा हो, कर्तव्य परायणता खत्म हो गई हो, ईमानदारी का व्यवहार न हो, तो यही समझना चाहिए वहां विनय या चरित्र नाम की चीज है ही नहीं। ऐसे देश की शिक्षा व्यवस्था निश्चित रूप से अशिक्षा या कुशिक्षा का रूप ले चुकी होती है। ऐसा देश क्या कभी प्रगति कर सकता है ? वहां के वासी क्या कभी सुखी रह सकते हैं ? हमें ज़रा रुककर विचार करना चाहिए क्या हमने जो शिक्षा पद्धति अपनाई है उसके अंजाम सही निकले हैं। उस शिक्षा पद्धति को अपनाकर कहीं हमने हज़ारों वर्षो से प्राप्त अपनी सांस्कृतिक ख्याति भी गंवा तो नहीं दी है।

हमने जो शिक्षा पद्धति अपनाई है वह हमारे लिये उपयोगी साबित भी हुई है या नही ।

मैं यहां भारतीय आधुनिक शिक्षा व्यवस्था की न तो समीक्षा करना चाहता हूं न उसका लेखा जोखा प्रस्तुत करना चाहता हूं क्योंकि अब यह किसी से छिपा नही है और इसकी समीक्षा भी यथेष्ठ हो चुकी हैं । मै सिर्फ यह कहना चाहता हूं कि आयातित शिक्षा व्यवस्था के परिणामों को हम अच्छी तरह भोग रहे हैं । और ऐसा लगता है कि जब तक हम अपनी शिक्षा व्यवस्था को अपना मौलिक आधार प्रदान नहीं करते तब तक न तो हमारी शिक्षा व्यवस्था विकसित हो सकती है, न ही हमारा समाज और न ही हमें वांछित लाभ हो सकता है ।

राजनैतिक दृष्टि से इस देश मे काफी उथल पुथल हुआ है किन्तु हमारा अपना पुराना इतिहास है, सभ्यता है, संस्कृति है, जीवन दर्शन है, विचारधरायें है, भौगोलिक परिवेश है और इन सबको नजरन्दाज करके हम किसी भी आयातित पद्धति या व्यवस्था को यहां पुष्पित पल्लवित नही कर सकते । शिक्षा के विकास का आधार ही सदा उस देश का अपना जीवन दर्शन और अपनी आशाये, आकांक्षायें हुआ करती हैं । इन्हे उधार लेने की आवश्यकता नही हुआ करती है । मानसिकता उधार नहीं ली जा सकती हैं हां, भौतिक पदार्थ अथवा तकनीक उधार ली जा सकती है । पश्चिम ने विज्ञान और टेक्नोलाजी के क्षेत्र मे पर्याप्त प्रगति की है । हम इस क्षेत्र मे जरूर पीछे रह गए हैं । जो भौतिक पदार्थ तथा विधाएं विज्ञान और टेक्नोलाजी के क्षेत्र में पश्चिम मे प्रस्तुत हुई हैं, उनकी जरूरत है तो हमें उनसे ही लेना पड़ेगा, लेकिन जीवन दर्शन, शिक्षा दर्शन हमारे देश मे बराबर विकसित हुये है उन्हें उधार लेने की जरूरत नहीं । जहां तक विज्ञान और टेक्नोलाजी का सवाल है हमने बहुत कुछ लिया भी है और ले भी रहे है । लेकिन शिक्षा दर्शन, शिक्षा व्यवस्था को आयातित करने से कोई लाभ होने वाला नही है । मै तो कहूगा विज्ञान और टेक्नोलाजी का विकास भी उधार लेने से बहुत संभव नही है । हमे जो कुछ उधार मे मिलता है वह बासी और पुराना मिलता है । हम इस बासी और पुराने को लेकर क्या कभी उनका मुकाबला कर सकते हैं ? जब तक विज्ञान और टेक्नोलाजी के क्षेत्र मे भी हम मौलिक विकास नही करते हम सदैव पिछड़े ही रहेंगे । साहित्य और कलाओं के क्षेत्र में भी हमने यही गलती की है और हमारा विकास पगु बनकर रह गया है । एक भी अन्तर्राष्ट्रीय स्तर का मौलिक वैज्ञानिक साहित्यकार, कलाकार अथवा दार्शनिक हम प्रस्तुत कर सकने मे समर्थ नही हो सके है, आज़ादी प्राप्ति के पश्चात भी । हमे रुक कर सोचना चाहिये क्या हमारा शैक्षिक आधार गलत तो नही रहा कहीं ।

मुझे तो लगता है हम त्रिशकु बनकर रह गये हैं । अपना आधार भी हमने छोड दिया और पाश्चात्य आधार को पकड़ भी नहीं पाये । हमारी प्रगति की व्यथा कथा यही लगती है । इस स्थिति से अब हमें उबरना चाहिये । अपने मौलिक आधार की खोज कर लेनी चाहिये ताकि हमारी आगे की प्रगति सुद्धढ आधार पर हो ।

हम नहीं कहते कि हमें परम्परावादी बनना चाहिये, न हम, आधुनिकता के खिलाफ है। हम यही कहना चाहते हैं, आधुनिकता के विकास का आधार परम्परा, संस्कृति, जीवन दर्शन, आशा आकाक्षाये, आवश्यकताये ही हो सकती हैं यही हमारी शिक्षा व्यवस्था का भी आधार होना चाहिये । इनसे कटकर विदेशों से आयातित आधारों पर न हम आधुनिक हो सकते हैं न विकास कर सकते हैं । आधुनिकता और विकास वही है जिससे हमारा जीवन सुखमय, शान्तिमय और समृद्धिमय बने । पिछले 45 वर्षो से जिस भी शिक्षा व्यवस्था को लेकर हम चलते रहे हैं उसका परिणाम अच्छा तो नहीं ही कहा जा सकता । उसने विषमताये ही पैदा की हैं भले देखने में लगे कि हमने भौतिक

दृष्टि से काफी कुछ प्रगति कर ली है ।

शिक्षा का लक्ष्य चरित्र निर्माण

सबसे बड़ी क्षति जो हमें उठानी पड़ी हैं वह है चरित्रहीनता । हम भौतिक दृष्टि से चाहे जितनी प्रगति कर ले किन्तु यदि हम इसी प्रकार अपने चरित्र को गवांते रहे तो हमारा सब कुछ किया धरा धराशायी होकर रह जायेगा। आज सबसे ज्वलन्त प्रश्न जो हमारे सम्मुख उपस्थित है वह यही चरित्रहीनता हैं । हम जिस भी शिक्षा व्यवस्था पर चलते रहे हैं निश्चय ही उसमें चरित्र निर्माण नगण्य रहा हैं । चरित्रहीनता ऐसी दीमक हैं जो हमारे विकास की जड को निरन्तर खोखला करती जा रही हैं । यदि हमारी शिक्षा पद्धति, शिक्षा व्यवस्था इस दीमक को समाप्त नही कर सकती तो हमें यही मानना चाहिये कि हमारी शिक्षा पद्धति एंव व्यवस्था निश्चित ही सड़ गल चुकी है । यदि ऐसा हैं तो यह देश विकास की ओर नहीं पतन की ओर जा रहा है ।

सही शिक्षा व्यवस्था के जिम्मेदार

आज जब भी वर्तमान शिक्षा प्रणाली या व्यवस्था की आलोचना होती है तो शिक्षकवर्ग यही कहता हैं कि इसका दारोमदार सरकार पर हैं । इसी प्रकार सरकार अथवा नेतागण इसके लिये ज़िम्मेदार शिक्षकवर्ग को बताते हैं । और बात वहीं की वहीं धरी रह जांती हैं । देश तबाही की ओर बढ़ता चला जाता हैं । इस चूहे बिल्ली के खेल को कहीं ने कहीं समाप्त करना ही पड़ेगा । दोनों में यदि एक भी ईमानदार बन जाय तो कार्य चल सकता है । पर ईमानदार कोई बनना ही नहीं चाहता ।

इसे चरित्रहीनता नही कहेगे तो क्या कहेगे ? इसे वर्तमान शिक्षा व्यवस्था का दुष्परिणाम नही कहेगे तो क्या कहेंगे ? शिक्षक छात्रों का नेता है तो राजनैतिक नेता समाज का नेतृत्व करता है । यदि शिक्षक छात्रों का चरित्र निर्माण नही कर पाता तो यह उसका दोष है । फिर भी कहीं न कही से तो शुरुआत होनी ही चाहिये । आज देश में ऊपर से नीचे तक भ्रष्टाचार बुरी तरह व्याप्त हो गया है, कोई भी क्षेत्र बचा नही है जहां भ्रष्टाचार का विष न फैल गया हो । आदमी पूरी तरह खुदगर्ज़ बनता जा रहा हैं । धन कमाने के लिए, अपना लाभ करने के लिये वह घृणित से घृणित कृत्य करने के लिये तत्पर हो गया है । चोरी , डकैती गुण्डागर्दी, हेरा फेरी, तस्करी, हत्यायों का बोलबाला हो गया है । भले और ईमानदार आदमियों का जैसे अकाल पड़ गया है । कही भी किसी कोने में जीवन सुरक्षित नहीं दीखता । शोषण, भाई भतीजावाद, जातिवाद, सम्प्रदायवाद कौन सा ऐसा रोग है जो तेज़ी से न फैल रहा हो । अब भी अगर हम सोते रहते हैं और चरित्र निर्माण के लिए कोई उपाय नही करते तब क्या बचेगा इस देश मे ? क्या हमारी शिक्षा पद्धति अथवा व्यवस्था दोषी नहीं ? क्या इस दृष्टि से वक्त रहते हमे अपनी शिक्षा व्यवस्था में सुधार नहीं कर लेना चाहिए ? यदि चरित्र नही रहता हैं तो आज़ादी भी नहीं रह सकती और न हो सकता है विकास । चरित्रहीन समाज ही परतंत्रता की बेड़ियों में देश को जकड़ता है और इसमे शिक्षा व्यवस्था की बहुत बड़ी जिम्मेदारी है । ☐

17, नया बैरहना
इलाहबाद

कक्ष शिक्षण में हास्य का महत्व

□ आर० पी० पाठक

शिक्षा का मुख्य उद्धेश्य व्यक्ति के व्यवहार में परिवर्तन लाना है। परिवर्तन की इस प्रक्रिया मे शिक्षण का बहुत बड़ा योगदान होता है। शिक्षण प्रक्रिया को प्रभावकारी बनाने के लिए अनेक प्रविधियां अपनायी जाती हैं फिर भी इन प्रविधियों के वल पर भी शिक्षण को प्रभावकारी नहीं बना पाते है। शिक्षार्थी कक्ष में पढ़ते पढ़ते ऊब जाता है वह बोरियत महसूत्र करने लगता है। इन हालात का निदान किस शिक्षणविधि से किया जा सकता है ? वचारणीय मुद्दा है। छात्र एकाग्र होकर पढ़ने मे रुचि लेने लगे और कक्ष शिक्षण प्रभावकारी बन सके। इन सभी के पीछे केवल एक ही उपादान है वह है मुस्कान अथवा हास्य।

कक्ष शिक्षण मे अध्यापक कितने ही मनोयोग एवं मेहनत से क्यों न अध्यापन करे लेकिन यदि उसके पढ़ाने की कला में मुस्कान और हास्य का पुट नहीं है तो उसके द्वारा अपनाई गई शिक्षण की सभी प्रविधियां व्यर्थ सावित होंगी। प्राथमिक स्तर पर शिक्षा के माध्यम एवं अध्यापन कला में हास्य और मुस्कान के सम्मिलित होने जैसे माध्यामों से, बालकों की आदतें सुंरुस्कृत हो जाएं, उन नन्हे मुन्नों के जीवन मूल्य उन्हे वापिस मिल जाएं, वह कुछ सोचने लगे और पढ़ने में रुचि लेने लगे तो शिक्षा की सार्थकता और शिक्षण प्रक्रिया पूर्ण हो सकेगी तथा समाज, और राष्ट्र में खुशहाली जग जाएगी।

आज समाज परिवार विषम परिस्थितियों से जूझ रहा है। प्रोद्योगिकी के प्रवेश द्वारा शिक्षा प्रक्रिया यन्त्रवत हो गई है। अध्यापक उपदेश, व्याख्यानं और अन्य प्रक्रियाओं के द्वारा पढ़ाने हेतु अपने कर्तव्य की इतिश्री भान लेता है और छात्र इस यन्त्रवत प्रक्रिया में पढ़ने के लिए विवश हैं। दोनों के बीच अर्न्तक्रिया केवल शिक्षण की विद्याओं पर ही निर्भर रह जाती है और बालक के जीवन में शिक्षण के दौरान किसी जागृत और रुचिवद्धता के संचार का अभाव रह जाता है। इसलिए इस वैज्ञानिक युग मे हास्य को एक विद्या मानकर कक्ष शिक्षण मे अवश्य अपनाया जाए और शिक्षण कला को और अधिक प्रभावकारी बनाया जाए।

अभ्यान्तर प्रसन्नता का प्रकट रुप मुस्कान अथवा हास्य है। सुख या आनन्द की सम्प्राप्ति मनुष्य जीवन का परम लक्ष्य माना गया है। मरुस्थल मे जलधारा का, अन्धकार मे प्रकाश किरण का, मध्यान्ह ताप की प्रचंडता मे छाया का और ऊमस में शीतल मद पवन के झोके का जो स्थान है वही स्थान जीवन मे हास्य का है। मानसिक तनाव व धुटन की स्थिति से छुटकारा पाने के लिए हास्य रामवाण औषधि का कार्य करता है। जीव वैज्ञानिकों ने तो इसके माध्यम से स्वास्थ्य लाभ को भी स्वीकार किया है। इसीलिए कक्षा में बालकों को ज्ञार्नाजन की सहज स्थिति मे लाने के लिए कुशल अध्यापक इस "हास्यौषध" का प्रयोग भी किसी निश्चित सीमा तक कर सकते हैं। हास्य की उपयोगिता को निम्नलिखित उदाहरणों के द्वारा समझा जा सकता है।

एक अध्यापक हैं 'क'। वे जब भी कक्षा में होते हैं,

कक्षा कक्ष रह रह कर हास्य की समवेत ध्वनियों से मुखरित होता रहता है। उनके आगमन का सूचक कालांश ही छात्रों की मनोभूमि पर मीठी गुदगुदी छिड़क कर उसे तरोताजा बना देता है। छात्रों की उत्सुक दृष्टियां अध्यापक जी के आगमन की प्रतीक्षा में फुदकने लगती हैं जैसे ही 'क' कक्षा में प्रवेश करते हैं, 'छात्र गुडमार्निंग सर' नमस्कार श्रीमान, मास्टर साहब प्रणाम की हर्षध्वनि से और खड़े हो कर उनका स्वागत करते है। दूसरे अध्यापक जी हैं 'ख'। जब वे कक्षा में होते हैं, एक वीरानी सी छायी रहती है वहाँ। उनके आगमन के सूचक कालांश के साथ ही छात्र अपनी ग्रीवा और कटि प्रदेश को विविध कोणों से मोड़ मोड़ कर उबासियां भरने लगते हैं। शिक्षण के दौरान छात्रों की उखड़ी दृष्टियां छात्रों का ध्यान भंग करने में सफल हो जाती हैं और स्टूल कुर्सी पर टिकी उनकी स्थूल काया केवल उपस्थिति पत्रक में अंकित 'पी' को 'ए' में बदलने से रोकने का उपक्रम करती रहती है। अध्यापकजी के प्रश्न कक्षा में प्रायः मौन की अवांछित स्थिति को ही जन्म देते हैं। अध्यापक जी के 'गधे', 'नालायक', सुअर के , ------" आदि शस्त्र छात्रों को वेधते रहते हैं। कक्षा में उभरती हुई एक या दो उंगलियां अध्यापक को बरबस उस पुलिस मैन का प्रतिरूप बना देती हैं जो चौराहे पर खड़ा होकर वाहनों के गमना गमन को नियंत्रित करता रहता है, स्थिति स्पष्ट है।

श्रीमान 'क' एक कुशल अध्यापक हैं, जो कि शिक्षण के दौरान प्रसंगवश हास्य की सृष्टि के द्वारा छात्रों की मानसिक थकावट को दूर करने की कला में प्रवीण हैं, जबकि श्रीमान 'ख' शुष्क विषय का ढोल अनुशासन की लकड़ी से पीट कर अपनी अकुशलता का ही परिचय देते हैं। परिणाम सम्मुख है।

किसी भी कर्य की पूर्णता और उद्देश्यों की सम्प्राप्ति में वातावरण की अपनी भूमिका होती है। विषयानुरूप वातावरण की सृष्टि को शिक्षण का अभिन्न अंग माना गया है। यदि शिक्षक ने कक्षा के दमघोटू वातावरण को हास्य के प्रस्फुटन द्वारा दूर करने में सफलता प्राप्त कर ली तो उसका आधा कार्य स्वतः पूर्ण हो जाता है। उत्सुक व प्रसन्न चित्त छात्र को 15-20 मिनट का शिक्षण उखड़े व वोझिल- चित्त छात्र को चालीस मिनट के शिक्षण से कही बेहतर है। इस मनोवैज्ञानिक सत्य की उपेक्षा कर कृत्रिम गांभीर्य का लबादा ओढ़ शिक्षक अपने उद्देश्यों की सम्प्राप्ति मे कदाचित ही सफलता पाते होंगे।

भोजन को सुस्वाद व सुपाच्य बनाने मे जो स्थान अचार, चटनी, मुरब्बे का है, लगभग वही स्थान शिक्षण मे हास्य का भी है। श्रेष्ठ कथावाचक प्रायः गूढ़ वैचारिक व दार्शोनिक तथ्यों को विविध आख्यानों, उक्तियों व चुटकलों के मिश्रण से रोचक बनाकर शिक्षित, अशिक्षित बालक वृद्ध सभी प्रकार के श्रोताओं के लिए सुग्राह्य बना देते हैं। कही कोई ऊब नहीं, कोई तनाव नहीं, कथावाचक हजारों हजारों दृष्टियों का केन्द्र विन्दु बन कर सबको अपनी भावधारा में बहा ले जाता है। कभी उन्हें हंसाता तो कभी रुला देता है। सड़क पर अवाध गति से रेंगने वाले वाहनों की गडगड़ाहट और भोंपू की कर्ण भेदी ध्वनियां श्रोताओं का ध्यान भंग करने में विफल होकर अपना अस्तित्व खो देती है। यह किसी मंत्र शक्ति का चमत्कार नहीं, कथा वाचक की मनोवैज्ञानिक व्याख्यान पद्धति है, जिसमें हास्य का विशेष स्थान सन्निहित है।

हास्य वह डोर है जो मानव मन को ज्ञान गंगा के निकट ले जाकर उसे अवगाहन या जलपान कराने का सामर्थ्य रखती है। हास्य, मानव को, विधाता की विशेष देन है जो कि किसी अन्य प्राणी के भाग्य में नहीं लिखी है। इसमें एक विलक्षण चुम्बक है। इसके आकर्षण से प्रेरित व्यक्ति सब कुछ भूलकर आलम्बन के साथ एकरस हो जाता है। इसके पीछे एक बहुत बड़ा मनोवैज्ञानिक कारण है।

वस्तुतः हास्य के प्रादुर्भाव से मनोरंजन की सृष्टि होती है, जिसका मानव के विकास में वहुत बड़ा हाथ होता है। मनोरंजन की स्निग्ध डोर के अभाव मे जीवन निपट समस्याओं की कटीली झाड़ियों मे उलझ कर तार तार हो जाता है। जीवन की एकरसता व शुष्कता को बिखेर कर उसमें सहज मधुरता का प्रदुर्भाव मनोरंजन द्वारा ही संभव है। जीवन के संघर्षो से टकराने, समस्याओं को सुलझाने और रहस्यों को उद्घाटित करने से उत्पन्न मानसिक तनाव को दूर करने की औषधि मनोरंजन के सिवा अन्य कोई नहीं है। हास्य मनोरंजन का पिता है।

संसार के प्रायः सभी महापुरूषों ने हास्य के महत्व को स्वीकार किया है। उसे अपने जीवन मे उचित स्थान दिया है। कितने ही महापुरूषों ने अपने अमूल्य विचार कणों को मनोरंजक उक्तियों मे पिरो कर जनमानस का कंठहार वनाया है। 'विष्णुशर्मा' ने 'पंचतनत्र' की कहानियों के माध्यम से नटखट राजकुमारों को राजनीति का वोध कराया था। गांधी जी द्वारा विशेष अवसरों पर ली जाने वाली चुटकियों की सम्मोहन शक्ति का प्रभाव सर्वविदित है।

बालक अपना मनोरंजन प्रायः खेलों से ही करते हैं। वालक के सर्वाङ्गीण विकास मे खेलों का महत्वपूर्ण हाथ होता है। खेलों मे बालक की स्वाभाविक रुची के कारण ही आधुनिक शिक्षाविदों ने खेल द्वारा शिक्षा पर बल दिया है। बालक मे सहयोग, सहिष्णुता, सौजन्य, प्रतिस्पर्धा आदि अनेकानेक सदगुणो का विकास खेलों के माध्यम से सहज संभाव्य है। जहां हर्ष और उल्लास का वातावरण है, कुतूहल है, वहां बालक अनाहूत उपस्थित होता है और भगाने पर भी भागता नहीं है। विद्यालय की घड़ी की सुइयों से नियंत्रित वातावरण और थोपा हुआ अनुशासन उसे कक्षा मे बैठने के लिए विवश तो कर सकते हैं, उसमे सीखने की जिज्ञासा और ललक उत्पन्न नही कर सकते। कुशल शिक्षक बालक की इस मनोरजन की भूख को हास्योक्तियों, मनोरजक लघु कथाओं आदि के द्वारा उसे विषय ज्ञान की ओर उन्मुख करता है। जो शिक्षक ऐसा करने मे समर्थ नही होता, उसका शिक्षण उत्तम फलदायी नही। होता कभी कभी तो ऐसे शिक्षकों के समक्ष अनुशासन की समस्या भी उत्पन्न हो जाती है और जीर्ण अवगुण्ठन मे आवेष्टित उनकी प्रतिष्ठा निर्वसन भी हो जाती है।

शिक्षण मे हास्य की इस प्रबल भूमिका को स्वीकारते हुए हमे इसके अतिरेक के दुष्प्रभावों को भी ध्यान में रखना होगा। यदि इसका सविवेक प्रसगानुकूल उचित प्रयोग नही किया गया तो अध्यापक नायक से विदूषक बनकर रह जायेगा। शिष्ट हास्य का सीमित प्रयोग ही शिक्षणोपयोगी है। भोजन मे मिठाइयों का आधिक्य जहां उसके स्वाद को भ्रष्ट करता है वहा मधुमेह जैसा असाध्य रोग भी उत्पन्न करता है। स्वाद के चक्कर मे यदि अचार, चटनी, मुरब्बे, पापड़ आदि को ही भोजन बना दिया तो परिणाम की कल्पना स्वच्छ वस्त्र पर अलंकारिक चित्रण के रूप में होनी चाहिए न कि गन्दे दागों व धब्बों की तरह। अप्रासंगिक व हास्यास्पद उक्तियॉ वस्त्र पर लगे पैबन्द की भांति उसके सौन्दर्य को नष्ट कर देती हैं। इसके प्रस्तुतीकरण के समय स्वयं शिक्षक का अधिक प्रभावित होकर बार बार हंसना उसकी गरिमा को ठेस पहॅुचायेगा। शिक्षक के मुखमण्डल पर हास्य का मन्द मुस्कान के रूप में खेलना ही भला लगेगा, ठहाकों के रूप में नटखट बालक की भांति ऊधम मचाना शोभा नहीं देगा। इससे शिक्षण की उद्देश्य पूर्ति मे बाधा उत्पन्न होगी। आस पास की कक्षाओं के शिक्षण पर कुप्रभाव पड़ेगा। विद्यालय के वातावरण की शान्ती भंग हो जायेगी।

किसी पाठ की प्रस्तावना प्रसगानुकूल श्रेष्ठ हास्योक्ति से करना भी श्रेष्ठ फलदायी होगा। विषय गाभीर्य जनित मानसिक थकान को मिटाने मे इसका प्रयोग रामबाण औषधि के रूप में किया जा सकता है। हास्य का आगमन

शिक्षण धारा में व्यवधान के रूप मे नही होना चाहिये वरन् बिषय की कठोरता को धुनकी की भाति धुन कर रूई सा कोमल व आराम देह बनाने के लिये होना चाहिये।

हास्य हमारे मन में अतिथि के रूप मे ही स्वीकार्य है, न कि मालिक के रूप मे। यदि ऐसा हुआ तो व्यक्ति स्वयं हास्यास्पद बन जाएगा। अध्यापक को सतत् जागरूक रह कर ऐसे चुटकुलों, ऊदाहरणों, उक्तियों व लघुकथाओं का संकलन व उन्हे स्मृति पटल पर अंकित करना चाहिए जो कि विशेष अवसरों पर हास्य की सृष्टि के लिए प्रयुक्त किये जा सके। इससे उसके शिक्षण में एक नवीनता व ताज़गी का समावेश तो होगा ही, उसके व्यक्तित्व में भी निखार आएगा व समाज मे उसे उचित स्थान प्राप्त होगा। उसका आत्म विश्वास बढ़ेगा व उसे आत्मसतोष मिलेगा। समाज में उसके कुसमायोजन की समस्या भी विनष्ट हो सकती है।

जिन शिक्षकों ने अभी तक इस हास्य उपकरण को नही अपनाया है वे इसका प्रयोग कर व्यवसायिक सफलता के साथ जीवन की प्रफुल्लता का भी तरण कर सकते हैं। शिक्षण जैसे पवित्र कार्य मे इस उपकरण के परसीमन को ध्यान में रखकर शिरोधार्य करें और कक्ष शिक्षण के बातावरण को और भी प्रभावकारी बनाएं। अभी तक शिक्षा जगत में इस उपकरण पर शोध न के बराबर ही हुए हैं। आनेवाली पीढी के शोधार्थियों और शिक्षाप्रेमियो का इस दिशा मे कुछ करने का सहर्ष स्वागत है। ☐

एकेडमिक ऐसोसिएट
इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
नई दिल्ली

शिशु शिक्षा समस्या का निवारण कैसे

□ हरिशंकर शर्मा

हमारे देश में लोग शिशु- शिक्षा का महत्व नही जानते। उनका विचार है कि कोई भी साधारण शिक्षक इस कार्य को सफलतापूर्वक कर सकता है। किन्तु बालक की शिक्षा एक कठिन कार्य है। जिसे हर शिक्षक सफलतापूर्क नहीं निभा सकता। प्रत्येक बालक का अपना एक व्यक्तित्व होता है उसका विकास करना शिक्षक का प्रथम कर्तव्य है। बालक क्रियाशील होते है अतः उनकी शिक्षा अधिकाधिक क्रियात्मक होनी चाहिए। एक ही नियत पाठ्यक्रम समान रूप से हर बालक के लिए उपयोगी नही हो सकता उसे प्रत्येक शिशु की अभिरूचि के अनुरूप निर्मित किया जाना चाहिए। शिक्षक का कार्य शिशु की अर्न्तनिहित शक्तियों को पहचान कर उनके विकास मे सहायता देना है। अतः शिशु- शिक्षा के लिए बालकों से प्रेम करने वाले अनुभवी शिक्षकों की आवश्यकता है। उन्नतशील देश ब्रिटेन मे नर्सरी पाठशालाएं तथा पार्क खोले गए है। भारत में भी नर्सरी तथा मान्टेसरी पाठशालाएं खोली गई हैं उनमें उचित पोषण आहार की व्यवस्था है ताकि वे शारीरिक एवं मानसिक रूप से विकास कर सकें।

शिशु के चरित्र की रूपरेखा अत्यन्त अल्पायु मे ही बन जाती है। पाठशालाओं मे केवल उनमें रग भरना शेष रह जाता है ताकि उनका चरित्र स्पष्ट रूप से उभर सके। बालकों को शिक्षा खेल द्वारा मिलनी चाहिए। शिशु- शिक्षा मे वैज्ञानिक साधनों का अधिकाधिक उपयोग अपेक्षित है। शिशुओं को अपने तथा अपने समाज के साथ सबधों का ज्ञान आवश्यक है। उसे अपने देश का ज्ञान कराने के लिए पर्यटन (देशाटन) की व्यवस्था भी करायी जानी चाहिए। शिक्षा की व्यवस्था मे शिशु का प्रमुख स्थान होना चाहिए।

हमारी वर्तमान शिक्षा कैसी होनी चाहिए, यह ज्वलंत प्रश्न है। शिशु शिक्षा के 3 प्रमुख क्षेत्र हैं –

1 घर या परिवार

2 पाठशाला

3 बाह्य अन्य क्षेत्र

प्राचीन काल की शिक्षा में इन तीनों में सामंजस्य था किन्तु आज विपरीत स्थिति है। बालक जो कुछ घर मे देखता है वह उसे पाठशाला मे नहीं मिलता, जो पाठशाला में पढ़ता है उसका नित्य के जीवन मे कोई उपयोग नहीं मिलता, जो पाठशाला मे पढता है उसका नित्य के जीवन मे कोई उपयोग नहीं है। अतः उपरोक्त तीनों क्षेत्रों में कोई सामजस्य नही रहा है। आज की शिक्षा का लक्ष्य अर्थअर्जन ही रह गया है। धर्म, काम तथा मोक्ष का इस शिक्षा मे कोई स्थान नहीं है। आजकल प्राचीन मूल्यों पर आधारित गुरूकुल जैसी संस्थाएं सफल नहीं हो रहीं उनमें नवीनता आने से परिवर्तन दृष्टिगोचर हो रहा है। हमे वर्तमान परिस्थितियों को सामने रखकर कोई ऐसा मध्य मार्ग खोजना होगा जिससे प्राचीन एवं नवीन का विवेकपूर्ण समन्वय किया जा सके।

यदि हमारा मूल दृढ़ होगा तो हम उसके आधार पर किसी भी नवीन परिपाटी या पद्धति का निर्माण सहज में ही सफलतापूर्वक कर सकेंगे। आवश्यकता इस बात की

है कि बालकों के मन में अपने सास्कृतिक आदर्शों के प्रति दृढ़ आस्था तथा श्रद्धा के सस्कार इस दृढता के साथ छोडे जाए कि वे आधुनिक सभ्यता के चकाचौंध मे परिभ्रष्ट न हो सकें। इस आदर्श की प्राप्ति के लिए हमें शिशुओं के पूर्व उनके अभिभावकों को सुधारना होगा। इस समय समाज दो भागों मे विभक्त है– एक शिक्षित दूसरा अशिक्षित। स्वभावतः शिक्षित वर्ग समाज में नेतृत्व करेगा एवं अशिक्षित वर्ग उसका अनुसरण करेगा। शिक्षित वर्ग भी दो विशिष्ट वर्गों मे विभक्त है एक प्राचीनता प्रेमी तथा दूसरा आधुनिकता प्रेमी।

आज की शिक्षा पद्धति मे प्राचीन संस्कृति का यथावत् ज्ञान का अभाव है। सभी विषयों पर भारतीय दृष्टिकोण से लिखी गई पुस्तकों एवं क्षमता होनी चाहिए। बालक अल्पायु से ही जिज्ञासु होते हैं। उनकी तर्को का समुचित समाधान होना चाहिए। उनमे तार्किक शक्ति विकसित होनी चाहिए। घर तथा विद्यालय के अतिरिक्त आजकल शिक्षा के साधन मुद्रणालय, रेडियो, चलचित्र, रंगमंच, सभा, समाज तथा अन्य आमोद- प्रमोद हैं। इन सभी का सही दिशा में प्रभाव दृष्टिगोचर नहीं हो रहा। अधिकांश साहित्य ऐसा निकल रहा है जो विश्वासों, सिद्धान्तों तथा आचरणों के लिए घातक है। प्राचीन तथा नवीन शैली में बहुत अन्तर आ गया है। प्रभावहीन साहित्य से कोई लाभ नही, अतः श्रेष्ठ स्तर के प्रामाणिक ग्रन्थ अपनी तथा विदेशी भाषा में प्रकाशित कराएं जाएं।

जैसी हम शिक्षा चाहते हैं। उसके अनुकूल पाठयपुस्तकों के निर्माण तथा साथ ही योग्य एवं क्षमतापूर्ण अध्यापकों की आवश्यकता है। प्रचार एवं प्रसार का सर्वोत्तम साधन प्रेस है। स्वस्थ एवं मनोरंजक साहित्य की महती आवश्यकता है। शिक्षा का उद्देश्य सुसंस्कृत होना ही है। शिक्षा द्वारा जीवन सुसंस्कारों में ढलता जाता है। बुद्धि का विकास, सुसंकारों की वृद्धि एवं कुसंस्कारों का परिहार ही शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य है। परिवर्ती जीवन का निर्माण बाल्यावस्था पर ही निर्भर करता है। वर्तमान शिक्षण- पद्धति में सदाचार तथा चरित्रनिर्माण के तत्वों का अभाव है यह हम प्रतिपल अनुभव करते है।

पाश्चात्य शिक्षण पद्धति के जो उपादेय अश हैं उन्हें निःसकोच हमें स्वीकार कर लेना चाहिए। भारतीय जनता अधिकांश रूप मे ग्रामीण है अतः ग्रामीण शिक्षा देना भी हमारा प्रमुख कर्तव्य है।

ग्रामीण बालक सस्ती एवं सुलभ शिक्षा द्वारा लाभान्वित हों ऐसी व्यवस्था निर्न्तर होती रहनी चाहिए। क्योंकि यह हमारा पुनीत कर्तव्य है। हमारी शिक्षा में औद्योगिक शिक्षण का भी पर्याप्त अंश मे समावेश होना चाहिए। बालक की अभिरूचि हमें समझकर ही उसे वैसी शिक्षा देनी चाहिए।

प्राचीन एवं नूतन शिक्षा- पद्धतियों का विवेकपूर्ण समन्वय ही हमारी समस्या का हल है।

शिक्षा से ज्ञानार्जन होता है। मानव ज्ञान चाहता है। वह अपनी पूर्णता के लिए व्याकुल है। इस पूर्ण विकास की अनंत और अमर प्यास लेकर वह शिक्षा की शरण में जाता है। पूर्णता ही मानव का चरम लक्ष्य है। मृत्युपर्यन्त वह इस व्याकुलता को शान्त करने के लिए अथक प्रयत्न करता है। शिक्षा उसके मार्ग को सुदृढ़ तथा सरल बनाती है। वह अज्ञानमय तमाच्छादित राह पर एक पावन पुण्यमयी अमर ज्योति के रूप में मानव का पथ- प्रदर्शन करती है। यहां हमारा कथन यही है कि वही शिक्षा उपयोगी है जो उसे पूर्णता की ओर अग्रसर करे। दोष पूर्ण शिक्षा से बालक का विकास अबरूद्ध हो जाता है हमारी शिक्षा में नैतिकता का सर्वथा अभाव है, इस अभाव के कारण ही आज की शिक्षा मे असफलता दृष्टिगोचर हो रही है।

हमारी बाल- शिक्षा अपूर्ण एवं अपर्याप्त है । शिक्षा पद्धति देश की संस्कृति से विद्रोह करने के लिए कटिबद्ध है । बाल्यावस्था जीवन शोध की आधार- शिला है । शिशुपालन पूरी तपश्चर्या है अतः माता- पिता को समय निकालकर स्वयं उन्हें पढ़ाना चाहिए । शाला प्रधान से भी बालक की उपलब्धि के बारे में परामर्श लिया जा सकता है। संतान को पूर्ण मानव बनाने के लिए उसकी शिक्षा का प्रबन्ध करना माता- पिता का पुनीत कर्तव्य है । उसका चारित्रिक, बौद्धिक एवं शारीरिक विकास सह- शिक्षा पर ही आश्रित है । शिक्षा का आदर्श शरीर को सशक्त, मस्तिष्क को उर्बर, मन को पवित्र बनाना तथा आत्मा का विकास करना है । बालक को अधिकाधिक संवेदनशील तथा उदारचेता बनाने के लिए धार्मिक शिक्षा अनिवार्य है । इसके अभाव मे ही देश के आदर्श चरित्र एवं इच्छाशक्ति का ह्रास हुआ है । शक्ति, ज्ञान, पवित्रता, चातुर्य एवं कला सीखने का माध्यम या साधन शिक्षा ही है । शिक्षा का उद्देश्य आदर्श जीवन की तैयारी ही है । जीवन से कुछ लेने की अपेक्षा जीवन को कुछ देने की भावना शिक्षा में सर्वोपरि होनी चाहिए । आध्यात्मिक प्रकृति का अन्तदर्शन शिक्षा में नहीं है । वर्तमान बाल- शिक्षा पद्धति ने न तो बालक के वास्तविक अभावों की पूर्ति की है और न कभी यह जीवन प्रदायनी निर्माणकारी नैतिकता के लिए प्रोत्साहन का साधन बन सकी है ।

प्लेटो ने बाल जीवन के संस्कारों और भावनाओं को अधिक महत्व दिया था । अतः प्रारम्भ से ही बालकों में देवी संस्कार डालने चाहिए । इससे उसमें पवित्रता, शिवत्व, सत्यता और मानवता के भाव उदित होते हैं । प्लेटों का विचार था कि शिशु- शिक्षा का प्रारम्भ धर्म- शास्त्र से होना चाहिए अर्थात् साहित्य, संगीत और कला प्रारम्भिक शिक्षा के आधार होने चाहिए । प्लेटों बालकों को आदर्शवादी कहानियों के सुनाने के पक्ष में था । इन कहानियों में सौन्दर्य भावनाओं की प्राधनाता होती है । उन्होंने शिक्षण में संगीत को विशेष महत्व दिया है क्योंकि यह आत्मा की ध्वनि है और इसके द्वारा मनुष्य का परिष्कार होता है । उसके संगीत पद के अन्तर्गत साहित्य, कला, ज्ञान, ललित कलाएं, ताल, लय, स्वर, धुन सभी आ जाते हैं । अभिनय को उन्होंने मिथ्याचार माना, क्योंकि यह सत्यता के निकट नही है ।

चलचित्र भी बाल- शिक्षा के उपयोगी साधन हैं क्योंकि पढ़ाई जाने वाली वस्तु को वह स्वयं प्रत्यक्ष देखता है तो उसकी स्मृति स्थायी बन जाती है । चलचित्रों का प्रभाव उनकी कर्णेन्द्रिय और नेत्रेन्द्रिय दोनों पर पड़ता है । मनोरंजन के साथ प्राप्त ज्ञान अधिक स्थायी होता है । इसको अधिक ग्रहण करने में उपयोग होता है तथा ज्ञान की निरन्तर वृद्धि होती है । बालकों को साहित्यिक, धार्मिक, भौगोलिक, ऐतिहासिक वैज्ञानिक तथा व्यावसायिक शिक्षा पर आधारित चलचित्र दिखाए जाने चाहिए ।

आधुनिक शिक्षा प्रणालियों में किण्डन गार्टन सुन्दरतम प्रयोग है । इसका प्रयोग फ्राबैल ने किया था । इस प्रणाली में शिशु को खेल में ही भाषण करना, अक्षर लिखना और पढ़ना सिखाया जाता है । बालक को नाच- कूद और गाने के लिए भी प्रोत्साहित किया जाता है मनोरंजक कहानियां भी सुनायी जाती हैं । इसके द्वारा बालक स्फूर्तिमय क्रियाओं से आगे बढ़ता है तथा स्वप्रेरणा एवं रूचि से सीखता है । उन्होंने कहानी तथा अभिनय स्वप्रकाशन का उत्तम साधन माना । मान्टेसरी ने बालकों के लिए कुछ विशिष्ट खेल बनाये हैं । स्कूल पदार्थों के परिचय तथा खेल देखकर उनकी ज्ञानेन्द्रियां उत्तरोत्तर क्रियाशील होती हैं एवं विचारशक्ति बढ़ती है । मान्टेसरी ने बालकों की क्रीड़ा तृप्ति करने वाली शिक्षण सामग्री तैयार की थी इससे नवीनता प्राप्त होती है और वह ऊबता नहीं है । इस प्रणाली द्वारा बालक पढ़ना- लिखना और समाज व्यवहार की अनेक बातें खेल ही खेल में सीख जाते हैं ।

तीसरी सुन्दर पद्धति डाल्टन शिक्षण पद्धि है इसकी निर्मात्री कुमारी पार्कहर्स्ट हैं । ब'लक की स्वत

तथा स्फूर्ति के सिद्धान्त मूलतः एक ही हैं। इसमें बालक शक्ति के अनुसार कार्य लेता है और पूरा करके शिक्षक को दिखाता है। आवश्यकता पड़ने पर शिक्षक को पूछता भी है यह पद्धति बालक को स्फूर्तिमय और स्वाबलम्बी बनाती है। अपनी शिक्षा का सारा भार शिशु सहर्ष अपने ऊपर ले लेता है। वह अपने कार्यों की विवेचना करके आत्मोन्नति करता है।

बालक के भविष्य को दृष्टिगत रखते हुए उसे उचित पद्धति का शिक्षण प्रदान करना चाहिए और जो भी पद्धति वहां के परिवेश मे विकसित की जा सकती है उसे प्रयोग करते रहना चाहिए। यदि हम शिशु- शिक्षा की उपेक्षा करते हैं, उसे समुचित वातावरण नहीं देते तो किशोर शिक्षा की प्रगति भी विशेष अच्छी नहीं होती।

व्याखाता गणित
राज०सी०उ०मा०वि० टॉडगढ़
अजमेर

विचार

राजस्थान में साक्षरता के बढ़ते आयाम

☐ हरिदास हर्ष

भारतवर्ष में राजस्थान का साक्षरता प्रतिशत अरुणाचल प्रदेश को छोड़कर सबसे कम है । राष्ट्रीय साक्षरता मिशन द्वारा राजस्थान बढ़ते कदम 1989-90 के प्रकाशनानुसार राजस्थान की साक्षरता का प्रतिशत मात्र 24 38 है । महिला- साक्षरता को राज्य मे केवल 11.42 प्रतिशत तक ही हम पहुंचा सके है । यह स्थिति चिन्तनीय है । राजस्थान के विभिन्न जिलों को जहां क्षेत्रफल एव आबादी की दृष्टि से वर्गीकृत किया जा सकता है वहीं साक्षरता के अनुपात की दृष्टि से भी बहुत अन्तर है । अजमेर जिले का साक्षरता प्रतिशत 35.30 हैं, वहीं बाड़मेर का साक्षरता प्रतिशत 12 29 है । ग्रामीण क्षेत्र मे 29 65 प्रतिशत पुरुष साक्षर हैं, लेकिन महिलाएं केवल 5.46 प्रतिशत ही साक्षर हैं । "जस- जस सुरसा बदन बढ़ावा तासु दून कपि रूप दिखावा" की उक्ति की सत्यता इसी बात से प्रमाणित होती है कि जैसे- जैसे सरकारी कार्य मे प्रगति हो रही है उसी अनुपात मे जनसंख्या वृद्धि के साथ साथ निरक्षरता भी बढ़ रही है ।

राजस्थान मे साक्षरता का विकास स्वतन्त्रता के बाद ही दिखाई देता है । प्राचीन राजपूताना या राजाओं के समय मे साक्षरता एक गौण ही नही वरन् नगण्य विषय था। स्वतन्त्रता के बाद विशेषतौर पर सत्तर के दशक मे साक्षरता का प्रतिशत बढ़ा है । तत्कालीन शिक्षा निदेशक द्वारा स्वैच्छिक सस्थाओं के गठन के बाद साक्षरता के क्षेत्र ने महत्वपूर्ण मोड़ लिया । सेवा मन्दिर उदयपुर की स्थापना जहा श्री मोहन सिह मेहता ने की वही जनरल जयदेव सिह जी जैसे समाज सुधारकों ने बीकोनर प्रौढ़ विकास समिति की स्थापना की । राज्य संदर्भ केन्द्र ने अपने प्रयास से साक्षरता को आगे बढ़ने का प्रयत्न किया ।

मुख्य बात साक्षरता को क्रियात्मक रूप देने की हुई। साक्षरता को अंक और अक्षरज्ञान तक सीमित न रखते हुए प्रौढ़ो को उनकी आर्थिक स्थिति और आम हालत को सुधारने के लिए किसी व्यवसाय के प्रशिक्षण की व्यवस्था भी की गई । क्रियात्मक साक्षरता मे राष्ट्रीय अखण्डता के मूल्यों को आत्मसात करना, पर्यावरण को संरक्षण देना, महिलाओं की समानता एवं छोटे परिवार के लाभों के प्रति उन्हे जागरूक करना सम्मिलित किया गया ।

राजस्थान मे साक्षरता के विकास को देखे तो विभिन्न संस्थाएं इस क्षेत्र मे कार्यरत हैं : स्वंय सेवी संस्थाओं के द्वारा 2180 साक्षरता केन्द्र सचालित किये जा रहे हैं । भूतपूर्व सैनिक संगठन भी 4200 केन्द्र चला रहे हैं । नेहरु युवा केन्द्रों के द्वारा 3500 केन्द्र, विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालयों के अन्तर्गत 9650 केन्द्र संचालित किये जा रहे है । राज्य प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम के अन्तर्गत 3400 केन्द्र तथा ग्रामीण क्रियात्मक साक्षरता केन्द्रों के रूप मे 9600 केन्द्र संचालित हो रहे है । सीमा- क्षेत्र विकास- कार्यक्रम के अन्तर्गत भी 900 केन्द्र चलाये जा रहे हैं । इन सबमें साक्षरता पर विशेष बल दिया गया है । वर्ष 1989-90 में आंकड़ों के अनुसार राजस्थान मे 24430 केन्द्र, प्रौढ़ शिक्षा

कार्यक्रम के अन्तर्गत संचालित किये जा रहे हैं।

राजस्थान में साक्षरता के विभिन्न कार्यो को परियोजना अधिकारी के रूप में संचालित करते हुए ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र में मुझे साक्षरता के विभिन्न रुप दिखाई दिये। पशु- पालन पर आधारित व्यावहारिक साक्षरता परियोजना बीकानेर क्षेत्र में प्रौढ़ों के लिए आकर्षण का केन्द्र बनी वहीं ग्रामीण क्रियात्मक साक्षरता परियोजना का जाल पूरे राजस्तान में फैलाया गया । आदिवासी क्षेत्र में सलूम्बर, रैखाड़ा, जैसे प्रोजेक्ट सेवा मन्दिर और राजस्थान विद्यापीठ उदयपुर के तत्वावधान मे चलाये गये । उद्योग विभाग के सहयोग से महिलाओं को साक्षरता का ज्ञान देने के लिए गृह उद्योग परियोजनाएं चलाई गई जिन पर कताई, बुनाई का प्रशिक्षण भी दिया गया तथा महिलाओं को साक्षर भी किया गया ।

आज राजस्थान का साक्षरता कार्यक्रम भी देश के विकास के साथ- साथ प्रगति पर है । क्षेत्र और गांवों पर आधारित कार्यक्रमों को अपनाया गया है । जो गांव परियोजना में लिये गये है उन्हें न्यूनतम एक व अधिकतम दो वर्षो में साक्षर किया जाता है । सुपरवाईजरों के स्थान पर स्थानीय प्रेरकों को अंशकालीन मानदेय के आधार पर रखा जाता है । अब तक 20 गांव पूर्ण साक्षर किये जा चुके हैं जिनका मूल्यांकन बाहरी एजेन्सियों द्वारा किया जाता है । यूनीसेफ द्वारा भी सम्पूर्ण साक्षरता का मूल्यांकन किया गया । "सभी के लिए शिक्षा 2000 तक डॉक्यूमेंटरी का प्रदर्शन बैंकाक सम्मेलन में किया गया । बीकानेर, भीलवाड़ा, झालावाड़, बासवाड़ा, डूंगरपूर, उदयपुर , सीकर, सवाई माधोपुर, जोधपुर, अजेमर, जयपुर, सिरोही आदि नगरों को सम्पूर्ण साक्षर करने की प्रक्रिया प्रारंभ हो चुकी है ।

विभिन्न विभागों में आपसी समन्वय करते हुए साक्षरता- कार्यक्रम को गतिशील बनाया जा रहा है । नगरपालिका, जेल विभाग, खान मालिक, कारखाने प्रबन्धक आदि सभी को साक्षरता के विकास में प्रेरित किया गया है । बांसवाड़ा, जोधपुर एवं सीकर जिलों को समन्वित बाल विकास कार्यक्रमों से जोड़ा गया है । चिकित्सा एवं स्वास्थ्य, वन विभाग, उल्प बचत आदि सभी विभागों में अपने स्तर से इस कार्य को आगे बढ़ाने में सहयोग दिया है ।

साक्षरता के विकास में जन- चेतना का कार्य अविस्मरणीय है । ग्राम समितियों का गठन, अन्तर्राष्ट्रीय साक्षरता- दिवस पर लोगों की सहभागिता, हर जिले में साक्षरता कारवां व जत्थों का निकालना, दीवार पर नारे लिखना, प्रदर्शनियों का आयोजन, फिल्म प्रदर्शन विभिन्न राष्ट्रीय पर्वो पर जन- चेतना अभियान तथा राजनीतिज्ञों की बढ़ती रूचि भी जन- सहयोग की दृष्टि से सराहनीय है । दूरदर्शन ने राष्ट्रीय साक्षरता मिशन सम्बन्थी अनेक कार्यक्रम प्रसारित किये जिनमें जयपुर दूरदर्शन का "लोकदीप" विशेष उल्लेखनीय है ।

व्यापक साक्षरता कार्यक्रम में अन्तर्गत राजस्थान के एन०सी०सी० तथा स्काउट के छात्रों ने उल्लेखनीय कार्य किया । वर्ष 1988-89 में 30 हजार स्कूली छात्रों ने निरन्तर प्रयास करके 32700 निरक्षरों को साक्षर किया । इस कार्यक्रम में 229 माध्यमिक एवं उच्च माध्यमिक विद्यालयों ने भाग लिया । खुला विश्वविद्यालय कोटा ने बी०एड० प्रशिक्षण प्राप्त करने वाले छात्रों हेतु प्रति छात्र दो, प्रौढ़ों को साक्षर करना अनिवार्य किया । 9223 बी०एड० छात्रोंने 14501 प्रोढ़ों को वर्ष 1990-91 में साक्षर किया ।

साक्षरता कार्यक्रम के ही अन्तर्गत 1870 जन विकास निलयम आरम्भ किये गये । इनमें पुस्तकालय, वाचनालय, चर्चामंडल, सांस्कृतिक गतिविधियां, खेलकूद

की व्यवस्था की गई है। इन केन्द्रों को आधुनिक तकनीकी की सुविधाओं जैसे टी० वी०, वी० सी० आर० जैसी सुविधाओं से युक्त किया गया है। सीमा क्षेत्र में 103 प्रौढ़ शिक्षा केन्द्रों पर नये सौर ऊर्जा यन्त्र भी लगाये गये हैं। जनमें 45 बाड़मेर में, 38 जैसलमेर मे, 20 श्री गंगानगर में लगाये गये हैं।

राज्य साक्षरता मिशन के सुचारु संचालनार्थ इसका अध्यक्ष राज्य के मुख्यमन्त्री को बनाया गया है। भारत सरकार ने राजस्थान को बी० श्रेणी की अपेक्षा "ए" श्रेणी प्रदान की। अतः पदों मे भी आशातीत बढ़ोत्तरी हुई। सितम्बर 89 से प्रत्येक साक्षरता कार्यक्रम की समीक्षा भी प्रारभ की गई है। प्रौढ़ शिक्षा संदर्भिका में साक्षरता की प्रगति का प्रकाशन भी उत्साहवर्द्धक "साक्षर होगा राजस्थान" तथा"एक पढ़ाये एक" के नारे राजस्थान की साक्षरता की प्रगति के सूचक हैं किन्तु आवश्यकता है इन नारों को लक्ष्य के अनुरूप वास्तविकता मे परिवर्तित करने की जिसके लिए जन- जन आशान्वित है और रहेगा।

पुराने पोस्ट आफिस के पास,
पुरानी आबादी, श्री गंगा नगर

फार्म 4
(नियम 8 देखिए)

प्राइमरी शिक्षक

1.	प्रकाशन स्थान	नई दिल्ली
2.	प्रकाशन अवधि	त्रैमासिक
3.	मुद्रक का नाम	अरावली प्रिन्टर्स एंड पब्लिशर्स प्रा० लि०
	क्या भारत का नागरिक है?	हाँ
	यदि विदेशी है तो मूल देश का पता	लागू नहीं होता
	पता	डब्ल्यू-30, ओखला फेस-II, नई दिल्ली-110020
4.	प्रकाशक का नाम	डा के जे एस चतरथ
	क्या भारत का नागरिक है?	हाँ
	यदि विदेशी है तो मूल देश का पता	लागू नहीं होता
	पता	राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् श्री अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली - 110016
5.	मुख्य सम्पादक का नाम	राजेन्द्रपाल सिंह
	क्या भारत का नागरिक है?	हाँ
	यदि विदेशी है तो मूल देश का पता	लागू नहीं होता
	पता	राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् श्री अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली - 110016
6.	उन व्यक्तियों के नाम व पते जो समाचार-पत्र के स्वामी हो तथा जो समस्त पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझेदार या हिस्सेदार हो	राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् श्री अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली - 110016 (मानव संसाधन विकास मंत्रालय की स्वायत्त संस्था)

मैं के जे एस. चतरथ एतद् द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर लिखे गये विवरण सत्य है।

ह.

डा के जे एस. चतरथ

प्रकाशक

रजि न 32427/76

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित प्राइमरी शिक्षक एक त्रैमासिक पत्रिका है।

इस पत्रिका का उद्देश्य केन्द्रीय सरकार की शिक्षा नीतियों से संबंधित आधिकारिक जानकीरीको शिक्षकों और सम्बद्ध प्रशासकों तक पहुचाना है। इसका उद्देश्य कक्षा मे इस्तेमाल की जा सकने वाली सार्थक और सम्बद्ध सामग्री प्रदान करना भी है। भारत के विभिन्न केन्द्रों मे चल रहे पाठ्यक्रमों और कार्यक्रमों आदि के बारे में समय समय पर इसमे सूचनाएं प्रकाशित होती रहती हैं। शिक्षा- जगत मे होने वाली हलचलों पर विचार- विमर्श के लिए यह एक मच का काम भी करती है।

इस पत्रिका के प्रमुख स्तम्भ हैं -

(1) प्राथमिक शिक्षा से संबधित शैक्षिक नीतियां।

(2) प्रश्न और उत्तर।

(3) राज्यों के समाचार।

(4) कक्षा मे इस्तेमाल की जा सकने वाली सचित्र सामग्री।

स्कूलों के शिक्षकों की रचनाए प्रकाशनार्थ आमन्त्रित है। हर प्रकाशित रचना पर पारिश्रमिक की व्यवस्था है। लेख हिन्दी या अंग्रेजी में कागज के एक ओर लिखा होना चाहिए। सुविधा के लिए कृपया टाइप की गई या साफ- साफ, सुन्दर अक्षरों मे लिखी रचना की दो प्रतिया भेजे।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरबिन्द मार्ग, नई दिल्ली- 110016 के लिए सचिव द्वारा प्रकाशित तथा एडवास टाइप सैटर्स (इण्डिया), 730/VIII, रामकृष्णपुरम्, नई दिल्ली-110 022 द्वारा क्पोज होकर अरावली प्रिटर्स एंड पब्लिशर्स प्रा० लि० ओखला फेज़- 11 नई दिल्ली- 110020 द्वारा मुद्रित।

प्राइमरी शिक्षक

वर्ष 17 अंक 2 अप्रैल, 1992

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

प्राइमरी शिक्षक

कृपया अपना चन्दा व्यावसायिक प्रबन्धक, प्रकाशन विभाग, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् नई दिल्ली - 110016 को भेजें।

प्राइमरी शिक्षक

वर्ष 17 | अंक 2 | अप्रैल, 1992

इस अंक में

कहां गए वे अध्यापक	1	रमाकान्त दीक्षित
गुरूनानक—एक सामाजिक विज्ञानी	3	डा आर. एस. कंचन
बहमूल्य संसाधन—बालक और माता पिता	6	डा. शोभा वैद्य
पर्यावरण शिक्षा—क्यों और कैसे	9	हरिशचन्द्र व्यास
अभिभावक शिक्षक सपर्क—एक आवश्यकता	16	रजनी शर्मा
योग शिक्षा की आवश्यकता एवं शिक्षक की भूमिका	18	आर. पी. पाठक
समाज का केन्द्र बिन्दु विद्यालय	23	कृष्णा माहेश्वरी
व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त छात्रों का भविष्य	27	कस्तूरी दहिया
शिक्षकों ने लिखा है		
शैक्षणिक यात्रा छात्रों के संग	33	डा विनोद गुप्ता
विचार		
शिक्षा में इतनी बदहाली क्यों ?	36	सुरेश चन्द्र मिश्र
नेत्रहीनों का अनूठा विद्यालय	43	वेद प्रकाश गुप्ता

कहां गये वे अध्यापक

❑ रमाकान्त दीक्षित

देश की आजादी के बाद जब भी शिक्षा की बात चली मैकाले की चर्चा अवश्य हुई और हमने उसे जी भरके कोसा। पिछले 44 वर्षों से हम यही कहते आ रहे हैं कि मैकाले की शिक्षा पद्धति दोषपूर्ण थी। उसने देश में केवल सफेद कालर बाबू पैदा किये जिन्हें शारीरिक श्रम से पूर्ण घृणा थी। किन्तु क्या कभी हमने एक क्षण शान्त चित्त रहकर चिन्तन किया है कि मैकाले को कोसने के अतिरिक्त हमने इस 44 वर्ष की लम्बी अवधि में शिक्षा के क्षेत्र में क्या कार्य किया। क्या जैसी शिक्षा हम देना चाहते हैं हमने दी ? मैं तो मैकाले को धन्यवाद देता हूँ कि कम से कम उसने देश में शिक्षा को एक दिशा तो दी, चाहे उसके मन में कोई उद्देश्य रहा हो। लोग सही मायने में शिक्षित तो हुए। उनका चरित्र-निर्माण तो हुआ। स्कूलों में ठोस शिक्षण तो हुआ। जो भी विषय पढ़ाये गये उनकी बुनियाद मजबूत की गई। हमारे अपने काल में स्कूलों का जाल अवश्य बिछा, किन्तु स्कूलों से अध्यापक गायब हो गये। शिक्षण सामग्री गायब हो गई या नष्ट हो गई।

गुणात्मक शिक्षण की दुर्दशा देखकर आज हमें अपने उन अध्यापकों की याद आती है जो अनेकानेक अभावों, कठिनाइयों एवं गरीबी को झेलते हुए समर्पित भाव से शिक्षण करते रहे। उनका दृष्टिकोण परीक्षा पास कराना मात्र न होकर अच्छे, सुयोग्य नागरिक बनाना भी रहा। देश भक्ति की भावना कूट कूट कर भरी। उसी का परिणाम था कि महात्मा गाँधी के एक आह्वान पर विद्यार्थियों की भीड़ देश की स्वतंत्रता के लिए उमड़ पड़ी। आज का अध्यापक पुस्तकीय ज्ञान तक ही सीमित है। चरित्र-निर्माण, सुयोग्य देशभक्त नागरिक पैदा करने से उसका कोई सरोकार नहीं है।

एक समय वह था जब अध्यापक अपने स्तर पर अपने विषय का पंडित होता था। भाषा शिक्षण में वह शब्दों की तह में जाता था। विभिन्न भाषाओं में व्यक्त समान विचार छात्रों के सम्मुख रखकर उनका तुलनात्मक अध्ययन करवाला था। मनन, पठन एव सर्जना के लिए प्रेरित करता था और विषय की गहराई तक ले जाते थे छात्रों को। जिन लोगों को ऐसे अध्यापकों से पढ़ने का अवसर मिला होगा वे इस आनन्द का अनुभव कर सकते हैं।

आज सभी ओर से शोर मच रहा है कि नैतिक शिक्षा का अभाव है। नैतिक शिक्षा पाठ्यक्रम में जोड़ी जाय। क्या पाठ्यक्रम में उसे एक विषय के रूप में पढ़ाकर तथा उसकी परीक्षा लेकर हम देश में सुयोग्य नागरिक पैदा कर सकते हैं। नैतिकता या चरित्र निर्माण, धार्मिक पुस्तके पढ़ाकर नहीं किया जा सकता। उसके लिए आदर्श उपस्थित करने की आवश्यकता होती है। अब आदर्श समाज व स्कूल दोनों को उपस्थित क्ररने होंगे। महात्मा गाधी का भी यही विचार था। उन्होंने टालस्टाय फार्म पर शिक्षण प्रारम्भ किया था तो उन्होंने यही अनुभव किया। कुछ समय तक धार्मिक पुस्तकें पढ़ाने के पश्चात् उन्होंने आदर्श उपस्थित करने की बात कही। अनुशासित, शिष्ट, परिश्रमी एवं निष्ठवान व समर्पित अध्यापक को कभी अपने विद्यार्थियों को सिखाने की आवश्यकता

नहीं पड़ती। वे वातावरण से स्वयं सीख जाते हैं। विद्यालय समय पर उपस्थित न होने वाले, अध्यापन का दायित्व न निभाने वाले अध्यापक क्या कभी अपने विद्यार्थियों को अनुशासन का पाठ पढ़ा सकते हैं ? कदापि नहीं। मेरे अपने विचार से यदि भाषा का सशक्त शिक्षण लें तो नैतिक शिक्षा को विषय के रूप में सम्मिलित करने की कोई आवश्यकता ही नहीं है।

देश भर में शिक्षण की गिरती हुई दशा को देखकर हमें याद आती है उन अध्यापकों की जो प्रथम कालांश से अंतिम कालांश तक खड़े होकर शिक्षण करते थे। फलतः अध्यापक व विद्यार्थी में एक तादात्म्य स्थापित होता था। कक्षा में अनुशासन रहता था और शिक्षण में गतिशीलता। एक बार तादात्म्य स्थापित हो जाने पर दोनों को एक दूसरे के प्रति रुचि बढ़ जाती है। एक दूसरे की कठिनाइयों, समस्यायों को समझकर उनका निराकरण होता था। छात्रों में रुचि लेना वे अपना कर्तव्य समझते थे। उनकी समस्याओं को हल करना उनका धर्म था।

शिक्षक यों तो पूरे समाज के नेता है किन्तु, विद्यार्थियों के लिए तो वह उनका नायक है। 'जैसा राजा वैसी प्रजा' कहावत के समान 'जैसा अध्यापक वैसे विद्यार्थी' पूर्ण-रूप से चरितार्थ होती है। एक सुयोग्य अध्यापक अपने विद्यार्थी के जीवन को प्रभावित करता है और महात्मा गाँधी ने लिखा है कि हजारों मील दूर बैठा अध्यापक अपने विद्यार्थी को प्रभावित करता है और उसे प्रेरणा देता है।

आज का युग विज्ञान का युग है। विज्ञान सत्य की कसौटी पर कसकर ही किसी तथ्य या विचार को स्वीकारता है। आज का शिक्षण अवैज्ञानिक होता जा रहा है क्योकि हम छात्रों को प्रश्न पूछने के लिए प्रोत्साहित करने के बजाय निरुत्साहित करने का प्रयत्न करते हैं। सारा शिक्षण गाइड तक समाहित है। जिज्ञासा का गला घोंटा जा रहा है।

आज का शिक्षण पाठ्यपुस्तकों में दिये गये प्रश्नों में से कुछ चुने हुए प्रश्नों के उत्तर रटवाकर परीक्षा पास कराने तक सिमिट गया है। आज का अध्यापक इसी मे अपने कर्तव्य की इतिश्री समझ लेता है।

आज विरले ही अध्यापक छात्रों द्वारा लिखे गये उत्तरों को पढ़ने का कष्ट उठाते हैं उनमें सुधार करना तो बहुत बड़ी बात है। पहली कक्षा मे होने वाली अशुद्धियां सम्पूर्ण शिक्षा प्राप्त कर लेने के बाद तक चलती रहती हैं। एक समय था जब अध्यापक विराम, अर्द्धविराम आदि की अशुद्धियों को गम्भीरता से लेता था। उसका उद्देश्य सम्पूर्णता पर आधारित था। निबंध लेखन जो प्रारम्भिक कक्षाओं से ही प्रारम्भ हो जाता था अब बड़ी कक्षाओं में भी देखने को नहीं मिलता है। परिणामस्वरूप छात्रों की कल्पनाशक्ति व सर्जनात्मकता विनष्ट होती जा रही है। भाषा की लक्षणा व व्यंजना शब्द शक्तियों का पूर्ण ह्रास हो चुका है। आज का बालक व वयस्क केवल अभिधा मे बात करता है और अभिधा में ही समझता है। कारण स्पष्ट है – न समझने का अवसर प्रदान किया और न ही करुणा, दया, सहयोग के भाव भरने का प्रयास किया।

अंत में एक प्रश्न बार बार मस्तिष्क में कौंधता है कि क्या हम कभी अपनी शिक्षण-पद्धति को सुधार सकेंगे ?

❑❑

प्राचार्य
केन्द्रीय विद्यालय
भारतीय प्रोद्योगिक संस्थान

गुरू नानक – एक सामाजिक विज्ञानी

❑ डा०आर०एस० कंचन

भारतीय संस्कृति में भक्ति काल को स्वर्ण युग पुकारा जाता है । इस काल में संतों, महात्माओं, पीरों, फकीरों और गुरूओं ने समाज को वैज्ञानिक ढंग से जीने का रास्ता दिखाया । देश के कराल ताण्डव ने जन साधारण में भयंकर निराशा छा गई थी । भारत की भीरू जनता कर्म–काण्डों, अंध विश्वासों के घातक लपेट में फंसी हुई थी। अधिकारी लोग अहंकार, काम क्रोध लोभ मोह के जाल में उलझे हुए थे । इस अंधेरे युग में महापुरुषों द्वारा समाज को वैज्ञानिक तत्वों पर ढालने का प्रयत्न किया गया । एक नये युग का उदय हुआ, जिसे भक्ति युग कहा जाता है ।

वैज्ञानिक तत्व क्या हैं ? इसे समझना होगा । विज्ञान सत्य और तथ्यों पर टिका हुआ है । जब महापुरुष समाज के तथ्यों को तर्को द्वारा प्रकाश में लाता है तो उस महापुरुष को सामाजिक विज्ञानी कहा जा सकता है । पंजाब में भक्ति आन्दोलन के कर्णधार गुरु नानक देव माने जाते हैं । जिन्होंने तर्कों द्वारा जीवन के सत्य और तथ्यों को समाज के सामने आदर्शो, संदेशों और उपदेशों के रूप मे रखा और समाज को अंधकार से प्रकाश में लाने का प्रयत्न किया । धर्म की रक्षा और समाज में संशोधन भक्ति आन्दोलन के प्रवर्तक गुरु नानक के द्वारा तर्कों के आधार पर हुआ । इस कारण इन्हें सामाजिक – विज्ञानी कहा जाता है ।

जनता कंकर पत्थर – में विधाता के स्वरूप को पाने का यत्न करती थी । मूर्ति पूजा का बोलबाला था । गुरु नानक ने इष्ट देव की कल्पना विज्ञानिक ढंग से लक्ष्यों के आधार मूल–मंत्र में इस प्रकार की । ''एकुअंमकार सतनाम करता पुरुष निरमव निरवैर अकाल मुख अजूनी साहिब भंग गुरू प्रसाद ।'' उन्होंने विधाता को रूप और आकार की सीमा से परे माना है। वे कहते हैं कि विधाता की आरती पृथवी, वायु, सूर्य, गगन, तारे, चन्द्रमा आदि कर रहे हैं ।

गगन में थालु रवि चन्द्र दीपक बने
तारिका मंडल जनक मोती
धूपु मलआनली पवणु चबरो करे
संगल बनराइ फूलंत जोति
कैसी आरती होई भवखडता तेरी आरती
अहनता सबद बाजत भरी

उनका यह तर्क था कि जब सारी प्रकृति उस विधाता की आरती करती है तो मानव को भी, जो सोचने की शक्ति रखता है, वह उस विधाता को छोड़ कर्म काण्ड में क्यों फंसा है । उनका उपदेश तर्कों और तथ्यों पर टिका हुआ था । भक्ति–आन्दोलन के सभी संचालक श्रीमद्‌भगवत गीता के कर्म योग को अपनाए हुये थे ।

उन्होंने तर्क पूर्ण ढंग से समाज को यह समझाया कि विधाता का मंदिर मानव शरीर है। शरीर में नौ द्वार हैं। जिसके द्वारा शक्ति प्राप्त करता है, जब मानव सब द्वारों को संतुलन में ले आता है तो दसवां द्वार खुल जाता है। वाह, वह अनहता सबद बोलतं गरी का अमृत पान करता है। अपने कर्मों के द्वारा मानव ही देवता बन जाता है।

भक्ति काल के पहले हर शक्तिशाली वस्तु पूजी जाती थी, पर गुरू नानक जी ने पहली बार यह समझाने का प्रयत्न दिया कि मानव का समाज मे स्थान है। अपने कर्मों के द्वारा वह ऊंचा उठ सकता है। न कोई हिन्दू है और न कोई मुसलमान धर्म, की सही परिभाषा समानता, एकता पर टिकी हुई है। उनका कहना है कि सारे मानव एक ही रास्ते से आये हैं। और कर्मो के अनुसार मानव जीवन भोग कर चला जाता है। जब जन्म और मरण सबके लिये एक सा है तो ऊंच नीच जाति-पाति की असमानता क्यों और कैसे? उनका हर उपदेश और आदेश मानव के स्तर को ऊंचा उठाने और मानव बनाने के तर्क पर टिका था।

सबसे महान विशेषता यह थी कि वे समाज शास्त्रियों के सम्राट थे। सबसे बड़े सुधारक माने जाते थे। और यह कि उनके उपदेश व्यवहारिक थे। वह कठिन से कठिन परिस्थियों का सामना करते थे, और तर्क पूर्ण ढंग से उसे सुलझाने का प्रयत्न करते थे। मेरे पिता रेल विभाग में काम करते थे, इस कारण बच्चपन में ही में मुझे ऐतिहासिक गुरूद्वारों के दर्शन करने का अवसर मिलता रहा। बचपन में अपनी दादी मां से कहानी सुनता रहा हूं कि गुरू नानक देव, आंखें बंद करके देश विदेश की यात्रा कर लेते थे। वैसे यह बात तर्क पूर्ण नहीं है पर वह ठीक थीं क्योंकि वह गुरू नानक को 'देवता' मानती थीं।

लेकिन गुरू नानक जी के तर्क अनुसार 'मानव' देवता वन सकता है। इस विषय को तर्क पूर्ण समझाने के लिये बचपन से ही मैंने गुरु नानक यात्राओं का भेद अपने अनुभव अनुसार बनाना शुरू कर दिया था। इतिहास का विद्यार्थी होने के कारण इस विषय को अधिक वैज्ञानिक बनाने के लिये आइल पेंटिग का सहारा लेते हुए, 95 के ढाचे में रखकर यात्राओं का जाल बना डाला। सरकार ने मेरे इस वैज्ञानिक ढंग की प्रशंसा की और राष्ट्रीय स्तर पर इनाम दिया। इस मान चित्र में चार यात्राओं का चित्रण है।

उन्होने पहली यात्रा सुलतानपुर से कुरुक्षेत्र, पानीपत, दिल्ली, हरिद्वार, नानकमता, बनारस, कटनी गया, असम, ढाका और वापसी कटक। जगन्नाथपुरी, मध्य भारत होते हुए पंजाब वापिस आ गये। सबसे महत्वपूर्ण घटना हरिद्वार में घटी। उन्होंने नाटकीय वैज्ञानिक ढंग से अपने पितरों को पश्चिम की ओर पानी को उछालना शुरू कर दिया, जबकि लोग अपने पितरों को पानी देने के लिये सूर्य की ओर पानी उछाल रहे थे। लागों ने कहा 'यह आप क्या कर रहे हैं? उन्होंने जवाब दिया, में अपने खेतों को पानी दे रहा हूँ, जो पंजाब में है। लोगों ने कहा - खेती को पानी इतनी दूर कैसे पहुंचेगा? उन्होंने नम्रतापूर्ण कहा कि यदि आपका दिया हुआ पानी लाखों मील दूर पहुच सकता है, तो क्या मेरा दिया हुआ पानी हजारों मील नहीं पहुच सकता?

इस प्रकार गुरू ने वैज्ञानिक ढंग से समझाने का प्रयत्न किया और कुरीतियों को त्याग करने का संदेश दिया।

दूसरी यात्रा उन्होंने सुलतानपुर से फिर शुरु कर दी। वे लंका टापू की ओर गये। इस यात्रा में बीकानेर, इन्दौर, उज्जैन, कुडपा, मद्रास, रामेश्वरम, ट्रकोमाल, वाटीकोला और वापसी में धारवाड़, पूना, निमडी, जूनागढ़,

मिठनकोट आदि होकर पजाब लौट आये।

तीसरी यात्रा पहाड़ों की यात्रा थी, वहां वे सिद्धों से मिले जो विभूति मल के दिखावे की बालियां डालकर तप करते थे।इसके विरूद्ध गुरू नानक ने आवाज उठाई। उनकी तर्क पूर्ण समझाया कि शरीर को दु:ख देकर परिवारिक जीवन त्याग कर विधाता नहीं मिलता।

चौथी यात्रा फिर करतार पुर से शुरु की। वे मक्के मदीने की ओर गये। जब वे समुद्री यात्रा कर के मक्के पहुचे, तो थके हुए थे वे कावे की ओर पांव फैलाकर विश्राम करने के लिए लेट गये। वहां के काजी ने पूछा कि काबे की तरफ पैर क्यों किये है ?

उन्होंने उत्तर दिया- जहां पर काबा नहीं है आप उस तरफ मेरे पैर घसीट कर रख दें। काजी को समझ आ गया कि काबा - खुदा का घर है वह हर स्थान में है। संसार में रमा हुआ है।

इस प्रकार अपने सिद्धान्तों और दलीलों से लोगों को कायल कर लेना जादू से कम नहीं था। लोगों ने मक्के का अपने स्थान से घूम जाना लिखा है। जिसे गुरूनानक नहीं मानते थे। वे तर्कपूर्ण सन्देश देते थे। मानव का बड़ा छोटा होना उसके गुणों पर निर्भर है। 'वे कहते हैं' बाबा आखे हाजियां, शुम अमलों बाजों दोनों रोई। इतिहासकारों का कहना है कि नानकिन नाम का शहर उनके नाम से पुकारा जाता है। यह यात्रा उन्होंने पहली यात्रा करते समय की। यह भी कहा जाता है कि वे हबस देश और रोम भी गये। उस समय रोम साहित्य का गढ़ था।

सामाजिक विज्ञानी भाषणों में विश्वास नहीं करते। वे उसके व्यवहारिक रूप को देखने के लिये और समाज की सेवा करने के लिए घर-घर प्रकाश करना चाहते हैं। सचमुच गुरूनानक देव जी एक महामानव, सामाजिक विज्ञानी, नैतिक जीवन और समाज में भ्रातृत्व तथा सेवाभाव का प्रसाद बांटते रहे। यही तत्व भक्ति युग की अमरता के आधार है।

❑❑

एम-13 राजौरी गार्डन,
नयी दिल्ली

बहुमूल्य संसाधन-बालक और माता पिता

❑ डा. शोभा वैद्य

परिवार रूपी वृक्ष पर बालक रूपी फल खिलता है। वृक्ष जितना स्वस्थ, सम्पन्न और पुष्ट होगा वैसा ही फल होगा। बीज से फल अलग नहीं हो सकता इसलिये जैसे माता पिता होते है वैसा ही बालक होता है पर बालक के साथ जुड़ी पराश्रितता उसे मजबूर कर देती है। वैसे मानव शिशु प्रकृति की अनूठी एवं सर्वश्रेष्ठ कृति है पर जितना बोझ अपेक्षाओं के रूप में बालमन पर डाला जाता है। उतना शायद किसी अन्य प्राणी पर नहीं। इसका खास कारण है लम्बी बचपन अवधि और उससे उत्पन्न पराश्रय। यह पराश्रयता ही उसे हर पल बड़ों की आज्ञाकारिता का खिलौना बना देती है। बच्चों को किसी तरह के अधिकार नहीं दिये जाते (इसका प्रमाण समय समय पर किये गये सर्वेक्षण हैं) अलबत्ता उनकी झोली कर्त्तव्यों और कार्यो से भरी रहती है इसीलिये गैर सरकारी आंकडों के अनुसार बालश्रमिकों की संख्या दस करोड़ के आसपास अनुमानित हैं, बेचारे मूकबधिर बाल श्रमिक। वैसे भी बालकों का सबसे बड़ा कर्त्तव्य माता-पिता की आकांक्षा के अनुरूप स्वयं को ढालना होता है जो इस आचरण पर खरा उतरे उसे 'अच्छा' व 'न' अतरने वाले को 'बुरा' करार कर दिया जाता है। बच्चे वयस्कों पर पूरी तरह निर्भर होते हैं इसलिये बच्चों के साथ दुर्व्यहार आम बात है।

पहले माता-पिता एवं परिजन तथा बाद में शिक्षक बालक की 'कुछ करने-सीखने' स्वाभाविक वृत्ति को बांधकर बँधी बँधाई लीक पर चलने को बाध्य करते हैं (यह बात सुनने देखने मे अविश्वसनीय लगती है, पर सच्चाई यही है) यह बाध्यता बालक की सृजनशीलता का गला घोंट कर आजीवन के लिये बालक को नपुंसक बना देती है और वह किसी भी प्रकार के सृजन के लिये स्वयं को असमर्थ महसूस करता है। पालक और शिक्षक खलिल जिब्रान की इस सीख को सुनते ही कहां है कि, ''बच्चे को अपने विचार मत दो, अपना प्यार दो क्योंकि उन्हें आगे ऐसी दुनिया में रहना है जिसकी आप कल्पना भी नहीं कर सकते।

बालक की शिक्षा साँस के समान स्वाभाविक और आवश्यक होनी चाहिये जबकि आज स्थिति यह है कि सबसे ज्यादा अस्वाभाविकता के वातावरण में बालक को शिक्षा देने के लिये बाध्य किया जाता है। यह तो सर्व विदित है कि बाध्यता में लिये गये कोई भी कार्य मन की भूमि में अंकुरित नहीं होते वे तो फैन के समान सतही होते हैं अवसर आते ही लुप्त हो जाते है।

घर और विद्यालय यदि दो ध्रुव न हो तो बालक को समायोजन में परेशानी नहीं आती। घर में बालक प्यार व आकर्षण का केन्द्र होता है पर विद्यालय आते ही स्वयं को अकेला महसूस करता है। घर जैसी सुरक्षा और गरमाहट यदि विद्यालय में हो तो बालक को ''कैदखाने''

वाली यातना से मुक्ति दिलाई जा सकती है। छुट्टी की घटी बजते ही बालक जिस प्रसन्नता से चीखता चिल्लाता है तथा स्कूली घंटो की शुरूआत से पूर्व ही वह जैसी रोनी सूरत बना लेता है, ये दोनों बातें विद्यालय की कमियों को उजाकर करती है। बालक विद्यालय जाने के लिये वैसा ही मचलने लगे जैसा वह माँ की गोद में आने के लिये मचलता है तब शायद विद्यालय सार्थक हो जाये।

घर से विद्यालय तक पहुंचने की सारी प्रक्रिया सहज और स्वाभाविक होनी चाहिए। यदि इस सहजता को आघात लगता है तब यह आघात पूरे समय के लिये बालक के मन में विद्यालय विरोधी दृष्टिकोण पैदा कर देता है। जैसे एक अनुभवी दाई बालक को प्रथम स्नान (पानी से प्रथम परिचय) कराते समय जैसी सावधानी और स्वाभाविकता का परिचय देती है उतनी ही स्वाभाविकता और सहजता विद्यालय भेजने में होनी चाहिए। बालको के मन में विद्यालय के प्रति डर पैदा करने में माता-पिता की भूमिका नकारी नहीं जा सकती। जितनी तन्मयता से बालक खेल में व्यस्त रहता है उतनी ही तन्मयता से उसे शिक्षा में भी व्यस्त रखा जा सकता है वशर्तें माता-पिता और शिक्षक अपने तौर-तरीके सुधारें।

आजकल जन्मघूँटी तो बाद में पिलाई जाती है, पहले विद्यालय में 'रजिस्ट्रेशन' कराया जाता है। दो ढाई साल के अबोध बच्चे से 'ए' फॉर एप्पल रटवाने में हमें पता नहीं कौन सा सन्तोष मिलता है ? बीज का अकुरण स्वाभाविकता में होता है। अस्वाभाविक परिवेश एवं विकास दोनों ही लाभकर नहीं होते। ऐसा लगने लगा है कि स्कूल भेजना अब बालक की आवश्यकता नहीं रह गयी है वरन् वह तो माता-पिता की आवश्यकता, रोग या शौक बन गया है। वे अपने अनुसार बालक को विद्यालय भेजते है बालक के अनुसार नहीं। बालपन की हत्या तो अनजाने में वयस्क लोग करते रहते हैं। यदि आप अपने बच्चे को नर्सरी या के.जी. स्कूल में नहीं भेजते तब आप अपने समाज, अड़ौसी-पड़ौसी की निगाह में हिकारत की दृष्टि से देखे जाते हैं, पिछड़े हुए माने जाते हैं। बच्चे को विद्यालय भेजना माता-पिता का 'स्टेट्स सिम्बल' है। यदि आमन्त्रितों के सामने बालक 'अंग्रेजी राइम्स' नही सुना पाता तब भरी सभा में कपड़े पहने हुए भी हम स्वयं को 'निर्वसित' महसूस करते हैं तथा मेहमानों के जाने के बाद बालक पर अमानवीय अत्याचार करने में नहीं झिझकते। एक बात है कि अपने साथ किये गये दुर्व्यवहार को बालक ताउम्र याद रखता है। प्रसिद्ध विद्वान फ्रॉयड का कहना, "जिस प्रकार का बचपन होगा, वैसा ही जीवन होगा" ठीक ही है। यदि बचपन उपेक्षित , बोझिल एवं तनावपूर्ण है तब वयस्क होने पर भी बालक का चरित्र इससे प्रतिबिम्बित ही होगा।

बालक की फीस जितनी ज्यादा हो, होमवर्क जितना अधिक हो, जितना भारी बस्ता हो, माता-पिता का कद उतना ही ऊँचा होता जाता है। अपना कद बढ़ाने के लिये माता-पिता बच्चों का उपयोग नकली टांगों के रूप में करते हैं तथा अपना बोझ बच्चों पर लादने में तनिक नहीं झिझकते। यदि बच्चा अंग्रेजी गीत सुनाता है या तथाकथित अंग्रेजी माध्यम के विद्यालय में जाता है तो हम प्रतिष्ठित अनुभव करते हैं। घर पर अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाने के चक्कर में हम अपने सुकुमार बच्चे के साथ क्या क्या और कितनी ज्यादतियाँ नहीं करते, इसे हम प्रायः अनदेखा कर देते हैं। बच्चे की सृजनशीलता की हत्या करने के लिये दूसरी भाषा में बोलने को बाध्य करने से बड़ा कोई उपकरण नहीं है। गाँधी जी मातृभाषा को मां के दूध के समान स्वाभाविक मानते रहे। अभिव्यक्ति

जितनी स्वाभाविकता, सहजता और आत्मीयता से अपनी भाषा में होती है उतनी किसी अन्य भाषा से नही। स्वयं को प्रकट करने के लिये मातृभाषा से बढ़कर दूसरा अन्यतम साधन है ही नहीं। ऐसा भी कहा जा सकता है कि सजृन का बीज स्वभूमि में अंकुरित होता है पर हमारी शिक्षा की खामियाँ बालक की सुलभ स्वाभाविकता की हत्या कर उसे गूँगा बहरा बना देती है, गूँगे बहरे क्या कहेंगे - क्या सुनेंगे ? जबकि प्रजातंत्र की अनिवार्य आवश्यकता कहना सुनना दोनों ही है ।

आम माता-पिता की आकांक्षा होती हैं कि उनका बालक पढ़ाई में सबसे आगे रहे । उनकी आकांक्षा को पूरा करने के लिये बालक अपनी बलि चढ़ाता है फिर भी न तो पालक संतुष्ट होते हैं न शिक्षक। असन्तोष का बबूल कहीं न कहीं फूट ही पड़ता है । मनोवैज्ञानिक तथ्य तो यह है कि बालक अपनी योग्यता का सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन करना चाहता है पर यदि क्षमता साथ दे। माता-पिता इस तथ्य को अनदेखा करते हुए अपनी इच्छाओं के अनुसार बालक की योग्यता का प्रदर्शन चाहते हैं । अत: माता-पिता को इस तथ्य को ध्यान में रखकर ही बालक से अपेक्षा करनी चाहिये ।

अन्तर्राष्ट्रीय विकास को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि बालकों को बहुमूल्य संसाधनों के रूप में फलने - बढ़ने का मौका देना आवश्यक है और यह कार्य माता-पिता एवं शिक्षकों के बिना नहीं हो सकता है । अत: माता-पिता एव शिक्षकों की इन बहुमूल्य राष्ट्रीय संसाधनों के विकास की पहली जिम्मेदारी है ।

शिक्षा संस्थान
देअ विश्वविद्यालय, इन्दौर

पर्यावरण शिक्षा - क्यों और कैसे

❑ हरिशचन्द्र व्यास

आज पूरा विश्व यदि किसी एक समस्या को लेकर चिन्तित है तो वह पर्यावरण की समस्या। विकास की अंधी दौड़ में मनुष्य को यह ज्ञान तक नही हुआ कि वह विनाश की ओर भी तेजी से भाग रहा है। लगभग समानान्तर गति थी विकास और विनाश की। जब इस बात का अहसास हुआ तब तक बहुत देर हो चुकी थी। पृथ्वी के संसाधनों की इतनी अधिक लूटमार की जा चुकी थी कि तलपट मिलाते समय अपना दिवाला ही नज़र आने लगा। जब बैंक बैलेस ही समाप्त हो तो फिर रकम कहाँ से निकालेंगे और ब्याज किस पर लेंगे - समस्या यह थी। प्रकृति और मनुष्य के बीच का सारा संतुलन ही गड़बडा गया था, स्वाभविक था कि मनुष्य चिन्तित हो और वह चिन्तित हुआ भी। यह चिन्ता आज भी बरकरार है, लेकिन कोरी चिन्ता से क्या होता है ? ऐसा कुछ किया भी तो जाना चाहिए, जिससे मालूम हो कि हम होश में आ चुके हैं और इससे ज्यादा बर्बाद होने को तैयार नहीं हैं। चिन्ता की खुशर - फुसर जरूर सुनाई दे रही है जो एक शुभ संकेत है, पर ठोस और निर्णायक क़दम अभी पूरी तरह उठने शुरू हीं हुए हैं। जिस दिन ऐसा होने लगेगा प्रकृति भी अपने लाडलों - मनुष्य, पशु-पक्षी, वनस्पति - पर फिर से मेहरबानी करने लग जाएगी हम इस मेहरबानी के हकदार कैसे बनें ? कमोवश यही पर्यावरण शिक्षा का विषय है। आइये देखें कि पर्यावरण शिक्षा क्या है ? क्यों जरूरी है यह ? और यदि जरूरी है तो कैसे दी जाए ?

सदियों पुराना संतुलन और मनुष्य का भटकाव

प्रकृति और मनुष्य के बीच का संतुलन सदियों, सहस्त्राद्वियो पुराना है। कभी व्यवधान नहीं हुआ था इसमें, क्योकि मनुष्य लालच का शिकार नहीं बना था। एक मीठा सा सह-सम्बन्ध था दोनों के बीच में। न तो मनुष्य ने प्रकृति के सौन्दर्य से छेड़छाड़ की और न उसे लूटने की तजबीज़ ही बिठाई और उधर प्रकृति ने भी दिल खोलकर उसे ममता प्यार और दुलार सब कुछ दिया। मनुष्य की लिप्सा ने ही सारा गुड़ गोबर कर दिया। ऊर्जा की अधाधुंध खपत, बनों की वेसुमार कटाई, धड़ाधड बढ़ती हुई जनसंख्या, तेजी मे फैलता हुआ प्रदूषण और उसके बीज संसाधनों का निर्मम शोषण - यही बदला चुकाया मनुष्य ने प्रकृति की अनुकम्पा का। फसलों के लालच ने पृथ्वी के गर्भ को चीर कर रासायनिक खाद से भरने को मजबूर किया विलासिता के दृष्टिकोण ने मिलों, फैक्टरियों, कारखानों और संयन्त्रो के माध्यम से चारों ओर प्रदूषण फैलाया, रफ्तार की चाह ने मोटरों, ट्रकों और स्कूटरों आदि की तावडतोड़ दौड़भाग से वातावरण में धुँआ ही धुँआ भर

दिया, उपभोग की संस्कृति ने कोयले, पेट्रोलियम एवम् अनेक खनिजों को स्वाहा करने के लिए उसे विवश किया तथा बहादुरी , खानपान और सजावट की लिप्सा ने जीव जन्तुओं के व्यापक संहार का रास्ता खोल दिया ।

उसे क्या पता था कि वनों की लकड़ी काटते - काटते वह अपनी किस्मत पर भी कुल्हाड़ी चला रहा है। उसे क्या पता था कि कारखानों का दूषित जल नदियों और समुद्रों में डालकर वह न केवल मछलियों और जल-जन्तुओं का ही जीवन समाप्त कर रहा है अपितु अपनी जीवन रेखा (लाइफलाइन) को भी छोटी करता जा रहा है । वायुमण्डल को कार्बन-डाई-ऑक्साइड से भर कर हवा की ताजगी को ही नष्ट नही कर रहा, पूरी मानवता के स्वांस की गिनती को ही कम कर रहा है । नादान मनुष्य । यह सब कुछ करता चला गया और वह आज, जब संतुलन लगभग बिगड़ चुका है तो संताप करने बैठा है। पाप के बाद संताप । पर्यावरण की महत्ता अब उसके ध्यान में आई है और इसी महत्ता का दूसरा नाम है पर्यावरण शिक्षा । मुनष्य और प्रकृति के सह-सम्बन्धों को सही दिशा में विकसित करना ही इस शिक्षा का असली प्रयोजन है ।

पर्यावरण शिक्षा : दशा-दिशा

यह शिक्षा एक साथ तीन काम करती है- (1) पर्यावरण के प्रति सचेतना बढ़ाना, (2) उसके बारे में सही समझ का विकास करना तथा (3) मनुष्य और शेष जगत (प्रकृति, जीव जन्तु और वनस्पति) के बीच अन्तर्सम्बन्धों को इस तरह व्याख्यातित करना ताकि जीव-जगत एक सही संतुलन बनाकर साथ-साथ रह सके । साथ ही यह शिक्षा उसमें एक और समझ भी देती है और वह यह कि पर्यावरण की रक्षा कैसे की जाए, संसाधनों का सही उपयोग कैसे हो और प्रदूषित पर्यावरण के बारे में सब कुछ जानें, पर्यावरण से सीखें और पर्यावरण के सुधार के लिए काम करे - यही इस शिक्षा का अभीष्ट है ।

सामंजस्य और विकास

यह शिक्षा औपचारिक भी हो सकती है और अनौपचारिक भी । शिक्षा का मुख्य लक्ष्य है व्यक्ति को अपने पर्यावण के अनुसार ढालना और उसमे प्रकृति के साथ सामजस्य बिठाने की कला का विकास करना । आखिर मनुष्य को अने पर्यावरण के भीतर रहना है । यदि मनुष्य और प्रकृति के बीच 3 और 6 के रिस्ते रहे तो न वह स्वयं सुखी रह सकेगा और न प्रकृति ही उसके प्रति मेहरबान होगी। आग में हाथ डालने से जलता ही है फिर प्रकृति तो अनन्त शक्तिशालिनी है, उससे विरोध मोल लेने का मतलब है मौत को निमंत्रण देना । बच्चों का अपना एक छोटा सा संसार है – उसका अपना पर्यावरण । यदि वह उसके साथ आत्मीयता और अन्तरंगता रखे तो विकास भी सही दिशा मे होगा । प्रकृति उसे नित नये अनुभव और रोमान्च देगी । अपने रहस्यों से भरा हुआ खजाना खोल देगी उसके लिए । कुछ भी छिपाकर नहीं रखेगी । पर पहले वह प्रकृति को समझे तो सही ।

समझने के लिए साक्षात्कार करना जरूरी

बच्चे में अटूट जिज्ञासा और अनन्त उत्सुकता रहती है । कभी जल उसकी जिज्ञासा को जगाता है तो कभी पवन उसे झकझोरती है । पृथ्वी के घूमने से लेकर पृथ्वी की गहराई तक के विचार उसे सोचने को मजबूर करे रहते हैं मौसम का आना-जाना , चंद्रमा का छोटा-बड़ा हो रहना, शुक्ल पक्ष और चंद्र पक्ष का बनना, पक्षियों का उड़ना और जल जीवों का जल में मस्त रहना, आँधी और तूफान, बाढ़ और सूखा, भूकम्प और भूस्खलन, की

स्थितियों में विनाश की लीला का होना - आखिर यह सब क्या हैं ? क्यों हैं ? कैसे होता हैं ये ? - यही जिज्ञासा बच्चे को प्रकृति से जोड़ती है । रह-रह कर वह प्रकृति की "जन्म-पत्री" को पढ़ना चाहता है पर उसके हाथ में थमाये जाते हैं गणित के फार्मूले, इतिहास की घटनाओं के अम्बार, नागरिक जीवन के कानून कायदे, पुरानी कविताओं के ढेर और विज्ञान के सूत्र । बेचारा बच्चा । ये सब प्रकृति की गोद में बैठ कर नहीं भीड़भाड़ और उमस भरे कक्षा के कमरे में बैठकर सीखने या रटने को मज़बूर होता है । प्रकृति को समझना हो तो प्रकृति के बीच में आना होगा । पर्यावरण शिक्षा उसे एक ऐसा ही अवसर देती है कि यह प्रकृति की पोर-पोर समझ सके और उसके अनुसार अपने जीवन को ढाल सके ।

संघर्ष नहीं सह अस्तित्व

पर्यावरण शिक्षा हमारे सामने अनुकूलन का सिद्धान्त रखती है यानी प्रकृति से मेलजोल का सिद्धान्त । ऐसे में संघर्ष का तो प्रश्न ही नहीं उठता । जब जीवजन्तु और पेड़ पौधे हमें नहीं सताते तो हमें क्या हक है कि हम उनकी शांति को छीनें या अपनी लिप्सा की पूर्ति के लिए उनका विनाश या संहार करें । होना यह चाहिए कि हम उनका पोषण करें और वे हमारे काम आयें । प्रकृति का संतुलन इतना ग़जब का है कि जीव जन्तु, पेड़ पौधे इन्सान कहीं न कहीं, किसी न किसी प्रकार से एक दूसरे से जुड़े हुए हैं -एक दूसरे पर निर्भर हैं । इसी सत्य को समझाना पर्यावरण शिक्षा का एक और उद्देश्य है ।

क्यों दी जाए आखिर पर्यावरण शिक्षा

दशकों से इस समस्या पर विचार होता रहा है । शिक्षा शास्त्री तक इस प्रश्न से जूझते रहे हैं कि आखिर पर्यावरण शिक्षा क्यों दी जाए ? अन्य विषयों का बोझ कौनसा कम है जो बच्चे को इस नये तामझाम से लादने की बात सोची जाए । गहरे सोच विचार और मंथन के बाद लोगबाग इसी निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि पर्यावरण शिक्षा बच्चे की एक बुनियादी आवश्यकता है । सुप्रसिद्ध शिक्षाविद् डीवी का मानना है कि बच्चा अपने पर्यावरण के साथ अन्तर क्रिया के माध्यम से ही सीखता है । उसके साथ सम्पर्क में आने से ही उसमें समझ के सही संस्कार पडते हैं । और यह बात केवल प्रकृति के बारे में ही नहीं है, समाज के बारे में भी है ।

बच्चे को कक्षा में बैठाकर पोस्टमैन, मछुआरे या धोबी के बारे में बताया जाए तो वह इतना नहीं सीख सकेगा जितना इन लोगों को स्वयं देखकर, उनसे बात करके और उनके कामों का अवलोकन करके सीख सकता है। यही बात प्रकृति के बारे में भी लागू होती है ।

बच्चे को यदि यह अहसास हो जाए कि प्राकृतिक संसाधन बहुत सीमित हैं और यदि उनकी अंधाधुंध खपत की गई तो तलपट शून्य रहने वाला है - ऐसे में वह पहले से ही सजग हो जाएगा और संसाधनों का सोच समझ कर ही स्तेमाल करेगा । जब कुण्डली का भविष्यफल ही सामने दिखता हो तो जानबूझकर गड्ढे में कौन गिरना चाहेगा ? पर्यावरण शिक्षा में गज़ब की शैक्षिक संभावना है - यदि इसका सही उपयोग किया जाए तो यह अपने आप में शिक्षण स्थितियों (टीचिंग सिचुएशन्स) का रूप धारण कर सकती है ।

इसके अध्ययन के माध्यम से बालकों का अनुभव क्षितिज बढ़ता है तथा निम्नांकित उद्धेश्यों की पूर्ति संभव हो सकती है -

(1) पारिस्थितिकी के साथ मनुष्य के सम्बन्धों में सुधार पर बल ।

(2) एक ऐसे विश्व जनमत का विकास जो पर्यावरण के प्रति संवेदनशील हो और जो

उसके ह्रास की चिन्ता रखता हो ।

(3) मनुष्य में ऐसे कौशलों, दृष्टिकोणो और प्रतिबद्धताओं का प्रादुर्भाव जिनसे वह व्यक्तिगत रूप में या समूह के साथ मिलकर पर्यावरण सम्बन्धी समस्याओं को सुलझा सके और उन समस्याओं के पुनराव को रोक भी सके ।

परिणाम यह है कि पर्यावरण शिक्षा के माध्यम से इस बात की संचेतना आती है कि मनुष्य पूरे प्रकृति चक्र के प्रति संवेदनशील बने । इससे प्रकृति के बारे में उसकी बुनियादी समझ का विकास होता है और वह प्रकृति के सन्दर्भ मे अपनी उत्तरदायी भूमिका से परिचित होने लगता है । सामाजिक मूल्यों और प्रबल भावनाओं के विकास से वह पर्यावरण के प्रति लगाव रखना सीखता है – उसके संरक्षण और संवर्द्धन के प्रति पहले से अधिक क्रियाशील बनता है; पर्यावरण की समस्याओं को सुलझाने का कौशल अर्जित करता है तथा पर्यावरण सम्बन्धी शैक्षिक कार्यक्रमों का राजनैतिक, आर्थिक सामाजिक, सांस्कृतिक और पारिस्थिति की गत बिन्दुओं के आधार पर मूल्यांकन करने में समर्थ हो जाता है ।

विषय क्षेत्र का विस्तार

पर्यावरण शिक्षा हासिल करने का सीधा साधा अर्थ है कि बालक निम्नांकित बातों पर पढ़ने सोचने, समझने और अपने विचार व्यक्त करने के अवसर प्राप्त कर सके–

1. मनुष्य और उसका पर्यावरण
2. जनसंख्या और शहरीकरण
3. पारिस्थितिकी
4. पर्यावरण और आर्थिक स्थिति
5. सामाजिक संसाधन
6. प्रदूषण- (वायु, जल, ऊर्जा, शोर आदि)
7. प्रकृति की गोद में मनोरंजन
8. नागरिक के रूप मे व्यक्ति की भूमिका
9. अन्य विषयो के साथ पर्यावरण शिक्षा के सह-सम्बन्ध
10. प्राकृतिक ससाधन – (वनस्पति, जल, मत्स्य, वन जीव आदि)
11. समस्याएं और उनका निदान

समाज के धरातल पर भी उसके सामने कुछ समस्याए आती है, जैसे – जनसंख्या में वृद्धि, गरीबी, निरक्षरता और वातारवण का प्रदूषण हेना आदि । ये सभी समस्याए कहीं न कहीं पर्यावरण के मूल प्रश्न से जुड़ी हुई हैं । मनुष्य की नासमझी और अकर्मण्यता इन्हें और अधिक भयावह बनाती है । कारण जो भी हो असर तो दोनों पर पडता है – इन्सान पर भी और प्रकृति पर भी । पर्यावरण शिक्षा ऐसे सामाजिक प्रश्नों पर भी हमें सचेत करती रहती है । बढ़ती हुई जनसंख्या के प्रश्न पर वह हमारे सामने खतरे की तख्ती टाँगती हुई सी लगती है, जिस पर दो हड्डियों के निशान हों और जो बिजली के खभो पर टंगी हुई तख्तियो से मेल खाती हो ।

पाठ्यक्रम, पाठ्य चर्चाएं और प्रशिक्षण

आधारभूत प्रश्न यह है कि पर्यावरण शिक्षा कैसे दी जाए । इसके लिए बुनियादी तैयारी तो जरूरी है ही, क्रियान्वयन के चरण भी तय होने चाहिए । पर्यावरण शिक्षा का पाठ्यक्रम, प्रकृति और समाज के संगम को दर्शाता है अर्थात उसमें जहाँ भौतिक परिवेश बोलता है वहाँ सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश भी मौन नहीं रहता । प्राथमिक से लेकर उच्च माध्यमिक कक्षाओं के पाठ्यक्रम में किसी न किसी प्रकार की निरन्तरता अवश्य बनी रहती है । हाँ, स्तर के अनुसार विषय क्षेत्र का विस्तार तो होता ही है । बच्चे की जिज्ञासा का धरातल जितना

अधिक बढ़ता जाता है। पर्यावरण शिक्षा की सामग्री का फैलाव भी उतना ही सघन होता चला जाता है। दोनों के बीच मेलजोल का समीकरण बना रहता है।

उक्त सभी स्तरों तक पाठ्यक्रम की एक छोटी सी झलक (नमूने के तौर पर) यहां दी जाती है।

प्राथमिक स्तर

1. हमारा वातावरण - पृथ्वी, आकाश, सूर्य पवन, जल आदि।
2. मिट्टी, पेड़-पौधे, फसलें, पेड़-पौधों का मानव जीवन पर प्रभाव।
3. पशु-पक्षी।
4. जल, जल प्रदूषण, नदियाँ, कुएं आदि।
5. हवा और ऊर्जा का प्रदूषण।
6. हमारा घर, परिवार, विद्यालय।
7. हमारा शरीर, पौष्टिक भोजन और रोग निवारण।

माध्यमिक स्तर

1. जल मण्डल, वायुमण्डल, जीव मण्डल आदि का विस्तार से ज्ञान।
2. स्थानीय पर्यावरण और उसका समाज पर प्रभाव।
3. जल, वायु ऊर्जा आदि के प्रदूषण और उसकी रोकथाम के उपाय, (राज्य के स्तर पर, राष्ट्रीय स्तर पर)।
4. जीव जन्तुओं की स्थिति, उनकी उपयोगिता और विलुप्त होती हुई प्रजातियाँ, संरक्षण के उपाय।
5. वनों का विनाश और उसका कुप्रभाव, बढ़वा हुआ औद्योगीकरण।
6. जनसंख्या वृद्धि और उसका सामाजिक-आर्थिक-पारिस्थिति के अवयवों पर प्रभाव।
7. ऊर्जा और उसके विभिन्न स्वरूप, मितव्ययता की आवश्यक्ता।
9. पर्यावरण की विश्वव्यापी संचेतना।

उच्च माध्यमिक स्तर पर इन्हीं बिन्दुओं में कुछ और अधिक विस्तार हो जाता है और कुछ नये जुड़ जाते हैं। प्रदूषण के खाते में अब रेडियों धर्मी प्रदूषण, गैस और तेल प्रदूषण, नाभिकीय अस्त्रों के कुप्रभाव और भोपाल गैस त्रासदी आदि को जोड़ा जा सकता है। पारिस्थितिकी के ज्ञान में व्यापकता लाई जा सकती है। कारकों में भौतिक, रासायनिक और जैविक क्षेत्र भी बढ़ जाता है। विश्व भर में जो-जो अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन हुए हैं या यूनेस्को अथवा संयुक्त राष्ट्र संघ ने जिन आयोगों - समितियों आदि को गठित किया है उनके बारे में भी विस्तृत सूचनाएं उच्च माध्यमिक स्तर पर दी जा सकती हैं।

अनेक विषयों (अनुशासनों) का संगम

पाठ्क्रम की झलक मात्र से ही पता चल जाता है कि इसमे कई विषयों का समावेश है। जाहिर है कि इसके लिए ऐसा प्रशिक्षण दिया जाना जाहिए जो विभिन्न विपयो की आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाला हो। पाठ्क्रम रूचिकर एवं प्रेरणादायक होना चाहिए। विषयवस्तु के अलावा मूल प्रश्न संचेतना के उद्भव और विस्तार का है। यह कार्य केवल शिक्षण के माध्यम से नहीं किया जा सकता। हम जो कुछ कहें और जो कुछ करें उसी में संचेतना का आविर्भाव हो- यह हमारी दृष्टि होनी चाहिए। बच्चों का आचरण पर शिक्षक के आचरण का प्रभाव पड़ता ही है अत: आचरण से आचरण को प्रभावित करते हुए हम अनुकूल संचेतना का निर्माण कर सकते हैं।

प्रायोगिक स्वरूप

सैद्धान्तिक पक्ष अपनी जगह है पर पर्यावरण शिक्षा का स्वरूप विशेषकर अभिवृत्ति मूलक और प्रयोगिक

है। अतः प्रकृति का सानिध्य और साहचर्य महत्वपूर्ण घटक के रूप में सामने आते हैं । कक्षा के बाहर की प्रवृत्तियां भी पर्यावरण शिक्षा के अंग है जैसे साहित्यिक कार्यक्रम, सांस्कृतिक गतिविधियाँ, सामुदायिक सेवा कार्य, शिविरों का आयोजन, पर्यटनों की व्यवस्था, अवलोकन, संकलन, प्रयोग एवं उन सबसे जुड़ी अनुभवमूलक अन्य बातें आदि ।

अभिवृत्तियों में परिवर्तन - अनौपचारिक स्थितियां

मूल बात अभिवृत्ति के बदलने और उसे पर्यावरण चेतना के अनुकूल बनाने की है । इस दिशा मे कई तरीकों से कार्य किया जा सकता है । पर्यावरण शिक्षा को औपचारिकता के लबादे से बाहर निकाल कर उसके प्लग को यदि प्रकृति के करेण्ट से जोड़ दिया जाए तथा टू-इन-वन की तरह दूसरा प्लग यदि समाज से जुड़ा रहे तो जब चाहे प्रकृति का और जब चाहे समाज का संस्पर्श मिल सकता है । लेकिन तब यह शिक्षा केवल औपचारिक नहीं रह सकती । इसका अनौपचारिक स्वरूप भी उतना ही महत्वपूर्ण है जितना औपचारिक स्वरूप ।

अभिवृत्तियां सीखी जा सकती है उनमें संशोधन हो सकता है और जब मन को भा जाए तो उन्हें स्थायी भी बनाया जा सकता है । इस बीच नई-नई अभिवृत्तियों का विकास भी होता रहता है । आचरण तो उन्हें प्रभावित करता ही है; पर साथ ही शिक्षण, भाषण, समूह चर्चाओं का आयोजन, विचार-विनिमय, सूचना-प्रसारण, चलचित्र प्रदर्शन, भ्रमण एवं अवलोकन आदि भी प्रभावित करने वाले महत्वपूर्ण घटक हैं । इन्हें नज़र अन्दाज नहीं किया जा सकता ।

अनौपचारिक शिक्षा एक ऐसी सटीक स्थिति है, जिसमें प्रदर्शन या आडम्बर का कोई स्थान नहीं है । जो कुछ है सीधा है, सच्चा है और दो टूक है । बच्चा कक्षा में रहकर आखिर कितना सीख सकता है - अन्ततः तो उसे बाहर आना ही होगा और जब वह बाहर आएगा तो कई अनुभव भी होंगे । पत्र पत्रिकाएं पढ़ेगा, रेडियो और दूरदर्शन का लाभ लेगा, नाटक, एकांकी आदि देखेगा, स्वयं अभिनय करेगा, खेलकूद, परिभ्रमण, देशाटन आदि मे भाग लेगा; प्रकृति का अवलोकन और चित्रांकन करेगा - यानी वह सब काम करेगा जो उसके बस्ते की कितावों के बाहर के हैं . अनौपचारिक शिक्षा का दायरा इन सभी संभावनाओं को लिये हुए है ।

प्रकृति से साक्षात्कार - ज्ञान का एक घटक

प्रकृति एक ऐसी किताब है जिसकी रचना ईश्वर ने की है । यदि इस बात को मान लिया जाय तो फिर इससे बढ़िया किताब और कौनसी हो सकती है । प्रकृति की गोद में जो सहज सुख मिल सकता है वह अन्यत्र मिल ही नहीं सकता । यदि हम पर्यावरण के माध्यम से अध्ययन करना चाहें तो अनेक ऐसे स्थल हैं जहाँ बच्चों को साथ में ले जाया जा सकता है जैसे कृषि अनुसंधान केन्द्र, वन विभाग की कार्यशालाएं, स्थानीय उद्यान, सरोवर, नहरें, अभयारण्य, प्राकृतिक संग्रहालय आदि । प्रत्येक स्थान अनुभव का एक नया संस्कार देगा व्यक्ति का ताजा संस्करण सामने आता रहेगा ।

बच्चे प्राकृतिक वातावरण में रहें - उनसे अवलोकन के सुख मिले और फिर ज्यों-ज्यों उनकी जिज्ञासा बढ़ती जाए उनसे प्रश्न पूछे जाएं, प्रश्नों के उत्तर दिये जाएं; समाधान निकाले जाएँ और इस तरह उनके ज्ञान और अनुभव का स्वाभिक विकास किया जाए । छोटे-छोटे प्रश्न जिज्ञासा के दायरे को बढ़ाते हैं और बच्चों को सोचने के लिए मजबूर करते हैं । हमें इनका भरपूर लाभ लेना चाहिए ।

दूरगामी परिणामों की शिक्षा

शिक्षा के अन्य विषय क्षेत्रों का सम्बन्ध जहाँ परीक्षा

से है वहाँ पर्यावरण शिक्षा का सम्बन्ध पूरे जीवन से है। आज प्राप्त किया गया अनुभव न जाने कब काम आए। पूरा जीवन ही इन अनुभवों की प्रयोगशाला बना रहता है। विकास के इस युग में मनुष्य प्रकृति का संरक्षण कैसे करे और कैसे अपनी भावी पीढ़ियों को विनाश से बचाए – यह चिन्ता हर समय बरकरार रहती है और पर्यावरण शिक्षा प्राप्त व्यक्ति लगातार ऐसे प्रयास करता है जिससे उसके और पर्यावरण के बीच का संतुलन बना रहे - उसमें किसी भी प्रकार का कोई व्यवधान नही आने पावे।

पर्यावरण शिक्षा समय की माँग है। बिगड़ते पर्यावरण की नज़ाकत को समझना और उसके अनुरूप कार्यव्यवहार को परिमार्जित करते रहना हमारी अपनी मूलभूत आवश्यकता है। जिस दिन हम इस आवश्यकता की अनदेखी कर देंगे, उसी दिन से विनाश का अध्याय शुरू हो जाएगा। विनाश का परिशिष्ट न लिखा जाए - इसके लिए आवश्यक है कि हम पूरे मनोयोग से पर्यावरण के साथ अपने सम्बन्धों पर पुनर्विचार करें तथा उन्हें अनुकूल बनाने के रचनात्मक प्रयासों में लग जाएं।

संस्कार का बीजारोपण शुरू से ही हो

संस्कारो का भी अपना एक अलग ही रचना संसार होता है। उसे बंधे बंधाये दायरों में समेटा नहीं जा सकता। यदि प्रारम्भ से ही बच्चों को इस दिशा में प्रवृत कर दिया जाये तो वह सही संस्कारों को ग्रहण कर सकेंगे। बच्चे यदि बीजों का संग्रह करते हों या पत्तियों के नमूने इकट्ठे कर रहे हों या भिन्न-भिन्न पक्षियों के पखों का संकलन कर रहे हो तो भी वे नये संस्कारों के दायरे मे आते हैं। उनमे एक जिज्ञासा है - वे जानना चाहते है और जानने के साथ-साथ उन पक्षियों, उन पादपों और उन फसलों से एक प्रकार की आत्मीयता भी महसूस करते है तभी तो मन से संग्रह-संकलन में लगे हुए है। संसकारों का यह सिलसिला ही उनको प्रकृति से जोड़ता है। अध्यापक बच्चों की इस रूचि को सही दिशा दें तो प्रारम्भ से ही प्रकृति के प्रति साहचर्य के सस्कार पैदा होंगे और ऐसे बालक आगे जाकर न नदियों को प्रदूषित करेंगे, न वनों की निर्मम कटाई करेंगे और न जनसंख्या की वृद्धि में ही सहायक होंगे।

व्याख्याता
राजकीय उच्च अध्यापन शिक्षा संस्थान
बीकानेर (राज०)

अभिभावक शिक्षक संपर्क – एक आवश्यकता

❑ रजनी शर्मा

आज के इस आधुनिक व्यस्ततम संसार में चाहे मनुष्य कितना ही आगे क्यों न बढ़ गया हो पर माता-पिता के लिए बच्चे का आज भी वही अस्तित्व है जो सदियों पहले था अन्तर केवल इतना है कि पहले माता-पिता अपने बच्चों का भविष्य सुधारने और उनके भावी जीवन को प्रकाशित करने केलिए उन्हें गुरुकुलो में भेजा करते थे और आज उन्हीं गुरुकुलों केस्थान स्कूलों ने ले लिया है।

प्रतिदिन बच्चा 5-6 घंटे स्कूल में बिताता है जिसमें से लगभग 4-5 घंटे वह विभिन्न शिक्षकों के संपर्क में रहता है। 40 मिनट के पीरियड में 40-50 बच्चों की क्षा में किसी व्यक्तिगत छात्र का अध्यापक से निजी र्क औसतन एक मिनट का रहता है। इतने कम समय कोई भी अध्यापक किसी छात्र की व्यक्तिगत रुचि, कमजोरी तथा निपुणता को नहीं आंक सकता।

आज के व्यस्त जीवन में काम-काजी अभिभावक भी अपने बच्चों को वास्तव में उतना समय नहीं दे पाते जितना कि देना चाहिए। उनके पास अपने बच्चों की समस्याओं को लेकर उनके अध्यापकों से मिलने का समय ही नहीं होता।

यदि मनोवैज्ञानिक ढंग से सोचा जाए तो एक बच्चे के सर्वागीण विकास के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि उसके घर और विद्यालय के वातावरण में कुछ सामंजस्य हो क्योंकि उनका अधिकांश समय घर और विद्यालय में ही गुजरता है। इसके लिए यह बेहतर होगा कि माता-पिता नियमित रूप से अध्यापकों से मिलें और समय के अभाव अथवा उन्य विशेष परिस्थितियों में यह काम लिखित रूप से बच्चों की डायरी में भी किया जा सकता है। अर्थात अभिावक शिक्षक संघ नामक संगठन की स्थापना मात्र से ही काम नहीं चलेगा उसे कार्यरूप देना अत्यन्त आवश्यक है। कम से कम माह में एक बार तो अवश्य ही अभिभावकों और अध्यापकों की आपसी बातचीत जरूरी है जिससे वे बच्चे के बारे में अपनी-अपनी राय का आदान प्रदान कर सकें। यदि घर में किसी प्रकार की कठिनाई अथवा समस्या है तो अध्यापक को इसकी जानकारी अवश्य होनी चाहिए अन्यथा बच्चा कभी-कभी बिना अपनी गलती के भी अध्यापकों के कोप का शिकार हो जाता है। ठीक इसी प्रकार माता पिता की डाँट अथवा पिटाई के भय से बच्चा स्कूल की बहुत सी बात उनसे छिपाता है।

केवल छात्रों के सुधार के लिए नहीं विद्यालय समाज और राष्ट्र में परिवर्तन लाने केलिए भी शिक्षक अभिभावक संपर्क अत्यन्त आवश्यक है। कुछ अभिभावक विद्यालय के कार्यो, उत्सवों, समारोहों में रुचि रखते हैं और उत्साहपूर्वक भाग लेते है। कुछ अभिभावक ऐसे भी है जो विद्यालय और वहाँ की स्थानीय समस्याओं को दूर करने में विद्यालय के प्रधानाचार्य की मदद कर सकते

हैं जैसे – विद्यालय के खुलने व बंद होने के समय, परिवहन की विशेष सेवाएं उपलब्ध कराने के लिए वे दिल्ली परिवहन निगम के अधिकारियों से संपर्क कर सकते हैं, कुछ असामाजिक तत्व जो विद्यालय खुलने और बंद होने के समय कन्या विद्यालयों के बाहर समस्याएं उत्पन्न करते हैं उन्हें दूर करने के लिए शिक्षक व अभिभावक दोनों ही उस क्षेत्र के पुलिस अधिकारी से मिलकर यह समस्या दूर कर सकते है। बिजली और पानी का व्यवस्था को सुचारु रूप से चलाने में एक प्रधानाचार्य को जिन कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है उनका अनुमान लगाना आम जनता के लिए असंभव है परंतु शिक्षकों व अभिभावकों की मिली जुली कोशिशों से इस समस्या पर काफी हद तक काबू पाया जा सकता है।

अनेकों बार कुछ प्रशासनिक परेशानियों के कारण विद्यालय में टीचिंग स्टाफ का अभाव रहता है और *विद्यालय में कोषों की कमी रहती हैं। ऐसे में छात्र-*छात्राओं के भविष्य से खिलवाड़ करने का अधिकार किसी को नहीं हैं परन्तु यह खिलवाड़ आमतौर पर होती है जिसका परिणाण यह होता है कि अनेकों छात्र गुमराह हो जाते हैं। इस समस्या को सुलझाने के लिए भी विद्यालय के प्रधानाचार्य, शिक्षक व अभिभावक एक साथ बैठ कर हल खोज सकते हैं।

समाज में उत्पन्न अनेकों कुरीतियों को दूर करने में शिक्षक वर्ग एक महत्वपूर्ण योगदान दे सकता है। प्राचीन काल से समाज को यह योगदान मिलता आया है। अक्सर देखने में आया है कि माँ-बाप चाहे कितना ही क्यों न कहें पर बच्चा उसी बात को ठीक मानता है जो अध्यापक कहते हैं। घर में यदि बच्चा किसी गलत काम के लिए जिद्द करता है तो उसकी जिद्द दूर करने के लिए या उसकी गलत आदतों को दूर करने के लिए माता-पिता विद्यालय में शिक्षकों से संपर्क कर सकते हैं।

इन सभी तथ्यों को देखते हुए हम यह तो निश्चित रूप से कह सकते हैं कि राष्ट्र को सुदृढ़, शिक्षित और सभ्य समाज देने के लिए शिक्षकों व अभिभावकों का संपर्क अत्यन्त आवश्यक है परन्तु एक महत्वपूर्ण पहलू यह भी है कि इस संपर्क का भी एक निश्चित समय व अवधि होनी चाहिए अन्यथा शिक्षक वर्ग का अभिभावकों से मिलने में ही संपूर्ण समय नष्ट हो जाएगा और विद्यालय का अनुशासन बनाए रखने में भी कठिनाई होगी। अभिभावकों को भी चाहिए कि जब भी उन्हें बुलाया जाए, वे स्कूल जाकर अध्यापकों से अवश्य मिलें वास्तव में मात्र 5-10% अभिभावक ही ऐसे हैं जो मौखिक या लिखित सूचना देने के बाद विद्यालय जाते हैं।

उपरोक्त सभी बातों से यह निष्कर्ष निकलता है कि यदि अभिभावक, शिक्षक और प्रधानाचार्य एक सोहार्दपूर्ण वातावरण में मिल बैठकर घर, विद्यालय और समाज में उत्पन्न विभिन्न समस्याओं, परिस्थितियों और उनके हल के बारे मे विचारों का आदान-प्रदान करें तो आज के युवा वर्ग के विकास, समाज और विद्यालय के सुधार कार्यो में काफी तीव्रता लाई जा सकती है और बच्चे के व्यक्तित्व के सर्वागीण विकास का ध्येय भी पूरा किया जा सकता है जो कि हमारी शिक्षा का मुख्य उद्देश्य भी है।

◻◻

राजकीय उच्चतर
मा. बालिका विद्यालय नं॰ 1
सरोजनी नगर – नई दिल्ली

योग शिक्षा की आवश्यकता एवं शिक्षक की भूमिका

❑ आर.पी. पाठक

प्रस्तुत लेख में विद्यालय में योग शिक्षा की आवश्यकता एवं शिक्षक की भूमिका की विवेचना है। दिन, प्रतिदिन की विद्यालयी जटलिताओं के समाधान हेतु शिक्षक को यह उत्तरदायित्व दिया गया है कि वह इस पद पर रहते हुए जहाँ छात्र केव्यक्तित्व, अभिवृत्ति एवं रुचियों के अनुसार चहुँमुखी विकास का मार्ग प्रशस्त करता है, वहीं प्रस्तुत लेख में शिक्षकों को यह सलाह भी दी जाती है कि आजकल के भौतिकवादी समय में प्रतिदिन छात्रों की समस्याओं और क्षमताओं के विकास में योग-क्रियाओं की सलाह देकर शिक्षक न केवल छात्र केव्यक्तित्व, अभिवृत्ति, अभिरूचि आदि के सही रूप से विकास के साथ-साथ समय की बचत, निद्रा तथा आलस्य पर नियन्त्रण, शारीरिक एवं मानसिक शान्ति के मार्ग दिखाकर पूर्ण विकसित समाज के हित में नागरिक बना सकता है। इस तरह छात्र की शैक्षिक उपलब्धि को अधिकतम किया जा सकता है, जो छात्र जीवन का मुख्य ध्येय है।

आज का समाज प्रगति के पथ पर तेजी से बढ़ रहा है। यह प्रगति केवल भौतिक है, अन्य क्षेत्रों में प्रगति के साथ तारतम्य नहीं हैं। सम्यक विकास के लिए आवश्यक है कि विद्यालय में जाने वाले प्रत्येक बच्चे का सर्वांगीण विकास हो। शिक्षक ही इस सर्वांगीण विकास को अर्धगामी और जीवन में अपनी विभिन्न शक्तियों के समुचित विकास तथा उपयोग का रास्ता बताता है।

हमारे देश के शिक्षा नीति के निर्माताओं ने 'नई शिक्षा नीति' के अन्तर्गत शिक्षक की सेवाओं की चर्चा की है जिसका उद्देश्य प्रमुख रूप से छात्र की विभिन्न वृत्तियों, गुणों, व्यक्तित्व, इच्छा एवं अनिच्छा और अभिवृत्तियों का विकास करके छात्र के वास्तविक वैयक्तिक गुणों से परिचित कराना है। इसके साथ ही साथ उन वैयक्तिक गुणों का समाज एवं व्यक्तिगत विकास के चरमोत्कर्ष की ओर अग्रसर करना है।

छात्र का मन जिज्ञासु होता है वह अनेक क्षेत्रों में अपनी वृत्तियों को खोजता है। पर वास्तविक रूप से उसे किस पर कम एवं किस पर अधिक ध्यान देना चाहिए यह शिक्षक द्वारा ही नियन्त्रित किया जा सकता है। इधर उधर भागती हुई चित्त वृत्तियों को सही स्थान एवं उद्देश्य पर लगाना, योग क्रियाओं के द्वारा आसानी से संभव है इसे हमारे देश के ऋषि मुनियो से लेकर आजकल के सामाजिक एवं धार्मिक कार्यकर्त्ता और मनोवैज्ञानिक स्वीकार करते है। छात्र तभी अपने उद्देश्यों को प्राप्त कर सकता है, जब उसे अपनी चित्तवृत्ति (स्थूल) एवं शरीर (भौतिक) पर नियन्त्रण प्राप्त हो। महर्षि 'पतजंलि' के अनुसार - ''चित्तवृत्ति निरोधः इतियोगः'' के लिए

भौतिक (शरीर) पर नियन्त्रण करना अत्यन्त आवश्यक है। बच्चों का शरीर और मन दोनों ही अत्यन्त कोमल होता है। इस कोमलता के उपयोग से हम अपनी शैक्षिक उपलब्धियों के वास्तविक एवं ठोस परिणाम प्राप्त कर सकते हैं, जब हम योग आसनों का अभ्यास कराके छात्रों को संयमी बना दें।

प्राय: योग शिक्षा के बारे में कई तरह की भ्रांतियां है, जो निराधार एवं अज्ञानतावश है जैसे कि सामान्यत: लोगों की यह धारणा है कि योग से संबंधित व्यक्ति अपने को दुनिया से अलग कर लेता है और सामाजिक उत्तरदायित्व से मुँह मोड़ लेता है। यह एक ऐसी भ्रांति है जो निराधार है। इसलिए यह आवश्यक है कि हम यह जान लें कि योग क्या है ? और इसे छात्र जीवन में प्रयोग कर, शैक्षिक नीतियों को सफल बनाकर शैक्षिक समस्याओं को कैसे दूर किया जा सकता है ? महर्षि 'पतजंलि' ने मन की वृत्तियों को संयमित कर देना ही योग कहा है। अर्थात् योग का अर्थ हम पूर्णता से लेते है। इसके अन्तर्गत हम मुख्य रूप से तीन विभेद कर सकते हैं–

(1) चित्त अर्थात् मन

(2) वृत्तियां

(3) एंव उन्हें संयमित करने के उपाय

'पतजंलि' का योग मुख्य रूप से "कार्य के समुचित सम्पादन" पर महत्व देता है, वहीं पर ' कपिल' का योगदर्शन "सम्यक् ज्ञान" पर बल देता हैं। महर्षि पतंजलि की बात योग को "योग: कर्मशु कौशलम्" अर्थात् किसी भी कार्य को जो भी व्यक्ति करे उसे सम्पूर्ण कुशलता के साथ करके सबसे अच्छा परिणाम प्राप्त करे, यही योग हैं। इसी कारण 'गीता' को जिसका आज विश्व की विभिन्न भाषाओं में अनुवाद किया जा चुका है, सांइस आफ एक्सन जिसका तात्पर्य " कार्य का विज्ञान" मानते हैं।

'कपिल' योग दर्शन के अनुसार जो साख्यदर्शन के समरुप हैं, मुख्य रूप से योग के क्षेत्र मे योग परम्परा के प्रतिपादक माने जाते हैं। इनके अनुसार 'प्रकृति' एवं 'पुरुष' के सामजस्य द्वारा ही योग के उद्देश्यों की प्राप्ति हो सकती हें। यह प्रकृति ही हैं जो कि अर्न्तमन में गुणों का विकास करती है। ये गुण –(1)–सत् –(2)–रज – (3)–तम् को हम चेतन, शाक्ति, बहुतायत रुप में इच्छाओं का प्रयोग कह सकते हैं।

उपरोक्त दिए गए योग के अर्थ को अगर ध्यान से देखें तो दोनो प्रश्नों के उत्तर आसानी से प्राप्त हो जाते हैं। अब प्रश्न यह उठता है कि एक शिक्षक किस तरह से इसका उपयोग कर सकता है – मूलत: शिक्षक का उद्देश्य छात्रों के गुणों की पहचान कर, उन्हें सही एंव उचित मार्ग दिखाना है। उस मार्ग प्रदर्शन में उद्देश्य केवल इतना ही है कि वह छात्र अपने संभावित गुणों को पहचान ले, और सही मार्ग की ओर उन्मुख होकर अपना मौलिक विकास करें, साथ ही साथ समाज के चरमोत्कर्ष पर पहुँचाने में अपना योगदान दे।

सामान्यत: योग के अर्न्तगत विशेष तौर से इस बात पर बल दिया गया हैं, कि मन स्थितियां ही विभिन्न प्रकार की बीमारियो के जड़ में है। मुख्यत: दो तरह की समस्याओं को दूर करने में अध्यापक की महत्वपूर्ण भूमिका होती हैं–

(1) आधि

(2) व्याधि

प्रथम शारीरिक कष्टों से संबंधित एवं द्वितीय मानसिक कष्टों से संबंधित हैं। शारीरिक समस्यायें एक समय मानसिक परेशानियां होती हैं जो कालान्तर में एक

प्रमुख समस्या का रूप धारण कर लेती हैं । अत: यह आवश्यक है कि जीवन के प्रारंभिक दिनों में ही ऐसी युक्ति छात्रों को बताई जाए ताकि वे स्वयं के स्तर से अपनी परेशानियों का समसामयिक उपाय कर सकें। इस संदर्भ में शिक्षक का कार्य जो छात्रो से संबंधित हैं वह निम्नलिखित हैं-

1. शारीरिक परिवर्तनों का सही ज्ञान
2. मानसिक परिवर्तनों का सही ज्ञान
3. छाल के मनोसवेगिक विकास का सही ज्ञान
4. सामाजिक, आर्थिक परिवर्तनों का सही ज्ञान
5. राजनीतिक परिवर्तनों का ज्ञान
6. व्यक्तिगत गुणों की सही जानकारी
7. व्यक्तिगत क्षमताओं एवं अभिवृत्तियों का ज्ञान
8. साधनों के समुचित उपयोग की जानकारी
9. मैलेय संबंधो की जानकारी
10. शैक्षिक मानदण्ड़ो एवं उनके उपयोग की जानकारी

उपरोक्त प्रकार की जानकारी सामान्यत: छात्रों को सलाह देकर उनके जीवन का सार्ग प्रशस्त करना हैं. छात्र समाज का अंग हैं । उसके द्वारा ही शिक्षक के शैक्षिक कार्यो का मूल्यांकन होता हैं । अत: हमारी शिक्षा नीति का यह उद्देश्य होना चाहिए कि एक स्वस्थ एंव सुयोग्य नागरिक समाज को दे सकें। यह क्षमता केवल योग के अर्न्तगत हैं । छात्रों के जीवन में योग और उनकी सहायता एंव सर्वांगीण मानसिकता का विकास एक शिक्षक ही कर सकता हैं ।'बाइबिल' का एक कथन- ''आई एम दी वे. , दी ट्रुथ एण्ड् दी लाइफ '' पूर्णतया भारतीय मनीषियों एवं शिक्षाविदों की बात सत्य हैं कि यह जीवन का निर्माण आत्मन् से हैं । इस आत्मन् का संबध शरीर से, मन से और अन्त में ब्रह्म से होता हैं। छात्र को उसके जीवन में अज्ञात क्षमताओं का ज्ञान कराके, उसे अच्छे परिणामों की ओर अग्रसर कराना शिक्षक का कर्त्तव्य हैं । छात्र जब एक बार अपनी अर्न्तनिहित शक्ति को पहचान लेता है। तब उसकी जो जीवन शक्ति इधर-उधर भटकती रहती हैं और अनावश्यक कार्यो में नष्ट होती रहती है, वह नष्ट होने से रुक जाती हैं ।इससे छात्र के जीवन में उत्साह, उमंग आत्मविश्वास एंव सृजनात्मकता के विकास का प्रार्दुभाव होगा ।

इससे छात्र जीवन के विभिन्न पहलुओं के साथ तारतम्य स्थापित करना सीख जाता हैं । सुख-दुख में समान आचरण करने की आदत का विकास योग द्वारा ही संभव है, आजकल की शिक्षा में चाहें नैतिक शिक्षा हो या सामाजिक विज्ञान की या पर्यावरण की ये सभी नाकारा साबित हो रही हैं उनसे सामान्यत: शिक्षाविदों का प्रयास सामाजिक ढाँचे में परिवर्तन लाना है। केवल व्यक्ति में नहीं । इसीलिए दिन-प्रति दिन नैतिक मूल्यों का ह्रास हो रहा हैं । हम अध: पतन की ओर उन्मुख हैं। मानवता को खतरा बना हुआ है । ऐसे समय में अगर हम योग की शिक्षा द्वारा व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक, अध्यात्मिक एव पराध्यात्मिक शक्तियों को विकसित कर हम समाज को फिर से रचनात्मक कार्यों की ओर उन्मुख कर सकते हैं, क्योंकि सही अर्थो में विकास तो योग द्वार प्रतिपादित हैं । भ्रान्तियों को यदि दूर कर दिया जाए ते योग के द्वारा शिक्षा में लाभों को देखा जा सकता है क्योंकि छात्र की शक्तियाँ जो चेतन होती हैं हर एक क्षे

में समान होती हैं । यदि किसी क्षेत्र में कम या ज्यादा चेतना हैं तब भी जीवन शक्ति समान रूप से सभी क्षेत्रों में प्रवाहित होती हैं, क्योंकि शरीर की धनात्मक एवं ऋणात्मक शक्ति की धारायें शारीरिक क्षमता ला देती हैं। फिर भी कभी -कभी ये शक्ति की विभिन्न धारायें कमी की तरफ अधिक प्रवाहित होने से सदैव विकास उर्ध्वगामी होता हैं। "योग और स्वास्थ्य" में 'यसुदियान' ने लिखा हैं "हैल्थ इज नथिंग चेन्ज दैन ए लाइफ अन्डर नैचुरल कन्डीशन्स" आज की भारतीय परिवेश की शिक्षा छात्रों को न तो खाना-पीना और न ही उठने-बैठने के ढंग और न ही प्राकृतिक रूप से कपड़े पहनना सिखाती है; इसी कारण आज का छात्र पथभ्रष्ट और परेशान हैं । ये वास्तविकता से कोसों दूर सुप्तावस्था में कार्य कर रहे हैं जिनके जीवन में सुख-चैन नाम की चीज नहीं, न ही वे अपने उद्देश्य को जानते है और न ही लक्ष्य तक पहुँचने के लगातार कार्य ही करते हैं । उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए हमें शिक्षा के साथ ही योग की क्रियाओं एवं सही रूप से मार्ग प्रशस्त एक कुशल अध्यापक ही कर सकता है । शिक्षक की भूमिका इस तरह की होनी चाहिए कि वह कई तरह के दार्शनिक एवं मनोवैज्ञानिक सत्यों को छात्रों की परिस्थिति परिवेश के अनुसार एक कर सके । इन सब का समन्वित रूप दो तरह की साधनाओं द्वारा प्राप्त किया जा सकता है-

(1) अन्तरंग (आन्तरिक)

(2) बहिरंग (बाहरी)

अन्तरंग वह स्थिति हैं जो संप्रज्ञ से समाधि की ओर उन्मुख करती हैं । इसके तीन सोपान हैं; (1) धारणा (2) ध्यान (3) समाधि

बहिरंग स्थिति में संप्रज्ञता समाधि के लिए पाँच तरह के सोपानों की चर्चा की गई हैं; (अ) यम (ब) नियम (स) आसन (द) प्राणायाम (य) प्रत्याहार

छात्र के जीवन की सफलता के मार्ग में अवरोध स्वरूप वृत्तियां हैं । इन वृत्तियों का शिक्षक उचित मार्गदर्शन एवं यौगिक क्रियाओं द्वारा आसानी से नियन्त्रण करवा सकता हैं । ये निम्नलिखित रास्ते हैं-

1 प्रमाण
2. विपर्यय
3. विकल्प
4. निद्रा
5 स्मृति

प्रमाण

1 यह पर्यवेक्षण उदाहरण और सही रूप में परिस्थितिगत पाने पर सभव हैं ।

2 ये असत्य विचार हैं जो कि सही रुप नहीं ले पाते । और आगे चलकर गलत प्रत्यय का रूप धारण करते हैं ।

3. यथार्थ जो कि शब्दों में दूसरे रूप में अभिव्यक्त होता हैं ।

4. जबकि वह घटना क्रम के बारे में कोई व्ययकारी या सूचना का ज्ञान आश्रित नहीं होता ।

5. वह जो कि वस्तु के उपस्थित होने पर पूर्ण आभास करवा दे ।

शिक्षक का कार्य केवल छात्र समस्याओं तक ही सीमित न रहकर प्रशासन एंव पाठ्यक्रम संबंधी भी होता हैं । जिसके लिए वह प्रमुख भूमिका निभा सकता है । इसमे कोई सदेह नही है कि बच्चे का शरीर और मन दोनो प्रांरभिक अवस्था में कोमल होते हैं । इस शारीरिक और मानसिक विकास के शुरू होते ही यदि उसी समय से बच्चे पर सही ध्यान दिया जाये, तो वह दिन दूर नहीं जब

हम ' महर्षि अरविन्दो ' के अनुसार देश को योगी पुरुष दे सकेंगे। इसका यह तात्पर्य कदापि नहीं कि इस तरह से शिक्षा प्राप्त व्यक्ति अर्न्तमुखी हो जायेंगे, बल्कि वे देश के सच्चे कर्मठ व्यक्ति समाज एवं देश के समुचित विकास में ही मोक्ष का आनन्द प्राप्त करेंगे। यही लक्ष्य होना चाहिए कि पुरुष को सही माने में कर्मठ, कुसाग्र, चेतनशील एवं सृजनात्मकता देकर सत्-चित्-आनन्द प्रदान करें। जिसमें शिक्षक ही एक अहम् भूमिका निभा सकता हैं।

❑❑

एफ-47 कटवारिया सराय
नई दिल्ली

समाज का केन्द्र बिन्दु विद्यालय

❑ कृष्णा माहेश्वरी

विद्यालय से तात्पर्य विद्या + आलय अर्थात विद्या का घर। यह वह स्थान है जहाँ शिक्षार्थियों के लिए शैक्षिक विधि के मार्ग प्रशस्त किया जाता है, जहां से समाज को प्रकाश मिलता है, प्रबुद्ध एवं विविध विचारो का स्वतंत्र रूप से आदान प्रदान होता है।

विद्यालय को अँग्रेजी में स्कूल कहते है। स्कूल शब्द की उत्पति ''स्कोला'' नामक यूनानी शब्द से हुई है जिसका अर्थ है - अवकाश। सम्भवत: प्राचीन समय में यूनान में अवकाश के समय का उपयोग आत्म विकास हेतु किया जाता था।

विद्यालय एक जागरूक व चेतनशील संस्था है जहाँ मानव मस्तिष्क को उचित साँचे में ढालने का कार्य किया जाता है. यह ऐसी संस्था है जिसे असंख्य आँखें प्रतिपल देखती रहती हैं तथा इनके कार्यों व उत्तरदायित्वों की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की जाती है। विद्यालय ज्ञान का ऐसा मंदिर है जहाँ छात्रों की अन्तर्निहित सभी शक्तियों के पूर्ण विकास की व्यवस्था की जाती है। जहाँ उसके मन मस्तिष्क में ज्ञान रूपी कमल को पूर्ण प्रस्फुटित करने के प्रत्यक्ष क्रमवार व व्यवस्थित प्रयास किये जाते हैं तथा शिक्षकों को ऐसी मोमबत्ती कहा गया है जो स्वयं जलकर भी दूसरों को प्रकाशित करती रहती है।

विद्यालय ज्ञानरूपी पौधा लगाने वाले वे स्थान हैं जहाँ पर आत्मविश्वास, स्वावलम्बी व स्वअनुशासित राष्ट्र का जन्म होता है। विद्यालय छात्रों को सॉस्कृतिक, चारित्रिक व मानवीय मूल्यों की शिक्षा प्रदान करता है जिसमे राष्ट्र के भावी निर्माताओं में उचित ज्ञान, अभिरुचि, कौशल व उचित दृष्टिकोण के रुझान का विकास हो सकें।

बालकृष्ण जोशी के अनुसार ''राष्ट्र की उन्नति का निर्णय व निश्चय संविधान परिषद में नहीं हो सकता जहाँ आवेग में न्याय को ऐंठा जाता है और निर्मित कानूनों को दूषित किया जाता है, न्यायालयों में दण्ड अपराधी को सुधारने के स्थान पर उसे और कठोर बनाने के लिये दिया जाता है, कारखाने में जहाँ व्यक्ति का यंत्रीकरण हो जाता है और वह सामाजिक हित की अपेक्षा व्यक्तिगत स्वार्थ पर सोचता है, पर विद्यालय में जहाँ भविष्य के नागरिकों के मस्तिष्क को ढाला जाता है, जहाँ उनकी आदतों, रुचियों व सम्भावनाओं को विकसित किया जाता है, को ही राष्ट्र के भविष्य का उत्तरदायित्व सौंपा जा सकता है।

सैयदन के अनुसार ''विद्यालय प्रबल संसृत जीवन का केन्द्र है यह चारों ओर के जीवन की वास्तविकताओं से निकट से सम्बन्धित है और वह उसकी अति उत्तम व महत्वपूर्ण विशेषताओं को प्रदर्शित करता है जो

बालक को सरलतापूर्वक आकर्षित करती हो ।''

रास के अनुसार ''विद्यालय वे संस्थाएँ है जिनको मनुष्य ने इस दृष्टि से विकसित किया है कि समाज को सुव्यवस्थित तथा योग्य सदस्यता के लिये तैयारी में सहायता मिले ।''

जान डीबी के मतानुसार ''विद्यालय एक विशिष्ट वातावरण है, जहॉ जीवन के कुछ गुण तथा कुछ विशिष्ट प्रकार की क्रियाओं और व्यवसायों की शिक्षा को इस उद्देश्य से दिया जाता है कि बालकों का सामाजिक दृष्टि से वॉछित विकास हो सके ।''

विद्यालय ही बालकों में समाज सम्मत गुणो, ादर्शो टेवों आदि का विकास करता है । वहॉ बालको सिखाया जाता है कि बड़े स्वार्थ के लिए छोटे स्वार्थ त्याग मानव कल्याण के लिए आवश्यक है, परिवार हित के लिए स्वहित को ओझल किया जाना चाहिये । संक्षेप में सुयोग्य शिक्षकों की देखरेख में विद्यालय में बालकों का मानस विकसित होता है ।

महात्मा गॉधी के अनुसार असली भारत गॉवों में बसता है । आज भी भारत में साक्षरता का प्रतिशत अन्य राष्ट्रों की तुलना में बहुत नीचा है । स्वतंत्रता के बाद स्कूल बढ़े हैं शिक्षा पर खर्च बढ़ा है तथा अध्यापकों का बहुत बड़ी संख्या में आप्रवेशन भी हुआ है परन्तु साक्षरता का गत (अक्षर ज्ञान मिला कर भी) उससे कम है । कारण यह है कि चिकित्सा सुविधाओ के विस्तार ु दर कम हो जाने से तथा अप्रत्याशित रूप से ाबादी बढ़ने से शिक्षा की बढ़ी सुविधाओं का प्रभाव नगण्य हो गया है । यहॉ पर ध्यान दिया जाना चाहिये कि गॉवों का प्रतिशत तो और भी कम है । तथा मैट्रिक से ऊपर की शिक्षा का प्रतिशत तो मात्र 5 46 है। आज मैट्रिक पास विद्यार्थी पोस्टकार्ड पर पता नहीं लिख सकता या उसको सब्जी खरीदने पर बेचने वाली भी ठग लेती है । ऐसी स्थिति में स्पष्ट है कि समाज में विद्यालय का महत्व कितना अधिक बढ़ जाता है ।

ग्रामीण समाज में बालिका शिक्षा का प्रचार नहीं है या समाज के सदस्यों में बालिका शिक्षा के प्रति रुचि नहीं है तथा इसके लाभ वे नहीं जानते । एक कहावत के अनुसार पढ़े लिखे व्यक्ति के चार ऑखें होती हैं । शिक्षित होने के लाभ उन्हें बताये जाने जाहिये । वे अपना आज का हिसाब जोड़ सकेंगे, फसल के समय दिये जाने वाले नाज व दालो की तोल वे ठीक से देखभाल कर लिख सकेगे तथा व्यापारी उन्हें नहीं लूट सकेगा । इन सब स्थितियो में उसे विद्यालय से मार्गदर्शन की आवश्यकता है ।

इन दिनों प्रौढ़ शिक्षा पर बहुत बल दिया जा रहा है। 'ईच वन टीच वन' नारा कभी दिया गया तथा कुछ काम भी हुआ । इस बारे में बल है आज भी इसके में अनुसार कार्य हाथ में लिया जा सकता है । उच्च प्राथमिक कक्षाओं के छात्र कुछ सीमा तक, माध्यमिक कक्षाओं के छात्र तथा सभी शिक्षक इस महत्वपूर्ण कार्य में प्रभावी भूमिका निभा सकते हैं । जब प्रौढ शिक्षा का कार्य चले तो विद्यालय भवन का, कमरों का, साधन सामग्री का पूरी तरह से उपयोग किया जा सकता है । निरक्षरता के उन्मूलन मे विद्यालय का अभूतपूर्व योगदान हो सक्ता है।

समाज के लोगो को बैंक से ऋण लेते समय किस किस तरह के फार्म कैसे भरने होते हैं, ऋण कब और कैसे प्राप्त होगा सहकारी समिति कम ब्याज पर ऋण कब उपलब्ध करवायेगी, सहकारी समिति सुधरे हुए बीज तथा रासायनिक खाद कब वितरित करेगी ? इन सब बातो के लिए उसे विद्यालय से ही मार्गदर्शन मिल सकता है । संक्षेप में विद्यालय ही उनमें एक सबके लिए तथा एक के लिए ''सहकारिता के दर्शन का विकास कर सकता है''।

कब किस फसल को कीड़ा लग सकता है ? इसका सैद्धान्तिक ज्ञान बालकों को विद्यालय में कराया जाता है। आज भी समाज के नागरिकों में अंध विश्वास जड़ें जमाए हुए हैं। चेचक को वे भगवान का प्रकोप मानते हैं उन्हें इसका ठीक व सही उपचार समझाया जाना चाहिये। उन्हें स्वास्थ्य तथा स्वच्छता का प्रारम्भिक ज्ञान भी नहीं होता है। उन्हें बताया जाना चाहिये कि नाखून नहीं बढ़ने देना चाहिये। इससे नाखूनों द्वारा खाने के साथ गंदा पेट में जाकर बीमारियां फैलाता है, इससे बचना चाहिये। उन्हें बताया जाना चाहिये कि मवेशियों को पृथक स्थानों पर रखा जाना चाहिये। भारत के नागरिकों को शायद आज तक इस बात की जानकारी नहीं है कि पशुओं को संगीत सुनाने से पाश्चात्य देशों मे उनका दूध बढ़ गया है। मवेशियों को संतुलित भोजन की उन्हें जानकारी दी जानी चाहिये। हरी घास काट कर सुखाकर सालभर मवेशियों को खिलाने से होने वाले लाभों से उन्हें परिचित कराया जाना चाहिये।

समाज में आज मृत्यु भोज (चाहे अन्य नाम से ही सही) बराबर हो रहा है उन्हें बचाया जाना जाहिये कि इससे कई नागरिक भयंकर कष्टों मे फंस जाते है तथा जिन्दगी भर उभर नहीं पाते। ऐसे समय में विद्यालय ही उन्हें सही मार्गदर्शन दे सकता है। प्रबुद्धजन ही समाजहित में धन का सही व अच्छा उपयोग बता सकेंगे। जनसंख्या वृद्धि पर नियन्त्रण पाने के लिए साधनों का जब भी चिकित्सा अधिकारी प्रदर्शन करना चाहे, वन्ध्याकरण की फिल्म चलाई जाती हो तो विद्यालय भवन का उपयोग किया जा सकता है। विद्युत की उपलब्धि तथा अन्य कक्षापयोगी उपकरण इस कार्य को सरल बना देंगे। आम की फसल से नागरिकों को अधिकाधिक लाभ कैसे हो, इसके लिए फसल के अधिकारी विशेषज्ञों के समाज के लाभार्थ विद्यालय मे व्याख्यान करवाये जा सकते हैं। इस प्रकार इन कठिन किन्तु राष्ट्रीय कार्यो में भी विद्यालय की भूमिका निश्चय ही महत्वपूर्ण है।

आज दो सगे भाई भी साथ साथ नहीं रह सकते। एक सुबह उठते ही बिना शौच आदि से निवृत हुए बिस्तर में ही चाय पीना चाहता है जबकि दूसरा भाई भोर वेला में स्नान करके हनुमान चालीसा का जोर जोर से पाठ करता है। स्पष्ट है कि दोनों भाईयों में तालमेल के लिए विद्यालय की भूमिका महत्वपूर्ण होगी। इससे स्पष्टत: मना नही जा सकता। दोनों भाईयो में मनोवैज्ञानिक रूप से तालमेल का उत्तरदायित्व निश्चित रूप से विद्यालय को ही वहन करना होगा। छोटी छोटी बातों पर अनपढ़ों में लड़ाई झगड़े हो जाते है। खेत में पानी का रास्ता बदलना या गन्ना पैरने का स्थान निश्चित करना, आदि बातो पर हुए झगड़ों के लिए अदालतों की शरण लेते देखे गये हैं। वे अदालत न जायं स्थानीय लड़ाई झगड़े स्थानीय बिरादरी या पंचायत ही निपटाये, व्यर्थ में वकीलों की जेब न भरे तथा झूठ को सच तथा सच को झूठ न होने दें। इसके लिए विद्यालय अपनी महत्वपूर्ण भूमिका समाज के सदस्यों के बीच चौपाल पर झगड़ों का निर्णय करवा कर सफलतापूर्वक किया जा सकता है। धूम्रपान, मद्यपान के रोंगों से मुक्ति दिलाने में भी विद्यालय की भूमिका को नहीं भुलाया जा सकता। अन्य सामाजिक कुरीतियों से छुटकारा दिलाने के लिए विद्यालय से बालक प्रभावी प्रचार में मदद कर अनुकूल वातावरण बना सकते हैं। विद्यालय के खेल के मैदानों में नागरिकों के मनोरंजन के लिए सामयिक खेलों की व्यवस्था की जा सकती है उनके लिए वहां सरकस लगाया जा सकता है तथा बच्चों के अवकाश के समय विद्यालय भवन का शादी विवाहों तथा अन्य उत्सवों के आयोजन में उपयोग किया जा सकता है।

त्योहारों, उत्सवों सामाजिक पर्वों पर विद्यालय सामाजिक कार्यकलापों का एक अच्छा संगम बन जाता है। भजन मण्डली, कीर्तन समारोह, सत्सग सभा आदि का कार्य बड़ा मनोहारी बन जाता है। एक नागरिक ढोलक बजा रहा है, दूसरा भजन गा रहा है, तीसरा मजीरा बाजा बजा रहा है तो अन्य हारमोनियम बजा रहा है, पांचवा मीरा या सूर का पद गा गा कर आत्म विभोर हो रहा है, ये सब समाज के कार्य विद्यालय के प्रांगण में ही हो रहे हों तथा सभी नागरिक भाग ले रहे हो। ऐसी स्थिति में कौन कहेगा कि विद्यालय समाज का केन्द्र बिन्दु नहीं?

आज का विद्यार्थी ही कल का नागरिक तथा परसों का अनुभवी प्रशासक होगा। अपने धंधे में सुसज्जित नागरिक ही राष्ट्र की बहुत बड़ी धरोहर होता है, वह उसी धंधे में फलता-फूलता है उसी में सफलता पाता है जिसमें उसकी रुचि होती है। विद्यालय ही विभिन्न मनोवैज्ञानिक परीक्षकों के आधार पर विद्यार्थी की रुचि सका बुद्धिस्तर ज्ञात कर तदनुसार माता-पिता को र्गदर्शन दिया जा सकता है। यह मार्गदर्शन ही द्यार्थियों की व्यवसायिक सफलता को द्विगुणित कर कता है। समाज के इस व्यावसायिक मार्गदर्शन के क्षेत्र ं विद्यालय के सुयोग्य एवं निर्देशन तकलीफों के विशेषज्ञ शिक्षकों के सिवाय अन्य लोग सहायता नहीं कर सकते। विद्यालय को समाज का केन्द्र बनाने में व्यावसायिक मार्गदर्शन का भी अभूतपूर्व स्थान रहता है। इससे स्पष्ट है कि जीवन में सफलता के लिए उचित व्यवसाय के चयन के महत्व को कम मूल्यवान नही आँका जा सकता।

तनावमुक्त समाज की स्थापना के लिए नागरिकों के विचारों में परिवर्तन विद्यालय के शिक्षक ही ला सकते हैं। वे मनोविज्ञान के ज्ञाता होते हैं, वे कार्यकारण "कौज एण्ड इफेक्ट" का सम्बन्ध स्थापित कर सकते हैं तथा वे ही बालकों तथा नागरिकों में मस्तिष्कीय परिवर्तन ला सकते हैं। एक दूसरे के लिए जीना सीखें एक दूसरे के विचारों का आदर करें, उनकी मनोभावना के प्रति सहिष्णु हों, उनके व्यक्तित्व को मान्यता दें, एक दूसरे का विश्वास करना सीखे, उनके लिए त्याग करें, मत भिन्नता होने पर बाहुबल से नही बल्कि प्रेम से उनका हृदय जीते, इसक लिए बिना किसी विवाद के आधार पर विद्यालय अपनी भूमिका निभाता हुआ समाज का केन्द्र बिन्दु बन सकता है। विद्यालय समाज का केन्द्र बिन्दु है ऐसा 25-30 वर्ष पूर्व भी कहा जाता था और आज भी कहा जा रहा है। यहां स्मरणीय यह है कि विद्यालय के कार्यो तथा उद्देश्यों में कोई अन्तर नहीं आया है। महत्वपूर्ण यह है कि उद्देश्यों तथा कार्यों में नहीं बल्कि इनको प्राप्ति तथा उद्देश्यों हेतु क्रियान्वयन की विधियों में ही अन्तर दीखना सफलता के मार्ग पर आगे बढना है। यदि इस निबन्ध में उठाये गये बिन्दुओं पर ध्यान दिया गया तो निश्चय ही विद्यालय समाज का केन्द्र बन जायेगा जिस पर राष्ट्र की प्रसन्नता, उज्जवल भविष्य, सदचरित्र, नैतिकता पूर्ण व्यवहार श्रीवृद्धि समानता तथा एकता निश्चित रूप से निर्भर करेगी।

□□

अध्यापिका संगीत
श्री माहेश्वरी कन्या महाविद्यालय
अलीगढ़

व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त छात्रों का भविष्य

❑ कस्तूरी दहिया

1986 की नई शिक्षा नीति का एक विशेष कदम था शिक्षा में व्यावसायिक शिक्षा को सम्मिलित करना। राजकीय वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालयों में प्रयोग रूप में वरिष्ठ स्तर अर्थात ग्यारहवीं व बारहवीं कक्षाओ के विधार्थियों को उनकी रूचि अनुसार व्यावसायिक शिक्षा प्रदान करना। इस दो साल के अध्ययन अर्थात वरिष्ठ स्तर (ग्यारहवीं, बारहवीं) पर विद्यार्थी कोई भी विषय चुन सकता हैं जो अमुक विद्यालय में पढ़ाए जाते हों। एक विद्यालय अधिकतम चार व्यावसायिक कोर्स चला सकता है। मुख्यत: निम्न व्यावसायिक कोर्स व्यावसायिक शिक्षा में पढ़ाए जा सकते हैं–

1.	कृषि सकाय	– 30
2	व्यापार एवं वाणिज्य संकाय	– 18
3.	इंजीनियरिंग एवं तकनीकी संकाय	– 59
4.	स्वास्थ्य एवं चिकित्सा संबंधी सेवाएं	– 15
5	गृह-विज्ञान संकाय	– 22
6	मानविकी एवं अन्य	– 7
	कुल संकाय	= 151

हमारा यहां विवेचना का विषय है कि उपरोक्त व्यावसायिक विषयों में किसी एक में शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात विधार्थी-गण क्या करते हैं ? विधालयों से निकल कर उनका भविष्य क्या होता है ?

यह जानने के लिए हमें प्रकाश डालना होगा उनके व्यावसायिक विषयों पर, उनकी व्यावसायिक शिक्षा पद्धति पर।

विधालयों में वरिष्ठ स्तर पर विधार्थी पॉच विषय पढ़ते हैं -चाहे वे विज्ञान के छात्र हों, कामर्स के छात्र हो या मानविकी के, व्यावसायिक-शिक्षा में विधार्थी को पाँच विषय चुनने होते हैं। तीन विषय व्यावसायिक शिक्षा संबंधी तथा दो अन्य विषय। इन दो विषयों में से एक भाषा का होना अनिवार्य हैं क्योकि वरिष्ठ स्तर पर प्रत्येक क्षेत्र के विद्यार्थियों को एक भाषा पढ़ना अनिवार्य है। यदि हम स्टेनोग्राफी व्यावसायिक विषय का उदाहरण लें तो व्यावसायिक-शिक्षा के विद्यार्थी इस ढंग से पाँच विषय ले सकते हैं –

(क) तीन विषय व्यावसाकि शिक्षा विशेष के -

(1) शार्टहैंड

(2) टाइपिंग

(3) ऑफिस मैनेजमैण्ट

(ख) एक सामान्य विषय

(4) राजनीति-विज्ञान/ अर्थशास्त्र/ इतिहास आदि में से कोई एक विषय

(5) हिंदी/ अंग्रेजी/ अन्य कोई प्रादेशिक भाषा जिसको भाषा का दर्जा मिला हो/ (संस्कृत

को छोड़ कर क्योंकि अब सस्कृत को भाषा नहीं सामान्य विषय मान लिया गया हैं)।

उपरोक्त विवेचन से जो बात सामने आयी, वह है कि व्यावसायिक-शिक्षा वाले विद्यार्थी के पास तीन व्यावसायिक विषयों के अतिरिक्त केवल एक ही विषय सामान्य-स्तर का रहा तथा एक रही भाषा।

अब हम आते हैं अपने मुख्य विषय पर-विद्यालय तक व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त विधार्थी की दशा-विद्यालय से निकलने के पश्चात

आज के बेरोजगारी के समय में शिक्षा-विदों ने व्यावसायिक शिक्षा इसलिए प्रारम्भ की थी कि विद्यार्थी ग्यारहवीं-बारहवीं पास करने के पश्चात् व्यावसायिक जानकारी प्राप्त कर रोजगार प्राप्त कर लेगें। दिल्ली के कुछ विद्यालयों को आधार बनाकर एक अध्ययन किया गया, जिसका विषय था विद्यालय तक व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् ये विधार्थी क्या करते हैं तथा क्या करना चाहते हैं। ये अध्ययन चार प्रश्नों को लेकर किया गया -

(क) क्या हमारे इस वर्ग के विद्यार्थी रोजगार पाते हैं?

(ख) क्या उनको आगे व्यावसायिक-कालेजों में प्रवेश मिल जाता हैं ?

(ग) क्या वे अपनी पढ़ाई आगे जारी रखना चाहते हैं ?

(घ) क्या अन्य कालेजों में उन्हें प्रवेश प्राप्त हो जाता है ?

इनका विस्तार से अवलोकन करेंगे -

विद्यालय स्तर पर व्यावसायिक-शिक्षा प्राप्त करने वाले बच्चों क्या रोजगार पाते हैं ?

विभिन्न विद्यालयों में प्रतिवर्ष हजारों विद्यार्थी व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त करते हैं। विभिन्न व्यावसायिक-विषयों में वे पूर्णत: पारंगत हो जाते हैं, ऐसा तो नहीं कहा जा सकता किंतु फिर भी अपने विषयों का उन्हें आधारभूत ज्ञान तो हो ही जाता है। चार व्यावसायिक विषयों को सर्वेक्षण का आधार बनाया -

1. आफिस सेक्रेटरीशिप -(अंग्रेजी)
2. आफिस सेक्रेटरीशिप - (हिंदी)
3 ब्यूटी क्लचर
4. जी.आई. सी.

टाइपिंग (टंकण), शार्टहैंण्ड (आशुलिपि) हिंदी अंग्रेजी कोर्स किए लगभग दो सौ विद्यार्थियों में से केवल पाँच विद्यार्थियों को नौकरी मिली, वह भी प्राइवेट कम्पनियों में। एक लड़की को सरकारी नौकरी मिली, किंतु उसको दसवीं पास करने के पश्चात् ही नौकरी मिल गई थी। हरिजन होने के कारण ''सुरक्षित कोटे'' से जिसे उसने बारहवीं पास होने पर ही स्वीकार किया। व्यावसायिक शिक्षा से इसका कोई संबंध नहीं था ब्यूटी-क्लचर कोर्स की लगभग 36 लड़कियों में से केवल तीन ने किसी प्राइवेट में ब्यूटी पारलर में पार्ट-टाइम नौकरी कर ली तथा दो लड़कियां घरों में जा-जा कर महिलाओं की सौन्दर्य-वृद्धि सेवा करती हैं।

एक अन्य विशेष महत्वपूर्ण कोर्स जी.आई.सी. में ''मेरिट'' के अनुसार प्रवेश होता हैं। बारहवीं पास करने के पश्चात् इस विषय के छात्रों से एक फार्म भरवाया जाता है। जो जी.आई.सी. की ट्रेनिंग में प्रवेश पाने की परीक्षा के लिए होता हैं। इस प्रवेश-परीक्षा में पास होने पर उनको ए ए ओ की ट्रेनिंग में प्रवेश मिल जाता हैं। यह एक अच्छा कोर्स हैं। मेधावी छात्रो को नौकरियां मिलने का एक अच्छा अवसर हैं। इसकी सीट्स कम रखनी चाहिए ताकि भविष्य में आने वाले विद्यार्थी भी रोजगार प्राप्त कर सकें।

नोट

सत्र 1991-92 में जी.आई.सी. के विषय में कम्पनी ज्यादा रुचि नहीं ले रही । इससे पूर्व के सत्रों के विद्यार्थियो को पढ़ाने के लिए कम्पनी ए.ए ओ को भेजती थी । इस वर्ष अभी नवंबर 1991 तक तो कई विद्यालयों में जी.आई.सी का पूर्ण रुप से अध्यापन नहीं हो रहा हैं । भले ही दिल्ली -प्रशासन ने विभिन्न कामर्स पी .जी. टी स. को जी आई.सी अध्यापन का एक-एक महीने का प्रशिक्षण ग्यारहवीं-बारहवीं कक्षा पढाने के लिए दिया है । एक महीने के प्रशिक्षण के पश्चात् ये स्नातकोत्तर अध्यापक विद्यार्थियों से न्याय कर सकेंगे यह तो समय ही बताएगा ।

क्या व्यावसायिक कालेजों में प्रवेश मिल जाता है?

व्यावसायिक शिक्षा कॉलेज स्तर पर भी दी जाती हैं। जैसे वोकेशनल कालेज शेख सराय, दिल्ली । कुछ गिने चुने कालेज ये शिक्षा दे पाते हैं । इनमें भी मानविकी के विद्यार्थी या कभी कामर्स के विद्यार्थी प्रवेश प्राप्त कर लेते हैं । समस्त ऐसे छात्र जिन्होंने व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त की हैं । कुछ अन्य व्यावसायिक शिक्षा को कॉलेज के स्तर तक पढ़ना नहीं चाहते । टाइपिंग-शार्टहैड व ब्यूटी कल्चर को तो वे प्राइवेट कालेज आदि से सीखते रहते हैं । अनेक विद्यार्थी अपनी पढ़ाई आगे जारी रखना चाहते हैं ।

क्या वे अपनी पढ़ाई जारी रखना चाहते हैं ?

विद्यालय-स्तर तक व्यावसायिक-शिक्षा प्राप्त विद्यार्थी अपनी पढ़ाई आगे जारी रखना चाहते हैं या नहीं । इस पहलू का हमने तीन कोणों से अध्ययन किया -

1. स्वयं विद्यार्थी क्या चाहते हैं ।
2. अभिभावक-गण बच्चों से क्या आशा रखते हैं ।
3. समाज का इस विषय में क्या दृष्टिकोण हैं ।

विद्यार्थी

30% विद्यार्थी ऐसे हैं जो नौकरी करना चाहते हैं, आगे नहीं पढ़ना चाहते । 50% ऐसे हैं जो नौकरी करना भी चाहते है तथा साथ-साथ पढ़ना भी चाहते हैं । 20% ऐसे विद्यार्थी हैं जो अवश्य ही आगे पढ़ना चाहते हैं ।

अभिभावक

अनेक अभिभावको विशेषकर लड़कियों के अभि-भावकों से-बातचीत के पश्चात् पता लगा कि वे नौकरी के साथ-साथ पढ़ाई भी जारी रखना चाहते हैं ताकि लड़की को घर-वर अच्छा मिल सके तथा समाज में लडकी का एक सुनियोजित स्थान हो। लड़कों के अभिभावक अधिकांशत: उसी व्यवसाय में पूर्णता चाहते हैं । कुछ अपने बच्चों को आगे भी पढ़ाना चाहते हैं ।

समाज में आजकल बारहवीं पास होना ज्यादा महत्व नही रखता । लड़का या लड़की कम से कम बी.ए. तो हो । निर्धन वर्ग के बच्चे भी नौकरी के साथ-साथ आगे पढ़ना चाहते हैं ताकि वे समाज में सम्मान प्राप्त कर सकें । सारांश रुप में विद्यालय के पश्चात भी अध्ययन अपेक्षित है ।

क्या कॉलेजों में उन्हें प्रवेश प्राप्त हो जाता हैं ?

निष्पक्ष रुप से इस पहलू पर विचार किया जाय तो उन विद्यार्थियों की दशा देखकर कलेजा मूँह को आता हैं जो आगे पढ़ना चाहते हैं । अनेक कॉलेजों के धक्के खाने के पश्चात् भी उनको कहीं प्रवेश नहीं मिल पाता । यह कोई मामूली समस्या नही हैं । पूछ कर देखिए रो पडते हैं बेचारे ।

यह समस्या उठती हैं उनके द्वारा पढ़े गए विषयों से । उनको बी.ए (पास कोर्स) या बी.ए आनर्स में ही प्रवेश मिल सकता है, क्न्तिु इनके लिए भी उनके पास पूरे विषय नहीं होते । यदि किसी एक विषय में अधिक

नंबर हैं तो "आनर्स" कोर्स जाएगा। "पास-कोर्स" में प्रवेश पाने के लिए कम से कम दो विषय सामाजिक विज्ञान के हों जैसे – अर्थशास्त्र और राजनीतिशास्त्र या इतिहास या अर्थशास्त्र आदि तथा एक भाषा।

जैसाकि ऊपर बताया जा चुका है ये विद्यार्थी मात्र एक ही सामान्य विषय पढ़ते हैं जिससे इनको बी.ए. में दाखिला नहीं मिल पाता।

इस समस्या पर दिल्ली के कुछ व्यावसायिक विद्यालयों के प्रधानाचार्यो से बात की गई। उनके दो जवाब थे –

1. हम तो दिल्ली प्रशासन की नीति को कार्य रुप दे रहे हैं।
2. व्यावसायिक शिक्षा में बच्चे कुछ व्यवसाय-विशेष की शिक्षा प्राप्त करने आते हैं। उनको आगे पढ़ना ही नहीं होता। अपने व्यवसाय में ही पारंगत होना चाहिए। कॉलेजों मं कम से कम विद्यार्थी जाएं इसीलिए ये कोर्स खोले गए हैं। कॉलेजो में कम भीड़ करना भी इस व्यावसायिक शिक्षा का एक ध्येय है।

दोनों के उत्तर अपनी-अपनी जगह ठीक थे। किंतु क्या इनसे उन परिस्थितियों का समाधान मिल जाता हैं जो हमने "ग" भाग (छात्रों की आगे पढ़ने की इच्छा) में अनुभव की थी? क्या वास्तविक समाज में हमारे छात्र व अभिभावक इन दलीलों को स्वीकारते हैं? यदि विद्यार्थी आगे पढ़ाई जारी रखना चाहते हैं तो क्या उनकी बात की अवहेलना की जानी चाहिए? या उन्हें समाज में धक्के खाने के लिए छोड़ देना चाहिए?

यह नीति बच्चों, अभिभावकों व समाज पर भार न बने ऐसा कुछ करना चाहिए। यदि विद्यार्थी व्यावसायिक शिक्षा के साथ-साथ आगे भी पढ़ना चाहें तो हमें इस बात की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। हमें इस नीति में कुछ संशोधन करना चाहिए ताकि हमारे बच्चों का विकास थम कर न रह जाए। बच्चों को नीति के अनुसार नहीं ढलना है नीति को बच्चों के अनुसार ढलना हैं।

सुझाव

इसके लिए सुझाव इस प्रकार दिया जा सकता हैं –

व्यावसायिक-शिक्षा में विद्यार्थी एक सामान्य विषय के स्थान पर दो सामान्य विषय पढ़े। अर्थात् ये विद्यार्थी छः विषय पढ़े –

3. व्यावसायिक विषय
2. सामान्य विषय जैसे-राजनीति शास्त्र, अर्थशास्त्र, इतिहास आदि में से कोई दो।
1. भाषा – हिंदी या अंग्रेजी या अन्य
2. ऐसा करने से विषयों की समस्या नहीं होगी और उनकी आगे पढ़ाई जारी रखने की इच्छा पूरी हो सकेगी।

इस योजना को कार्यान्वित करने के लिए विद्यालय की समय-सारिणी को पूर्ण रुप से परिवर्तित करना होगा। सामान्यतः विद्यालयों में आठ क्लासों की समय-सारिणी चलती हैं, जिसमें पॉच विषय पढ़ाये जाते हैं। छः विषय पढ़ाने हेतु जबकि सारिणी को नौ कालांशों में विभाजन करना होगा और कुछ छोटे भी करने होंगें।

हम यहाँ एक ऐसा विद्यालय लेते हैं जो दिल्ली प्रशासन के अधीन हैं। शीतकालीन समय-प्रातः 7.30 बजे से दोपहर 12.45 तक (प्रथम पाली)

दिल्ली प्रशासन द्वारा संचालित विद्यालयों में पढ़ाए जाने वाले विषयों को चार क्षेत्रो मे विभाजित किया जाता हैं –

- ❑ छः विषय
- ❑ लाइब्रेरी
- ❑ खेल-कूद
- ❑ सामान्य-अध्ययन

7.30 से 12.45 तक की अवधि की हमें इन चारों क्षेत्रें के अनुसार विभाजित करना होगा -

एक दिन में नौ कालांश

पूरे सप्ताह में 9 X 6 = 54 कालांश

इन 54 कालांशो को हम निम्न प्रकार विभाजित कर सकते हैं -

7.30–7 55	- प्रार्थना सभा (25 मिनट)
7 55–8 25	- पहला कालांश (30 मिनट)
8.25–8.55	- दूसरा कालांश (30 मिनट)
8.55–9.25	- तीसरा कालांश (30 मिनट)
9.25–9.55	- चौथा कालाश (30 मिनट)
9.55–10.25	-- पाँचवा कालांश (30 मिनट)
10 25–10.45	- अर्धावकाश (20 मिनट)
10.45–11.15	- छठा कालांश (30 मिनट)
11.15–11.45	- सातवां कालांश (30 मिनट)
11.45–12 15	- आठवां कालांश (30 मिनट)
12.15–12.45	- नौवा कालांश (30 मिनट)

विषय अनुसार विभाजन

- ❑ व्यावसायिक विषय स्टेनोग्राफी
- ❑ सामान्य विषयक: अर्थशास्त्र (क)
  राजनीति विज्ञान(ख)
- ❑ भाषा
- ❑ लाइब्रेरी
- ❑ खेलकूद
- ❑ सामान्य अध्ययन

उपरोक्त समस्त अध्ययन को निम्न प्रकार से कालांशो में विभाजित करना होगा -

टाइपिंग	- 8 कालांश
शार्टहैंड	- 8 कालांश
आफिस मैनेजमेण्ट	-- 8 कालांश
राजनीति विज्ञान	- 8 कालांश
अर्थशास्त्र	- 8 कालांश
अंग्रेजी/हिंदी	- 8 कालांश
लाइब्रेरी	- 2 कालांश
खेलकूद	- 2 कालांश
सामान्य अध्ययन	- 2 कालांश
कुल कालांश =	54

इस प्रकार 54 कालांशों में समस्त विषय पढ़ाए जा सकते हैं।

आलोचनाएं

इस सुझाव की जो आलोचनाएं हो सकती हैं, उन सबका विवरण समाधान सहित इस प्रकार हैं -

- ❑ विद्यार्थी अपने स्तर पर अतिरिक्त विषय लेकर परीक्षा दे सकता है।

निवारण

कोई-कोई बच्चे ऐसा करते तो हैं किंतु उनकी सफलता का प्रतिशत कम ही होता है। उनके घरों मे भी अतिरिक्त पढ़ाई के लिए अनुकूल वातावरण नहीं होता।

- ❑ विश्वविद्यालयों में पहले ही अधिक दबाव है। इस दबाव को कम करने के लिए ही शिक्षा को व्यावसायिक किया गया है।

निवारण

अध्ययन से विदित होता है कि इनमें से लगभग 20% बच्चे ही नियमित रुप से शिक्षा जारी रखना चाहते हैं। शेष प्राइवेट रुप से ही उच्च-शिक्षा प्राप्त करना चाहते हैं। नॉन-कॉलजेट फार वुमैन दिल्ली में लगने वाली ये कक्षाएं लड़कियों के लिए एक अच्छा साधन हैं। पत्राचार से भी विद्यार्थी अपनी शिक्षा जारी रख सकते हैं।

- ❑ शिक्षकगण आपत्ति कर सकते हैं कि 30 मिनट का कालांश छोटा हैं उसमें विषय पूरा नहीं हो सकता।

निवारण

सप्ताह में दो संयुक्त-कालांश दिए गए अर्थात् कोई दो पीरियड इकटठे 30 +30 मिनट = 60 मिनट के कर दिए जाए जिसमें विषय को समुचित ढंग से पढ़ाया जा सकता हैं ।

- अन्य आपत्ति प्रशासनिक हो सकती हैं । प्रशासन को इस विद्यालय के लिए एक शिक्षक की नियुक्ति अधिक करनी पड़ेगी ।

निवारण

व्यावसायिक शिक्षा नीति को सुचारु रुप से लागू करने के लिए, विद्यार्थियों का भविष्य उज्वल करने के लिए प्रशासन को आपत्ति नहीं करनी चाहिए। फिर ये प्रावधान मात्र व्यावसायिक विद्यालयों के लिए ही हैं ।

- विद्यालयों में व्यावसायिक शिक्षा के अतिरिक्त अन्य विषय भी पढ़ाए जाते हैं जैसे - विज्ञान, कामर्स व मानविकी तो क्या नौ कालांश की समय-सारिणी उनमें भी चले जहाँ कि विषय मात्र पांच ही हों ।

निवारण

इस संबंध में विद्यालय में समस्त सप्ताह का प्रथम कालांश समस्त-विषयों में बाँट दिया जाए जिसमे अध्यापक-गण पढ़ाई में कमजोर छात्रों पर विशेष बल दें। अन्य समय-सारिणी आठ कालांशो के अनुसार ही विभाजित कर ली जाए जैसे अन्य विद्यालयों में होती हैं।

समस्त अवलोकन से यह ज्ञात होता हैं कि यदि व्यावसायिक-शिक्षा को सफल बनाना हैं तो इस शिक्षा के विषय-क्षेत्र में पूर्ण अध्ययन करना चाहिए। विद्यार्थी, अभिभावकों, शिक्षकों से विचार-विमर्श करना चाहिए। यह शिक्षा-नीति एक अच्छी नीति हैं इसको सफल बनाकर हम समाज की कुछ सेवा कर सकते हैं ।

❑❑

17/220, लोधी कालोनी,
नई दिल्ली

शैक्षणिक यात्रा छात्रों के संग

❑ डा. विनोद गुप्ता

विद्यार्थियों को केवल किताबी ज्ञान ही पर्याप्त नहीं होता वरन् उन्हें बाहरी दुनिया से परिचित कराना भी शिक्षकों का कर्तव्य होना चाहिए । कला, इतिहास, साहित्य, संस्कृति, विज्ञान आदि विषयों के लिए उन्हें स्कूल की चार दीवारी से बाहर निकालने की जरूरत होती है । इसी उद्देश्य से शैक्षणिक यात्राएं की जाती हैं ताकि जहां एक ओर वे उस विषय को ठीक से समझ सकें वहीं दूसरी ओर वे उन एतिहासिक व महत्वपूर्ण स्थलों को देख सकें। आमतौर पर विद्यार्थियों की शैक्षणिक यात्रा के साथ मार्ग दर्शन हेतु शिक्षकों का एक दल भी जाता है लेकिन छात्र बड़े ही चंचल प्रकृति के होते हैं, उन्हें यात्रा के दौरान नियंत्रित एवं अनुशासित रखना अति आवश्यक है । यदि शैक्षणिक यात्रा रेलगाड़ी के माध्यम से है, तब तो विशेष सावधानी एवं सर्तकता बरतने की जरूरत है।

छुट्टियो में छात्र छात्राओं को साथ लेकर शैक्षिक यात्रा करने वाले शिक्षकों को को रेल यात्रा के दौरान अक्सर काफी कटु अनुभव होते हैं जिससे कि सारा आनंद ही समाप्त हो जाता है और इस वजह से वे भविष्य में छात्रों के साथ रेल के सफर से ही तौबा कर लेते हैं । लेकिन छात्रों के साथ रेलगाड़ी से यात्रा करते समय कुछ बातों का ध्यान रखा जाए तो यह सफर आपके व आपके छात्रों के लिए एक सुखद स्मृति बन सकता है ।

छात्रो के साथ रेल का सफर करने के लिए ऐसी गाड़ी चुनाव करना चाहिए जो गंतव्य स्थान तक सीधी चलती हो । भले ही वह अधिक समय क्यों न लेती हो । क्योंकि ऐसा करने से आप बार-बार रेलगाड़ी बदलने की परेशानी से बच जाएंगे । बच्चों के साथ बार-बार रेल बदलने में होने वाली परेशानी हर भुक्तभोगी अच्छी तरह समझता है ।

यदि दुर्भाग्यवश गंतव्य स्थान तक कोई सीधी रेलगाड़ी नहीं है तो आगे के कनेक्शनों के बारे में पहले से ही अच्छी तरह पता करने चलना चाहिए, अन्यथा भारी परेशानियों का सामना करना पड़ सकता है ।

बच्चों के साथ यात्रा करने से पहले रेलों के बारे में आवश्यक जानकारी प्राप्त कर लेनी चाहिए । समान्य रेल सेवाओं के अलावा विशेष अवसरों पर प्रमुख मार्गों पर विशेष रेलगाड़ियाँ चलाई जाती हैं । जैसे गर्मी की छुट्टियों, जिसकी सूचना समाचार पत्र आदि के माध्यम से भी दी जाती है । दूसरे रेलगाड़ियों में छात्रों के साथ होने वाली परेशानियों से बचने के लिए पहले से आरक्षण कर लेना चाहिए । यदि आप समय पर आरक्षण करा लेते हैं तो सममझ लीजिए कि छात्रों को लेकर होने वाली आधी परेशानियों से आप मुक्त हो जाएंगे । कुछ

परिस्थितियों में वापसी के लिए भी पहले से आरक्षण की सुविधा प्रदान की गई है ।

छात्रों के साथ यात्रा करते समय उनकी जरूरतों के मुताबिक सामान रख लेना चाहिए। जल्दबाजी में उनकी जरूरत का कोई आवश्यक समान न छूट जाए, इसके लिए बेहतर होगा कि आप यात्रा के एक दिन पूर्व ही सारा सामान व्यवस्थित ढंग से पैक करवा लें और सुनिश्चित कर लें कि सभी जरूरी सामान रख लिए गए हैं ।

छात्रों के साथ यात्रा करते समय जो सामान बहुत जरूरी है उसमें उनका नाश्ता, भोजन, और पानी प्रमुख हैं। कुछ खाद्य सामिग्री रेलवे स्टेशनों से खरीद कर देने की बजाय अच्छा होगा घर से बनाकर ले जाएं। चूकि गर्मी के दिनों में बार-बार प्यास लगती है अत: पानी साथ लेकर चलना चाहिए ।

छोटी मोटी बिमारियों के लिए दवाएं साथ रखनी चाहिए जैसे उल्टी या दस्त बंद होने की दवा। बेहतर होगा कि प्राथमिक चिकित्सा का सामान भी आप साथ रखें क्योंकि छात्रों की उछलकूद की वजह से उन्हें इसकी आवश्यकता पड़ सकती है ।

यदि छात्र छोटे है और अपना नाम, पता आदि बताने में असमर्थ है तो उनके कपड़ों की जेब में नाम व पते की चिट अवश्य रख देनी चाहिए। ताकि यदि दुर्भाग्यवश यात्रा के दौरान वह बिछुड़ जाएं तो पाने वाला व्यक्ति उसे आप तक पहुंचा सके। ऐसी चिट रखना उन बच्चों के लिए तो नितांत आवश्यक है जो मंदबुद्धि के हैं या गूगे-बहरे हैं ।

गाड़ी के छूट जाने से निराशा हाथ न लगे, इसके लिए जरूरी है कि गाड़ी के स्टेशन पहुँचने के कम से कम आधा घंटा पहले आप छात्रों सहित प्लेटफार्म पर पहुंच जाएं। यह पता लगा लीजिए कि आपकी टीम का आरक्षण किस नंबर वाले डिब्बे में है तथा आपके लिए निर्धारित सीट नंबर क्या है। यह भी पता लगा लीजिए कि वह डिब्बा प्लेटफार्म पर किस जगह आएगा ताकि आप उसके नजदीक सामान आदि रख कर इंतजार कर सकें ।

रेल के आने में यदि कुछ समय बाकी है तो अपनी बातचीत में इतने मशगूल न हो जाएं कि बच्चों का ध्यान ही न रहें। अन्यथा छात्र घूमते-घूमते इधर-उधर जा सकते है अथवा अन्य किसी गाड़ी में गलती से बैठ सकते है। स्टेसनों पर गाड़ी आने के समय काफी भीड़भाड़ रहती है अत: अपने छात्रों का ध्यान रखना चाहिए अन्यथा होगा यह कि आपकी गाड़ी तो आ जाएगी लेकिन छात्र वहां नहीं होंगे और मजबूरन आपको अपनी यात्रा स्थगित करनी पड़ेगी। इसके लिए छात्रों को भी समझाएं कि वे इधर-उधर न जाएं ।

छात्रों के साथ यात्रा करते समय जहां तक संभव हो कम से कम सामान लेकर यात्रा करनी चाहिए अन्यथा आप सामान संभालेगे या बच्चों को ? अधिक सामान होने से छोत्रों के साथ यात्रा करना सुखद नहीं हो सकता। यदि अधिक सामान ले जाना अनिवार्य ही हो तो उसे लगेज या भारवाही में बुक करा देना चाहिए ।

छात्रों को गाड़ी में बैठाते ही अपना डिब्बा नंबर याद करा देना चाहिए ताकि यदि स्टेशन पर वे आपसे अलग हो जाएं तो किसी आगले स्टेशन पर वे आपको ढूंढ सकें। उन्हें यह समझाया जाना चाहिए कि यदि किसी वजह से वे अपने डिब्बे को नहीं पकड़ सके तो प्लेटफार्म खड़े रहने की बजाय जो भी नजदीक का डिब्बा हो उसमें चढ़ चाना चाहिए ताकि गाड़ी छूट न जाए ।

छात्रों को लेकर यात्रा करते समय इस बात का ध्यान

रखना चाहिए कि उन्हें स्वर्ण या अन्य कीमती गहने पहना कर यात्रा न करें अन्यथा इन आभूषणों की खातिर आपके छात्रों की जान जोखिम में पड़ सकती है। गुंडे लोग आभूषणों के लालच में हत्या तक कर सकते हैं।

रेल यात्रा के दौरान चाहे दिन का समय हो या रात का, आपको हर क्षण सचेत रहना चाहिए। रेल में कई उठाईगीर भी चलते है जो मौका मिलते ही सामान को उठाकर चंपत हो जाते हैं। इसलिए यात्रा के दौरान निश्चिंत होकर न सो जाएं। यदि जान-माल का खतरा दिखे तो तुरंत जंजीर खींच कर गाड़ी को रुकवाए।

चलती रेलगाड़ी में छात्रों का विशेष ध्यान रखना चाहिए। छात्र अक्सर खिड़की से बाहर अपनी गर्दन या हाथ निकाल देते हैं जिससे कभी भी दुर्घटना हो सकती है। अत: उन्हें सख्त हिदायत दें कि वे गाड़ी के बाहर न झांके और न ही हाथ बाहर निकालें।

बच्चे हर स्टेशन पर गाड़ी से नीचे उतरने की जिद करते हैं लेकिन उनकी यह जिद पूरी करना खतरनाक सिद्ध हो सकता है क्योंकि अधिकांश स्टेशनों पर गाड़ी कुल दो या तीन मिनट रुकती है, ऐसे में उनका गाड़ी में पुन: चढ़ पाना काफी मुश्किल होता है और घबराहट में वे चढ़ते समय गिर कर गाड़ी के नीचे आ सकते हैं। यदि किसी स्टेशन पर उन्हें गाड़ी से उतरना हो तो यह सुनिश्चित कर लीजिए कि गाड़ी कितनी देर रुकेगी।

छात्रों को रेल की पटरियों पर से जाने से रोकें। बहुत से लोग प्लेटफार्म बदलने के लिए पुल पर से जाने के बजाय रेल की पटरी पर से गुजरते हैं जो कि एक दंडनीय अपराध ही नहीं है बल्कि इससे गंभीर दुर्घटना भी हो सकती है।

चलती गाड़ी में बच्चों की उछलकूद पर नियंत्रण रखें क्योंकि उनकी उछलकूद से अन्य यात्रियों को भी परेशानी हो सकती है। कई बार उधमी छात्रों के कारण चलती रेल में बड़ों-बड़ों से झगड़ा हो जाता है। अत: यदि अपने छात्रों की किसी गलत हरकत से सामने वाले को कोई कष्ट पहुँचा हो तो क्षमा मांग लेने में ही भलाई है।

बच्चो को समझाएं कि वे चलते पखों के साथ छेड़छाड न करें अन्यथा उनकी उंगलियां उसमें आकर क्षतिग्रस्त हो सकती हैं।

गंतव्य स्टेशन आने के दस-पंद्रह मिनट पहले ही उतरने हेतु प्रारम्भिक तैयारी कर लेनी चाहिए। सामान को एक जगह व्यवस्थित रख लेना चाहिए ताकि स्टेशन आने पर आप सरलता से छात्रों को उतार सकें।

16, सुदामानगर एक्सटेंशन-2
राटेकरी, मन्दसौर

विचार

शिक्षा में इतनी बदहाली क्यों ?

(कौन जिम्मेदार है, रेडीमेड स्टुडेन्ट का?)

❑ सुरेश चन्द्र मिश्र

आज देश का प्रत्येक नागरिक 'स्टूडेण्ट' नामक अदद शब्द से बुरी तरह भयाक्रान्त हो उठा है। प्रत्येक की शिकायत है कि उस शिक्षा की क्या वास्तविकता है, जो लूट-पाट, आगजनी , दंगा-फसाद, चोरी-डकैती, हत्या, उपद्रवी, जुआरी, नसेड़ी जैसे संस्कारों से लिपटी छात्र-शक्ति दे रही हो। कुछ दिन पूर्व यह हालत सिर्फ महाविद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों तक ही सीमित थी। किन्तु, आज यह विद्यालयों मे भी फैलने लगी है। इस देश की विडम्बना है कि सबसे प्रतिभाशाली कर्मचारी वह समझा जाता है, जो अपने काम पर कम से कम उपस्थित रहता है और जो अपने क्षेत्र में कम से कम जाता है, वही सबसे सफल नेता समझा जाता है। सबसे कुशल अभियन्ता वह है, जो अपने कार्य क्षेत्र का दौरा सबसे कम करता हो और अगर सबसे सफल 'स्टूडेन्ट' वह समझा जाए, जो कम से कम अपनी कक्षाओं में उपस्थित रहता हो, तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं। हमने कभी सोचा है कि हमारे बच्चे सातवीं-आठवीं कक्षा तक आते- आते 'रेडीमेड स्टूडेंण्ट' कैसे बनते हैं ? कौन बनाता है, उन्हें 'रेडीमेड' ? जरा उस शिक्षक पर ध्यान दीजिए, जो इस 'स्टूडेण्ट' की नींव रखता है। शिक्षक नामक यह जीव उच्च-विद्यालय या इंटर, स्नातक उत्तीर्ण कर शिक्षण का लाइसेंस अर्थात 'ट्रेनिंग' पाकर रोजाना विद्यालय चल देता है। थोड़ी देर विद्यालय में चहलकदमी करने के उपरान्त वापस घर आ जाता है, स्पष्ट है कि इमारत नींव पर आधारित है। अर्थात जैसी नींव होगी, इमारत भी वैसी ही बनेगी। अब प्रश्न उठता है कि वह शिक्षक निरीह क्यों है ? वह प्रेरक क्यों नहीं बन पा रहा है, जबकि कुछ दिन पूर्व तक वह प्रेरक रहा है।

वर्ष में एक बार शिक्षक दिवस मात्र खाना-पूर्ति के लिए मनाया जाता है। शिक्षा का स्तर भी दिन-प्रतिदिन गिरता जा रहा है। आज के विद्यार्थी शिक्षा अर्जित करने के स्थान पर गैस-पेपर, गाईड, कुँजी जैसे 'शॉट कट' रास्ता अपनाकर एक बारगी लम्बा हाथ मारना चाहते हैं। छात्रो को 'शॉट कट' रास्ते पर धकेलने में शिक्षकों की भी अहम भूमिका रही है। 'ट्यूशन' के बिना आज की यह पीढ़ी तैयार ही नहीं हो पा रही है। उस पर कोचिंग संस्थान का जादू 'एक तो नीम अपने तीता उस पर करेला सवार' वाली उक्ति को चरितार्थ कर रही है। यही कारण है कि आज छात्र शिक्षा देने वाले मसीहा को पूजने के बजाए उन पर हमला कर रहे हैं। शिक्षा में अराजकता की चर्चा करना प्रत्येक व्यक्ति अपना अधिकार समझने लगा है। कुछ लोग छात्रो को दोषी ठहराते है तो कुछ

लोग अध्यापकों को। कुछ लोग अभिभावकों को तो कुछ लोग वैसे नेताओं को जो अपनी दलीय राजनीति शिक्षण संस्थाओं में घुसाते जा रहे है। निरंतर शिक्षक, अभिभावक एवं छात्र के बीच एक लम्बी खाई गहरी होती जा रही है। क्या इस खाई को पाटा जा सकता है? इसी पर आधारित त्रिकोणीय दृष्टिकोण प्रस्तुत स्थानीय परिचर्चा का विषय है।

अनुशासनहीनता शिक्षण में सबसे बड़ी बाधा है

केन्द्रीय विद्यालय, कोयलानगर, धनबाद मे कक्षा द्वादश-कला का एक मेधावी छात्र अनुशासन की गिरती हुई स्थिति से व्यथित होकर कहता है कि आज हम विद्यालय में पढ़ने की अपेक्षा अनुशासनहीनता सीखने आते हैं। पहले की अपेक्षा शिक्षक भी कक्षा अध्यापन में रुचि नहीं ले पा रहे हैं। एक तो ऊँची कक्षाओं में नियमित शिक्षकों की कमी और दूसरे उपलब्ध नियमित शिक्षक भी अध्यापन से विमुख होकर अपने शिक्षक मित्रों की टाँग खींचने में लगे रहते हैं ताकि विद्यालय में उनका वर्चस्व कायम रह सके। इतना ही नहीं, विद्यालय के अधिकांश अभिभावक बच्चो को इस विद्यालय में प्रवेश दिलाकर उन्हे विद्यालय के किसी शिक्षक के पास 'ट्यूशन' देकर ही अपने कर्त्तव्य का इति श्री समझ रहे हैं विद्यालय में भले ही एक घंटा भी अध्यापन न हो, पर ट्यूशन वाले बच्चे नियमित रूप से उत्तीर्ण किए जाते हैं। घटों खाली रहने से हमारे मित्रों में उदण्डता की प्रवृत्ति तो बढ़ती है, साथ-साथ विवेक की कमी के कारण वे उचित - अनुचित में भेद करना भूलकर विद्यालय से भाग कर कई गलत हरकतों में संलग्न हो रहे हैं। इस अनुशासनहीनता के लिए विद्यार्थी या शिक्षक या अभिभावक को ही दोषी नही ठहराया जा सकता है। जितने दोषी ये तीनों है उससे किसी भी दशा में कम दोषी सरकार या संस्था प्रबन्धक नहीं। क्योंकि, विगत दो वर्षो से कला संकाय तो खोल दिया गया है, किन्तु आज तक हमें भूगोल, अर्थशास्त्र और अँग्रेजी के नियमित स्नातकोत्तर शिक्षक नहीं मिल पाये हैं। इतना ही नहीं, सन् 1987-88 से इस विद्यालय की वरिष्ठ माध्यमिक कक्षाओ में विज्ञान की पढ़ाई तो हो रही है, किन्तु, आज तक हमें अनुभवी एवं नियमित स्नातकोत्तर शिक्षक, रसायन शास्त्र और भौतिकी में नहीं मिल पाये हैं। ऐसी दशा में हमें अनुत्तीर्ण होने के लिए भी पर्याप्त परिश्रम करना पड़ रहा है। एक तो संस्था हमें योग्य एवं अनुभवी नियमित शिक्षक नहीं दे पा रही है, उस पर विज्ञान के बाद कला संकाय खोलकर ही संतुष्ठ नहीं है। आगे भी वह वाणिज्य संकाय खोलने की बात सोच रही है। ऐसी परिस्थिति में हमारे अपरिपक्व मस्तिष्क के कारण अगर अनुशासनहीनता को प्रोत्साहन मिले और वह शिक्षण में बाधक सिद्ध हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

विद्यालय में पढ़ाई नहीं

दिल्ली पब्लिक स्कूल, धनबाद में कक्षा पांच की एक अबोध छात्रा का मानना है कि शिक्षा अब बेकार है। क्योंकि, विद्यालयों में तो अब पढ़ाई होती नहीं, उल्टे, नित्य नयी-नयी घोषणायें ड्रेस, किताब, कॉपी आदि के विषय में अभिभावक के नाम पत्र लिखकर की जाती हैं। आज 'प्रिंसिपल' का 'वर्थ डे' मनाना है तो कल विद्यालय में फलॉ 'फंक्सन' होने वाला है। रबर, पेंसिल से लेकर ड्रेस तक बाजार से दुगुने कीमत पर विद्यालय से ही खरीदना अनिवार्य है। इतना ही नहीं हमें अध्ययन के लिए कुंजी का सहारा लेना पड़ता है। कारण, हमारी शिक्षक -शिक्षिकायें नित्य - प्रति अपने-अपने नए फैशन में चूर रहकर कुँजी की ही बात 'तोता रटत' की तरह कक्षा में सुनाती है। ऐसी स्थिति में तो घर पर ही पढ़ा जाए और स्कूल मात्र परीक्षा के दौरान ही जाया

जाए। स्कूल में जहाँ शिक्षक, मन से नहीं पढ़ाते हैं, वही घर पर वे हमारे माता-पिता के सामने पूरी तनमयता से पढ़ाते हैं। अतएव, शिक्षको को चाहिए कि वे शिक्षा को श्रद्धा से देखें और उससे अधिकाधिक छात्रों को लाभान्वित करें। जब तक शिक्षक और छात्र शिक्षा को एक दूसरे का पूरक नहीं मानेंगे तब तक यह दूरी कम न होगी। शिक्षक का रास्ता अलग होगा और छात्र का अलग। बीच में शिक्षा बेचारी बैठकर रोएगी।

शिक्षा की स्थिति हास्यास्पद

एस.एस.एल.एन.टी महिला महाविद्यालय की स्नातक हिन्दी-प्रतिष्ठा की एक छात्रा कहती है कि आज शिक्षा की स्थिति बहुत ही हास्यास्पद है। शिक्षा के नाम पर शिक्षक कुछ पुस्तकों की घिसी-पिटी सामग्री परोस रहे हैं, जिससे छात्र डिग्री के तौर पर उसे पॉकेटों की शोभा बढ़ा रहे हैं। शिक्षा में गिरावट के कारण ही छात्र गैस, गाइड जैसे शॉटकट रास्तों का सहारा ले रहे है। कारण आज जितने भी शिक्षकों की बहाली होती है वे अपरिपक्व होते हैं जिसके कारण वे छात्रों को सही शिक्षा नहीं दे पाते हैं। तब छात्रों को भी छूट मिल जाती है। वे सोचते हैं, चलो पूरी किताब पढंने से तो अच्छा है कि इसका सारांश ही पढ़ लिया जाए। पहले के युग में छात्र अपने शिक्षकों को देख कर इसलिए छुप जाया करते थे कि वे गुरु को श्रद्धा के रूप में देखते थे। किन्तु, आज वे शिक्षकों को चन्द रूपयों के बदले शिक्षा देने वाले दुकानदार की तरह देखते हैं। शिक्षकों द्वारा कक्षाओं में छात्रों को कम समझाने के कारण ही य्यूशन की आ वश्यकता होती है। अगर शिक्षक कक्षाओं में ही छात्रों को अच्छी तरह से किसी विषय वस्तु को समझा दें तो टयूशन की आवश्यकता ही नहीं होगी। शिक्षकों और छात्रों की इस बढ़ती दूरी को अभिभावकों के हस्तक्षेप से ही कम किया जा सकता है।

शिक्षा मात्र औपचारिकता बन गयी है

जारंगडीह कोलियरी, धनबाद में रह रही स्नातक कला की एक छात्रा का कहना है कि आज की शिक्षा को ग्रहण करना मात्र औपचारिकता पूरी करना है। शिक्षा के क्षेत्र में आरक्षण को घुसाकर शिक्षा की कमर ही तोड़ दी गयी है। महाविद्यालयों में कम अंकों से उत्तीर्ण आरक्षित छात्रों का नामांकन अधिक अंकों से उत्तीर्ण प्रतिभाशाली छात्रों की तुलना में पहले होता है। बहुत से प्रतिभाशाली छात्र आज महाविद्यालयो में नामांकन न होने के कारण अपनी किस्मत को कोसते हैं। आखिर ऐसी शिक्षा की क्या आवश्यकता है ? आज शिक्षा के स्तर में आयी गिरावट के लिए सरकार, छात्र एवं शिक्षक तीनों दोषी हैं। सरकार शिक्षा नीति तो तैयार कर देती है, परन्तु उसकी बारीकियों का अध्ययन नहीं करती। फिर महाविद्यालय भी हड़ताल के कारण प्राय: बन्द ही रहते हैं। पढ़ाई अधूरी रह जाती है और परीक्षा सिर पर मँडराती रहती है। ऐसे मे छात्र शाँटकट रास्ता न अपनाएगें तो क्या करेंगे। अधूरी पढ़ाई को टयूशन के माध्यम से पूरा नहीं करेंगे तो क्या करेंगे और परीक्षा में लिखेंगे क्या ? धीरे - धीरे शिक्षकों एवं छात्रों का आकर्षण शिक्षा के प्रति कम होता जा रहा है। यही कारण है कि उन दोनों के बीच दूरी बढ़ती जा रही है। इस आकर्षण को बनाए रखने के लिए सरकार को उचित कदम उठाना होगा तभी यह संभव है।

सरकार ने शिक्षा को डुगडुगी बनाया है

भारतीय खानि विद्यापीठ के एक शोध छात्र का मानना है कि शिक्षा को सरकार ने डुगडुगी का रुप दे दिया है और शिक्षक इस डुगडुगी को बजाते हैं। भले ही इसकी आवाज छात्रों तक पहुँचे अथवा नहीं। कम वेतन पाने के कारण शिक्षकों की शिक्षा के प्रति उदासीनता बढ़ती जाती है। वे जो जानते भी हैं, उसे कक्षा

में बताना नहीं चाहते हैं। फलस्वरूप बाध्य होकर छात्रों को ट्यूशन के लिए उनके घर में जाना पड़ता है। ट्यूशन में अधिक न पढ़ने के कारण छात्रों को फिर शॉटकट रास्ते की आवश्यकता महसूस होती है और वे इसके लिए गैस गाईड आदि का सहारा लेना आरंभ कर देते हैं। आज के छात्र शिक्षकों को कक्षाओं तथा उनके घरों में मिलने के कारण उन्हें अपना दोस्त मान बैठते हैं जिससे उनके अन्दर से भय खत्म हो जाता है। पहले के छात्रों में शिक्षकों से कुछ जानने या सीखने की तमन्ना रहती थी। परन्तु आज वैसी लगन छात्रों में नहीं हैं जिससे शिक्षक और छात्र की दूरी बढ़ती जा रही है। इस दूरी को कम करने के लिए छात्रों को पहल करनी होगी।

शिक्षा का ढ़ोल ढ़ोने वाले अध्यापक

हरिजन प्राथमिक विद्यालय, हीरापुर, धनबाद के प्रधानाध्यापक कहते हैं कि सरकारी प्राथमिक विद्यालयो की दशा किसी से छिपी नहीं है। सरकार द्वारा उपलब्ध कराने वाली मुफ्त शिक्षा और शिक्षा में क्रांति लाने वाली बात नयी नहीं है। ऐसी कितनी ही योजनाओं पर प्रतिवर्ष लाखों रुपए खर्च किए जाते हैं। विडम्बना यह है कि जहॉ एक ओर अभिजात नेता, अधिकारी वर्ग नित यात्रा भत्ता, गाड़ी, पेट्रोल या अन्य योजनाओं को कागजी रुप देकर सारी रकम हड़प जाते हैं, वहीं दूसरी ओर महीनों से वेतन की आशा में टूटी-फूटी छतों, खंडहर हो चुकी इमारतों के बीच कठिनाई से गले से चीत्कार करनेवाला सर्वहारा वर्ग शिक्षक है, जिससे सरकार पढ़ाने की उम्मीद भले ही न रखती है, परन्तु चुनावों के दौरान पोलिंग बूथों की व्यवस्था, जनगणना, परिवार नियोजन आदि कार्यक्रमों से जुड़ी कुशल व्यवस्था की उम्मीद जरूर करती है। कुछ समय के लिए भी यदि इस शिक्षा का ढ़ोल ढ़ोने वाले शिक्षक की ओर अगर नजर दौड़ाई जाए तो सारी स्थिति सुलझ सकती है।

शिक्षकों में सर्जनात्मकता जरूरी

केन्द्रीय विद्यालय, एरिया गोविन्दपुर (सीनीडीह), धनबाद के एक कला-शिक्षक का मानना है कि प्रत्येक शिक्षक में शिक्षा को सुदृढ़ बनाने के लिए सर्जनात्मकता होनी चाहिए। उसका कहना है कि शिक्षा की गिरती साख के लिए दोषी सामाजिक परिवर्तन तथा तात्कालिक समाज है। आज के छात्र ज्ञानार्जन के लिए नहीं नौकरी के लिए पढ़ते हैं। शिक्षा की नीति बनाने वाला कोई और है तो दोषी हम शिक्षक ठहराये जाते हैं। शिक्षा के प्रति सरकार को गंभीर होना होगा। सरकार को चाहिए कि वह ईमानदारी पूर्वक शिक्षा प्रणाली को समझे, उसकी प्राथमिकता पर ध्यान दे। क्योंकि आज युग सत्रास काल से गुजर रहा है। शिक्षक जो देना चाहते हैं वह प्रणाली में है ही नहीं। छात्रों को वे सभी चीजें पढ़ाई जाती है, जिनसे उनके निजी जीवन में कोई वास्ता नहीं। आज सर्वविदित है कि हमारा देश एक कृषि प्रधान देश है और यहाँ की अस्सी प्रतिशत आबादी खेती पर निर्भर है। परन्तु, छात्रों के पाठ्यक्रम में कृषि के विकास के स्थान पर केलकुलस एवं त्रिकोणमिति शामिल है। शिक्षकों के लिए शिक्षा अब मात्र पेट भरने का धंधा रह गया है। छात्रों को शॉर्टकट रास्ते पर भेजने के लिए शिक्षक ही मुख्य रूप से दोषी है। क्योंकि, वे उन्हे परजीवी बना देते हैं। क्या दूध पीकर ताकत प्राप्त करना तथा दवा खाकर उत्तेजना पैदा करना समान हैं ? छात्रों द्वारा कुँजियों का प्रयोग करना शिक्षकों की कमजोरियों को उजागर करता है। पहले के शिक्षक समर्पण की भावना से छात्रों को पढ़ाते थे, परन्तु, आजकल इसे वे मात्र ड्यूटी समझते हैं। जहाँ भावना का अभाव होता है, वहाँ लिहाज कहाँ से उत्पन्न होगा ? छात्रों द्वारा शिक्षकों पर हमला किए जाने के लिए समाज और प्रशासन दोषी है। कुछ हद तक शिक्षक भी दोषी

हैं। प्रत्येक क्षेत्र में फैले भ्रष्टाचार को छात्र जब शैक्षणिक केन्द्रों में प्रवेश करते देखते हैं तो वे क्रोधित हो जाते हैं और शिक्षकों पर हमला बोल देते हैं। ऐसा प्राय: वे ही छात्र करते हैं जो शिक्षा से ज्यादा उदंडता में ही विश्वास रखते हैं। अभिभावकों के पास अपने बच्चों को पढ़ाने के लिए समय न मिल पाने के कारण वे ट्यूटर रख लेते हैं। ट्यूशन को बढ़ावा कक्षा में बढ़ती भीड़ भी देती है। क्योंकि सौ छात्रों के बीच शिक्षक स्वयं को असहाय समझने लगाता है। छात्र भी उनकी बातों पर ध्यान नहीं देते हैं। अमूमन उन्हें ट्यूशन की आवश्यकता पड़ जाती है। इन सभी से निजात पाने के लिए छात्र, शिक्षक, अभिभावक - तीनों को गंभीर होना पड़ेगा। शिक्षा पर अभिभावक की श्रद्धा और शिक्षक के सामंजस्य की प्रक्रिया से ही कोई भी छात्र बनता या बिगड़ता है। सामाजिक संगठन जो शिक्षा के प्रति उदासीन है, उन्हें इन मुद्दों को लेकर आंदोलन चलाना होगा तभी यह कारगर सिद्ध होगा।

शिक्षा में गिरावट के लिए टी.वी., टेप, वीडियो का हाथ

डी.ए.वी. गर्ल्स हाई स्कूल, कतरास, धनबाद की एक शिक्षिका की धारणा है कि शिक्षा का स्तर गिराने में टी.वी.टेप, वीडियो, रेडियो की मुख्य भूमिका रही है। आज के छात्र इन्ही चीजों पर विशेष ध्यान देते हैं। वर्तमान शिक्षा स्थिति से वह नाराज होकर कहतीं हैं कि स्कूलों और कॉलेजों में मात्र 'इम्पोर्टेन्ट' प्रश्नों पर ही ज्यादा ध्यान दिया जाता है। क्योंकि आज के शिक्षक भी सीमित अध्ययन के उपरान्त ही शिक्षा में प्रवेश करते हैं। वी.वी.आई. प्रश्न पढ़कर आनेवाला शिक्षक और क्या शिक्षा दे सकता है? अतएव, शिक्षा का स्तर सुधारने के लिए शिक्षकों तथा अभिभावकों को आगे आना होगा। दूसरे, शॉटकट रास्ता अपनाने वालों में पढ़ने से जी चुराने वाले छात्रों की संख्या अधिक होती है। जो छात्र पैंतालिस प्रतिशत ही अंक मुश्किल से ले पाते हैं, वे गैस, गाइड आदि का सहारा न लेंगे तो क्या करेंगे? पुस्तकों के साथ कुँजी देने में दुकानदारों का हाथ रहता है। इतना ही नहीं, बिहार टेस्ट बुक कमेटी की पाठ्यपुस्तकें तो बाजार में बिना कुँजी के साथ बिकती ही नहीं। पाठ्यपुस्तक खरीदना अनिवार्य है, तो उसकी कुँजी खरीदनी ही होगी। यदि पुस्तक की कीमत पांच रुपये है तो अन्य प्रकाशन से प्रकाशित उसकी कुंजी की कीमत पन्द्रह रुपये जो प्रत्येक छात्र को इन दिनों लेनी अनिवार्य है। तुर्रा इतने पर भी बाजार में उन पुस्तकों की कमी बतलाकर उनका ब्लैक किया जा रहा है। इस प्रकार, छात्रों का अर्थिक शोषण, पुस्तक व्यापारी एवं सरकार दोनों मिल कर कर रहे हैं। अत: शिक्षा आज पेशा बन कर उभरी है। ऐसी स्थिति पहले नहीं थी, छात्र आज मात्र नौकरी पाने के लिए शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं। शिक्षकों और छात्रों के बीच बढ़ती दूरी के लिए दोनों ही दोषी हैं। एक ओर चात्र शिक्षकों के पास प्रश्न किए जाने के डर से सामना करना नहीं चाहता है, तो वहीं दूसरी ओर शिक्षक भी छात्रों द्वारा कठिन प्रश्नों की कतार मे खड़ा करने के भय से सामने होना नहीं चाहते हैं। शिक्षा के प्रति अपने आप को समर्पित करने के पश्चात् ही यह दूरी कम हो सकती है।

शिक्षण मात्र रोटी कमाने का साधन है

प्राथमिक विद्यालय, बरमसिया, धनबाद में नियुक्त एक शिक्षिका कहती हैं कि उनके पति, जो स्वयं शिक्षक हैं, ने उन्हें एक गृहिणी से शिक्षिका इसलिए बनवाया ताकि उन्हें अपने पैरों पर खड़ कर रोटी कमाने के लायक बना सकें। यह शिक्षिका मानती हैं कि उन्हें ठीक से हिन्दी अथवा अंग्रेजी का ज्ञान तो नहीं है, फिर भी 'बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड' की मध्यमा परीक्षा में उनके

पति ने चोरी करवाकर उन्हें प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण करवाया और किसी प्रकार शिक्षण का प्रशिक्षण दिलवा कर काफी भागदौड़ एवं खर्च के बाद इस पद पर इस लिए नियुक्त करवाया ताकि वे आर्थिक रूप से सम्पन्न हो सकें। शिक्षण के सम्बन्ध में अपना अनुभव बयान करती हुई वे कहती हैं कि महीने में मुश्किल से दस दिन विद्यालय जाती हैं और वहाँ के अशिक्षित अभिभावकों द्वारा उपहार स्वरूप दी गई सब्जी आदि लेकर वापस आती हैं। इस पर लगभग दो हजार रूपए प्रतिमाह वेतन सरकार से उन्हें मिल जाता है, जो रोटी कमाने का साधन भी है। शिक्षा की वर्त्तमान स्थिति के संबंध में उनकी धारणा है कि आज हमारे समान अधिकांश शिक्षक एव शिक्षिकाएं हैं, जिनका शिक्षा की स्थिति से कोई संबध नहीं हैं। हमें तो बस, अपना, अपने परिवार का पेट भरना है, बाकी शिक्षा और भावी पीढ़ी से हमें क्या मतलब है ? हमने तो शिक्षण मात्र रोटी कमाने के साधन के रूप में अपनाया है। रही समाज में प्रतिष्ठा की बात, तो वह हमें गाँव के अनपढ़ बच्चों एवं उनके अभिभावकों से इतनी मिलती है, जितनी कि स्कूल, कॉलेज के शिक्षकों को भी न मिल पा रही है।

शिक्षकों का विश्वास हड़ताल में

डीनोबली स्कूल सिजुआ धनबाद के एक शिक्षक का मानना है कि शिक्षा आज निम्न स्तर पर है उस पर हमेशा हड़ताल कर शिक्षक और नीचे धकेल रहे हैं। छात्रों का भविष्य दाँव पर लगाकर शिक्षक हड़ताल में ही विश्वास रखते हैं। जबकि ऐसा कदापि नहीं होना चाहिए। शिक्षा का स्तर गिराने में शिक्षकों की भूमिका महत्वपूर्ण होती है, आज के शिक्षक पैसों के बल पर छात्रों की परीक्षाओं में अंक बढ़ाते हैं, उन्हें पास कराते हैं। ऐसा कर वे देश के भविष्य को दाव पर लगा रहे हैं। शिक्षण के क्षेत्र में बहुत-सारे शिक्षक पैसा और पैरवी के कारण प्रवेश कर जाते हैं, जिनके पास डिग्री तो होती है, पर ज्ञान नहीं रहता। वैसे शिक्षक छात्रों को क्या शिक्षा देंगे ? गेस, गाइड, ट्यूशन पर प्रतिबन्ध लगा देना चाहिए। इसके बदले विद्यालयों तथा महाविद्यालयों में कोचिंग क्लासेस चलानी चाहिए ताकि कुँजी द्वारा शिक्षक का उपहास न उड़ाया जा सके। आजकल शिक्षा को पैसा कमाने का जरिया बनाया जाने लगा है। इसे खत्म करने के लिए यदि शिक्षकों को अच्छा भुगतान किया जाए तो जाहिर है कि शिक्षक सस्ती शिक्षा पर नहीं उतरेंगे। शिक्षकों को चाहिए कि वे शिक्षा को समर्पण की भावना से लें, तभी शिक्षकों एवं छात्रों की दूरी कम हो सकती है।

शिक्षा की बदहाली के लिए सरकार दोषी

गोविन्दपुर कोलियरी क्षेत्र संख्या-3, भारत कोकिंग कोल लिमिटेड, धनबाद में उच्च पद पर कार्यरत एक अभिभावक का मानना है कि शिक्षा की बदहाली के लिए मुख्य रूप से सरकार दोषी है। वह नित्य नए पाठ्यक्रमों को इजाद करती है, उसकी खामियाँ या खुबियों को नहीं देखती। फलस्वरूप नयी शिक्षा नीति मात्र मखौल बन कर रह जाती है। शिक्षक जैसी शिक्षा दे रहे हैं, वैसी ही शिक्षा पा रहे हैं आज के विद्यार्थी। यानी शिक्षक छात्रों को पढ़ाने से जैसे जी चुराते हैं, ठीक उसी प्रकार छात्र उसे ग्रहण करने से ऊबते हैं और ऊब कर शांटकट रास्ता अपना लेते हैं। इस रास्ते में अवरोधक बनने की बजाय शिक्षक मार्गदर्शक बन जाते हैं। वे पुस्तकों में वी.वी. आई. अंकित करना प्रारंभ कर देते हैं। ऐसे में छात्र कुँजी नहीं अपनाएंगें तो क्या करेंगे। कक्षा में छात्रों की संख्या आवश्यकता से अधिक रहने के कारण शिक्षक सभी छात्रों पर अपना समय नहीं दे पाते जिसके परणिामस्वरूप अधिकांश छात्र उपेक्षित रह जाते हैं। ऐसे छात्र ट्यूशन नहीं पढेंगे तो क्या करेंगे? आप यह भी मानते हैं कि छात्रों को बनाने - बिगाड़ने में अभिभावक का भी हाथ रहता है। अभिभावक जैसी फसल बोयेंगे वैसी ही उपज काटेंगे भी। आज के अभिभावक को शिक्षकों एवं छात्रों के बीच बढ़ती दूरी

को कम करने के लिए पुल के रूप में कार्य करना पड़ेगा, तभी यह संभव है ।

शिक्षा खरीदने वाली वस्तु बन गई है

जोगीडीह कोलियरी धनबाद मे कार्यरत एक अभिभावक का कहना है कि आज शिक्षा चन्द रुपयों में खरीदने वाली वस्तु बन कर रह गई है । युवा स्कूली शिक्षा पाने के बाद अब वे शिक्षा को हेय दृष्टि से देखने लगे हैं, जिसके कारण बहुत से युवा आगे पढ़ने की बजाय व्यवसाय से जुड़ गये हैं, शिक्षा की स्थिति सुधारने के लिए अब सेना के ब्रिगेडियरों की आवश्यकता हो गयी है । शिक्षक अब पढ़ाने के बजाय अपना आर्थिक पक्ष मजबूत करने में लगे हुए हैं । वे गैस, गाइड, कुँजी जैसी पुस्तकों को निकालकर छात्र एवं अभिभावकों का शोषण कर रहे हैं और सरकार तमाशबीन की तरह तमाशा देख रही है । सीमित दायरों में रहने के कारण छात्र आज शिक्षकों से दूर होते जा रहे है । आज के छात्र पाठ्यपुस्तकों की जगह कॉमिक्स कहानियों की पुस्तकों से घिरे रहते हैं । पढ़ाई के प्रति उनका ध्यान बहुत कम हो गया है । इसके लिए शिक्षक और अभिभावक दोनों दोषी हैं । क्योंकि शिक्षक विद्यालय के मालिक होते हैं और अभिभावक अपने घर के । यदि वे दोनों एक रसता से शिक्षा के प्रति ध्यान देने लगे तों छात्रों को बाध्य होकर शिक्षा की ओर झुकना पड़ेगा । शिक्षा के प्रति छात्रों की ललक बढ़ने के साथ ही शिक्षक और छात्रों के बीच की दूरी ओझल हो जाएगी ।

शिक्षक खानापूर्ति में लगे हैं, शिक्षण में नहीं

कार्मिक नगर कॉलोनी, धनबाद की एक गृहणी अभिभावक मानती है कि शिक्षा में गिरावट का मुख्य कारण अयोग्य एवं अनुभवहीन शिक्षक हैं, जो शिक्षण-प्रशिक्षण का लाइसेन्स तो ले लेते हैं । किन्तु सरकार द्वारा चलायी गयी शिक्षा नीति की अवहेलना करते हुए शिक्षण की खानापूर्ति में लगे रहते हैं । उदाहरणार्थ, विद्यालय में समाजोपयोगी कार्य के अन्तर्गत छोटे बच्चों को सर्वप्रथम सामाजिक परिवेश की जानकारी दी जानी चाहिए । जबकि पहली कक्षा के बच्चों को ऐसी कलात्मक वस्तुओं के निर्माण का कार्य दिया जाता है, जिसे बच्चे तो क्या हम भी ठीक से नहीं कर पाते हैं, जबकि मुझे ड्राईंग रूम सजावट आदि का कार्य साधक ज्ञान अवश्य है । दूसरे , 'प्रोजेक्ट वर्क' बच्चों के लिए एक ऐसी बला है, जो हमारी नाक में दम किए रहती है । इसका अर्थ स्पष्ट है कि शिक्षक नयी शिक्षा नीति के तहत शिक्षण के विभिन्न प्रयोगों को ठीक से नहीं समझ पा रहे है अथवा वे मात्र खानापूर्ति में लगे है, शिक्षण में नहीं। इसी गलत शिक्षण के कारण प्रतिदिन हम पर आर्थिक बोझ भी बढ़ता जा रहा है । विद्यालय में पढ़ाई के नाम पर जब बच्चों की कापियां पलटती हूँ तब निराशा ही हाथ लगता है । न कोई 'होम वर्क' और न ही 'क्लास वर्क' बच्चों को आखिर पढ़ाऊँ तो क्या ? लाचार होकर हमारे ग्यारहवी और सातवीं कक्षा में पढ़ रहे बच्चों दिग्भ्रमित तो होते हैं साथ ही पहली कक्षा का लड़का भी कहता है कि इस स्कूल में नहीं पढ़ूंगा, कोई पढ़ाई नहीं होती है । आखिर कब तक कपड़े बढ़ने की तरह स्कूल बदले जाए ? अत: आवश्यकता है, शिक्षण में किए जा रहे नवीन प्रयोगों के व्यावहारिक पहलू पर ध्यान देने की और इसके लिए सरकार को पहल करनी होगी ।

शिक्षा की दिशाहीनता मानवता के लिए खतरा

एक अभिभावक जो महाप्रबंधक (प्रशिक्षण), बी.सी.सी.एल जगजीवन नगर, धनबाद के है, की धारणा है कि शिक्षा में गिरावट का मूल्यांकन करते समय सामाजिक वर्गीकरण के रूप में सबसे अधिक शिक्षा के प्रति जागरूकता मध्यम वर्ग में है । उच्च वर्गीय तो शिक्षा मात्र माध्यम के रूप में ग्रहण करते हैं ताकि पढ़ लिखकर भी निजी व्यवसाय में लगा जा सके, जबकि मध्यम वर्ग जीवन जीने के लिए शिक्षा आवश्यक मानता है । अति निम्न वर्ग की तो जीवन की मौलिक आवश्यकता -

भोजन, वस्त्र और आवास – ही पूरी नहीं हो पाती, तो बेचारा शिक्षा का अर्थ क्या जाने ? इस प्रकार, शिक्षा का माध्यम यदि विद्यालय एवं सामाजिक वातावरण के स्तर पर निश्चित नहीं किया गया तो शिक्षा में व्यावसायीकरण की प्रकृति, जिम्मेदारी की भावना का अभाव और अनुशासनहीनता होगी ही। सर्वप्रथम शिक्षा की निश्चित दिशा का निर्माण कारगर रूप से किया जाना जाहिए ताकि हमारी सामाजिक व्यवस्था सुदृढ़ हो सके। अतः शिक्षा को 'केरियर ओरिएण्टेड' बनाना होगा ताकि दिशाहीनता दूर की जा सके। अन्यथा, शिक्षा में वर्तमान भटकाव समूची मानवता के लिए खतरा बन सकता है। ❑❑

स्नाकोत्तर शिक्षक (हिन्दी)
केन्द्रीय विद्यालय, कोयलानगर
धनबाद (बिहार)

नेत्रहीनों का अनूठा विद्यालय

❑ **वेद प्रकाश गुप्ता**

हमें हाल ही में कालिम पौंग (पश्चिमी बंगाल जिला दार्जिलिंग) के एक ब्लाइंड स्कूल को देखने का अवसर प्राप्त हुआ। यहां पर मुलाकात विद्यालय के प्रबन्धकर्ता कैप्टन आर.के साह से हुई जिन्होने बडी रुचि के साथ विद्यालय का निरीक्षण कराया।

इस विद्यालय में 79 विद्यार्थी व 14 अध्यापक हैं। यद्यपि यह विद्यालय एक क्रिश्चियन संस्थान का है, फिर भी कोई भेद न रखकर हर जाति एवं वर्ग के बच्चे दाखिल किये जाते हैं। इनकी तीन श्रेणियां हैं –

1. अनाथ –(जिनके माता पिता नहीं हैं)
2. अर्ध अनाथ –(जिनके माता पिता नहीं हों, लेकिन किसी ने अपने पास रख लिया हैं।)
3. निर्धन – इस श्रेणी में प्रवेश पंचायत के सदस्यों, स्थानीय नेताओ तथा क्रिश्चिन चर्च के पादरियो की सिफारिश पर किया जाता है। इस संस्थान के मुख्य अध्यापक तथा सुपरिनटैंडेंट श्री ई एम. हंसफोंड हैं।

विद्यालय में 39 जूनियर ब्वायज स्टूडैंटस हैं। कक्षा 4 तक प्राइमरी स्कूल तथा कक्षा 8 तक जूनियर हाई स्कूल है। विद्यालय में अधिकतर अध्यापक भी ब्लाइंड हैं। जो विद्यार्थी पढ़ाई लिखाई में मंद बुद्धि के हैं उन्हें क्राफ्ट की ट्रेनिंग दी जाती हैं। आठवी कक्षा पास करने के पश्चात विद्यार्थियो को कालिंम पौंग के अन्य विद्यालयो में दाखिल कराया जाता है और उनकी पढ़ाई लिखाई पर आने वाला खर्च विद्यालय की तरफ से किया जाता हैं। विद्यालय में 8 सीनियर गर्ल्स स्टूडैटस हैं तथा 16 जूनियर गर्ल्स स्टूडैटस।

फार्म 4
(नियम 8 देखिए)

प्राइमरी शिक्षक

1. प्रकाशन स्थान	नई दिल्ली
2. प्रकाशन अवधि	त्रैमासिक
3. मुद्रक का नाम	अरावली प्रिन्टर्स एंड पब्लिशर्स प्रा० लि०
क्या भारत का नागरिक है?	हां
यदि विदेशी है तो मूल देश का पता	लागू नही होता
पता	डब्ल्यू-30, ओखला फेस-II, नई दिल्ली-110020
4. प्रकाशक का नाम	डा. के.जे एस. चतरथ
क्या भारत का नागरिक है?	हां
यदि विदेशी है तो मूल देश का पता	लागू नहीं होता
पता	राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् श्री अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली - 110016
5. मुख्य सम्पादक का नाम	राजेन्द्रपाल सिहं
क्या भारत का नागरिक है?	हां
यदि विदेशी है तो मूल देश का पता	लागू नहीं होता
पता	राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् श्री अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली - 110016
6. उन व्यक्तियों के नाम व पते जो समाचार-पत्र के स्वामी हो तथा जो समस्त पूजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझेदार या हिस्सेदार हो	राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसधान और प्रशिक्षण परिषद् श्री अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली - 110016 (मानव संसाधन विकास मंत्रालय की स्वायत्त संस्था)

मैं के.जे एस. चतरथ एतद् द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर लिखे गये विवरण सत्य हैं।

ह.
डा. के.जे एस. चतरथ
प्रकाशक

राज न 32427/76

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित प्राइमरी शिक्षक एक त्रैमासिक पत्रिका है।

इस पत्रिका का उद्देश्य केन्द्रीय सरकार की शिक्षा नीतियों से संबंधित आधिकारिक जानकीरीको शिक्षकों और सम्बद्ध प्रशासकों तक पहुंचाना है। इसका उद्देश्य कक्षा मे इस्तेमाल की जा सकने वाली सार्थक और सम्बद्ध सामग्री प्रदान करना भी है। भारत के विभिन्न केन्द्रों में चल रहे पाठ्यक्रमों और कार्यक्रमों आदि के बारे में समय समय पर इसमे सूचनाएं प्रकाशित होती रहती है। शिक्षा- जगत में होने वाली हलचलों पर विचार- विमर्श के लिए यह एक मंच का काम भी करती है।

इस पत्रिका के प्रमुख स्तम्भ हैं -

(1) प्राथमिक शिक्षा से संबंधित शैक्षिक नीतियां।

(2) प्रश्न और उत्तर।

(3) राज्यों के समाचार।

(4) कक्षा मे इस्तेमाल की जा सकने वाली सचित्र सामग्री।

स्कूलों के शिक्षकों की रचनाएं प्रकाशनार्थ आमत्रित हैं। हर प्रकाशित रचना पर पारिश्रमिक की व्यवस्था है। लेख हिन्दी या अंग्रेजी मे कागज के एक ओर लिखा होना चाहिए। सुविधा के लिए कृपया टाइप की गई या साफ- साफ, सुन्दर अक्षरों में लिखी रचना की दो प्रतियां भेजे।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरबिन्द मार्ग, नई दिल्ली- 110016 के लिए सचिव द्वारा प्रकाशित तथा एडवांस टाइप सैटर्स (इण्डिया), 730/VIII, रामकृष्णपुरम्, नई दिल्ली-110 022 द्वारा क्म्पोज होकर अरावली प्रिंटर्स एंड पब्लिशर्स प्रा० लि० ओखला फेज़- 11 नई दिल्ली- 110020 द्वारा मुद्रित।

ISSN 0970-9312

प्राइमरी शिक्षक

वर्ष 17 अंक 3 जुलाई, 1992

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

प्राइमरी शिक्षक

प्रधान संपादक	सम्पादकीय सम्पर्क
राजेन्द्रपाल सिह	प्रधान संपादक, पत्रिका प्रकोष्ठ, राष्ट्रीय शैक्षिक
अकादमिक संपादक	अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
द्वारिका नाथ खोसला	श्री अरबिन्द मार्ग, नई दिल्ली - 110016
मुख्य उत्पादन अधिकारी	फोन : 652459
यू प्रभाकर राव	666047/4283
उत्पादन अधिकारी	
डी साई प्रसाद	
उत्पादन सहायक	एक प्रति 4.00 रुपये, त्रैमासिक
राजेन्द्र चौहान	वार्षिक मूल्य 16.00 रुपये

पत्रिका संपादन - राजकुमार गुप्त

कृपया अपना चन्दा व्यावसायिक प्रबन्धक, प्रकाशन विभाग, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् नई दिल्ली - 110016 को भेजें।

प्राइमरी शिक्षक

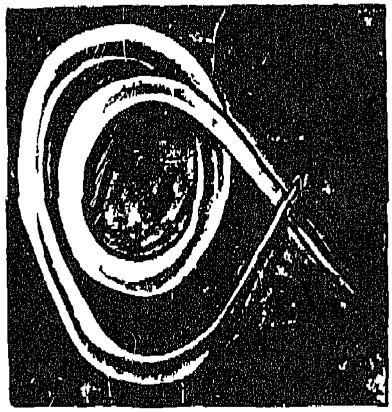
वर्ष 17 अंक 3 जुलाई, 1992

इस अंक में

घातक कृमि रोग से कैसे बचें	1	डा. एम.पी. श्रीवास्तव
राष्ट्रीय शिक्षा नीति के संदर्भ मे मूल्यो की शिक्षा	5	डा. श्रीमती कृष्णा सिंह
शिक्षा में समान अधिकार	10	कु. रेखा सिंह
प्राथमिक स्तर के पाठ्यक्रम में मूल्यों की शिक्षा	16	श्रीमती विभा निगम
हमारे दांत	20	डा. कमलेश डुडेजा
दूरदर्शन का छात्रों पर बढ़ता प्रभाव	24	रजनी शर्मा
सृजनात्मकता के विकास में अभिभावकों की भूमिका	27	डा. जमना लाल वायती
बच्चे श्रेष्ठ हैं—परीक्षा परिणाम नहीं	30	जीवन सिंह ठाकुर
नकल—कारण और निवारण	33	वल्लभ डोंगरे
कहानी शिक्षा की	35	राजेन्द्र प्रसाद आढा
शिक्षकों ने लिखा है		
वाचन	40	सुदर्शन रत्नाकर
बालक पाठ्यपुस्तकों से मुंह क्यों मोड़ रहे हैं	41	राजमल डांगी
विचार		
प्राचीनतम योग संस्थान	44	वैद प्रकाश गुप्ता
जापान के प्राइमरी स्कूल	46	जगमोहन सिंह राजपूत

धातक कृमि रोग से कैसे बचें

❒ डा. एम.पी. श्रीवास्तव



(समय समय पर सुयोग्य चिकित्सकों के भी लेख प्रकाशित करने की चली आ रही परम्परा के अनुसार हम भूतपूर्व राष्ट्रपति के मानद चिकित्सक डा. एम.पी. श्रीवास्तव, जो जाने-माने चिकित्सक हैं, का यह लेख अपने पाठकों के लाभार्थ प्रस्तुत कर रहे हैं। आशा है पाठकगण भी समय समय पर अपनी मांग व राय से अवगत करायेंगे।)

जहां परम्परागत कुछ बीमारिया विज्ञान के शोध व जनमानस की जागरुकता के कारण कम होती जा रही हैं, वही आधुनिक सभ्यता के बढाव के साथ उत्पन्न होने वाली समस्याओं के कारण कुछ अन्य बीमारियो का फैलाव भी अधिक होता जा रहा है। इनमें से एक है कृमि रोग अर्थात बर्मस से होने वाली बीमारी। करीब 50 से ज्यादा किस्म के कृमि मनुष्य को अपना शिकार बनाते है। इनमें से कुछ तो कुछ सेटीमीटर ही लम्बे होते हैं जबकि अन्य दूसरे एक मीटर तक लम्बे होते है। सामान्यत पाये जाने वाले कृमियो मे प्रमुख है गोलाकार कृमि (राउन्ड वर्म), वर्गाकार (कंटीले), कृमि (हुक वर्म), धागे के आकार का कृमि (थ्रेड वर्म), फीते के आकार का कृमि (टेप वर्म) व नारु रोग का कृमि (गिनी वर्म)।

गोलाकार कृमि (राउन्ड वर्म)

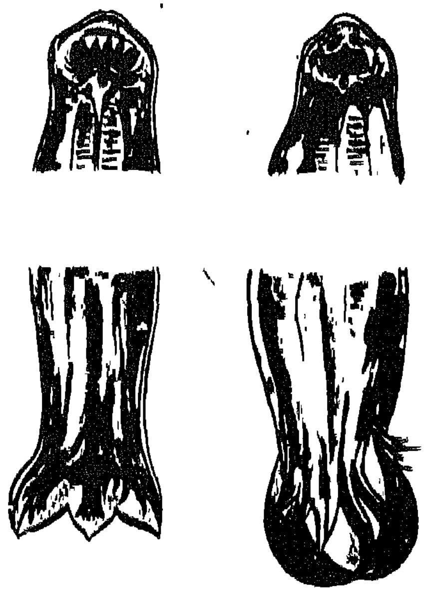
आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि विश्व के करीब सौ करोड व्यक्ति गोलाकार कृमि से पीड़ित हैं और इनमें से 20,000 रोगी प्रति वर्ष मौत के शिकार हो जाते हैं। करोड़ो कृमि अर्थात हुक वर्म से प्रभावित व्यक्तियों की संख्या विश्व में करीब 80 करोड़ है, जिनमें से करीब 50,000 व्यक्ति हर वर्ष मर जाते हैं।

फीताकार कृमि (टेप वर्म) दुनियां के करीब 50 करोड़ व्यक्तियों की बीमारी का कारण बना हुआ है और प्रति वर्ष लगभग 50 हजार व्यक्तियों को मौत के मुंह में ढकेल देता है। इसी प्रकार गिनी वर्म अर्थात नारु रोग विश्व के दो करोड़ व्यक्तियो को अपनी

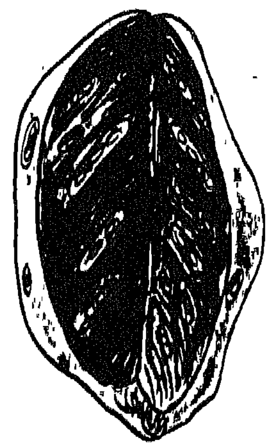
चपेट मे लिये हुये है और अपने देश के पश्चिमी भाग में करीब 60 हजार व्यक्ति इस रोग की गिरफ्त मे है।

प्रश्न यह उठता है कि क्या यह सच है कि कृमि रोग वास्तव में हानिकारक है?

जो बीमारी विश्व की इतनी बड़ी जनसंख्या के मौत का कारण हो, वह नुकसानजनक कैसे नहीं होगी। यहा एक गलत धारणा का पुरजोर खंडन करना चाहता हूं कि कृमि रोग का पेट में होना मामूली बात है व कहीं कहीं तो यह भी मान्यता है कि कृमि रोग का होना जरूरी बात है। यहां यह जानने की बात है कि बच्चों का विकास विशेष रूप से तो प्रभावित होता ही है साथ ही नुकसान का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि एक कर्णकार कृमि एक दिन मे मनुष्य का लगभग पौन ग्राम खून पर जाता है और अक्सर 10-15 कृमि एक साथ शरीर मे पलते हैं तो इसका अर्थ यह हुआ कि प्रतिदिन लगभग 10-12 ग्राम मनुष्य का खून एक दिन में यह कंटीले कृमि चूस जाते हैं, जिससे मनुष्य खून की कमी अर्थात एनीमिया का शिकार हो जाता है। इसी प्रकार 20 गोलाकार कृमि एक दिन में मनुष्य का 3 ग्राम खून चट कर जाते हैं जिसके कारण शरीर को पूरा पोषण नहीं मिल पाता और पौष्टिक तत्वों की व विटामिनों की विशेष



कटीले कृमि (हुक वर्म कृमि) के खून चूसने के पन्जे



मासपेशी में टेपकृमि (अन्डे)

कमी होने के कारण कई रोगों की उत्पत्ति होती है। टेप कृमि तो दिमागी सूजन पैदा करता है और इससे पीडित व्यक्ति को मृगी सरीखे दौरे होने लगते हैं।

मनुष्य दो या तीन प्रकार से कृमि रोग की गिरफ्त मे आता है। एक तो जब कोई कृमि रोगी खुले मैदान मे या पानी के जलाशयों के निकट शौच करता है तो कृमि के अंडे पानी या जमीन मे मिल जाते हैं जो हजारों व लाखो की सख्या मे होते है। इन अंडो में



हुक वर्म का शरीर में प्रवेश

कुछ आंतरिक परिवर्तन होता है और यदि मल का विसर्जन ठीक न हुआ तो इन अडो से खाद्य पदार्थ जैसे सब्जी, फल, पीने के पानी दूषित हो जाते हैं और इन दूषित पदार्थों के सेवन से यह अंडे कृमि के शरीर में प्रवेश कर जाते है। दूसरी स्तिथि में कुछ पशु कृमि रोग फैलाव के जिम्मेदार हैं। जब जानवर खाद्य पदार्थ व चारा जो कृमि के अडो से दूषित होता है और वे उसे खाते हैं तो यह अंडे उनके शरीर में प्रवेश कर जाते हैं तथा उनकी मांसपेशियो में स्थापित हो जाते हैं। जब आदमी इन दूषित जानवरों के मांस को खासकर अधपका मांस खाते है तो यह अडे मनुष्य के शरीर में प्रवेश कर जाते है। इसी प्रकार कटीले कृमि खाने पीने की चीजो के अलावा व्यक्तियो के शरीर मे पैर द्वारा प्रवेश करता है। जब व्यक्ति नंगे पैर घास मे या जमीन पर चलता है तो यह कृमि पैर में घाव करके अंदर प्रवेश कर जाते हैं, उस समय सुई के चुभने जैसा ही आभास होता है।

शरीर में प्रवेश करने के बाद यह अंडे विभिन्न भागो से गुजरते है और विकसति होते है और नर मादा के रूप में आंत मे विस्थापित हो जाते है और अंडे पैदा करने का काम शुरू कर देते हैं, चूंकि यह क्रम बढ़ता रहता है और करोड़ो व्यक्ति कृमि रोग के शिकार होते जाते हैं।

कृमि रोग के मुख्य लक्षणों मे पेट में एक अजीब-सी परेशानी रहती है और वह खाली-खाली सा लगता है, जी मिचलाता रहता है तथा कभी-कभी कै भी हो जाती है। पेट दर्द तो अक्सर रहता ही है। खासकर कृमि रोग से पीड़ित बच्चे दूध हजम नहीं कर पाते। कभी-कभी यह कृमि मुह या नाक से या मलद्वार से बाहर भी आ जाते हैं। धागे के आकार के कृमि के कारण मलद्वार पर खुजली होती रहती है। शरीर पर छपाके व सफेद दाग उभर आते हैं। काम करने की क्षमता कम हो जाती है और बच्चो का विकास पूर्ण रूप से नही हो पाता। खून की कमी व इन अडों का फेफड़े पर असर होने के कारण सांस फूलने लगता है। कुछ कृमि सैर सपाटे के शौकीन होते है और इस तरह पित्त की थैली, आमाशय, जिगर आदि मे पहुंच कर उनकी कार्यप्रणाली में बाधक बनते हैं जो कभी-कभी गंभीर रोग जैसे पेंनक्रीयटाईस्सि, कोसीसिमटाइटिस आदि की स्थिति पैदा कर देते है।

बुखार के कारण या कृमि रोग की दवाओ के सेवन से कभी कभी यह कृमि आत मे एकत्रित होकर आंत को अवरूद्ध कर देते हैं और आपरेशन की स्थिति पैदा कर देते हैं। कटीले कृमि खून चूसकर रोगी में खून की कमी करते है व आंत में चिपके रहने के कारण आत की परत खराब हो जाती है जिससे पाचन क्रिया ठीक से न होने के कारण पौष्टिकता के तत्वों की कमी हो जाती है। ऐसा पाया गया है कि कृमि रोग से पीड़ित व्यक्ति मिट्टी खाने में मजा लेने लगता



हुक वर्म का शरीर में प्रवेश

नारू रोग

है, जिसकी उपलब्धता के लिए वह मिट्टी सुखाकर पीसकर रख देते हैं और समय समय पर फंकी लगाते रहते हैं। टेप वर्म से पीडित व्यक्ति को मृगी सरीखे झटके आते हैं। आख की रोशनी भी कम होनी शुरू हो जाती है और गिनी वर्म से पीडित व्यक्ति पैर में छालों का शिकार हो जाता है, और धागे के आकार का यह कृमि उस छाले से बाहर निकलता रहता है, खासकर जब यह व्यक्ति किसी जलाशय के निकट जाता है। कृमि रोग से छुटकारा पाना मुश्किल तो है पर असंभव नहीं है जैसाकि जापान व कोरिया ने कर दिखाया है, और बर्म्स से मुक्ति पा ली है। इनमें से कुछ उपाय तो हमारे वश मे हैं तो कुछ पर हमको समाज के दूसरे लोगो पर निर्भर रहना पडेगा।

सर्वप्रथम तो यह आवश्यक है कि हम दिनचर्या में स्वस्थप्रद आदतें डाले—जैसे खाना खाने के पहले साबुन से हाथ धोयें, नाखून लम्बे न रखें। सब्जी व फल साफ पानी मे ठीक से धोयें व साफ करके ही सेवन करें, नंगे पैर घास में न चले, मैले बर्तन में साफ पानी भी खराब हो जाता है अत. साफ पानी का सेवन करें व नारू से पीड़ित क्षेत्र में खासकर पानी छानकर ही पियें। जानवरों जैसे कुत्ते, गाय, भैस, घोड़ो आदि से ज्यादा लाड़ प्यार न दर्शाये। कृमि नाशक दवाओ का सेवन खासकर यदि एक बार इसके शिकार हो गये हैं तो समय-समय पर करें। इसके लिए डाक्टर की सलाह लेते रहें।

यदि हम दृढ निश्चय कर लें तो कृमि रोग से मुक्ति पाई जा सकती है। लेकिन आश्चर्य तो तब होता है जब लोग जानते हुये भी आरोग्य के नियमों की बिल्कुल परवाह नहीं करते। और फिर स्वास्थ्य जबरन तो लादा नहीं जा सकता यह तो सावधानियों व संयम से ही सुरक्षित किया जा सकता है। □□

प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष
मेडिसिन यूनीवर्सिटी कालेज आफ मेडिकल
साइसेंज एवं संबंध अस्पताल, दिल्ली
20, महादेव रोड़, नई दिल्ली

राष्ट्रीय शिक्षा नीति के संदर्भ में मूल्यों की शिक्षा

❐ डा. (श्रीमती) कृष्णा सिंह

भूमिका

वर्तमान समय में ससार विभिन्न समस्याओ के दौर से गुजर रहा है। समस्याऍं शैक्षिक, सामाजिक एवं राजनैतिक स्तर पर सामने आ रही हैं। शिक्षक न तो पढ़ाना चाह रहा है, और न विद्यार्थी पढ़ना चाह रहा है। सामाजिक क्षेत्र मे कार्य करने वाले अपने स्वार्थसिद्धि में व्यस्त हैं। राजनैतिक व्यक्ति अपनी कुर्सी बचाने के लिए तत्पर है। प्रशासन जनता की समस्याओं के समाधान में अक्षम हैं और वह अपनी ही समस्याओ से परेशान हैं। स्नातक, परास्नातक एक भी वाक्य सही बोलने और लिखने में सक्षम नहीं है। शिक्षक अपने नैतिक चरित्र को विद्यार्थी के सामने प्रस्तुत नहीं कर रहा है, उसका भी शिक्षण रुपये पैसे पर आधारित हो गया है।

लोग (जनता) वर्तमान समय में शैक्षिक, सामाजिक, राजनीतिक दॉवपेच को झेलते-झेलते थक गये हैं। पुरानी सस्कृतियो, व्यवहारों, भावनाओं से हम दूर चले गये हैं। प्रश्न यह उठता है कि इन सभी समस्याओं के समाधान के लिए हमें क्या करना चाहिए ? लोग इन परिस्थितियों मे परिवर्तन चाहते है या उसके बारे मे सोचते है। इस परिवर्तन के संदर्भ मे आवश्कयकता है "मूल्यो की शिक्षा" की तभी विभिन्न समस्याओं का समाधान सभव है। "मूल्यो की शिक्षा" के सदर्भ मे जानने से पहले हम यह जान ले कि "मूल्य" किसे कहते हैं ?

मूल्य समाज द्वारा स्वीकृत इच्छाऍं और लक्ष्य जिनका अन्तरीकरण सीखने, परिस्थितियाँ व समाजीकरण के माध्यम से होता है और जो आभ्यातरिक अधिमान्यताऍं प्रतिमान तथा धाराएँ बन जाते हैं। मूल्य सोपानात्मक ढग से प्रकट होते है जो तात्कालिक विशिष्ट तथा साधनात्मक से लेकर आदर्श सार्वभौमिक तथा आन्तरित स्वरूप ले सके है। मूल्य के सम्बन्ध में कलवान महोदय ने लिखा है– "मूल्य प्रेरणा के उस पक्ष के रूप मे परिभाषित किया जा सकता है जो व्यक्तिगत या सामाजिक स्तर को निर्दिष्ट करने योग्य है, जो पूर्णतया तात्कालिक तनाव या तात्कालिक स्थिति में पैदा नही होता है।"

उपर्युक्त परिभाषा से यह स्पष्ट होता हे कि मनुष्य जिस वस्तु या विचार को प्राप्त करने की इच्छा करता है वह मूल्य है। वस्तु के अन्तर्गत भोजन, मकान आदि एवं विचार के अन्तर्गत सत्य, परोपकार, श्रद्धा, प्रसन्नता शान्ति, सहयोग आदि विचार आ सकते हैं। इन्हीं वस्तुओ की पूर्ति के लिए मूल्यों की शिक्षा की आवश्यकता पड़ती है। मूल्यों की शिक्षा व्यक्ति या मानव को इच्छित वस्तुओं को प्राप्त करने का रास्ता, व्यक्तित्व में परिवर्तन, सोचने का तरीका और सुन्दर से सुन्दर जीवन जीने का तरीका सिखाती है। दूसरे शब्दों में यह कह सकते हैं कि यह एक तरीका है बच्चो के ज्ञान वर्धन, अभिवृत्ति, व्यक्तित्व के मूल्य जिस पर जीने की इच्छा हो, सामाजिक जीवन जीने की। शिक्षा का महत्वपूर्ण लक्ष्य है मनुष्य के संसाधन को बढ़ाना, क्रियात्मकता, व्यक्ति के मूल्य को समझना, सामाजिक न्याय, राष्ट्रीयता, वैज्ञानिक विकास, स्वतंत्रता, सामाजिकता धर्मनिरपेक्षता, प्रजातन्त्रता इसके अतिरिक्त शिक्षा के अन्य पहलू जो सुन्दर जीवन जीने में सहायक हैं, उन्हे प्राप्त करना।

इस प्रकार मूल्यो की शिक्षा का अर्थ मनुष्य जीवन को सुन्दर, शान्तिपूर्ण एवं स्वतंत्र बनाना तथा राष्ट्रीय, अर्न्तराष्ट्रीय एवं अन्य मानवीय मूल्यो को प्रदर्शित करना है। साधारणतया "मूल्यों की शिक्षा" का वर्गीकरण दो प्रकार से किया जा सकता है—

1. वस्तुगत
2. विचारगत

वस्तुगत के अन्तर्गत मनुष्य जीवन यापन के लिए आवश्यक भोजन, जल, मकान इत्यादि आते है। विचारगत के अन्तर्गत राष्ट्रीय एकता, अन्तर्राष्ट्रीय भावना, परोपकार शाति व्यवहार व्यक्ति के विभिन्न सम्बन्द्ध आदि आते हैं।

मूल्य शिक्षा की आवश्यकता

मूल्य शिक्षा की धारणा के उपरान्त प्रश्न उठता है कि मूल्य शिक्षा का केन्द्र बिन्दु क्या है ? वास्तव में यह सत्य है कि अच्छी शिक्षा का सार मनुष्य के व्यक्तित्व का सर्वागीय विकास करना है यथा बौद्धिक, शारीरिक, सामाजिक, नैतिक और आत्मिक। व्यक्तित्व के विकास में जो मुख्य कारण हैं उनका आज की शिक्षा में अभाव हो गया है। आज की शिक्षा का मुख्य लक्ष्य सूचना एवं आदान-प्रदान के माध्यम से परीक्षा पास करना हो गया है। परन्तु जब हम शिक्षा के मूल्य के बारे में विचार करते हैं तो हमको ध्यान शिक्षा के प्रभावकारी लक्ष्यों की ओर ले जाना पड़ता है अर्थात् सामाजिक, नैतिक, सौन्दर्यानुभूति तथा मनुष्य के व्यक्तित्व के आत्मिक पक्ष के विकास पर ध्यान देना आवश्यक है।

- ❒ सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक पक्ष के विकास में मूल्यो की शिक्षा की आवश्यकता।
- ❒ राष्ट्रीय विकास जैसे धर्मनिरपेक्षता, प्रजातंत्र, समाजवाद के उत्तरोत्तर विकास में मूल्यों की शिक्षा की आवश्यकता।

मूल्यों की शिक्षा की विशेषता

मनुष्य के सर्वागीण विकास तथा उसे राष्ट्र का एक आदर्श नागरिक बनाने के लिए निम्नलिखित बातो पर ध्यान रखना चाहिए—

1 मनुष्य के नैतिक चरित्र एवं व्यवहार का विकास।
2 मनुष्य मे स्वयं निर्णयन की क्षमता।
3. जाति एवं धर्म के आधार पर समानता का विकास।
4 व्यक्ति मे सत्य, साहस, प्यार, सहकारिता, दया, अहिसा, न्याय, कार्यक्षमता और वैज्ञानिक विचारों का विकास।
5 व्यक्ति में व्यक्तिगत तथा सामाजिक स्तर पर अच्छे नागरिक बनने की भावना।
6. राष्ट्रीयता की भावना का विकास।
7. व्यक्ति का विकास करना।

देश के राष्ट्रीय विकास के लिए मानव संस्तुति का निर्माण करे जिससे मानव कल्याण तथा विश्व शांति की स्थापना हो।

मूल्य शिक्षा के विकास में सहयोगी अभिकरण

मूल्य शिक्षा के विकास में सहायक अभिकरण औपचारिक, अनौपचारिक एव नोपचारिक होते हैं जो निम्नलिखित हैं—

1 परिवार
2. विद्यालय (शिक्षक)
3. समाज
4. जनसंचार के साधन
5 धर्म
6. प्रशासन एवं राजनैतिक नेता

परिवार

- ❒ पेस्टालाजी के अनुसार—"गृह शिक्षा का सबसे श्रेष्ठ स्थान और बच्चे के लिए प्रथम विद्यालय है।"
- ❒ डा. सुबोध अदावल के अनुसार—"घर का वातावरण ही बालक की भावनाओं तथा इच्छाओं को प्रशिक्षित करता है। घर का आदर्श जीवन बालक का पथ-प्रदर्शन करता है"

उपरोक्त कथन से यह स्पष्ट होता है कि परिवार बालक का सर्वप्रथम विद्यालय हैं तथा बालक परिवार

का दर्पण है, उसे जिस प्रकार की शिक्षा माता-पिता द्वारा दी जायेगी वह उसी प्रकार का होगा अर्थात उसके व्यक्तित्व का विकास होगा।

बच्चो में मूल्य शिक्षा के विकास के लिए माता-पिता को अपनी त्रुटिपूर्ण आदतों का त्याग करना पडेगा जिसे बालक शीघ्र ही ग्रहण कर लेता है। यदि माता-पिता में अच्छा नैतिक चरित्र, अच्छी आदतें, रीति-रिवाज, संस्कृति, धर्म, सत्य बोलना, दयालुता, सहयोग, परोपकार दूसरों के प्रति दुर्व्यवहार की भावना का न होना, तो यह सभी गुण स्वयं ही बच्चों में आ जाते हैं। यदि माता-पिता ऐसा नहीं करते हैं तो परिणाम विपरीत होंगे। एक सुसंस्कृत परिवार के बच्चे आमतौर पर सुसंस्कृत होते है यद्यपि अपवाद हर जगह मौजूद होता है।

विद्यालय (शिक्षक)

बालकृष्ण जोशी के शब्दों में "विद्यालय आध्यात्मिक संगठन है जिसका अपना स्वयं का विशिष्ठ व्यक्तित्व है। विद्यालय गतिशील सामुदायिक केन्द्र है जो चारों ओर जीवन और शक्ति का संचार करता है। विद्यालय एक आश्चर्यजनक भवन है जिसका आधार सद्भावना है—जनता की सद्भावना माता-पिता की सद्भावना, छात्रों की सद्भावना। (सारांश से एक सुसंचालित विद्यालय एक सुखी परिवार, एवं पवित्र मंदिर, एक सामाजिक केन्द्र, लघु रूप में एक राज्य और मनमोहन वृन्दावन है जिसमें इन सब बातों का सुन्दर मिश्रण होता है।)

उपरोक्त कथन से स्पष्ट है कि विद्यालय रूपी बगीचे में फूल रूपी विद्यार्थी को माली रूपी शिक्षक ही पुष्पित एवं पल्लवित करता है, अर्थात् एक अध्यापक बनना आसान है परन्तु इसके दायित्वों का निर्वाह करना बहुत ही कठिन कार्य है। यदि अध्यापक मूल्यों को अपने व्यक्तिगत जीवन में व्यावहारिक रूप देता है तो छात्र स्वयं उसका अनुकरण करेंगे। हमे बहुत से अध्यापको ने पढ़ाया होगा परन्तु आज हम उनमें से कितने को याद करते है ? हम मात्र उन्हीं अध्यापको को याद करते है जिनके व्यक्तित्व ने हमारे ऊपर अमिछाप छोड़ी हो और जो हमारी अच्छी जिन्दगी व्यतीत करने में सहायक हैं। अध्यापको में भी प्राथमिक स्तर के शिक्षक अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि प्राथमिक शिक्षक ही मुख्य धुरी है जिसके चारों तरफ मूल्य शिक्षा के कार्यक्रम घूमते हैं। ईमानदारी, दयालुता, प्यार, भाई-चारे का व्यवहार विश्व शांति, समयानुशासन, कडी मेहनत, समर्पण, सादा जीवन, उच्च विचार आदि व बहुत से ऐसे गुण है जिनकों विद्यालय मे बालक अपने शिक्षक से ग्रहण करता है।

समाज

हैवी घर्स्ट तथा न्यू गार्टन के अनुसार समाजीकरण वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से बच्चे अपने समाज के स्वीकृत ढंगों को अपने व्यक्तित्व का एक अंग बना लेते हैं।

व्यक्ति अन्य व्यक्तियों के साथ अन्तः प्रक्रिया करता हुआ अपने को सामाजिक परम्पराओं और संस्कृति के अनुकूल बनाता है। सामाजिक रीतियों, आदतों और परम्पराओं को सीखते हैं और अपने व्यक्तित्व में विकास करता है, अर्थात् समाज भी बालक के चरित्र एवं व्यवहार को प्रभावित करने में प्रमुख भूमिका निभाता है। यह बच्चों को बहुत से मूल्यों को सिखाता है। समाज परिवारों के समूह से बनता है और समाज का दबाव व्यक्तिगत घरों पर होता है। समाज का मूल्य शिक्षा के अच्छे एवं बुरे कार्यों में आधे का दायित्व होता है। सभी महत्वपूर्ण व्यक्तिगत चाहे वे शिक्षाविद् हों, समाज सुधारक हों या सामाजिक कार्यकर्ता, धार्मिक या राजनीतिक नेता हो। सभी समाज के किसी न किसी भाग में से आये है। बच्चों में परोपकार, राष्ट्र के लिए बलिदान, बहादुरी, रीतिरिवाज रहने और खाने के ढंग जैसे मूल्य की चीजें है जिसकों कि समाज से ही ग्रहण किया जाता है।

जन संचार के साधन

वे साधन जिनके माध्यम से जन साधारण का मनोरंजन किया जाता है और देश-विदेश की विभिन्न

सूचनाएँ ग्रहण की जाती है, सामान्य ज्ञान, विज्ञान की चर्चा होती है और इससे मन-मस्तिष्क दोनो प्रभावित होते हैं। जैसे—प्रेस, रेडियो, टेलीविजन एवं चलचित्र आदि। इन साधनों के तीन प्रकार हो सकते है।

1. **लेखबद्ध साधन**-समाचार पत्र, पत्रिकाये, पुस्तकें आदि।
2. **यांत्रिक साधन**-ग्रामोफोन, टेपरिकार्डर, रेडियो, टैलीविजन एवं चलचित्र आदि।
3. **सांस्कृतिक साधन**-कठपुतली का खेल, रामलीला, नाटक, प्रदर्शनी, संग्रहालय आदि।

इन साधनों की सबसे बडी विशेषता यह है कि इनके माध्यम से कम से कम समय में अपेक्षाकृत कम व्यय से एक साथ बहुत से लोग ज्ञान ग्रहण कर सकते है एव मनोरजन कर सकते है और जनमत तैयार हो सकता है। जिस पर एक सबल राष्ट्र की नीव पड़ सकती है एवं अन्तर्राष्ट्रीय भावना का विकास हो सकता है।

जन सचार माध्यमों का हमारे जीवन मे काफी प्रभाव है। आज के युग मे जनसचार माध्यमों के बिना जीवन की कल्पना करना बहुत कठिन है। विभिन्न प्रकार के जनसंचार साधनों के बीच जीवन व्यतीत करते हैं अगर जनसंचार साधन अच्छी प्रकार की सूचनाये प्रसारित करें तो निश्चितरूप से बच्चों के लिए कल्याणकारी होगा अन्यथा बच्चो पर इनका बुरा प्रभाव पड़ेगा। अत यह नितान्त आवश्यक हो गया है कि इन जन सचार माध्यमो से बच्चों के लिए अच्छी प्रेरणादायक चीजें प्रचारित की जाए ये बालक के जीवन मे अच्छे मूल्यो को स्थापित करने मे परिवार तथा अन्य माध्यमो की तरह ही प्रभावी रहेगी।

धर्म

"धर्म का अर्थ है उन आध्यात्मिक सिद्धान्त एवं नियमो का ज्ञान एवं पालन जिनसे मनुष्य का प्राकृतिक सामाजिक और अन्ततोगत्वा आध्यात्मिक विकास होता है।"

धर्म, धार्मिक स्थल और धर्मगुरू लोगों का भी बच्चों पर प्रभाव पड़ता है। यदि समर्पण, साधुता, भगवान के लिए समर्पित मानवता आदि से बच्चें अच्छे मूल्यों को सीख सकते हैं। जैसे—"भगवान को प्रत्येक रूप से प्यारा है" यह धर्म का मुख्य उद्देश्य है। यदि कोई धर्म किसी प्रकार का भेद-भाव सिखाता है तो इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ना निश्चित है। मानवता से प्यार करना, भगवान हमारा पिता है, हम जो करते हैं उसे वह देखता है (चाहे वह छुपे रूप से ही क्यो न हो) धार्मिक गुण तथा आत्मिक मूल्यों को बच्चा धर्म से ही सीख सकता है। विश्व शांति तभी सभव है जबकि हम सही माने मे धार्मिक बुद्धि के होंगे।

प्रशासन एवं राजनीतिक नेता

प्रशासन तथा राजनीतिक अच्छे मूल्यों को सिखाने में सहायक हो सकते हैं यदि राजनीतिक प्रेरणादायक चरित्र पेश करते हैं जैसे—पडित नेहरू, लालबहादुर शास्त्री, बापू, राजेन्द्र प्रसाद, सरदार पटेल तथा अन्य जिनको कि आने वाले वर्षों में भी याद किया जायेगा, बच्चों के लिए अच्छे मूल्य सिखाने मे सहायक होगे। वास्तव मे इनका व्यक्तित्व पूजनीय है। बहुत सी चीजे हम अकेले महात्मा गांधी के व्यक्तित्व से सीख सकते है। गाधी जी सत्य के पुजारी थे उनमें साहस और अंहिसा जैसे गुण विद्यमान थे। यह दुर्भाग्य है कि आज के नेताओं में मूल्यों की कमी है जिसको कि हमारे पुराने नेताओ ने बनाया या स्थापित किया।

प्रशासन से हमारा तात्पर्य उन अधिकारियों तथा व्यवस्था से है जो कि शिक्षा की सुविधा उपलब्ध कराने के लिए उत्तरदायी है। प्रशासन का भी मूल्य शिक्षा में महत्वपूर्ण योगदान हैं। प्रशासन पर ही भवन तथा शिक्षा में अन्य सहयोगी आवश्यक सुविधाओं की जिम्मेदारी होती हैं तथा शिक्षा से सम्बन्धित नीति विषयक महत्वपूर्ण मामलो पर निर्णय लेना होता है जो कि मूल्य शिक्षा पर बहुत प्रभावी होती है।

मूल्यों की शिक्षा के उद्देश्य प्राप्ति के लिए क्रियाकलाप

1. विद्यालयो में पाठ्यक्रम मे परिवर्तन कर उसे मूल्य शिक्षा पर आधारित बनाया जाऐ।

2. प्राचीनकालीन शिक्षा प्राचीन शैक्षिक मूल्यों पर आधारित थी परन्तु आज वातावरण मे बदलाव आने से प्राचीन मूल्य परिवर्तित हो गये हैं तथा राष्ट्र की आवश्यकताएं बदल गयी हैं। इसलिए हमें शिक्षा के मूल्य मे समुचित संशोधन करना आवश्यक हो गया है।
3. समय की माग के अनुसार विभिन्न क्षेत्रों में मूल्यों का विकास किया जाय तथा धर्म और शिक्षा, समाज और शिक्षा अन्तर्राष्ट्रीयी अववोध, धर्म-निरपेक्षता आदि।
4. समय के अनुसार हमारे जीवन यापन का तरीका बदल गया है अब हमें शिक्षा में मूल्य शिक्षा की प्रणाली का समावेश करने से ही जीवन यापन सभव है। सरकार इससे पूर्णरूपेण सहमत है इसलिए नयी शिक्षा प्रणाली 1986 में मूल्य शिक्षा का विशेष महत्व दिया गया है।

मूल्यों की शिक्षा के संदर्भ में शिक्षक की भूमिका

सर्वप्रथम हमें मूल्यो की शिक्षा के लिए यह जानना आवश्यक है कि एक शिक्षक के क्रियाकलाप मात्र उसके पेशे तक ही सीमित नहीं है। मूल्यो की शिक्षा निरन्तर विद्यालय मे विभिन्न क्रियाकलापों मे चलती रहती है जैसे—निर्देश, छात्रों के साथ सम्बन्ध, तथा पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाएँ। इस तरह विद्यालय में मूल्यों की स्थपना परोक्ष रूप से होती रहती है। इसलिए हम शिक्षकों के लिए आवश्यक हो जाता है कि हम अपना व्यवहार मूल्यों के अनुसार उच्चतम स्तर और पेशे के सिद्धान्त के अनुसार बनावें। इस प्रकार शिक्षक का क्रियाकलाप स्कूल के वातावरण को उच्च मूल्यो तथा आदेशो की स्थापना मे सहयोगी होगा। एक शिक्षक के रूप में मूल्यों की शिक्षा के लिए हमें निम्नलिखित सामान्य सिद्धान्तो को ध्यान मे रखना होगा—

1. विद्यालय मे प्यार, विश्वास तथा सुरक्षा के वातावरण को स्थापित करने में मदद करना।
2. बालक के विषय में मुख्य जानकारियों को प्राप्त करने के पश्चात् शिक्षक तद्नुसार शिक्षक विधि को अपनावे।
3. मूल्यों की शिक्षा को ठोस उदाहरणो से पेश किया जाय न कि परिस्थिति अनुसार।
4. मूल्यो की शिक्षा को अप्रत्यक्ष रूप से पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं के द्वारा सिखाया जाय।
5. शिक्षाप्रद जानकारियो को विशेष रूप से ध्यान देकर मूल्यो की शिक्षा के सदर्भ में प्रयोग करना चाहिए।
6. जो भी विषय वस्तु शिक्षक पढ़ावे उसमे स्वय भी मूल्य शिक्षा के उपकरण के रूप मे कार्य करे। इसके अलावा कोई उपाय नहीं है।
7. शिक्षक को अपने छात्रो को विषयवस्तु का पूर्णज्ञान तार्किक आधार को ध्यान मे रखकर उनके गुण-दोष की पूर्ण जानकारी होनी चाहिए।
8. शिक्षक को अपने में आदर्श व्यक्तित्व की स्थापना करनी चाहिए।
9. बच्चो को उपदेश देकर पढ़ाने से उदाहरण देकर समझाना बेहतर है।
10. शिक्षक छात्रों से ईमानदारी का व्यवहार करे, अपने विषय से प्यार करें। यदि शिक्षक नियमित दयालु, जिम्मेदार रहेगा तो उसके छात्र अनुकरण करके उसी प्रकार बनेंगे।
11. शिक्षक को यह ध्यान में रखना चाहिए कि केवल प्रतियोगिता में सफल होना ही शिक्षा का उद्देश्य नहीं हैं बल्कि जीवन पर्यन्त सफलता के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए। □□

प्रवक्ता, बी.एड. विभाग
अग्रसेन महाविद्यालय
आजमगढ़

शिक्षा में समान अधिकार

❐ कु. रेखा सिंह

हमारा देश समतावादी सामाजिक व्यवस्था की स्थापना के लिए प्रतिबद्ध है। इस व्यवस्था को स्थापित करने का सर्वोत्तम माध्यम शिक्षा ही है। शिक्षा समाज की एक सांस्कृतिक अक्षय निधि है। मानव संसाधन विकास में शिक्षा एक महत्त्वपूर्ण निविष्ट है। यदि देखें तो स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय से अब तक शिक्षा सुविधाओं में उल्लेखनीय वृद्धि तो हुई है, परन्तु सभी के लिए शिक्षा के समान अवसरों का समकरण नहीं हो सकता। शिक्षा प्रणाली में श्रेष्ठता लाने के लिए, आडम्बरपूर्ण तथा कमजोर आधार वाली संस्थाओं की नई-नई परतें जुड़ती रहीं। इन उन्नतशील शैक्षिक सुविधाओं का प्रयोग उन्नत क्षेत्रों व समाज के साधन सम्पन्न वर्गों के लोग करते रहे तथा अन्तर-क्षेत्रीय और अन्तर-सामूहिक असमानताएं बढ़ती ही गयीं, साथ ही हमारे समाज में शिक्षा में समान अधिकार की बात भी उठने लगी।

आज के विकासोन्मुख देशों में "समता के साथ-साथ समान अधिकार" को शैक्षिक योजना निर्माण का एक लक्ष्य माना जा रहा है। हमारी राष्ट्रीय शिक्षा नीति प्रस्ताव (1986) में शिक्षा के क्षेत्र में असंतुलन को दूर करने और अन्तर समूह असमानताओं को कम करने हेतु जोरदार, प्रयत्नों की माग की गयी है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) मे असमानताओं को दूर करने तथा समान अवसरों से अब तक वंचित रहे व्यक्तियों की विशिष्ट आवश्यकताओं की ओर ध्यान देकर शिक्षा में समान अधिकार की बात जोरदार शब्दों में कही गयी है। इस नीति में स्त्रियो, अनुसूचित जातियो, जनजातियों, शैक्षिक रूप से पिछड़े अन्य वर्गों और क्षेत्रों, अल्पसंख्यकों व विकलागों को ऐसे वंचित समूह में रखा है जिनकी ओर विशेष ध्यान दिये जाने की आवश्यकता है।

शिक्षा में समान अधिकार की संकल्पना

हम अपने लोकतांत्रिक ढांचे को देखते हुए यदि शिक्षा में "समान अधिकार" की संकल्पना समझना चाहें तो शिक्षा में समान अधिकार की संकलपना का सूत्रपात "समान पहुंच" "समान निविष्ट" से माना गया। रजा व प्रेमी (1987) के अनुसार समाज के लाभवंचित वर्गों के हित में संरक्षात्मक विभेद की नीति का अनुसरण करके शिक्षा में समानता प्राप्त की जा सकती है। इस अर्थ में शिक्षा में "समान अधिकार" और समता का एक ही लक्ष्यार्थ है।

ब्रोन्फेन्बेनर (1973) ने "समानता" का अभिप्राय सामाजिक न्याय अथवा औचित्य माना। इसका सन्दर्भ व्यक्तिपरक और नैतिक निर्णय है। समान अधिकार का अभिप्राय, शिक्षा का वितरण प्रतिरूप है जो वस्तुपरक, विवरणात्मक व माननीय है।

एम. एस. गोरे (1975) के अनुसार, "अवसरों में समानता, समानता के निरपेक्ष लक्ष्य तथा इन कार्यों के लिए असमान पुरस्कार देने की सामाजिक आवश्यकता जिनके लिए अपेक्षित कौशल, विशेषज्ञता, शारीरिक शक्ति या अन्य गुणों के स्तरों से सम्बन्धित मांगे असमान होती है" के मध्य एक समझौता है। उनके अनुसार अवसरों की समानता के प्रत्यय मे गतिशीलता के माध्यमो तक समान पहुच निहित है।

बाल्बर्ग तथा बार्गन (1974) के अनुसार "समान अधिकार" का अर्थ नस्लगत समाकलन, समान खर्च,

समान ससाधन या समान पठन निष्पत्ति हो सकता है।

स्कैफ (1981) के अनुसार शिक्षा में समान अधिकार का तात्पर्य "शिक्षा प्राप्त करने की प्रक्रिया तक पहुच या उसके परिणामों मे समानता के अधिकार पर बल देती है। उच्च शिक्षा के सन्दार्भ में कुछ लोग शैक्षिक समानता के अधिकार को प्रवेश के अवसरो मे समानता का पर्याय मानते है।" अत. मूल रूप से तब हम निष्कर्ष रूप को देखें तो निम्न संकल्पना की पुष्टि होती है—

"शिक्षा में समान अधिकार का तात्पर्य सभी विद्यार्थियों को ऐसे शैक्षिक अनुभव मिलना जो कुछ समान लक्ष्यो व विशिष्ट उद्देश्यों की प्राप्ति सुनिश्चित करते हों । अर्थात इस मूल रूप विद्यालयीय अध्ययन के लाभो का समान न्यायसंगत वितरण का नियम या अधिकार है।"

भारतीय शिक्षा में असमानताएं

भारतीय समाज में अनेक असमानताएं व्याप्त हैं। हमारे सामाजिक ढांचे में असमानताओं की अनेक पर्तें पाई जाती हैं। यहा पुरूषों व स्त्रियो, ग्रामीण क्षेत्रो, एक ही राज्य के उन्नत व पिछड़े क्षेत्रो, अनुसूचित समूहों, आर्थिक दृष्टि से असमान क्षेत्रों, अल्प संसाधन वाले क्षेत्रों में निवास, भौतिक अलगाव, वैचारिक असमानताएं, औद्योगिक क्रान्ति की कमी, लैगिक विषमता बौद्धिक अन्तराल, सामाजिक मान्यताएं शिक्षा में उत्पन्न असमानताओ की पोषक बनीं तथा शिक्षा का स्तरीकरण होता गया। इन असमानताओ पर एक विहंगम दृष्टि आवश्यक है।

स्त्री-पुरूष असमानताएं

स्वतंत्रता प्राप्ति के समय स्त्रियों की साक्षरता दर 7.9 प्रतिशत थी जबकि पुष्षों की 24 9 थी। सन् .1951 की दरें 1981 से बढ़कर क्रमश. 24.82 तथा 46.89 प्रतिशत हो गयी। स्त्री और पुरूष साक्षरता का असमानता सूचकांक 1951-54 तथा 1981 में 33 था। शिक्षा के प्रारम्भिक चरण में लड़कियों का सकल नामाकन अनुपात 1950-51 में 25 प्रतिशत तथा 1984-85 में 74 प्रतिशत हो गया। मुनीस रजा (1984) के अनुसार, "काफी हद तक लडको व लड़कियों के बीच की असमानताए शैक्षिक सुविधाओ तक पहुच की अपेक्षा आर्थिक व व्यावसायिक समस्याओ और सांस्कृतिक पूर्वाग्रह के परिणामस्वरूप है।

अनुसूचित जातियों व गैर अनुसूचित जातियों के बीच असमानता

सामाजिक स्तरण की प्रणाली के कारण जातिगत असमानताएं उत्पन्न हुई। अनुसूचित जातियों के लोग दासोचित काम करते थे। उनको शिक्षा के लायक नहीं समझा जाता था। शिक्षा तथा काम का विभाजन असमानता लाने का सर्वाधिक प्रभावशाली साधन रहा। इस द्विभाजन को स्कूलो में कार्य अनुभव व्यवस्था लागू करके व माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा का व्यवसायीकरण करके समाप्त करने के प्रयत्न किये गये है। विशेष प्रोत्साहन व सुविधाओं के फलस्वरूप कुछ प्रगति तो हुई पर सन्तोषजनक नही है। अनुसूचित जातियों के लिए स्कूल स्तर पर समानता गुणांक मे सुधार हुआ है। 1964-65 में यह 75.5 था जबकि 1982-83 मे 91.2 हो गया। उच्च शिक्षा स्तर पर यह समानता गुणाक सामान्य शिक्षा के सन्दर्भ में 37.4 से बढ़कर 56.1 व व्यावसायिक शिक्षा के सन्दर्भ में 29.3 से बढ़कर 53 4 हो गया।

अनुसूचित जनजातियों व गैर अनुसूचित जनजातियों के मध्य असमानताएं

1981 की जनगणना के अनुसार अनुसूचित जनजातियों की आबादी देश की कुल जनसंख्या का 7.9 प्रतिशत थी। 105 भाषाएं बोलने वाले ये समूह अधिकांशतः उड़ीसा, बिहार, मध्य प्रदेश, आन्ध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, गुजरात तथ राजस्थान में रहते है। जनजातीय विकास में शिक्षा को महत्त्वपूर्ण निर्विष्टि माना गया है। शैक्षिक सुविधाओं का लाभ उठाने के लिए दिये गये विशेष प्रोत्साहनों व सुविधाओं के कारण शिक्षा के

विभिन्न स्तरो पर नामांकन मे वृद्धि हुई है। साक्षरता दर जो 1961 में 8 3 प्रतिशत थी। 1981 मे 16 3 हो गयी। गैर अनुसूचित जनजातियो की तुलना मे अनुसूचित जनजातियो मे नामांकन प्रतिशतता निरन्तर कम होती रहती है। मिशनरियो के प्रयास के कारण उत्तरी-पूर्वी क्षेत्रो की जनजातियों का शैक्षिक विकास मध्य क्षेत्रो की जनजातियो की अपेक्षा अधिक हुआ है।

ग्रामीण-शहरी असमानताएं

ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों मे शिक्षा सम्बन्धी असमानताएं इन क्षेत्रों के सामाजिक-आर्थिक विकास में विषमता का परिणाम हैं। गावों मे निर्धनता व्याप्त है तथा यहां के लोगों का प्रमुख व्यवसाय कृषि है। ग्रामीण क्षेत्रो में साक्षरता दर 1981 में 29.57 प्रतिशत थी, जबकि शहरी परिषद द्वारा आयोजित चौथे अखिल भारतीय सर्वेक्षण के अनुसार ग्रामीण व शहरी क्षेत्रो में सुविधाओ में बहुत अन्तर है। शहर में हर मुहल्ले में विद्यालय उपलब्ध है परन्तु ग्रामीण क्षेत्रो में विद्यार्थियों को दूर से आना पड़ता है तथा प्रशिक्षित अध्यापकों की उचित सख्या भी उपलब्ध नहीं है। इसी वजह से ग्रामीण क्षेत्रों के कमजोर वर्ग के लोग शिक्षा सुविधाओं का पूरी तरह लाभ नही उठा पाते।

क्षेत्रीय असमानताएं

अब तक क्षेत्रीय सामाजिक असमानताओं सम्बन्धी अध्ययनों मे भारत में "राज्य" को विश्लेषण इकाई के रूप मे माना गया है। परन्तु जिला स्तर पर भी यह असमानता अधिक पायी जाती है। प्रादेशिक असमानताएं भी हर समय बनी रहती है तथा विश्लेषण के प्रत्येक पैमाने पर देखी जा सकती हैं।

अत. यह स्पष्ट हो जाता है असमानताए हर जगह व्याप्त हैं। जिन्हें दूर किया जाना अत्याधिक आवश्यक है। इसके लिए हमारे द्वारा जन्य कारण ही मायने रखते हैं। स्पष्ट है कि अन्तर्जात योग्यता या श्रेष्ठता किसी विशिष्ट नस्ल, जाति, धर्म की देन नही है। हम निम्न वर्गों के लोगों को उपलब्ध सुविधाओं में समानता स्थापित करके अधिक अच्छे पुरस्कार की प्राप्ति के लिए समाज के सदस्यो के बीच स्वस्थ प्रतियोगिता की सुदृढ नींव रख सकते है। अत उन कारणों को जानना अति आवश्यक है जो शिक्षा में असमानता को उत्पन्न करने के उत्तरदायी होते हैं।

सामाजिक-सांस्कृतिक कारक

हमारे समाज में यह बात हमेशा से उठती आयी है कि शिक्षा किसे दी जानी चाहिए। गावो में लड़कियों को विद्यालय जाने के लिए प्रोत्साहित नहीं किया जाता जबकि ग्रामीण लड़कों को शिक्षा प्राप्त करने के लिए बाहर तक भेज दिया जाता है। तथा कई बार विद्यालयों की सांस्कृतिक प्रकृति व लोकाचार की समस्या पिछड़ी जाति के बच्चों को स्कूल जाने से रोकती है। फलस्वरूप शिक्षा का सामाजिक स्वरूप जटिलता की ओर अग्रसर होता है तथा असमानताएं जन्म लेती हैं।

निर्धनता

भारत समेत अनेक बहुवादी समाजों की विकास प्रक्रिया मे प्रेक्षित एक महत्त्वपूर्ण लक्षण यह है कि इन विभेदी समूहो के बीच विकास के लाभ असमान रूप से बंटे होते हैं। हम गरीबों को इस योग्य नहीं बना सके हैं कि शिक्षा तक उनकी समान पहुंच कारगर हो सके। अनेक निजी इंजीनियरी एवं चिकित्सा कालेजों व कुछ शिक्षक-प्रशिक्षण कालेजो ने भी प्रवेश के लिए अत्यधिक प्रति व्यक्ति शुल्क लेना शुरू कर दिया है। योग्यता के बजाय विद्यार्थियो को शिक्षा को खरीद सकने की क्षमता के आधार पर नामांकित करना समता के मानदण्ड का उल्लंघन है।

हमारे निर्धन विद्यार्थी प्रशासकों की उदासीन अभिवृत्तियों व कभी-कभी अनाचारो, सीमित संसाधनो तथा अन्य वैयक्तिक असुविधाओ के कारण शिक्षा सुविधाओं का लाभ नहीं उठा पाते फलस्वरूप शिक्षा वर्ग में असमानता उत्पन्न होती है।

शिक्षा का स्तरीकरण

सामान्यत. हमारे देश मे चार प्रकार की शैक्षिक संस्थाएं है– 1. पब्लिक स्कूल जिसमें धनी व्यक्तियों के बच्चे पढ़ते हैं, 2. नगरपालिकाओं, महापालिकाओं, या पचायतों द्वारा संचालित स्कूल जिनमें अत्याधिक निर्धन व्यक्तियो के बच्चे बढ़ते है, 3. सरकार द्वारा संचालित स्कूल, 4 राजकीय सहायता प्राप्त स्कूल जिसमें प्राय मध्यवर्गीय परिवार के बच्चे अधिक सख्या मे पढ़ते हैं। चारों प्रकार के विद्यालयों की मूलभूत विशेषताओं में अन्तर होने के कारण शिक्षा कई वर्गों में विभाजित हो जाती है। वहा उपलब्ध भौतिक व शैक्षिक सुविधाए, वहां के कार्यक्रमो का वातावरण, वहां भाषा प्रवीणता व नैतिकता पर दिये जाने वाले बल आदि में अन्तर होता है। इन विद्यालयों में मिलने वाली शिक्षा की गुणवत्ता में चाहे कोई दृष्य या पाठ्यक्रमीय भिन्नता भले ही नजर न आये परन्तु भिन्न-भिन्न अर्थिक स्थितियों के बालकों के मध्य विभेदकारी सामाजिक नेटवर्क का निर्माण आवश्यक हो जाता है। यह पहलू आगे चलकर बालक के विकास के हर पक्ष को प्रभावित कर सकता है।

प्रशासनिक कारक

शिक्षा मे असमानता की धारा को लाने का महत्त्वपूर्ण श्रेय प्रशासन को भी है। हम जैसे-जैसे विकसित प्रदेशों में उच्च जातियों, पुरूषों और शहरियों से सापेक्षतः कम विकसित प्रदेशो की अनुसूचित जातियो, स्त्रियों तथा ग्रमीणो की ओर आते है, असमानताएं अधिककाधिक बढ़ती चली जाती है। अल्पकालीन आंकड़ों का विश्लेषण इस बात की ओर अधिक दृढ़ता प्रदान करता है। जबकि विकासात्मक नियोजन के पिछले तीन दशको में स्थिति में कोई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन नही हुआ है। विभिन्न समूहों में शैक्षिक असमानताओं का उच्च स्तर मुख्यत. औपनिवेशिक शासन के दौरान सामाजिक पद्धति में निहित विकारों का व वर्तमान विकासात्मक कार्यनीतियों की अशक्तता तथा सीमाओ का मिला जुला प्रभाव है। यद्यपि विकासात्मक कार्यनीतियो का निरूपण करते समय इस बात पर विचार किया गया कि साक्षरता का निम्न सतर देश मे, विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में, स्कूल की सुविधाओं के असमान विस्तार का परिणाम है। कटिबद्धता की कमी व प्रशासनिक उदासीनता हमारी समतावर्धक नीतियों के सफल क्रियान्वयन में बाधक सिद्ध हुई है।

शैक्षिक समानता के प्रति विचारधाराएं

शैक्षिक अर्थशास्त्र मे शिक्षा को वितरण की वस्तु माना गया है व इसे सभी को समान रूप से देने की *संकल्पना की जाती है। भारत में 6 से 14 वर्ष की* आयु तक शिक्षा को आवश्यकता पर आधारित माना गया है। इसलिए कक्षा एक से 8 तक शिक्षा को अनिवार्य व नि.शुल्क बनाने का आदर्श रखा गया है। कुछ लोग उच्च शिक्षा को आवश्यकता पर आधारित वितरण योग्य सामग्री मानते हैं। कुछ उच्च शिक्षा को योग्यता केन्द्रित उपलब्धि मानते हैं। विश्व के सभी देशो का शैक्षिक इतिहास भी इस बात का साक्षी है कि उच्चशिक्षा कभी भी कहीं पर सार्वजनिक रूप में समान रूप से वितरित नहीं हो पाई।

अत: अनेकों कारण विद्यमान है जो शिक्षा में असमानता की विचारधारा को लाने के उत्तरदायी हैं।

शिक्षा में "समानता के अधिकार" के सन्दर्भ में संविधान का योगदान

वैसे तो सर्वप्रथम शिक्षाशास्त्री रूसों ने शिक्षा को सबके लिए समान बना देने की बात कही तथा तत्कालिक आधारिक संरचना सुविधाओं, शिक्षक, अध्यापन अधिगम प्रक्रियाओ के पाठ्यक्रम विषयो के कारण उत्पन्न विषमताओं का बहिष्कार करने की बात कही। हमारे आधुनिक भारतीय संविधान में भी इस अवधारणा पर बल दिया गया तथा भारतीय संविधान के अनेक उपबन्धो में शिक्षा समानता एव विषमता के लिए चिन्ता व्यक्त हुई। संविधान का 45 वां अनुच्छेद 14 वर्ष की आयु के सभी बच्चों को नि:शुल्क शिक्षा देने का आदेश देता है। जबकि 30 वां अनुच्छेद भाषाई

व धार्मिक अल्पसख्यकों को अपनी शिक्षा संस्थाए खोलने व उन्हे चलाने का अधिकार देता है। 46 वां अनुच्छेद समुदाय के अनेक वर्गों मुख्यत. लडकियो, अनुसूचित जनजाति के लोगो के शैक्षिक व आर्थिक हितो के संवर्धन के लिए राज्य को निर्देश देता है।

संविधान की भावना का अनुसरण करते हुए 1950-51 में कमजोर वर्गों के लोगों को शिक्षा का संवर्धन करने के लिए पाठ्यपुस्तकों, लेखन सामग्री व स्कूल पोशाको को निःशुल्क आपूर्ति, मध्याह्न भोजन, छात्रवृत्ति आदि अनेक प्रोत्साहन दिये गये।

पांचवी पच वर्षीय योजना (1974-79) से अनुसूचित जातियों की शिक्षा के लिए चिन्ता में पर्याप्त वृद्धि हुई व उनके विकास के लिए विशेष उपयोजनाएं शुरू की गयीं। उपयोजना की 50 प्रतिशत से अधिक निधि शिक्षा के लिए निर्धारित की गयी।

छठी पंचवर्षीय योजना में अनुसूचित जाति के विकास के लिए अपनाई गयी विशेष घटक योजनाओं में शिक्षा को प्राथमिकता क्षेत्र के रूप में शामिल किया गया।

1979 में कभी न स्कूल जाने वाले बच्चों के लिए (9-14 वर्ष आयु वर्ग) गैर औपचारिक शिक्षा कार्यक्रम शुरू किया गया। राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम, ग्रामीण प्रतिभा खोज योजना के अन्तर्गत छात्रवृत्तियों की व्यवस्था, उच्च व्यावसायिक शिक्षा संस्थानो में अध्ययन हेतु निर्धन छात्रों के लिए योग्यता पर आधारित छात्रवृत्तियां आदि निर्धारित की गयी। विभिन्नताओं को कम करने के लिए प्रोत्साहनों की अपर्याप्तता को अनुभव करते हुए केन्द्र व राज्य सरकारों ने उच्च व्यवसायिक शिक्षा संस्थानों में प्रवेश तथा नौकरियों में भर्ती के लिए अनुसूचित जातियों व अनुसूचित जनजातियों के पक्ष में संरक्षात्मक विभेद की नीति अपनाई है।

1986 में शिक्षा के राष्ट्रीय नीति संकल्प में भी विभिन्न सांस्कृतिक समूहों की व लोगो की विभिन्न शैक्षिक जरूरतें पूरी करके शैक्षिक अवसरों में समानता लाने व समता के सन्दर्भ मे विभिन्नता को प्रोत्साहित करने की सिफारिश की गयी है।

नवोदय विद्यालयों, एकेडेमिक स्टाफ, काजेजों, दूर शिक्षा कार्यक्रमों तथा खुले विश्वविद्यालयों की स्थापना भी सरकार शिक्षा में समानता के रूझान को व्यक्त करते हैं।

अतः यह स्पष्ट है कि सतत प्रयास के माध्यम एवं मिले-जुले सहयोग से शिक्षा में समानता को लाया जा सकता है, तथा शिक्षा की गुणवत्ता को बढ़ाया जा सकता है। अत' आवश्यक है कि हमारा संविधान तथा बुद्धिजीवी वर्ग इस समस्या पर जोरदार चिन्तन करे तथा किसी सुनिश्चित निष्कर्ष की ओर बढ़े। कोठारी आयोग (1964-66) ने इस सम्बध में पर्याप्त विचार किया तथा हमें अपने बहुमूल्य सुझाव भी प्रदान किये हैं। जैसे शैक्षिक विकास में समकरण की नीति, पडोस विद्यालयों, ऋण छात्रवृत्ति आदि।

इस प्रकार से कुछ सुझावों पर विचार किया जा सकता है—

❒ प्रत्येक बालक को अपनी योग्यतानुसार श्रेष्ठतम शिक्षा मिलनी चाहिए अत' धर्म, धन, जाति के आधार पर किसी भी विद्यार्थी को शिक्षा से वचित नहीं करना चाहिए।

❒ पब्लिक स्कूलों मे समाज के सभी वर्गों से सम्बन्धित प्रतिभाशाली बच्चों की एक निश्चित संख्या को अवसर मिलना चाहिए। तथा इन बच्चो का खर्च पूर्णतयः भारत सरकार को उठाना चाहिए।

❒ उच्च शिक्षा उन्हें देनी चाहिए जो इससे लाभान्वित हो सकते हैं। अर्थात जो अपेक्षित योग्यताएं रखते हों।

❒ शिक्षा को रोजगार केन्द्रित होना चाहिए। विद्यालयों में विद्यार्थियों को समय-समय पर शैक्षिक निर्देशन प्रदान किया जाना चाहिए।

❒ वंचित विद्यार्थियों के प्रति भेदभावपूर्ण व उपेक्षापूर्ण व्यवहार तथा कक्षा मे शिक्षण कार्य को लापरवाही से करने के शिक्षक व्यवहार को दण्डनीय बनाना चाहिए।

❒ औपचारिक शिक्षा को अत्यधिक समृद्ध बनाने के प्रयास किये जाने चाहिए तथा इनमें हमारी

सामाजिक-सास्कृतिक तथा कुछ विशेष सन्दर्भ में शैक्षिक कार्यक्रम अपनाए जाने चाहिए तथा विद्यालयों में दृष्य-श्रव्य सामग्री उपलब्ध होनी चाहिए जिससे छात्रों को यह कार्यक्रम कैसेट, टी वी. आदि पर दिखाया जा सके।

❒ विद्यालयों में उपचारात्मक शिक्षण तथा पूरक शिक्षा कार्यक्रम संचालित होने चाहिए ताकि शैक्षिक निस्पत्ति से सम्बन्धित न्यूनतम मानदण्ड प्राप्त किये जा सके।

❒ जिनकी शिक्षा किसी कारणवश अूधरी रह गयी हो तथा जो शिक्षा के प्रति जागरूक है, उन्हें भरपूर प्रोत्साहन तथा सुविधाएं मुहैया करायी जानी चाहिए।

अत अन्त में हम कह सकते हैं कि यह कार्य समाज के प्रत्येक वर्ग, जाति, धर्म का है कि हम शिक्षा में आयी विषमताओं को मिटाने का प्रयास करे तथा मिलजुल कर शिक्षा में समान अधिकार के स्वप्न को साकार करें। ❒❒

प्रवक्ता- शिक्षा संकाय,
म. मा. स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
कालाकांकर, प्रतापगढ़
(उ. प्र.)

प्राथमिक स्तर के पाठ्यक्रम में मूल्यों की शिक्षा

❑ श्रीमती विभा निगम

आज भारत मे प्रत्येक क्षेत्र में इस विषय पर दुःख एव चिन्ता प्रकट की जा रही हैं कि लोगों के तथा विशेष रूप से नई पीढ़ी के जीवन में मूल्यों का ह्रास होता जा रहा है। बढ़ती हुई अनुशासनहीता, भ्रष्टाचार तथा अनैतिकता जीवन मूल्यों के ह्रास की साक्षियाँ हैं। सामाजिक और नैतिक मूल्यों के कमजोर पड़ते जाने से सामाजिक और नैतिक संघर्ष पैदा हो रहे हैं। वर्तमान परिस्थितियों को देखते हुए यह अत्याधिक महत्वपूर्ण है कि हम अपनी शिक्षा प्रणाली को उचित रूप से मूल्योन्मुख करें। हमें इस बात पर जोर देना चाहिये कि शिक्षा के सभी स्तरों पर विद्यार्थियों के मन में उचित मूल्यों को बैठाने की ओर ध्यान दिया जाये ताकि देश का भावी मार्ग प्रस्तुत हो।

मूल्यों के संदर्भ में शिक्षा आयोग (1964-66) के प्रतिवेदन में भी कहा गया है—"स्कूल पाठ्यचर्या में एक गंभीर त्रुटि यह है कि इसमें सामाजिक, नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यो की शिक्षाकी व्यवस्था नही की गई है। हमारी सिफारिश है कि जहां कही सम्भव हो बडे-बड़े धर्मो के नीति सम्बन्धी उपदेशो की सहायता से सामाजिक, नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों की शिक्षा देने का जागरूक और संगठित प्रयत्न किया जाये।"

शिक्षा आयोग का यह कथन भी बिल्कुल सत्य है कि "भारत के भाग्य का निर्माण उसके विद्यालयों मे हो रहा है।" आज के बालक ही कल के नागरिक है अतः हमें जिस प्रकार का भारत बनाना है उसकी शुरूआत विद्यालयों से ही होनी है। विद्यालय एक लघु समाज है और बड़े समाज में भली प्रकार समायोजित हो सकने का यह प्रशिक्षण स्थल है। इस व्यस्त समाज मे जब शिक्षा का महत्त्वपूर्ण दायित्व विद्यालयों पर आ पड़ा है तो जीवन मूल्यों के विकास की ओर ध्यान देना भी शालाओ का महत्त्वपूर्ण कार्य हो गया है। शालाओं के पाठ्यक्रम में प्राथमिक स्तर से ही मानवीय मूल्यों के विकास हेतु प्रयास किये जाने चाहिए। बाल्यकाल ऐसी अवस्था है जब बालक व्यवहार की निरन्तरता से अपने आपको ढालता है, उसका मन व मस्तिष्क इतना स्वच्छ होता है कि हर सुझाव को क्रियान्वित करने को तैयार हो जाता है। फ्रायड तथा उसके अनुयायियों ने बाल्यावस्था को बालक का निर्माणकारी काल मानकर इस अवस्था को अत्याधिक महत्त्व दिया है। ब्लेयर, जोन्स तथा सिम्पसन ने भी कहा है, "बाल्यावस्था वह समय है जब व्यक्ति के आधारभूत दृष्टिकोणों, मूल्यों और आदर्शों का बहुत सीमा तक निर्माण होता है।"

जीवन-मूल्य एक प्रकार के स्थाई विश्वास होते हैं अतः प्रारम्भ में एक बार जिन मूल्यो का बीज बालक में बो दिया जाता है उनमें परिवर्तन करना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य हो जाता है। इस दृष्टि से प्राथमिक शिक्षा प्रदान करने वाले शिक्षकों पर बालकों का निर्माण करने का महान उत्तरदायित्व है, उनका यह प्रमुख कार्य होना चाहिये कि विद्यालय का समस्त वातावरण इस प्रकार का बनायें कि बच्चो में उचित मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा हो। मानवीय गुणों का बच्चों के मस्तिष्क में प्रारम्भ से ही विकास किया जाना चाहिये जैसे—

❑ ईश्वर के प्रति प्रेम

- निर्भयता
- स्वच्छता
- बड़ो के प्रति आदर भावना
- प्रेम की भावना
- सुव्यवस्था
- सामाजिक चेतना
- दानशीलता
- दया
- सत्य
- अपरिग्रह
- दूसरो को नुकसान न पहुचाना
- सहन शक्ति
- देश प्रेम
- आत्म-विश्वास
- अहिंसा

उपरोक्त सभी मूल्यों को विकसित करने के लिये प्रत्यक्ष शिक्षण की ही आवश्यकता नहीं है, इन्हें अनौपचारिक वातावरण के माध्यम से भी सिखाया जा सकता है। विद्यालय वातावरण, शिक्षकों का व्यक्तित्व, तथा व्यवहार और विद्यालय में प्रदान की गई सुविधायें मूल्यों के विकास में प्रमुख स्थान रखती है। चूंकि शिक्षक का प्रभाव बालकों पर अवश्य पड़ता है अतः जो भी नीति परक मूल्य हों जिन्हें छात्रों को आत्मसात कराना है, उन्हें पहले शिक्षकों को व्यवहार में लाना चाहिये। प्राथमिक स्तर पर बच्चो मे अच्छे मूल्यों के विकास के लिये विद्यालयों मे विभिन्न क्रियाओं का आयोजन किया जाये किन्तु इनकी योजना बड़ी सर्तकता से बनाई जाये, तथा सभी बच्चों को उसमें भाग लेने के लिये प्रोत्साहित किया जाये। मूल्यों की शिक्षा के लिये प्राथमिक स्तर पर दो प्रकार की विधियों को अपनाया जा सकता है।

1. प्रत्यक्ष विधियों द्वारा मूल्यों की शिक्षा
2. परोक्ष विधियों द्वारा मूल्यों की शिक्षा

प्रत्यक्ष विधियों द्वारा मूल्यों का विकास - प्रत्यक्ष विधियो के अंतर्गत नियमित पाठ्यक्रम में कुछ अध्याय मूल्यो की शिक्षा के लिये सम्मिलित किये जा सकते हैं इसके अतिरिक्त मूल्यो का विकास नियमित पाठ्यक्रम के विषयो के माध्यम से भी किया जा सकता है, जैसे—

भाषाओं के पाठ्यक्रम में

महान सन्तो तथा महापुरूषों की जीवनियां एवं उनके द्वारा लिखी गई नीति सम्बन्धी कहानियां। महान कवियों एवं लेखकों की कवितायें तथा पाठ उस आदर्शों के विवरण के साथ दिये जायें जो उन्होंने अपने जीवन में ग्रहण किये हों। व्यवहार में, पाठ में आई कहावतों एवं मुहावरो के प्रसग में पाठों में आये नीति कथनों के प्रसंग में, विशिष्ट सांस्कृतिक या सामाजिक प्रथाओं, मान्यताओं आदि की वाचक उक्तियों के प्रसंग में, किसी पाठ में आये हुये कुछ विशिष्ट संवादों के प्रसंग आदि से मूल्यों की शिक्षा मिलती रहती है। मूल्यों की शिक्षा से लिये विषयवस्तु का चयन करते समय इस बात का ध्यान रखें कि वह बालक की शारीरिक तथा मानसिक आयु के अनुरूप हो। यह भी ध्यान रखा जाये कि विषयवस्तु के प्रस्तुतीकरण में यह आभास नही मिलना चाहिये कि कोई नैतिकता बालकों पर थोपी जा रही है। भाषा सरल, सहज तथा प्रवाहमय हो।

सामाजिक विषय के पाठ्यक्रम में

इतिहास विषय में समाज सुधारकों एव देश भक्तों की जीवनियां तथा उनके अच्छे कार्यों का आलोचनात्मक श्लेिषण किया जाये। इतिहास का अध्यापन उदाहरणों द्वारा किया जाये। सत्य, दया, प्रेम, धैर्य, सहानुभूति, निर्भयता, अहिंसा, दानशीलता, क्षमा, उदारता, साहस आदि मानवीय मूल्यों का विकास इतिहास से अनेक उदाहरणों को उद्घृत कर लिया जा सकता है।

भूगोल— सम्पूर्ण पृथ्वी एक है और इस पर निवास करने वाली एक जाति है वह है मानव जाति। अतः भूगोल स्थानीय संकुचित दायरे से निकाल कर संकुचित भेदभाव का निवारण कर "वसुधैव-कुटुम्बकम्" के उच्च आदर्श की स्थापना करता है। भूगोल विषय में स्वाभाविक

रूप से मन में विश्व मानव के प्रति आदर, प्रेम, सहानुभूति, सहयोग, सहनशीलता आदि गुणो को प्रभावी ढग से विकसित किया जा सकता है। जनतन्त्र के वास्तविक स्वरूप और विविधता में एकता का ज्ञान इस विषय द्वारा बालकों को आसानी से दिया जा सकता है। भूगोल के माध्यम से प्रकृति प्रेम व प्रकृति निश्छल सौंद्रर्य के प्रति रसानुभूति का भाव उत्पन्न करना अत्यन्त सहज और स्वभाविक होगा।

विज्ञान के पाठ्यक्रम में

महान वैज्ञानिकों की जीवनियो का अध्ययन कराकर बालको में महत्वाकाक्षा, कठोर परिश्रम, साहस, लगन, तर्कशक्ति, ईमानदारी, दृढ-विश्वास, निडरता, आत्म-विश्वास आदि मूल्य विकसित किये जा सकते हैं। बालक को विभिन्न पुष्पों एवं पंक्तियों के संकलन, निरीक्षण आदि क्रियाओं को करने से उसमे सौंद्रर्यबोध एवं जिज्ञासा प्रवृत्ति विकसित होती है। पेड़-पौधों एवं पालतू जानवारों की उपयोगगिता का पाठ पढ़ाकर बालक मे परोपकार के गुणों को विकसित किया जा सकता है। विज्ञान के द्वारा स्वच्छता, बीमारियों के कारण, उनसे बचाव आदि के साथ-साथ व्यक्तिगत एवं सामुदायिक स्वास्थ्य का अध्ययन कराकर सम्पूर्ण मानव जाति के स्वास्थ्य के लिये प्रेरित किया जा सकता है जिससे वैज्ञानिक दृष्टिकोण, आधुनिकीकरण एवं आध्यात्मिकता में समायोजन स्थापित करना सरल होगा।

शिल्पकला एवं रचनात्मक क्रियाओं के पाठ्यक्रम में

विभिन्न प्रकार की शिल्प कलाओं के माध्यम से भी रचनात्मक मूल्यों का विकास किया जा सकता है। रचनात्मक कार्य जिनमें बेकार बची सामग्री के उपयोग, फूल बनाना, गुड़िया बनाना, चित्रकारी आदि के माध्यम से बच्चों में खाली समय के सदुपयोग, आत्मविश्वास सहयोग, मित्रता, आत्म-निर्भरता आदि मूल्यों का विकास कर सकते है। यह मितव्ययता के मूल्य विकास मे एक प्रभावी कदम होगा।

श्रव्य-दृष्य साधनों द्वारा मूल्यों की शिक्षा

दूरदर्शन, रेडियो, फिल्म आदि जैसे सशक्त माध्यम से सैद्धान्तिक ज्ञान की व्यावहारिक क्रियान्विति, जीवन-मूल्यो की शिक्षा के प्रसार में प्रभावी भूमिका अदा करते है। दूरदर्शन की तुलना मे रेडियो की प्रभावशीलता कुछ कम है। फिल्म भी भारतीय मूल्यों को विकसित करने में आधार का काम करती है।

नैतिक शिक्षा के पाठ्यक्रम में

प्राथमिक स्तर की सभी कक्षाओ मे नैतिक शिक्षा के लिये विशिट व्यवस्था की अत्याधिक आवश्यकता है। इसके लिए श्री प्रकाश समिति ने ठीक ही सिफारिश की है कि ''सप्ताह में एक या दो घंटे नैतिक मूल्यों के शिक्षण के लिए दिये जाने चाहिये।''

प्राथमिक स्तर पर संतों, धार्मिक नेताओ तथा प्रख्यात व्यक्तियों की जीवनियां उनके विचार, प्रवचन तथा प्रमुख घटनाओं से सम्बन्धित रूचिकर कहानिया, विश्व के सभी धर्मों की कहानियां एवं प्रसंग सुनाये जाये।

परोक्ष विधियों द्वारा मूल्यों का विकास

अच्छे मूल्यो के विकास विकास मे विद्यालय का वातावरण, शिक्षकों का व्यक्तित्व एव आचरण तथा स्कूल मे दी जाने वाली सुविधाओं का प्रभाव तो पड़ता ही है साथ ही विद्यालय में सम्पन होने वाली क्रियायें मूल्यो के विकास में महत्त्वपूर्ण योग देती हैं। कुछ महत्त्वपूर्ण क्रियायें इस प्रकार हैं–

- ❐ दैनिक प्रार्थना– इस दैनिक प्रार्थना के कार्यक्रम से बालको में विभिन्न मूल्य जैसे ईश्वर, प्रेम, दया, क्षमा, सत्य, अहिसा, कर्त्तव्य परायणता आदि मूल्यो का विकास होगा।
- ❐ दो मिनट का मौन
- ❐ नैतिक विषयो पर वार्तायें
- ❐ दिवस का सुविचार
- ❐ धार्मिक पुस्तकों के कुछ अंशों के प्रवचन– इसमें सभी धर्म की पुस्तकों के अंश हों तथा वह सरल भाषा में सुनाये जाये।

- समाज-सेवा कार्यक्रमों मे भाग लेने से बच्चों में त्याग, परोपकार, नेतृत्व, आपस मे मधुर सम्बन्ध होना, सहयोग, प्रत्येक कार्य में आगे आना, दीन दुखियो के प्रति सहानुभूति, श्रम के प्रति आदर भावना तथा मित्रता आदि मूल्यों का विकास होता है। इसके अन्तर्गत आने वाले विभिन्न कार्यक्रम इस प्रकार है—

(अ) **विद्यालनय में सामुदायिक जीवन**– इसके लिए सामूहिक भोज, मेल, प्रदर्शनी आदि का आयोजन किया जाये।

(ब) ***सामुदायिक सेवा कार्यक्रम***– *इसमें बड़े बच्चे अपने* से छोटे बच्चों को शिक्षित कर सकते हैं।

(स) **श्रमदान**– बच्चों से अपने विद्यालय की सफाई कराना, वृक्षारोपण, विद्यालय में बागबानी आदि का कार्य बच्चों की टोली बनाकर किया जा सकता है।

पाठ्य-सहगामी क्रियायें

- शारीरिक क्रियायें एव खेलकूद— इन क्रियाओं के माध्यम से सामाजिक, नैतिक, आध्यात्मिक तथा राष्ट्रीय मूल्यों का विकास होता है। शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य के प्रति आदर की भावना, सामूहिकता की भावना, नेतृत्व, आज्ञापालन, नियमितता, सहयोग, दया, क्षमा आदि मूल्य विभिन्न खेलो के माध्यम से अनायास ही विकसित हो जाते हैं।
- साहित्यिक क्रियायें— इन क्रियाओं के अंतर्गत देश प्रेम, जानवरों के प्रति प्रेम, आज्ञापालन ईमानदारी, कर्त्तव्यपालन, कर्त्तव्यनिष्ठा, स्वास्थ्य के नियम व आदतें आदि कुछ विषय देकर बच्चों को बोलने एवं कविता तथा लेख आदि पढ़ने और लिखने के अवसर दिये जायें जिनसे बच्चों में आत्मविश्वास, नेतृत्व, समानता तथा सहयोग आदि मूल्यो का विकास होगा।
- चित्र, चार्ट तथा पोस्टर-सन्तो, नेताओ तथा महान व्यक्तियों के महत्वपूर्ण श्लोकों, नारों तथा उक्तियो को विद्यालय की कथाओं और बरामदों मे लगाया जाये, यह उन्हें कुछ उद्देश्यपूर्ण कार्यक्रमों को करने के लिये बहुत प्रभावित कर सकते हैं। सांस्कृतिक एवं धार्मिक पर्वो पर आयोजित किये जा सकते है। इन कार्यक्रमों में भाग लेने से बच्चो मे सौश्न्दर्य के प्रति प्रेम, "वसुधैव-कुटुम्बकम" की भावना, एकता, ईमानदारी, न्याय, सहयोग तथा सभी धर्म एवं संस्कृतियों के प्रति प्रेम की भावना विकसित होगी।

सम्पूर्ण कार्यक्रम को प्रभावी बनाने में शिक्षकों की महत्वपूर्ण भूमिका हैं अत शिक्षकों को इनके आयोजन में कुछ विशेष बातों को अवश्य ध्यान मे रखना चाहिये।

1 आक्रोश की भावना न रखे।
2. छात्रों को अनावश्यक दण्ड न दे।
3. आपस में द्वेष की भावना का निष्कासन करें।
4. अध्यापाकों का दृष्टिकोण निर्पेक्ष हो, किसी भी धर्म की निन्दा न करें।
5. शिक्षक बच्चो पर केवल कोरे आर्दश न लादें वरन स्वयं अच्छे मूल्यो को व्यवहार में लायें। अर्थात शिक्षकों की "कथनी तथा करनी में अतर न हो।"

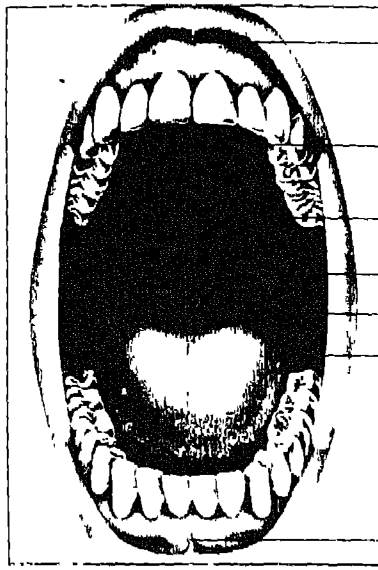
नैतिक कार्यों के प्रति आगे बढ़ने मे बच्चों की सहायता के लिए उनके आचरण तथा व्यवहार का मूल्यांकन भी प्रेरणादायक होगा। यदि हम मानवीय मूल्यों के प्रति छात्रों में अटूट विश्वास उत्पन्न कर सकें और प्रभावी ढंग से उपयोग कर सकें तो उस स्तर को प्राप्त कर लेगे जिसकी हमारी शिक्षा पद्धति से अपेक्षा की जाती है। वह अपने आप में सचमुच ही शसक्त और पूर्णत प्रभावशाली है।

डी. ई. आई, शिक्षा संकाय
दयालबाग, आगरा

हमारे दांत

❑ डा. कमलेश डुडेजा

ORAL STRUCTURE



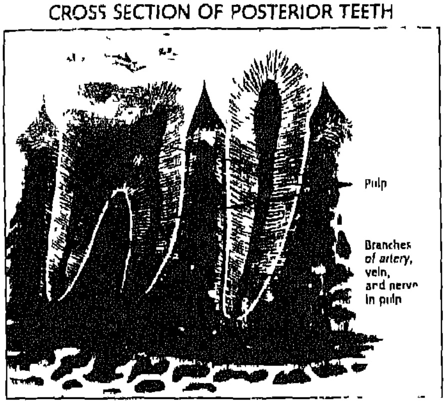
जैसा कि आप जानते हैं कि दांत हमारे शरीर का अभिन्न अंग हैं। ये न केवल चेहरे की सुन्दरता बनाए रखते हैं बल्कि हमारे खाने के काम आने के साथ-साथ हमारी बातचीत पर भी असर डालते हैं। शरीर की स्वच्छता के साथ-साथ दांतों की स्वच्छता का ध्यान रखना भी अत्यन्त आवश्यक है जिससे दाती की उम्र बनी रहे। हमारे दांतों की बनावट निम्न प्रकार होती है।

जीवनकाल में दो प्राकर के दांत आते हैं। दूध के दात यानि (Primary or milk teeth) जो 6 महीने की आयु में आने शुरू होते हैं और ढ़ाई वर्ष की अवस्था में पूरे हो जाते है। संख्या में दूंध के दांत बीस होते हैं। यह क्रमश. सामने के दांत (incisors, canrines) जिनकी संख्या बारह और पीछे के दांत यानि कि दाढ़ें (molars) जो संख्या में आठ होती हैं। दूध के दांत आकार में स्थाई दांतों से छोटे होते हैं और उनका रंग भी स्थाई दांतों से अधिक सफेद होता है। दूसरे प्राकर के दांत स्थाई दांत होते हैं। ये दांत संख्या में बत्तीस होते हैं। छह वर्ष की आयु में सबसे पहले पहली स्थायी दाढ़ आनी शुरू होती है जो दूध की दूसरी दाढ़ के पीछे दिखाई पड़ती है और बहुधा दूध की दाढ़ का भ्रम देती है। तत्पश्चात सामने के दांतों का क्रम प्रारम्भ होता है। इस समय दूध के दांत हिल कर गिरने शुरू होते हैं और स्थायी दांत उनका स्थान लेना प्रारम्भ कर देते हैं। ये स्थायी दांत आकार में दूध के दांतों से बड़े होते हैं और रंग हल्का पीलापन लिये होता है। दूध की दाढ़ों का स्थान (premolars) लेते हैं और स्थायी दाढ़ें, सभी दूध की दाढ़ो के पीछे निकलती हैं। स्थायी दाढ़ों का सिलसिला बारह वर्ष तक चलता है जबकि सिवाय अक्ल दाढ़ के सभी दांत व दाढ़ निकल आते हैं। अक्ल दाढ़ चूंकि सोलह वर्ष के पश्चात् निकलनी शुरु होती है इसलिए इसे अक्ल दाढ़ के नाम से पुकारा जाता है अन्यथा

अक्ल से इसका कोई सबध नही होता।

प्रत्येक दात में तीन् प्रकार की तहें होती हैं। ऊपरी तह जो सबसे सख्त होती उसे (enamel) कहते हैं। यह तह सबसे सफेद भी होती है दूसरी तह को (dentin) कहते हैं जो (enamel) से नर्म होती है और शरीर की हड्डी के समान सख्त होती है। इसका रंग (enamel) से थोड़ा पीला या भूरा होता है। तीसरी अर्थात भीतरी तह को (pulp) कहते हैं। इस तह में रक्त की नाड़िया तथा नाड़ी तन्तु रहते हैं। यह (pulp) ही दांत को जीवन प्रदान करती है। दांत जो मुंह में दिखाई देते हैं उस भाग को (crown) कहा जाता है। उससे बड़ा भाग हड्डी के अन्दर होता है जो जड़ या (root) कहलाता है। यह जडे सामने के दांतों में केवल एक-एक ही होती हैं, परन्तु दाढ़ों में जड़ों की संख्या दो या तीन होती है।

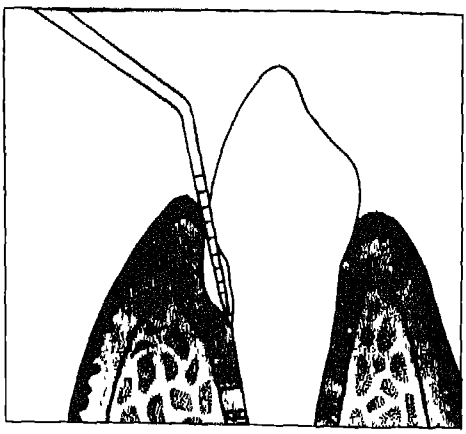
CROSS SECTION OF POSTERIOR TEETH



दूध के दांत जब निकलने शुरू होते हैं तो कई बार बच्चो को दस्त लग जाते हैं या कभी-कभी ज्वर भी हो जाता है। बच्चा कोई भी वस्तु मुंह में डाल कर उसे काटने का प्रयत्न करता है। ऐसी अवस्था में बच्चों को खेलने के लिए रबर के खिलौने देने चाहिएं। कभी-कभी बच्चे को इतनी खुजली (irritation) होती है कि वह सिर मारने की कोशिश करता है। दूध के दांत जब गिरते हैं तभी स्थायी दांत निकलते हैं। कभी-कभी दूध के दांत स्थायी दांतों के निकलने से बहुत पहले गिर जाते हैं। ऐसी अवस्था मे इन्तजार करने के अतिरिक्त और कुछ इलाज नहीं होता। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि स्थायी दांत बनता ही नहीं है और परिणाम यह होता है कि दूध का दांत नहीं गिर पाता। इस प्रकार की अवस्था भी आ जाती है कि स्थायी दांत निकल आता है और दूध का दांत नही गिरता। ऐसे मे बच्चों को डाक्टर के पास ले जा कर दूध का दांत निकलवा देना चाहिए जिससे स्थायी दांत आपनी जगह बना सके। स्थायी दांत जब आते हैं तो साधारणतया थोड़े बड़े आते हैं और कुछ टेढ़े आते हैं इसका कारण यह होता है कि दात एक बार बन जायें तो उनका आकार नहीं बदलता मगर जबड़ा उम्र के साथ-साथ बढ़ता जाता है और जैसे-जैसे जबड़ा बड़ा होता जाता है यह स्थायी दांत अपने स्थान पर आ जाते हैं।

अब प्रश्न यह उठता है कि दांतो की देखभाल क्यों और कैसे की जाए। दांतों की खूबसूरती बनाये रखना और शरीर को स्वस्थ्य रखने के लिए दांतों की देखभाल करना अनिवार्य हो जाता है। दांत भोजन को काटने और चबाने के काम आते हैं और चबाते समय लार (saliva) भोजन की पाचन क्रिया भी प्रारम्भ कर देता है। अधचबा भोजन पचने में बाधा डाल सकता है और शरीर को वह पौष्टिकता नहीं देता जो पूरी तरह से चबा भोजन दे पाता है। इसलिए कहा जाता है भोजन को अच्छी तरह चबा-चबा कर ही खाना चाहिए। यह नहीं भूलना चाहिए कि आमाशय मे दांत नहीं होते जो मुंह का कार्य कर सके। स्वस्थ दांत ही भोजन को

भली-भांति चबा सकते हैं। दांतों में कीड़ा लगना एक आम बीमारी है। भोजन के पश्चात यदि दांतो को साफ न किया जाए तो जीवाणु जो, मुंह में हमेशा रहते हैं, मौका पाते ही अपना काम शुरू कर देते हैं। भोजन के कुछ अंश जो मुंह में रह जाते हैं, इन जीवाणुओं के प्रभाव से सड जाते हैं और उनसे निकले एसिड दातो के (enamel) को गलाना शुरू कर देते हैं और दांतों में छेद कर देते हैं, जो बढते-बढ़ते (dentin) और फिर (pulp) तक पहुंच जाते हैं और दात में पीड़ा होने लगती है या फिर दांतों की जड़ों में फोड़ा बन जाता है। कभी-कभी यह फोड़ा मसूड़ों से निकल कर उसमें से मवाद निललने लग जाती है या फिर मुह में सूजन भी आ जाती है और हालत (acute) होने से बुखार भी आ जाता है। मुंह में दुमरी मुख्य बिमारी है। मसूड़े की बिमारियां जिसमे यदि यह भोजन के अंश फंसे रह जाए तो मसूड़ों के गल जाने की सम्भावना हो जाती है। जो बढ़ते-बढ़ते हड्डी को भी गला देते हैं। इसमें दांत ढ़ीले पड़ कर गिर भी जाते हैं।



Periodontal probe measures pocket depth for

दांतो को इस प्रकार की बीमारियों से बचाने के लिए सबसे आवश्यक है कि इन्हें साफ रखा जाए। खाने के बाद अच्छी तरह साफ पानी से कुल्ला कर लेना चाहिए। रात को सोने से पहले ब्रुश करना भी बहुत आवश्यक है। क्योंकि जो भी भोजन के अंश दांतों मे फंसे रहते है, रात को हमारे सो जाने के बाद जीवाणुओं को अवसर मिल जाता है कि वे आराम से अपना काम कर सके। इसलिए सुबह ब्रुश करना तो ठीक है मगर रात को ब्रुश न करना एक बहुत बड़ी भूल है। भोजन के पश्चात मिठाई के स्थान पर फल या सलादखाना अधिक अच्छा है। ये पदार्थ स्वास्थ-वर्धक होने के साथ-साथ दांतों को साफ करने का काम् भी करते हैं। बच्चे जब बहुत छोटे होते है और स्वयं ब्रुश नहीं कर सकते उस समय माता को चाहिए कि जैसे ही बच्चे के दात निकलने प्रारम्भ हो वह एक नरम व साफ कपड़े से प्रतिदिन बच्चे के दांत साफ करें। समय-समय पर दांतों के डाक्टर से भी जाच करवा लेनी चाहिए। यह जांच वर्ष में एक बार जरूर करवानी चाहिए।

यह भी देखा गया है कि कभी-कभी स्थायी दात टेढ़े-मेढे आने शुरू हो जाते है। थोडा बहुत टेढ़ापन स्वतः ही ठीक हो जाता है। जैसे-जैसे जबड़ो का आकार थोड़ा बड़ा होता है तो ये दांत अपने आप ही ठीक स्थान पर आ जाते हैं। दांतो के टेढ़े होने का एक कारण यह भी होता है। कि दूध के दांत गिरने से पहले स्थायी दांत आ जाते है। ऐसा होने की दशा में दूध के दांत निकलवा देने चाहिए। कभी-कभी यह भी होता है कि जबड़े का आकार छोटा होता है और स्थायी दांतों का आकार अधिक बड़ा होता है। ऐसी दशा में कभी-कभी कुछ स्थायी दांतों को भी खोना पड़ता है जिससे बाकी के दात ठीक स्थान पर आ सकें। इस कार्य के लिए भी दातों के डाक्टर की सलाह आवश्यक है। इस प्रकार के इलाज को (orthodentic) इलाज कहा गया है जिसमे 2 से 3 वर्ष का समय लगना स्वभाविक है।

दांतों को साफ करने के लिए एक अच्छा ब्रुश भी होना चाहिए। ब्रुश ऐसा ही जो मसूड़ों को क्षति न पहुंचाए उसके (brisels) गोलाकार हो और ब्रुश (head) अधिक बड़ा न हो। ब्रुश करना मसूड़ो से शुरू करके दांत की तरफ बढ़ना चाहिए न कि (horrzental di-

rection) दातों को बाहर भीतर सब तरफ से साफ करना चाहिए। दात टेढ़े मेढ़े होंगे तो उनकी सफाई करनी मुश्किल होती है क्योंकि ब्रुश सब स्थानों पर पहुंच नही पाता। दातो के डाक्टर की सहायता से इनको सीधे और अपने स्थान पर करा लेना अत्यत आवश्यक है।

विचार करने योग्य बात यह है कि भोजन किस प्रकार का होना चाहिये। पुराने समय में भोजन बहुधा कच्चा ही होता था। जैसे-जैसे हम सभ्य होते गये भोजन मे भी बदलाव आता गया। आधुनिक भोजन जैसे चाकलेट, बिस्कुट, केक, ब्रेड आदि वस्तुए दांतो में चिपकी रह जाती है जिनके ऊपर जीवाणु पनपते हैं और दंत क्षय पैदा कर देते हैं। बच्चो को इन. वस्तुओं से बंचित तो नहीं रखा जा सकता परन्तु आवश्यकता इस बात की है कि यह ध्यान मे रखा जाए कि ऐसी वस्तुओ के सेवन के पश्चात बच्चो से कहा जाए कि वे अच्छी तरह से कुल्ला कर ले। बच्चे ही नहीं बड़ो को भी इस नियम का पालन करना चाहिए। इन वस्तुओ का अत्याधिक सेवन नहीं करना चाहिए।

मसूड़ों की बीमारी साधारणतया बच्चो मे नहीं होती। यदि कभी बच्चे के मसूडो से खून निकलना शुरू हो भी जाए तो गर्म पानी में नमक डाल कर कुल्ला करना चाहिए। पानी मे फिटकरी डाल कर कुल्ला करना भी लाभदायक सिद्ध होता है। यदि दांतों में कीड़ा लगने के कारण दर्द हो तो लौंग का सिरा तोड़ कर खोखली जगह में भरनें से दर्द समाप्त जो जाता है। यह इलाज नहीं प्राथमिक सहायता है जल्द से जल्द डाक्टरी जाच आवश्यक है।

यह सब बातें माताओं के अलावा अध्यापकगण भी कक्षा में छोटे बच्चो को अच्छी तरह समझा सकते है। यदि कम उम्र मे ही बच्चों को सफाई की आदत पड़ गई तो न उनके दात जल्दी गिरेंगे न ही आसानी से किसी घातक बिकारी का शिकार बनेंगे। इसलिए प्रकृति की इस अदभुत भेंट को सचित रखिये। ☐☐

सी-51,
साउथ मोती बाग
नानक पुरा, नई दिल्ली

दूरदर्शन का छात्रों पर बढ़ता प्रभाव

❒ रजनी शर्मा

दूरदर्शन का अर्थ है दूर की घटनाओं को आंखों से देखना, और चरित्र का अर्थ है अपने में ऐसे गुणों का समावेश जो समाज मे मान्य हो और जो देखने सुनने मे हितकर हो।

आज लगभग सभी छात्र लगभग टी. वी. देखते है। यदि उनके अपने पर टी. वी. न हो तो विद्यालय में, पड़ोसियों के घर, पंचायत घर या सामुदायिक केन्द्रों पर वह दूरर्शन के कार्यक्रम देखते हैं या यूं कह लीजिए कि शायद ही कोई छात्र ऐसा होगा जो दूरदर्शन के प्रभाव से अछूता हो।

दूरदर्शन सप्ताह के सातो दिन मनुष्य का मनोरंजन, चरित्र निर्माण तथा ज्ञानवर्धन करता है। दूरदर्शन संसार के विभिन्न देशों और भारत के विभिन्न प्रांतो का हमसे वहां पंहुचे बिना ही परिचय करवाता है। टी.वी हमारे छात्रों को वहां की संस्कृति, वेश-भूषा, तीर्थस्थलों, इमारतों, धार्मिक व राजनीतिक स्थलो व महान व्यक्तियो से साक्षात्कार तथा उनका सचित्र परिचय देकर हमारे छात्रों के ज्ञान का विस्तार करता है। विभिन्न प्रकार के नाटक, नृत्य, संगीत, खेल-कूद कार्यक्रम तथा प्रश्न मंच जैसे कार्यक्रम छात्रों का मनोरंजन तो करते ही हैं साथ ही साथ उनके व्यक्तित्व मे उन गुणों व आदतो का समावेश भी करते है जोकि उनके चरित्र को ऊंचा उठाने मे महत्त्वपूर्ण भूमिका भी अदा करते है। दूरर्शन द्वारा प्रत्येक घटना साकार तथा प्रत्यक्ष रूप में सामने आ जाती है जो हमारे कोमल हृदय छात्रो को एकदम प्रभावित करती है।

दूरदर्शन छात्रों का ज्ञानवर्धन करने वाला सदगुरू, मनोरंजन करने वाला सच्चा साथी ही नहीं वरन् भविष्य व चरित्र का निर्माण करने वाला शुभचिंतक भी है। अर्थात् दूरदर्शन हमारे छात्रों का मित्र, पथ प्रदर्शक और एकात का सार्थक साथी भी है। भारत जैसे विशाल देश को एक सूत्र मे बांधने का आवश्यक कार्य भी दूरदर्शन करता है। बच्चों को केवल स्कूली शिक्षा देना ही दूरदर्शन का एकमात्र उद्देश्य नही है बल्कि इसका मुख्य उद्देश्य है छात्रो को ऐसी बहुमुखी शिक्षा देना जो मानव चरित्र तक को बदल देती है। जहां दूरदर्शन से जीवन में सरसता आई है वहीं धार्मिक व राष्ट्रीय भावनाओ और खेल प्रेम को भी विभिन्न कार्यक्रमों द्वारा उकसाया जाता है।

प्रत्येक छात्र का मन तीर्थ-स्थलो, ऐतिहासिक स्थानो को देखने का करता ही है। उनका मन भी सागर की लहरें देखने को मचलता है, काश्मीर की वादियों मे घूमने को तरसता है। वह गरीब छात्र जो विदेश भ्रमण की बात तो दूर भारत भ्रमण तक के लिए आर्थिक रूप से अक्षम है, दूरदर्शन के माध्यम से ही अपनी जिज्ञासा को शांत कर लेता है। अनेकों कार्यक्रम युवा हृदय छात्रों को दिल की गहराई तक छू जाते है। कितने ही कार्यक्रम ऐसे है जो छात्रो में सुभाष और भगतसिंह सी देशभक्ति की भावना जागृत करते हैं, कितने ही उनमे गांधी सी सच्चाई, ईश्वरचन्द्र सी ईमानदारी और पटेल जैसी दृढता के गुणों का समावेश

करते है।

दहेज, नशाखोरी, जेबकतरना, तस्करी, पश्चिमी सभ्यता की नकल औरह नारी पर हो रहे अत्याचारों जैसी अनेकों सामाजिक बुराईयो को दूर करने में आज का छात्र-वर्ग एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है, और दूरदर्शन उनको प्रभावित करने का महत्वपूर्ण कार्य करता है। कम्प्यूटर, अतरिक्ष की यात्रा, ग्रह/उपग्रहो के चित्रो, अनेकों शोध-कार्यक्रमो तथा चिकित्सा विज्ञान की नई -नई तकनीकों को देख छात्रों का भावुक हृदय *एक नए भविष्य की ही नहीं नए युग की भी कल्पना* करता है। उसका खोजी मन इन कार्यक्रमो को देख, अपने हृदय मे उठ रहे सैकडों प्रश्नो का उत्तर पाकर संतुष्ट हो जाता है।

इन सब प्रक्रियाओं से उसके मन का व्यायाम तो होता ही है वह अपने भले बुरे और अपने भविष्य के बारे में भी सोचने पर मजबूर हो जाते हैं। पढ़ाई की थकान के बाद यदि वे कुछ अच्छे मनोरजक कार्यक्रम देखते है तो उन्हें थकान से मुक्ति के साथ साथ ही दिमाग पर बढ़ते तनाव से भी कुछ समय के लिए मुक्ति मिलती है। इन तथ्यों को ध्यान मे रखते हुए तो ऐसा लगता है कि दूरदर्शन का छात्रो पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ता है। परंतु क्या यह 100% सही है?

आप सभी इस सच्चाई से परिचित हैं यह 100% सत्य नही है। यानि कि ऐसा कहना अनुचित होगा कि दूरदर्शन का छात्रो पर केवल सद्प्रभाव ही पड़ता है। यदि हम छात्रो पर हो रहे दूरदर्शन के प्रभाव का आकलन करें तो हम पाएगे कि आज का छात्र दूरदर्शन के कुप्रभाव से भी अछूता नही है।

आज के छात्र के जीवन का मुख्य उद्देश्य शिक्षा प्राप्त कर अपने भविष्य को सवारना होना चाहिए लेकिन, वास्तविकता इस उद्देश्य से कहीं दूर होती जा रही है। वह अपना अधिक से अधिक समय पढ़ाई और खेलकूद मे नही बिताता। स्कूल से लौटने के बाद वह टी. वी. पर दोपहर का कार्यक्रम देखने बैठ जाता है और अपना भोजन तक ठीक से नही खाता। विश्राम के समय भी वह टी वी. के आगे बैठा रहता है। शाम को जो समय उसे खेल-कूद मे बिताना चाहिए वह भी दूरदर्शन की भेंट चढ़ जाता है। उसे अपनी पढ़ाई के पाठ याद हो न हों यह जरूर याद रहता है कि किस दिन, किस चैनल पर कितने बजें कौन सा कार्यक्रम आएगा।

टी. वी. पर दिखाए जाने वाली अश्लीलता व बदतमीजी का उसके कोमल हृदय पर इतना प्रभाव पड़ता है कि उसका स्वयं का व्यवहार धीरे-धीरे बुराई की ओर बढ़ता जाता है। टी वी. पर दर्शाई गई तस्करी, डकैती, चोरी नशाखोरी और अभद्र परिवेश से वह शीघ्र ही प्रभावित हो जाता है।

प्रतिदिन 5-6 घटे टी वी. देखकर उसकी आंखो पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है और कम उम्र में ही नजर कमजोर होने के कारण उसके सिर में दर्द रहने लगता है।

आंखों से पानी गिरने लगता है और छोटी सी उम्र मे ही चश्मा लग जाता है। देर रात तक टी. वी. पर फिल्में या अन्य कार्यक्रम देखने के कारण उसकी नींद पूरी नहीं होती, सिर भारी सा रहता है। सुबह देर से आख खुलने पर स्कूल या कालेज जाने में देरी हो जाती है और वहा पर भी पढ़ाई के दौरान नीद की झपकियां आती रहती है। क्या एक आदर्श छात्र से इस प्रकार के व्यवहार की आशा की जानी चाहिए? शायद नही तो फिर उस दूरदर्शन के कुप्रभाव को दूर करने के लिए कौन-कौन से प्रयास आवश्यक हैं?

छात्रों पर दूरदर्शन के बढते कुप्रभावों के लिए केवल वह छात्र ही नही वरन् हमारा दूरदर्शन विभाग, उसके माता-पिता, मित्र मडली व अन्य कई कारण

उत्तरदायी हैं।

यदि हमारा छात्र- वर्ग टी. वी को सीमित समय मे ही देखे, अपनी पढ़ाई को नजरअंदाज करके टी. वी. न देखे केवल अच्छे (स्वस्थ) ज्ञानवर्धक व मनोरंजक कार्यक्रम ही देखे, विज्ञापनों में दिखाई जाने वाली प्रत्येक वस्तु की ओर आर्कषित न हो, माता-पिता भी यह ध्यान रखें कि बच्चे की पढ़ाई के समय टी वी. न चलाएं, टी. वी. को बहुत नजदीक से न देखें, दूरदर्शन-विभाग छात्रों की आवश्यकताओ को ध्यान मे रखते हुए अलग-अलग आयु-वर्गों के लिए विशेष कार्यक्रम दें और ऐसे कार्यक्रम प्रस्तुत करें जो हमारी सभ्यता व सस्कृति को उजागर करे और उनमे देशभक्ति की भावना कूट-कूट कर भर दे, केवल तभी छात्रो पर दूरदर्शन के बढ़ते कुप्रभाव को रोका जा सकता है। □□

पी.जी.टी. कार्मस
रा.व.मा.क.वि. न. 1
सरोजिनी नगर, नई दिल्ली

सृजनात्मकता के विकास में अभिभावकों की भूमिका

❐ डा. जमनालाल बायती

मनोविज्ञान के क्षेत्र में व्यवहारवादियों द्वारा किये गये अनुसंधानों से स्पष्ट हुआ है कि प्राम्भिक अवस्था, मे बालकों में सृजनात्मकता के लक्षण उनके कार्य व्यवहार, हलचल, गतिविधि, पारस्परिक क्रिया-प्रतिक्रिया में स्पष्ट दृष्टिगोचर होते हैं। हां, मन्द बृद्धि बालक इसके अपवाद हो सकते हैं।

सृजनात्मकता के लक्षण उनके दो सप्ताह की आयु से ही, किसी वस्तु के हिलने डुलने तथा उस पर उनकी दृष्टि की गतिविध से, स्थिरता से भी पहचाने जा सकते हैं, वे आवाज, रंग, हलचल पर भी तत्काल प्रतिक्रिया करते हैं। इससे लगता है कि वे अपने आसपास की दुनियां, वातावरण के प्रति सजग हैं तथा वे उसे जानने एवं समझने के लिए भी उत्सुक हैं। उत्सुकता एवं जिज्ञासा ही सृजनात्मकता की प्रथम आवश्यकता है।

सृजनात्मकता के अन्य लक्षण हैं—आनन्द, विनोद, नूतनता, कल्पना, नवीनता या नयापन। यदि माता-पिता अपने पाल्यो में इन गुणों के विकास में तनिक रूचि लें तो बालक इन गुणों का धनी बन सकता है—जो समाज की एक धरोहर है।

माता पिता इन गुणों का अपने बालको मे कैसे विकास करे ? यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। सहज अभिव्यक्ति के लिए तथा इन गुणो के विकास के लिए बालकों को अनगिनत अवसर देकर, उन्हे उत्प्रेरित करके, मातापिता बालकों में सृजनात्मकता विकसित कर सकते हैं।

उमेश अपने पाच वर्ष के पुत्र के साथ पिछले दो वर्ष से इस विचार पर सफलता के साथ प्रयोग कर रहा है। वे उसको उसकी रूचि की गतिविधि, खेल या कार्य में व्यस्त रखते हैं, वे उसे खोज करने का अवसर देते है, वे उसे चित्र पहेली या कूट चित्र पर अभ्यास करवाते हैं, दिमागी कसरत करवाते है, कई हिस्सों में कटी हुई खेल की वस्तुए उन्हें देते हैं तथा उन्हे पुनः विधिवत जमा कर सुन्दर डिजाइन या खेल का रूप या भवन का आकार तैयार करने के लिए प्रेरणा देते है। वे उसे नियमित रूप से पुस्तकालय, पुस्तके तथा खिलौने विक्रेता की दुकान पर तथा बालकों के उद्यान में ले जाते हैं।

प्रत्येक बच्चा सृजनशील होता है, वह कल्पना की दौड में उड़ता है, विभिन्न योजनाए बनाता है तथा नया बनाने या सृजन की रुचि या वृत्ति रखता है। बच्चा आखिर बच्चा ही तो है, वह प्रारम्भ में ही पदमश्री देवीलाल सामर या सुमित्रानन्दन पंत नहीं बन सकता, यह भी माता पिता को स्वीकार करना चाहिए। चमेली या गुलबहार का फूल गुलाब का फूल तो नहीं हो सकता वह भी फूल तो है ही, इसी भांति बच्चा सामर या पत तो नहीं है पर वह बनने की राह पर तो है, इसी दृष्टि से उसे प्रेरणा मिलनी चाहिए। पाठक जानते हैं कि फूल चाहे गुलाब का हो या चमेली का या गुल बहार का, उसे फलने फूलने या विकसित होने के लिए उपयुक्त जलवायु, खाद, पानी तथा देखभाल—सार सम्भाल तो चाहिए ही, इसी भांति बालक को भी प्रकृतिदत्त सम्भावनाओं तक पूर्ण विकसित होने के लिए उचित वातावरण, माता पिता तथा शिक्षकों की केवल देखभाल ही नहीं बल्कि समीचीन मार्गदर्शन तथा

आवश्यक साधन या उपकरण आदि भी चाहिए ही।

माता पिता बालकों को कुछ करने के लिए, बनाने के लिए उत्प्रेरित करें जो सुन्दर हो, आंखों को अच्छी लगे तथा अर्थपूर्ण हो। आप उसे विभिन्न प्रकार के रग तथा ब्रुश देकर कुछ बनाने को कह सकते हैं—यहीं से शुरूआत कीजिए। आरम्भ में बालको की यह रचना आपको अच्छी न लगे, यह कृति आपके मन को न आये तो भी विचार न कीजिए। महत्वपूर्ण यह नहीं है कि बालक की रचना मित्रो द्वारा सराही नहीं जा रही है बल्कि महत्वपूर्ण यह है कि बालक सही रास्ते पर है तथा यह रचना या कृति स्वय बालक द्वारा तैयार की गई है।

नगरीय माता पिता अपने बच्चों को कुछ रंग, ब्रुश स्याही या गोद की खाली बोतले, उनके ढक्कन, खाली माचिस की डिब्बियां, ड्राइंग शीट्स के छोटे बड़े टुकड़े उपलब्ध करा दें तथा उन्हें अपने इस कार्य के लिए मकान में एक कोना दे दें—फिर देखे बच्चे क्या कमाल देखाते है। बच्चों द्वारा चित्रकला के ये नमूने, नये रूप में अवश्य ही माता पिता को प्रसन्नता से भर देंगे। इसी भांति ग्रामीण माता पिता यदि अपने बच्चों की सृजनात्मकता मे तनिक भी रूचि ले तो वे भी उसकी लाभकारी मदद कर सकते हैं। गेहूं या मक्की के तने का गुदा उनको विभिन्न प्रकार के खिलौने बनाने को उत्प्रेरित कर सकते है। इन सबमें उनकी सृजनात्मकता की झलक मिलती है। खेतो, खलिहानों तथा चरागाहों मे, इनकें खेलों मे भी सृजनात्मकता देखी जा सकती है। मवेशी चराने वाले, फसल कटाने वाले तथा गृहिणी के कार्यों, गतिविधियों मे भी सृजनात्मकता के लक्षण दिख सकते हैं। अभ्यास से इनमे संशोधन कर तथा परिवर्तन कर श्रेष्ठता तक पहुंचाया जा सकता है।

सदैव याद रखिए कि किशोर तथा वयस्क बालकों के समान ही छोटे बालकों के विकास के लिए भी प्रशंसा, स्वीकृति तथा उत्साह अपरिहार्य है। ज्यों ज्यों बालक बड़ा होता है, उसकी आलोचना की जा सकती है, उनके कार्यों या चित्रों में कभी ढूढी जा सकती है, दोष बताया जा सकता है। पर हा, वह इतनी कठोर या चरम सीमा की भी न हो कि बालक अपना आत्मविश्वास ही खो दे।

ज्यों ज्यों बालक बड़ा होता है, चित्रकला मे भी उसकी एक रुचि का अन्य रुचि से प्रतिस्थापन हो सकता है पर आप याद रखिए कि बालक ने जो कुछ भी प्रारंभिक वर्षों में पाया है या सीखा है उसे वह जीवन भर कभी नही भूल सकता। एक जाने माने ख्याति प्राप्त चित्रकार ने लेखक को बताया कि मैंने चित्रण या चित्रकला का अपनी आयु के प्रारंभिक छः वर्ष में ही अभ्यास आरम्भ कर दिया था तथा अब तो मेरा जीवन ही चित्रकला है। चित्रकला मेरे जीवन मे रच बस गई है तथा जीवन का अभिन्न अंग बन गई है।

युवा विद्यार्थियों को भी कई बातें, तकनीकें सिखाई जानी चाहिए। उसे चित्रकला तथा सम्बन्धित अन्य वस्तुओं के लिए आदर का भाव सिखाया जाना चाहिए। परंतु आरम्भ मे, उसे प्रयोग करने से पूर्णत· मुक्त रखा जाना चाहिए। ज्यों ज्यों वह बड़ा होगा, स्वयं ही अपने काम से, अपनी रचनाएं, अपनी उपलब्धि से असन्तुष्ट होगा। इस असन्तोष को ही इस बात का सूचक मानना चाहिए कि बच्चा प्रगति कर रहा है, तकनीकें जान रहा है, सीख रहा है।

सृजनात्मकता के विकास के लिए कक्षाध्यापक के समान उसे उपदेश मत दीजिए, स्वयं उसे इन पर खोज करने में, जब भी अवसर आए, आप मदद कीजिए, उपलब्धि का स्तर बनाये रखने के लिए प्रोत्साहन दीजिए। बच्चों को अधिक से अधिक अच्छा करने में, चित्र बनाने में मदद कीजिए। साधन या तरीका वही अच्छा है जो बालक को सिखाया—उसके लिए उपयुक्त हो, प्रगति पथ पर आगे बढ़ाये। आप अपने विचार उस पर न थोपिये।

बालकों की सृजनात्मकता को ऐसे मोड़िये, उसे ऐसा रूप दीजिए कि वह घर में उपयोग की जाने योग्य या घर को सजाने योग्य वस्तुएं ही तैयार करे। बच्चों के लिए ऐसी चीजों का बहुत महत्व है, वे उनके लिए मूल्यवान हैं। वह गर्व के साथ उनका उपयोग करता

है, काम मे लेता है। यदि इन वस्तुओं का प्रयोग दूसरे परिवार के या पड़ौस के लोग करें तो उसे और भी अधिक प्रसन्नता होगी, वह गर्व अनुभव करेगा। भेंट के लिए आश्चर्यजनक वस्तु दुकान से भी खरीदी जा सकती है पर वे खरीदी गई वस्तुए बच्चों को अपने हाथो से बनाई सृजनात्मक वस्तु के समान सन्तोष या आनन्द नहीं दे सकती हैं। यह कठोर सत्य है—इसे स्वीकार कीजिए।

धरती के गर्भ में छिपे बारीक अंशों, महत्वहीन वस्तुओ से कई सुंदर तथा मनोहारी वस्तुएं तैयार की जा सकती हैं। बालों के पिन तथा कानों की बालियां इसके उदाहरण हो सकते है, उनमें से कई फूलों की पंखुडियो के समान लगेंगे तथा वे कई रंगों तथा छायाओं की भिन्नता लिए हुए आनन्ददायक वातावरण बना देते हैं। सृजनात्मकता के लिए रगो का तथा पंखुडियों को जमाने का, संग्रह करने का वह तरीका जो उसे मनोहारी फूल का रूप देते हैं, बड़ा महत्वपूर्ण है। बच्चों को गाइड करने के लिए माता पिता किसी स्तरीय चित्रकला की पुस्तक से मदद ले सकते हैं।

बच्चा जन्म से कलाकार, गायक होता है। बच्चा अपनी आवाज तथा देह के साथ समरसतापूर्ण लय के रूप में प्रतिक्रिया बताता है, उसकी यह प्रतिक्रिया उसके प्रत्येक श्वास के साथ साथ उसी गति से चलती रहती है, उसे संगीत के क्षेत्र में भी प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए, कोई अन्य बच्चा गाता है तो वह उसे सुने, आनन्द ले, मानो वह स्वयं ही गा रहा हो। वह अपनी आवाज में, लय में, ध्वनि में हरबार सुधार करता है। यदि आप सोचें कि ऐसा नहीं हो सकता तो तरीका बदलिये, गाइये, गुनगुनाइये। आपको ऐसी किताब ढूंढनी चाहिए जिसमें सभी गाने बच्चों के लिए, उनकी आयु के उपयुक्त ही हों। सम्भव है, ऐसी किताब स्वयं बच्चो द्वारा लिखी हुई ही मिल जाय।

ऐसा कहा जाता है कि सही कवि तो युवा बच्चे ही होते हैं। कारण कि वे सामाजिक बातो से दूर होते हैं, घर परिवार की चिन्ताओ से मुक्त होते है, वे वयस्को के समान पूर्व से स्थापित रीति रिवाजों का पालन नहीं करते हैं, वे तो अपने ही तरीके से सोचते हैं, अपने तरीके से काम करते हैं, वे उन शब्दों का प्रयोग करते हैं जिससे वे अपनी बात सर्वाधिक अच्छी तरह से अभिव्यक्त कर सकें, बता सके।

जब भी बच्चा कुछ कहना चाहे, आप उसकी बात में पूरी रुचि लीजिए तथा बम्बास्टिक शब्दों का, जिन्हें आप ठीक समझते हैं कभी प्रयोग न कीजिये। भारी भरकम साहित्यिक एवं संस्कृतनिष्ठ भाषा प्रयोग कर बालक का साहस न घटाइये। उदाहरणार्थ या तो आप उसे दो शब्द दीजिए, उनका अर्थ भी समझाइये तथा दो में से एक सर्वाधिक सही शब्द चुनने के लिए स्वयं उसे दिमागी कसरत करने दीजिए। उसे अपनी अभिव्यक्ति में मदद कीजिये। इस प्रकार वह अपनी बातों को अपनी भाषा में, न कि अपनी भाषा मे, व्यक्त करना सहज ही सीख सकेगा।

एक बार बच्चा कुछ ऐसी बातें या विचार आपके सामने रखेगा जिन्हें आप अपनी बुद्धि के अनुसार वयस्क सूझबूझ से सनक कह सकते है। यहां यह याद रखना महत्वपूर्ण है कि उसके विचार बुनियादी रूप में उसकी चिन्तनधारा की दृष्टि से सराहनीय है। आप उसके विचारो को न दफ्नाये, उन विचारो की आलोचना न करें, न ही उसके सामने उसके या आपके मित्रों की उपस्थिति मे प्रकट रूप में उसे बुरा भला कहें। ऐसा यदि किया गया तो बालक मन ही मन अपने विचारों का दमन कर सकता है तथा उसके अंतर्मन में छिपी सृजनात्मकता समाप्त हो सकती है, लोप हो सकती है, मार्ग भी बदल सकती है। उसे अपनी सृजनात्मकता की अभिव्यक्ति के अवसर दीजिये, वह अपने को समाज के लिए एक उपयोगी तथा प्रसन्नचित सदस्य के रूप में विकसित कर लेगा। विकास का भी यही तो अंतिम उद्देश्य है। ☐☐

प्रवाचक–शिक्षा शास्त्र,
राजकीय उच्च अध्ययन शिक्षा संस्थान,
बीकानेर (राज.)

बच्चे श्रेष्ट हैं—परीक्षा परिणाम नहीं

❒ जीवन सिंह ठाकुर

परीक्षा परिणाम आने लगे हैं। अभिभावकों के कहर बालकों पर उतर रहे हैं। पालक परेशान है। कुछ खीझ रहे हैं कि उनका बालक अपेक्षित अंक क्यो नहीं लाया। बच्चा सहमा-सहमा अपराधी की तरह पिता की निगाहों से छुपता फिर रहा है। महज तीन दिन हुए होंगे के. जी. वर्ग (शिशुवर्ग) का परिणाम निकला "वे" उत्साह से अपने बेटे को लेकर आये थे, परिणाम घोषित करने मे थोडा समय था। वे चर्चा करते रहे। हमारा टीनू रियली काफी टेलेंटेड है। पोएम्स, अंक, अल्फाबेट्स बडी तेजी से लिखता है। आई थिंक— वे कुछ देर रूके और अपने ही वाक्य में संशोधन करते हुए बोले बट आई एम श्योर दैट। हमारा बेटा पूरी कक्षा में टॉप करेगा— मैंने उनका उत्साह बढ़ाया। मेरी कामना है वो जरूर टॉप करे—मुझे लगा उनकी आकांक्षाओं को बढ़ाना नही चाहिए। यदि बालक टॉप नही आया तो इन्हे दुख होगा। यह दुख खीझ बन कर बालक पर टूटेगा। धीरे-धीरे पालकों की भीड़ बढ़ रही थी। उनके साथ बच्चे भी थे। कुछ सहमें-सहमें कुछ खिलखिलाते हुए भी नजर आ जाते थे। उन्होंने मुझसे पूछा आपकी लडकी की कक्षा में क्या स्थिति हो सकती है? मैंने कहा वह प्रतिभाशाली है जहाँ तक अंक बटोरने का प्रश्न है उसके अनुसार वह 60-70% अंक लाएगी। उन्होंने चेहरे पर दुख प्रदर्शित करते हुए कहा ओ—मीन्स एवरेज—उनके एवरेज कहने का अर्थ था। यानी कुछ नही—

समय हो गया था। परिणाम पुस्तिका वितरित की जा रही थीं। मुझे अपनी लड़की से ज्यादा उनके बेटे के परिणाम को जानने की उत्कठा थी। उनके बेटे के 90% अंक थे लेकिन टॉप नही था। वे दुखी नजर आये। आहिस्ता-आहिस्ता उनका दुख खीझ व हताशा मे बदलने लगा। वे स्कूल गेट से भारी कदमो से बाहर निकले। जैसे कुछ छिन गया हो। मैंने अंतिम बार प्रयास किया कि वे अपने बेटे के 90% अंक प्राप्ति पर खुश हों। बहुत कोशिश के बाद वे कुछ संतुलित हुए। फिर भी वे स्कूल, शिक्षक, और बच्चे को दोषी पा रहे थे। नो—नो सर समथिंग रॉंग —आइदर इन मॉय सन और इन स्कूल—वे असंतुष्ट ही घर गये।

इतना कहने का लब्बे लुबाब यह कि बालक पर हम अपनी महत्वाकांक्षाए थोप कर उसे "स्तर" तो कभी "प्रतिभा" आदि-आदि शब्दो से छुपाते है। कल्पना कीजिए कि महज पाच बरस के बालक को कक्षा में टॉप, मान, अपमान, स्तर आदि छूते नहीं। यह उम्र उसमें अपने परिवेश को समझने की शुरूआत की होती है। उसकी सहज मुस्कराहट, खिलखिलाने की उम्र होती है। वह कथित परीक्षा के विभिन्न आयामों को खेल, मित्रता, परिवेशीय संबद्धता के क्रम मे विकसित हो रहा होता है। तब उसकी स्वाभाविकता पर जोकि भविष्य की विकास प्रक्रिया का अनिवार्य मार्ग है। रोक कर "अक" "मार्क्स स्कोरिंग" जैसे तकनीकी और अब हिन्सक प्रतिद्वंद्विता में बदल देते है। शिक्षा की स्वाभाविकता को दरकिनार कर देने से सिर्फ अंकों का खेल रह जाने से माता-पिता की महत्वाकांक्षाएं बच्चों में श्रेष्ठ सामाजिकता के विकास का क्रम रोकती है। बल्कि अपनी भविष्य की भूमिका को खोता चला जाता है। वह मित्र, नागरिक, सास्कृतिक धारा का अग बनने, एक दूसरे के दुखों से जुडने, खुशियों में शामिल होने

की भावना से महरूम होने लगता है। जो श्रेष्ठ सामाजिक व्यवहार निर्मित होना चाहिए जिससे समाज की बुनियादी सांस्कृतिक सरचना पुष्ट होती है। उसके प्रति जागरूकता, लगाव खत्म होने लगता है। आज परिणामों ने, परीक्षा ने एक ऐसी मान्यता प्राप्त "लाटरी" का रूप ले लिया है जो परिणाम आने के पूर्व तक एकाकीपन के भव्य स्वप्न लोक का निर्माण करती है। परिणाम आने के बाद खीझ, तनाव, हिन्सात्मकता, निराशा देती है, दोनों ही ओर समाज, जीवन मूल्य नकार दिये जाते है।

छोटी कक्षाओं मे ही हम अपने समाज की नवीन उर्जा को नष्ट कर देते हैं तो किस भविष्य की बात हम करते हैं? ऐसा खतरनाक खेल हम क्यो खेल रहे है? "परीक्षा और परीक्षा परिणाम" पर इतना केंद्रियकृत दृष्टिकोण हो गया है कि छात्र के आचरण, बौद्धिक विकास, सामाजिक दायित्व भावना जैसे अनिवार्य आयाम गौण हो गए। पूरे वर्ष उसकी तथा विद्यालय की क्या भूमिका रही इस पर किसी का ध्यान नहीं जाता। यदि परीक्षा परिणाम ऊँचा रहे, छात्र शत प्रतिशत नम्बर ले आए बस इसी पर सब कुछ ठहर गया है। इसमे स्कूल तथा विद्यार्थी अपना व्यक्तित्व खोते जा रहे है। इसी का परिणाम है कि अनुशासन हीनता, समझ, गभीर आचरण की समस्याएं सामने आकर विकराल रूप धारण कर गई है।

अभी 23 अप्रैल 1992 को कक्षा आठवी का परीक्षा परिणाम आया। पालकों का ताता लगा था। बाजार की गहमा-गहमी के बीच स्थित विद्यालय के गेट पर एक पालक आकर अंदर झाकने लगे। शिक्षक भी शायद इन्हीं सज्जन की प्रतीक्षा कर रहे थे, इनका बालक 62% अक लाकर प्रथम श्रेणी आया था। पालक महोदय ने छूटते ही कहा। ये चाहता तो मेरिट मे आ सकता था। लेकिन आवारागर्दी से इसे फुर्सत मिले तब न। शिक्षणगण सकपका गये। उनका उत्साह ठण्डा पड़ गया था। लेकिन बच्चें के प्रति वे दुराग्रहीन हो जाए इस लिहाज से उन्हें बताया कि आपका बालक पढ़ने में तो होशियार है ही। वह स्कूल की कबड्डी टीम का कप्तान है। छात्र परिषद का उपाध्यक्ष है। इस वर्ष निबध प्रतियोगिता, चित्रकला प्रतियोगिता, वादविवाद प्रतियोगिताओ में उसने आठ पुरस्कार प्राप्त किए है। सभागीय मीट मे जिले का प्रतिनिधित्व किया है। सामान्य ज्ञान का स्तर शानदार है। सबसे बडी बात यह है कि व्यवहार में शालीन है। ये तमाम गुण उसे तमाम परीक्षाओं के परिणामों से ऊपर ले जाते हैं। पालक कुछ शात-नजर आए। लेकिन आखों मे वे असतुष्ट बने रहे। इस प्रत्यक्ष उदाहरण से स्पष्ट है कि बालक के श्रेष्ठ गुणो के प्रति उपेक्षा का भाव उसे अराजक विध्वसक बनाता है, जबकि शिक्षा से जो मूल्य हम चाहते हैं उसका पल्लवित लक्षण उस बालक में स्पष्ट नजर आता है। वाकई इस शिक्षा विरोधी, समाज धातक भाव, विचार, जडता के खिलाफ एक रचनाधर्मी अभियान चलाने की नितांत आवश्यकता है।

आज जिस शिक्षा नीति और उसके अमलीकरण पर माथा पच्ची हो रही है। उसका परिणाम सिर्फ यह आ रह है कि पेपर्स का आकार-प्रकार घट बढ रहा है। किताबो में स्तर के नाम पर "घटोत्कची आकार" की जानकारियो की मीनारे खडी कर दी गई है। उससे शासन, शिक्षाविद सोच लेता है कि शिक्षा में सुधार आ जाएगा। सुधार के मायने यहां सिर्फ कुछ जानकारियों का स्तर और परीक्षा परिणाम ही होता है। एक ऐसा घातक द्वन्द्व है जो बहुत कुछ चाह कर भी कुछ नहीं करने दे रहा है। हम सिवा हाथ पांव पटकने के कुछ नहीं करते और ढेर सारा पानी अनचाहे पेट में समा जाता है। एक छटपटाहट के सिवा कुछ हाथ नहीं लगता।

बालक की स्वाभाविक उमंग, उत्साह, सीखने, समझने के सामाजिक परिवेश को नष्ट करके शिक्षा देने का अनोखा ढंग आजादी के बाद से जो शुरू हुआ तो आज उसने इतना विकराल रूप धारण कर लिया है कि हम बच्चे और शिक्षा के ही खिलाफ खड़े हो गये हैं। जिस देश में अट्ठारहवी शताब्दी तक उद्योग, शिक्षा, सांस्कृतिक समझ का स्तर विपरीत राजनैतिक परिस्थितियों के बावजूद था। भारत का दुनिया में उत्पादन, औद्योगिक गुणवत्ता का डंका पीटा जाता था। उसी देश में साम्राज्यवाद के आने के बाद आयातित तकनीक, एवं

शिक्षा, हर देशज चीज, परंपरा, परिवेश के प्रति हिकारत का भाव पैदा हुआ। कथित आधुनिकता (जो यूरोपीय बाजार व्यवस्था, साम्राज्यवाद के लिए नये बाजार की खोज अभियान की नीति थी।) के समक्ष हमें निरंतर पिछड़ा, दकियानूस बताया गया। नतीजा यह हुआ कि शिक्षा की बुनियाद से जो रचनात्मक ऊर्जा आती थी वह खत्म होने लगी। स्वतत्रता के मायने अपनी जड़ों की तरफ भी आना था..? लेकिन हमने अपने बरगद, पीपल, तुलसी, आम के वृक्षों की बजाए बोतल में रखे "मनीप्लाट" की दुनिया पंसद की यह कथित पाश्चात्य चकाचौंध से ग्रसित, जड़ों से जुड़ने की हिचक ने हमें अपनी सांस्कृतिक ताकत से महरूम कर दिया। इस सांस्कृतिक विपन्नता से हम अपनी तकनॉलॉजी, अपना कौशल दुनिया को जो हम दे सकते थे वह अंदर ही घुट कर रह गया। शिक्षा का क्षेत्र मुल्क की पिछली परंपरा, संस्कृति, इतिहास, वैज्ञानिक विकास, सोच, विशिष्ट पहचान को जिंदा और निरंतर परिष्कृत करने का अनिवार्य अभियान होता है। जिसमें धन के हिसाब से लाभ-हानि नहीं देखी जाती।

लेकिन आज परीक्षा, और परीक्षा परिणाम ही केंद्रीय विधा बना दिये गये है। बालक गौण होता जा रहा है। अब तमाम आयोगों के अनुभव तमाम विद्वत जनों की राय हजारों, लाखों शिक्षकों की व्यापक अनुभव संपदा को यह देखना होगा कि महज अंकों के आधार पर किसी बालक, किसी विद्यालय के व्यक्तित्व , उसके सोच, उसकी परंपरा को नकारा न जाए। बल्कि उसका व्यक्तित्व एक चिंतन के रूप मे उभरे और शिक्षा को तय करे बिना व्यक्तित्व की शक्ति से शिक्षा बनेगी कैसे? शून्य होते जाएंगे। और हम जाने अनजाने "रिमोट कंट्रोल्ड" "रोबोट" बनते जाएंगे।

परीक्षा परिणाम, परीक्षा तनाव मुक्त एक रचना शिविर की तरह होना चाहिए। ताकि कोई पालक अपने ही बच्चें की "श्रेष्ठतम उपलब्धी" को नकार कर अकों की मेरिट पर ही केंद्रित न हो सके। उसका मूल्यांकन सम्यक परिवेश समूचे राष्ट्रीय परिवेश में हो। परिणामों की तिलस्मी दुनिया से विद्यार्थियों की आत्महत्या का प्रयास, खबरे भी इसी विक्षिप्त शिक्षा की मान्यता का ही नतीजा है।

एक वृहत्तर प्रश्न समूचे राष्ट्रीय सदर्भ में, हमारे समक्ष खड़ा है। हमें उत्तर देना ही होगा। □□

2, सिविल लाइन,
देवास (म.प्र.)

नकल–कारण और निवारण

❒ वल्लभ डोंगरे

छात्रों में बढ़ती नकल प्रवृत्ति एक प्रकार से परीक्षाओं का खुला अपमान है। परीक्षाएं इसलिए आयोजित की जाती हैं कि छात्र द्वारा अर्जित ज्ञान का मूल्यांकन किया जा सके। जब छात्र ज्ञान अर्जन के स्थान पर नकल की ओर प्रवृत्त है तब ऐसे में परीक्षाओ का क्या औचित्य रह जाता है? यदि परीक्षाएं रखना मजबूरी ही है तो हमें यह देखना होगा क्या आज का परीक्षा स्वरूप ठीक है? 'यदि नहीं तो इसके स्वरूप का बदला जाना जरूरी है। इसके लिए राष्ट्रव्यापी चिंतन की आवश्यकता है।

माध्यमिक शिक्षा मंडल द्वारा आयोजित 10 और 12 वीं की परीक्षाओं में उड़न दस्तों ने एक-एक केन्द्र से 70-80 तक नकल प्रकरण बनाये थे। एक और विश्वविद्यालय की परीक्षाओं में भी परीक्षा केन्द्रों से एक-एक दिन मे 200 तक नकल प्रकरण बनाये गये। अभी हाल ही मे बंगलौर स्थित एक इंजीनियरिंग कालेज मे आयोज़ित बी.ई चतुर्थ वर्ष की परीक्षा में हाइड्रोलाजी तथा इरीगेशन की परीक्षा के दिन विश्वविद्यालय के उडन दस्ते ने सामूहिक नकल के मामले को पकड़ा। इस तरह सामूहिक अपराध की भांति सामूहिक नकल भी होने लगी है। आज देश की समस्त शिक्षण संस्थाएं इस बुराई से पीड़ित है। छात्रो मे यह बुराई खेतो में फैलते खरपतवार की तरह बढ़ गई है। निम्न कारण छात्रों को परीक्षा में नकल करने को प्रवृत्त कर सकते हैं–

शिक्षकों की नियुक्ति योग्यता के आधार पर न होकर जातीयता व अन्य आधार पर हो रही है, जिससे शिक्षण संस्थाओ में योग्य शिक्षकों की कमी पड़ती जा रही है। योग्य शिक्षकों के अभाव मे पढ़ाई का समुचित ढग से न हो पाना छात्रों को परीक्षा में नकल करने को प्रवृत्त करता है।

शालाओं मे पढ़ाई मात्र औपचारिकता भर रह गई है। शिक्षक अपने-अपने स्वार्थ मे लगे हैं। जितना बेहाल शिक्षा का शिक्षा मंदिरों में है उतना अन्यत्र कहीं नहीं।

देखने में आता है "ट्रेन्ड टीचर" भी "टीचिंग एड्स" के बिना पढ़ाते हैं जिससे पढ़ाई रूचिकर नही बन पाती और छात्र पढ़ाई से पूर्ण रूचि के साथ नहीं जुड़ पाते।

आज ट्यूशन का प्रचलन जोरो पर है। कई शिक्षक ट्यूशन के बहाने पास कराने का ठेका ले लिया करते हैं। वे छात्रों को परीक्षा हाल में नकल की पूरी छूट देने का वचन दे देते हैं और अवसर मिलने पर यह छूट भी छात्रों को मिल जाती है।

आए दिन शिक्षण संस्थाओं में हड़ताल होती रहती है जिससे पढ़ाई प्रभावित होती है। पिछले दिनो आरक्षण विरोधी हड़ताल के कारण ही कई महीनों तक शिक्षण संस्थाएं बंद पडी थी। ऐसी स्थितियों का बहाना बनाकर भी छात्र नकल की ओर प्रवृत्त हो जाते हैं।

कई शिक्षण सस्थाओ में शिक्षकों की कमी है। अकेले भोपाल मे लगभग 600 शिक्षक-शिक्षिकाएँ विभिन्न कार्यालयों में "अटेच" हैं जिनकी आसपास की शालाओं मे नियुक्ति हुई है। उनके शालाओं में न जाने से पढ़ाई का अपूरणीय नुकसान होता है। शाला में पढ़ाई न होने से छात्र नकल करने को प्रवृत्त हो जाते हैं।

अपने बच्चों की पढ़ाई के प्रति माता-पिता उदासीन रहते हैं। बच्चे किताबें फाड़कर परीक्षा में ले जाते हैं। परन्तु शायद ही कोई माता-पिता अपने बच्चो की किताबों

के पृष्ठ देखते हो।

शहरों में आवास व्यवस्था समुचित ढग से न हो पाने के कारण पूरे परिवार को छोटे से मकान मे रहना पड़ता है। पढ़ने के कमरे की अलग व्यवस्था न हो पाने से पढ़ाई प्रभावित होती है। वही माता-पिता टी वी. देखते हैं तथा छोटे शोर करते है। ऐसे में छात्र नकल का सहारा लेने में हिचकिचाते नहीं है।

टेलीविजन पर देर रात की फिल्में, ब्लू फिल्मों का प्रदर्शन युवक-युवतियों के मानस को दूषित करता है। इन फिल्मो मे युवक-युवतियो का चरित्र इस तरह पेश किया जाता है जिससे वे पथभृष्ट और दिगभ्रमित हो जाते हैं। परीक्षा के समय जब ऑखे खुलती हैं तब तक बहुत देरी हो चुकी होती है, और इस तरह नकल करने के अलावा उनके पास कोई विकल्प नही होता।

माता-पिता, समाज, नौकरीदाता सभी डिग्री चाहते हैं। अत इस डिग्री को प्राप्त करने मे बच्चे नैतिक-अनैतिक सभी तरह के हथकण्डे अपनाने में चूकते नहीं हैं।

इस बुराई को खत्म करने के लिए निम्न उपाय सुझाये जा सकते है—

छात्रो के परीक्षा केन्द्र बदले जाने चाहिए ताकि वे स्वय को सुरक्षित महसूस न कर पाएं।

परीक्षा के निबन्धात्मक स्वरूप के स्थान पर विकल्पात्मक स्वरूप लाया जाना चाहिए, साथ ही समय मे कमी की जानी चाहिये।

लिखित परीक्षा के साथ-साथ मौखिक परीक्षा को भी उचित स्थान दिया जाना चाहिये।

ऐसी व्यवस्था लागू की जाय जिससे योग्य शिक्षक ही शिक्षा विभाग मे रह जाय। अनुबध प्रणाली इसके लिये उपयुक्त है।

शिक्षको को पाठ्यक्रम पूरा करने के कड़े निर्देश दिये जायं। निर्देश का पालन न करने पर दण्ड का प्रावधान रखा जाय।

ट्यूशन के प्रचलन पर रोक लगाई जाये। शिक्षक को दण्डित करने के साथ-साथ उन छात्रो पर भी अनुशासनात्मक कार्यवाही की जाय जो ट्यूशन पढ़ने जाते हैं।

पढ़ाई को रूचिकर बनाये जाने के निर्देश दिये जायें। रूचिकर पढ़ाने मे या पढाई को रूचिकर बनाने में योगदान देने वाले शिक्षकों को पुरस्कृत किया जाय।

अनावश्यक पाठ्यक्रम का बोझ कम किया जाय।

ऐसी संस्थाए जहॉ नकल न हो उन्हें सम्मानित किया जाये।

नकल कराने वाले तत्वो के प्रति सख्त कदम उठाये जायं।

समय-समय पर बच्चों को माता-पिता व शिक्षको द्वारा नकल के दोषो से अवगत कराया जाना चाहिये।

शिक्षकों का विभिन्न कार्यालयों में "अटेचमेंट" बन्द होना चाहिये। इससे छात्रों की पढ़ाई प्रभावित नही होगी। ☐☐

166-बी, इन्द्रपुरी,
भोपाल

कहानी शिक्षा की

❒ राजेन्द्र प्रसाद आढा

जिन्दगी हार जाने का नाम नहीं है। लेकिन आज हर शिक्षित युवा हार जाता है क्यों? क्या आप बता सकते हैं? मंजिल पाने को चला राहगीर न जाने क्या क्या उमीदें लेकर चलता है, न जाने कितने कष्ट सहता है, न जाने कितनी बार अपनी इच्छाओं का दमन कर वह उसको पाने में आशाओं के दिव्य स्वप्न देखता है। माता-पिता की डांटें, गुरूओं की मार, साथियों के परिहास, केवल एक उमीद के लिए सहता है। काश: मैं अपनी मंजिल को पा जाऊँ। लेकिन क्या उसे वह मंजिल, मंजिल पर पहुंचने पर भी मिलती हैं। मैं आप से ही पूछता हूँ। आप यानी पाठक, जो कभी विद्यार्थी रहे होंगे। आज नहीं तो क्या, कल तो आप पर भी बीता होगा।

शायद आप झिझक कर रह जायेंगे। सच उगलते नहीं बनेगा। दर्द आपने भी सहा है, लेकिन कह नहीं सकते, और हां जो कह सकते है वे यही कहेंगे, जी हां श्रीमान मंजिल मृग तृष्णा ही रही। वह भटकाव ही रहा, जहां दुनिया सूनी सूनी थी, डिग्रियों के बण्डलों पर पैसों के पेपर वेट की आवश्यकता थी। जीवन का सुनहरा समय जिस उमीद मे तिल तिल कर जला दिया वह कोरी अर्थहीन भूल भूलईया ही रही। जीवन को जीने की मूल आवश्यकताओ से उसका कोई मेल नहीं। मुँह और पेट की डेढ फुट की दूरी का ज्ञान उस समय होता है। शिक्षा ने हमें सक्षम नहीं बनाया, कोई काम नहीं सिखाया जिससे स्वय और अपने परिवार का पेट भर सके। कुछ मुंह -फट बिना हिचक कह देते है। तो कुछ को मालूम ही नहीं क्या सही है क्या गलत है, हॉ के साथ हां और ना के साथ ना, परन्तु कुछ गरिमाओं का दुशाला ओढे. सत्य जानते हुए भी मन में ही दबा जाते हैं। आखिर क्यों? क्यों आज अंधी लकीर को पीटा जा रहा है।

बड़ी मुश्किल से पिता खून पसीने की कमाई *करके या गहने गिरवी रखकर, पत्नी व बच्चो का पेट* काट कर अपने अरमानो से बड़े बच्चे को पढ़ाता है। पढ़ाना बुरा नहीं लेकिन मात्र साक्षर कर उसे शिक्षित मान लेना बुरा है। पिता पुत्र को क्यों पढ़ाता है? क्या आप बता सकते हैं? यही न कि वह पढ़ कर मेरा सहारा बनेगा। घर की गाड़ी मे दो पैसों को कमा कर मुझे देगा। क्या ऐसा होता है? लाखों बच्चो की भीड़ सैकेण्ड्री सीनियर हायर सैकेण्ड्री, स्नातक, और स्नानतकोतर होकर नौकरी की दौड़ में शामिल हो जाती है। आखिर क्यों? क्या इसीलिए जीवन के अमूल्य समय को उन्होंने खर्च किया था? क्या माता-पिता के गाढे पसीने की कमाई को इसीलिए खर्च किया गया, और फिर मिला भी क्या? मात्र दो चार सर्टिफिकेट या डिग्रियों के पुलिन्दे। क्या वे शिक्षित हो गये? प्रिय पठकों आप से ही पूछता हूँ। तो फिर शिक्षित होना किसे कहते हैं? एक बार एक स्नातक छात्र सब्जी लेने बाजार जाता है। सब्जी वाले से भाव पूछता और तीन सौ ग्राम सब्जी लेकर सब्जी वाले से ही पूछता है कितने पैसे दूँ। सब्जीवाला मंद मंद मुस्कराता है। वह उसे ठग लेता है। उससे अधिक पैसे मांगता है। छात्र हिसाब नहीं लगा सका। वह चुपचाप पैसे दे कर चला जाता है। पाठकों सब्जीवाला शिक्षित था या वह स्नातक छात्र। क्या उसे दैनिक जीवन मे काम आने वाले गणित का ज्ञान मिला। माता-पिता बच्चों को क्या

इसीलिए पढ़ाते है कि उन्हे व्यवहारिक ज्ञान चाहे न मिले वे मात्र साक्षर हो जाये, तो बच्चों के जीवन से यह कटु मजाक क्यों? बच्चों को उसके वजन से अधिक पाठ्यपुस्तकों से लाद दिया जाता है। उसका सोना, उठना, बैठना बिना सिर पैर के झूठे आदर्शवाद, जीवन से कोई वास्ता नही रखने वाले पीडाजनक ज्ञान के नीचे दबा दिया जाता है। वह माँ और पिताजी का स्वाद भूल कर मम्मी और पापा के राग में हनुमान जी के मन्दिर में भगवान को "हेलो मंकी गोड" कहता है। आप आशा रखेंगे कि आगे चलकर वह भारतीय सस्कृति का आदर करेगा। आपका श्रवण कुमार बनेगा। क्या अपने बूढ़े माता-पिता को असहाय बना वृद्ध घरों मे नही भेजेगा। प्रिय पाठकों बुरा मत मानना क्या इसे ही शिक्षा कहते हैं? मात्र कागजी दौड़ में अगर आपने परिक्षाएं पास कर भी ली तो कौन सा स्वर्ग जीत लिया। क्या सभी को नौकरियॉ मिल जाएगी। नौकरी नही मिली तो सोचना उस विद्यार्थी का क्या हाल होगा? जो शारीरिक श्रम कर नहीं सकता तथा श्रम से जी चुराता है, उसमें अपना अपमान समझता है। आखिर कैसे वह अपना पेट भरेगा। क्या इसी दिन के लिए उसे साक्षर रूपी शिक्षित किया था? अब प्रिय पाठकों उपरोक्त बात सही हैं तो शिक्षा कहते किसे है? नहीं बता सकते, तो सुनो मेरे हिसाब से शिक्षा वह ज्ञान है जो मानव को साक्षर, सक्षम और सुयोग्य बना सके।

मात्र साक्षरता ही शिक्षा नहीं है। जिस दिशा के लिए आज आवश्यकता है। वह युगो युगों मे भी रही है। दोस्तो मैं नया नहीं हूॅ। मैं भी आप में से एक हूँ। मेरी आत्मा ने भी वे सभी कष्ट सहे हैं जो आपने सहे या सह रहे है। लेकिन हिम्मत हर कमजोर को बलवान बना देती है। हिम्मत मत हारो। हर नीड का पंछी यह चाहता है कि उसका बच्चा बड़ा हो। वह स्वतंत्र आकाश में उड़े अपना चुगा स्वयं चुगें। उसका स्वयं का अपना घोंसला हो। वह सक्षम और सुयोग्य बने। आदमी तो पक्षी से बहुत बेहतर होता है। तो आप पूछेंगे कृपया आपके विचार से शिक्षा क्या है? तो सुनो मेरे विचार से शिक्षा साक्षरता से कुछ आगे भी है। उसके तीन आयाम हैं। (1) साक्षरता (2) सक्षम (3) सुयोग्य। मैं इन तीन बिन्दुओ की व्याख्या करने से पूर्व शाला में इनके शिक्षण की ओर थोड़ा संकेत करना चाहूगा।

विद्यार्थी का शिक्षण उसकी आयु की अवस्था, उसके शरीर, मन, क्षमता एव उसके लिए उसकी व उसके समाज की मांग के अनुसार होनी चाहिए।

मूलत' शिक्षण मे तीन अवस्थाएं आती हैं-

(1) शिशु अथवा बाल अवस्था (2 वर्ष से 5 वर्ष तक) 5 वर्ष से 10 वर्ष तक।

(2) किशोर अवस्था या तूफानी आयु 10 वर्ष से 14 वर्ष तक।

(3) युवा अवस्था या गुलाबी आयु 15 वर्ष से 19 वर्ष तक।

यह ध्यान देने योग्य बात है कि शिक्षण इन तीन अवस्थाओ को ध्यान में रखकर किया जाय। यह बहुत जरूरी है। बालक या बालिका की आयु, मन, उसकी शारीरिक क्षमता तथा उसमें हो रहे परिवर्तनों, बालक की बुद्धि क्षमता—सारे बालक मन्द बुद्धि नहीं होते, तो सारे बालक तीव्र बुद्धि नहीं होते। शिक्षण और समाज के परिपेक्ष मे माग की विभिन्नता मे लिंग भेद अपना प्रभाव डालता है। अत. उसे नकारा नहीं जा सकता। क्योंकि आखिर उसे समाज के वास्तविक धरातल पर चलना ही होगा, और समाज में रहना ही होगा। शिक्षा की मांग पर समाज के वातावरण का भी प्रभाव पड़ता है। अत उसका भी ध्यान रखना होगा। समाज में छात्र और छात्रा का अलग अलग अस्तित्व है। अतः शिक्षा की माग भी उनकी अलग अलग होगी। कुछ अपवादो को छोड़ कर आज यह कटु सत्य है लेकिन जो बात अधिक ध्यान देने की है, वह है, सदियों पुरानी शिक्षण व्यवस्था। आज प्राथमिक, उच्च प्राथमिक, सैकेण्ड्री, सीनियर हायर सैकेण्ड्री, महाविद्यालय, विश्वविद्यालय की शिक्षण व्यवस्था बिल्कुल बेकार हो चुकी है। मेकाले की क्लर्क पैदा करने वाली शिक्षा व्यवस्था की कोई आवश्यकता नहीं। ये शिक्षण संस्थाएं भारत की भावी पीढ़ियो को अंधकार में धकेल रही है।

इनके स्थान पर बाल अवस्था शिक्षण, किशोर अवस्था शिक्षण, एवं युवा अवस्था शिक्षण तथा विषय की विशेषज्ञता शिक्षण व शोध शिक्षण कार्यक्रमो के शिक्षण की व्यवस्था की जाय।

बाल अवस्था शिक्षण में–

- खेल।
- मातृभाषा हिन्दी का शिक्षण।
- दैनिक जीवन में काम आने वाले व्यवहारिक गणित का शिक्षण।
- खेल खेल मे ऐसा काम सिखाया जाय जिसमें उसकी रूचि हो।
- दैनिक जीवन जीने के लिए सामान्य ज्ञान।

किशोर अवस्था शिक्षण–

बालक जिसमे रूचि लेता हो, उसकी प्रतिभा, योग्यता, के अनुसार उसके भावी जीवन के काम आने वाले कार्य को सिखाया जाय जो भविष्य मे उसकी रोजी रोटी का साधन बन सके।

- नैतिक एवं चरित्र निर्माण की शिक्षा।
- समाज में अच्छा नागरिक बनने हेतु समाज का व्यवहारिक ज्ञान।
- दैनिक जीवन यापन हेतु सामान्य एवं व्यवहारिक ज्ञान।
- खेल।

युवा अवस्था शिक्षण–

- यौन शिक्षा।
- सामाजिक एवं व्यवहारिक ज्ञान शिक्षण।
- नैतिक शिक्षा।
- दैनिक जीवन यापन हेतु सामान्य एवं व्यवहारिक ज्ञान।
- खेल।

अन्य दो तरह के शिक्षण किसी विषय विशेष पर विशेष प्रशिक्षण व शिक्षण हेतु तथा शोध हेतु हों।

शिक्षण के तीन आयाम

(1) साक्षरता (2) सक्षम (3) सुयोग्य

ये तीनो आयाम शिक्षण की अलग अलग अवस्थाओ के लिए उनकी आवश्यकता अनुसार होगे।

साक्षरता—बालक अपनी मातृभाषा को लिखना पढ़ना अच्छी तरह से सीख जाय और मातृभाषा हिन्दी हो। वह अन्य क्षैत्रिय भाषा सिखना चाहे सीख सकता है। परन्तु प्राथमिकता हिन्दी को दे। बालक को व्यवहारिक जीवन मे काम आने वाले गणित का ज्ञान करवाया जाय। बालक उस सामान्य ज्ञान को सीख जाय जो उसके भावी जीवन में जीने हेतु तथा समाज में सामाजिक प्राणी बनकर जीने हेतु अवश्यक हो। बालक को दैनिक जीवन में काम में आने वाले सामान्य तथा व्यवहारिक ज्ञान का शिक्षण दिया जाय।

सक्षम— बालक को उसकी आयु की अवस्थानुसार उसे श्रम का आदर देने वाला ऐसा कार्य करने की आदत डालकर अग्रसर किया जाय जिससे धीरे धीरे रूचि अनुसार वह कोई ऐसा श्रम या कार्य चुन सके जिसमें उसकी रूचि हो। जो अवस्था अनुसार उसे श्रमप्रिय बना सके। वह काम व श्रम से जी न चुराये व श्रम करने में अपना अपमान न समझे, वह काम को छोटा-बड़ा न समझे। जो उसके भावी जीवन के लिए रोजी रोटी व विकास आधार स्तम्भ बन सके। बालक पर कोई काम थोपा न जाय। उसमे बचत की आदत डाली जाय। उसके स्तर, आयु और विकास अनुसार उसे काम सिखाया जाय। वह उसके लिए भार न हो। उसकी रूचि, प्रतिभा को ध्यान में रखकर उसका अधिक से अधिक विकास किया जाय। उसपर कोई चीज थोपी न जाय। उसका विकास मनोवैज्ञानिक तरीके से किया जाय। शालाओं में कृषि फार्म, व वर्कशाप की व्यवस्था की जाय। बच्चों द्वारा तैयार माल को बाजार में उन द्वारा स्वयं बेचने की व्यवस्था की जाय। जिसपर

कमाए लाभांश को उनके बैंक खातों में जमा कराया जाय। लेकिन शिक्षा पर समस्त व्यय सरकार करे। जिससे बालक धीरे धीरे आयुस्तर के अनुसार अपने ज्ञान का विकास कर सके। भविष्य में वह अपने पैरों पर खडा हो सके। माता, पिता व सरकार पर भार न बने। दो पैसे अपने लिए व अपने परिवार के लिए कमा सके। नौकरी के लिए मारा, मारा फिरने वाला डिग्रियों व सर्टिफिकेट का भार वाहक न बने। बैंक से ऋण ले सके। अपना स्वय का. धंधा खोल सके।

सुयोग्य– बालक मे बाल अवस्था से ही नैतिक शिक्षा व चरित्र शिक्षा द्वारा अच्छे नैतिक व चरित्र के बीज बो दिये जाय। बालक को पाश्चात्य सस्कृति से दूर रखा जायं। उसे भारतीय समाज में एक अच्छा भारतीय नागरिक बनाने हेतु अच्छे भारतीय संस्कृति संस्कार दिये जायं। उसे यौन शिक्षा व उसके निवारण हेतु स्वस्थ्य शिक्षा दी जाय। उसे अच्छा सामाजिक प्राणी बनाने हेतु व्यवहारिक शिक्षा दी जाय। उसमें राष्ट्र प्रेम पैदा किया जाय। उसमें समाज की अच्छी नीतियों का आदर तथा कुरीतियों का विरोध करने की क्षमता पैदा की जाय। जीवन के हर क्षेत्र में अच्छे वैज्ञानिक ज्ञान को समाज की आवश्यकता अनुसार उपयोग में लिया जाय। 'सब धर्मों का आदर तथा धार्मिक अन्धता का विरोध करने की क्षमता पैदा की जाय। क्षैत्रीयतावाद, भाषावाद, व सभी राष्ट्र विरोधी गतिविधियों के विरूद्ध बालकों में शुरू से ही संस्कार डाला जाय।

भारत में सभी धार्मिक, जातिगत, धर्मप्रचार मिशनों व पैसा कमाने हेतु खोली गयी सारी शिक्षण संस्थाओं को तुरन्त बन्द कर दिया जाय। शिक्षा को केन्द्र सरकार द्वारा अपने हाथ में ले लिया जाय। आज की शिक्षा पद्धति को ध्यान में रखते हुए, एक बार सारे राष्ट्र की शिक्षण संस्थाओं व महाविद्यालयो तथा विश्वविद्यालयों को बन्द कर दिया जाय। जैसे कि बुनियादी शिक्षा हेतु एक बार "विनोबाभावे" ने कहा था। शिक्षण सस्थाए तब तक पुन न खोली जायं जब तक कि उनमें पूर्णतया परिवर्तन करके शिक्षा के उपरोक्त तीनो बिन्दुओं का पाठ्यक्रम मे समावेश करके शिक्षा पद्धति को बालकों की आयु अनुसार न लागू कर दिया जाय।

शिक्षा मात्र साक्षरता समझकर राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक के जीवन से खिलवाड़ न किया जाय। शिक्षा को स्वायत्त, स्वतंत्र व राजनैतिक हस्तक्षेप से दूर रखा जाय। शिक्षको, व कर्मचारियों को उनके विषय की विशेषज्ञता के आधार पर अनुबन्ध पर रखा जाय। उनके कार्य में किसी तरह का बहारी हस्तक्षेप न हो। शिक्षा में भाई भतीजावाद, कोटापद्धति, बिल्कुल ही समाप्त कर दी जाय। योग्यता को प्रमुखता दी जाय। आठवीं पास, मैट्रिक पास, बीमार, अयोग्य, विक्षेपित, आलसी, अयोग्य, नशे व्यसनी, भ्रष्ट, या नेतागीरी करने वाले, अध्यापकों व शिक्षा विभाग के कर्मचारियों को तुरन्त शिक्षा विभाग. से निकाल दिया जाय। उन्हें अनिवार्य सेवा निवृत्त कर दिया जाय। शिक्षक का आदर किया जाय। उसे मुफ्त आवास विद्युत, जल, टेलीफोन, यात्रा, वाहन उपलब्ध प्रदान किया जाय।

शिक्षको को योग्यता मे प्रतियोगी आधार पर अनुबन्ध दिया जाय। शिक्षक को विशेष व अच्छा कालाश भुगतान दिया जाय। शिक्षा को पचायती राज से तुरन्त मुक्त कर दिया जाय। शिक्षक व उसके शिक्षण को स्वतंत्र किया जाय। विदेशी धर्मप्रचार व पैसा कमाने वाली अग्रेजी छाप शालाओं को तुरन्त बन्द कर दिया जाय। जहां हिन्दी में बोलने पर जुरमाना देना पड़ता है। भारत के भाल पर कलंक बनी इन शिक्षण शालाओं को तुरन्त बन्द कर दिया जाय।

बापू के कुटीर उद्योगों को जीवन दान देने वाली बुनियादी शिक्षा की वैज्ञानिक तकनीक व बालकों की

आयु, मांग, शिक्षा के तीन आयामो को पूरा करने वाली शिक्षा पद्धति की नितांत आवश्यकता है।

आज के भारत का विद्यार्थी अपना अंधकारमय भविष्य लिए, आंखें डबडबाये, आज की शिक्षा व्यवस्था करने वालो की ओर देख रहा है।

आज की शिक्षा के कारण, छात्र असन्तोष, हड़तालें छात्र विद्रोह हो रहे हैं। भूखा और भटका क्या क्या नहीं कर सकता। इसका प्रमाण है भटके मजबूरन, समाजविरोधी काम वालों के शिकार हो रहे है। आखिर क्यों? क्यों भारत सरकार चुप है? क्यों शिक्षाविद चुप हैं। ये आग कभी माफ नहीं करेगी, आने वाले कल मे आप से, मेरे से, शिक्षा व्यवस्था करने वालों से, सरकार से पूछेगी। तुम्हारी इस भूल का क्या परिणाम हुआ? ये राष्ट्र के भावी नागरिक क्या बन जायं आप स्वयं सोच सकते हैं। □□

सियावतों का बास
देशनोक बीकानेर (राजस्थान)

बड़े यत्न से क्यारियों की व्यवस्था कर उन नन्हें नन्हे प्यारे प्यारे पौधों की सुरक्षा का उपाय करता है। किसान यदि निरन्तर अनावश्यक सिचाई करता रहे, अत्यधिक खाद बिखेरता रहे तो खाद से पौधा जल जाएगा। अधिक पानी से गल जायगा और सुरक्षा के अभाव में जानवर पूर्णतया उन पोधों को नष्ट भ्रष्ट कर देगे।

ज्ञान विज्ञान के क्षेत्र में आज सबसे अधिक आवश्यकता 'ज्ञान पिपासा' की है बाजार में जासूसी उपन्सास लाखों की सख्या में बिक रहे हैं। ये इस बात के द्योतक है कि भावी पीढ़ी कुछ सीखना चाहती है।

आज ज्ञान मन्दिर के नन्हें मुन्ने बहुत कुछ जानने के लिए उत्सुक हैं। 2 + 2 = 4 का ज्ञान ही उनके लिये पर्याप्त नहीं वे जानना चाहते हैं कि संसार की अद्‌भुत वस्तुओं के बारे में वे जानना चाहते हैं। पशु पक्षियों के बारे में वे वर्तमान शासन की प्रक्रिया से अवगत होना चाहते हैं। उनके ज्ञान तन्तुओं को ताजा भोजन की तो आवश्यकता है ही साथ ही भूख जागृत करना हम सबका काम है।

बच्चों के नन्हें मस्तिष्क में किसी की महानता ठूसने से अब काम नहीं चलने का है। उनके मष्तिष्क में बड़े ही वैज्ञानिक तरीके से यह बात बिठानी होगी कि वर्तमान की परिस्थितियों में ऐसे ढंग से काम करना है जिससे महानता का सेहरा तुम्हारे सिर पर बंध सकता है। महानता लादने से वे महान नहीं बनते किन्तु उनके हृदय तन्तुओं को महान अद्‌भुत और कठिन से कठिन काम करने के लिए तैयार करना होगा, उनके सामने वर्तमान की समस्याऐं प्रस्तुत करनी होगी जिससे वे उन समस्याओं का हल ढूंढने के लिए छटपटाते रहें। सावधानी इस बात की हो कि छोटे बच्चों के सामने छोटी समस्या प्रस्तुत की जाय, बड़ों के सामने बडी समस्याएं।

परिवार की आर्थिक समस्याओं से उन्हें अवगत कराइए। एक कम आमदनी वाले पिता की समस्या उनके सामने रखिये थोड़ा उलझने दें फिर उन छोटे छोटे मस्तिष्को को सुने। जब समस्या का हल ढूढने के लिए छटपटा रहे हों तब ईश्वर चन्द विद्या सागर के बचपन के माध्यम से नगरपालिका की बत्ती की रोशनी में ज्ञान अर्जन करने का दृष्टान्त प्रस्तुत करे। पढ़ाई के लिये पैदल चल कर कैसी गरीबी में उस माहन पुरूष ने महानता प्राप्त की।

इन समस्या मूलक प्रश्नों से बालक सोचता है, खीजता है और कुछ न कुछ हल ढूढता है। अधिक प्रतिभाशाली बालक हल प्राप्त करने को छटपटाता है तब धीमे धीमे कृपण की भाति कुछ हल बता-दें फिर कुछ सोचने विचारने के लिए छोड़ दें।

इस प्रकार बार बार प्रश्नों का उत्तर ढूंढने से उसके मस्तिष्क की प्रक्रिया समस्याऐं को हल करने के लिये तत्पर रहेगी जब किशोरावस्था में आयेगा तब अपने आप अपने जीवन, परिवार, समाज, धर्म की समस्याऐं का हल ढूंढने से पारंगत हो जायेगा। किशोर अन्य विश्वासी समाज को बरगलाकर चापलूसी से अपना उल्लू सीधा करने वालों को शीघ्र परख लेगा। जब उसका ध्यान परिवार समाज और राष्ट्र की समस्याऐं पर रहेगा तो जेब कट, हत्याकांड और सड़ी गली बातों पर आधारित जासूसी उपन्यास उसे नीरस लगेंगे। ज्ञान पिपासा विविधत सही क्षेत्र के लिये जाग्रत होने से वह भटकता घूमता हुआ काल्पनिक जीवन के रंग महलों में आश्रय लेता है, हत्याकांड और रोमान्स के काल्पनिक किस्से उसे खूब भाते हैं।

पाठ्यपुस्तकों के प्रति अरूचि का प्रमुख कारण यही है कि शिक्षक अपनी ओर से ज्ञान ऐसे ढंग से बिखेरता है जैसेकि हम खूब सारी धूल में कबूतरों के लिये-चुग्गा डाल रहे हों। धूल में सारा चुग्गा नष्ट हो जाता है इसकी अपेक्षा यदि हम उस स्थान को साफ करके चुग्गा डालें तो अधिक उपयोगी होगा। जो भी बात बतलाता है उसकी पृष्ठभूमि सोच विचार कर ऐसी बनानी होगी कि उन बातों को जानने के लिये बालक

की मानसिक क्रियाऐं छटपटाने लगे।

बालक तब ही सन्तोष महसूस करेगा जबकि उसकी पिपासा तृप्त हो जाय ऐसा ज्ञान उसके कोष मे निरन्तर अपना स्थान बनाता रहेगा। एक स्थिति ऐसी भी आ सकती है जबकि कुछ प्रतिभावान् बालक का ज्ञान समस्याओं का हल शिक्षक की बुद्धि से परे हो। ऐसे समय झिझक को छोडकर शिक्षक को स्पष्ट कहना होगा इसके लिये सोचकर बताना होगा।

प्रायः माता पिता अपने कामो में ऐसे मग्न रहते हैं कि बच्चो की बातों का उत्तर देना तो दूर रहा उनकी समस्याओ को सुनने का ही समय नहीं है। और ऐसे माता पिता को जो दिन भर व्यर्थ के कामों में जैसे चापलूसी गप्पबाजी प्रिय है, होटल ही जिनके लिये तृप्ति मन्दिर हैं, बालक को समझने के लिये उसकी समस्याओं का निदान निकालने के लिये जिन्दगी भर फुरसत नहीं मिलती। जिन माताओं ने परिवार नियोजन का लाभ नहीं उठाया वे तो अत्यन्त चिड़-चिड़ी असन्तुष्ट और परेशान रहती है। जिन्दगी भर घर के काम काज से ही फुरसत नहीं तो फिर बच्चों की समस्याओं को जानने और समझने की क्षमता हर एक माता पिता के बस का रोग नहीं है। यदि फिर ऐसे बालकों को सौतेली माताओ के पास रहना पड़ा तो ईश्वर ही उसके रक्षक है।

तीन चार साल का नन्हा मस्तिष्क इस दुनिया की छोटी छोटी बातों को जैसे छुक छुक करती रेलगाड़ी, हवाई जहाज, सर्कस के जानवर आदि के बारे में कुछ पूछता है, कुछ जानना चाहता है जब उसे उत्तर नही मिलता तो उसकी ज्ञान पिपासा राख हो जाती है और जैसे राख जब उड़ती है तो चारों ओर गन्दगी कर देती है। मानी और खाने की वस्तुऐं सब बेकार हो जाती हैं, वही स्थिति हम बच्चो की हठ के रूप में देखते है। धीरे-धीरे हठ करने की आदत तो जाती है। फिर हठी बालक की पिटाई होती है। उसके क्षुब्ध मानसिक तन्तुओ को करारी चोट असहनीय हो जाती है। वे मानसिक तन्तु जब निरन्तर चोट खाते हैं तो वे सुप्तावस्था में हो जाते हैं। इस सुप्तावस्था के पश्चात हम देखते हैं कि ऐसे बालक अध्यापक माता-पिता की नजर में ढीठ, मूर्ख, गधे, नासमझ और बेअकल के नामों से जाने जाते हैं।

इस प्रकार माता-पिता और शिक्षकों के द्वारा सही ढंग न अपनाने का परिणाम-उत्सुकता, खोजबीन करने की वृत्ति तो नष्ट हो ही जाती है उसके स्थान पर तोड़ फोड़, जासूसी उपन्यासों और सिनेमा के चाव की आदत पड़ जाती है। और पाठ्यपुस्तकें बस्ते में बन्द अथवा अल्मारी की शोभा बढ़ाती रहती हैं।

अतः ज्ञान दान के क्षेत्र में कार्यरत सभी व्यक्तियों को सजगता और सरलता के काम करने की आदत डालने पर ही ज्ञान मन्जिल तक पहुंचा जा सकता है।

यदि समय के रहते ज्ञानदाताओ ने अपनी पैनी नजर नहीं रखी तो डिग्रीयों की वही स्थिति हो सकती है जो मुहम्मद तुगलक के समयय ताम्बे के सिक्को की हो गई थी। □□

12/3 ज्ञान पिपासा
रामटेकरी, मन्दसोर

प्राचीनतम योग संस्थान

वेद प्रकार गुप्ता

सान्ताक्रुज (पूर्व) बम्बई में आम, लीची, नारियल, सुपारी, केला, चीकू आदि के वृक्षों से छादित एक एकड़-भूमि में बना "दि योगा इंस्टीच्यूट" संसार में सबसे प्राचीनतम योग संस्थान है। आधुनिक योग कला कौशल तथा विद्या की जागृति के पिता श्री योगेन्द्रजी ने 1918 में इस संस्थान की स्थापना की थी। गत 74 वर्षों में इस संस्थान ने सम्पूर्ण भारत तथा विदेशों में योग विद्या का प्रचार एवम् प्रसार करने में महान प्रगति की है और अपने क्षेत्र की पवित्रता को कायम रखा है।

श्री योगेन्द्र जी का जन्म 18 नवम्बर, 1897 को हुआ था। उनके पिता गांव दिगाम में जिला वलसार गुजरात में हैडमास्टर थे। जब योगेन्द्र जी दो वर्ष के थे तो उनकी माता जी का देहान्त हो गया। पिता जी ने ही उनका पालन-पोषण किया। जहा-जहां उनके पिता जी का स्थानांतरण होता था वे अपने पिता के साथ वहा जाते थे। उनका बचपन का नाम मनीभाई था और पिता का नाम हरी भाई देसाई था। मनीभाई हरीभाई स्कूल मे बहुत मेधावी छात्र था। स्कूल की शिक्षा प्राप्त करने के बाद उनके पिता जी ने उनको बम्बई में सैंट जेवियर कॉलिज मे पढ़ने के लिए भेजा। मनीभाई सोचते थे कि इस शिक्षा के अलावा भी कोई और शिक्षा होगी। वह हर समय खिड़की में से देखते रहते थे और चुपचाप रहते थे, और वे किसी साधु-सन्यासी मे विश्वास नहीं करते थे तथा नास्तिक थे।

एक दिन एक महान आदमी परमहस माधव दास जी बम्बई में आये, वे माधव बाग में (जो अभी भी बम्बई में है) वहां प्रवचन करने के लिये आये। मनीभाई के एक मित्र अम्बालाल ने मनी से कहा कि चलो माधव दास जी के दर्शन कर आयें। मनीभाई ने कहा कि मुझे कोई दिलचस्पी नही मगर जब अम्बालाल ने उनको मजबूर किया तो वे उनके साथ चले गये। माधव दास जी स्टेज पर बैठे प्रवचन दे रहे थे और हजारों लोग उनका प्रवचन सुन रहे थे। मनीभाई और अम्बालाल ने जैसे ही हॉल में प्रवेश किया गुरु माधव दास जी प्रवचन देते-देते खड़े हो गये और मनी हरीभाईजी के पास आकर उनको अपनी बाहों में भरकर कहा कि मैं सौ वर्षों से आपका इंतजर कर रहा हूं। मनीभाई हरीभाई हैरान हो गये, उनकी समझ में कुछ नहीं आया। गुरु माधव दास जी मनी को एक छोटे कमरे में ले गये और मनी के सिर पर हाथ लगाया और फिर प्रवचन देने के लिए स्टेज पर चले गये। गुरु जी के हाथ रखने पर मनी की आंखे बंद हो गई। आनन्द ही आनन्द अनुभव हुआ। प्रवचन देने के पश्चात् गुरु जी वापिस आये। मनी ने उनके आते ही आंखें खोल दी। गुरु जी ने कहा कि अब क्या करोगे। मनी ने कहा मैं आपके साथ चलूंगा। मनी पूरी तरह बदल गये थे और बम्बई में आकर उनके घर रहने लगे। मनी बीच पर या घर के अंदर योगासन क्रियाएं करते थे। लोग उनको देखते थे और उनका मजाक उड़ाते थे मगर मनी बहुत मजबूत और खूबसूरत थे। एक दिन एक आदमी आकर पूछने लगा कि तुम यह सब क्या करते हो ? मुझे कुछ रोग है इसलिए मुझे कोई ऐसा योग सिखाओ जिससे मैं ठीक हो जाऊं। मनी ने

उसको योग सिखाया और वह ठीक हो गया। वह आदमी दादा जी नारोभाई का दामाद था। दादा जी नारोभाई का एक मकान समुद्र किनारे पर था और खाली रहता था। दादा जी नारोभाई के दामाद ने मनी से कहा कि आप इस मकान में रहें मेरे दो बेटे है उनको योग सिखाये। मनी वहां रहकर योग सिखाने लगे और 1918 मे वहां पर योग इस्टीच्यूट की स्थापना हो गई और बहुत लोग योग सीखने लगे। जो लोग योग को मानते नही थे वे भी मानने लगे क्योकि लोगो को योग से बहुत स्वस्थ लाभ हुआ। दादा जी नारोभाई मनी को अमरीका ले गये, उनके गुरु ने उनको आशीर्वाद दिया। अमरीका में जाकर मनी ने एक बहुत बड़ा इंस्टीच्यूट बनाया और तीन साल तक काम किया, उस समय उन्होने अपना नाम बदला और योगानंदा रखा। वापिस आकर उन्होने हाउसहोल्ड (गृहस्थ) योग आरम्भ किया। किताबें लिख-लिखकर बेचीं। 1947 मे जगल साफ करके योग इस्टीच्यूट चालू हो गया। यह सबसे पुराना औरग्नाइज्ड योगा इंस्टीच्यूट है। स्वामी योगानन्दा जी ने किसी से कोई मदद नहीं ली। अपनी ही मेहनत से बनाया। किताबे लिखीं, रिसर्च का काम भी बहुत किया। 1933 में जो मैग्जीन चालू किया गया था वह भी जारी रखा। 1989 में श्री योगेन्द्र जी ने अपना शरीर यह सब करते करते त्यागा।

इंस्टीच्यूशन में 10 रेजिडेंसस रूम हैं जिसमें 30 व्यक्ति रह सकते हैं। तीन प्रैक्टिस हॉल, एक म्यूजियम, एक लायब्रेरी, कार्यालय तथा डा. जयदेव जी स्वामी योगेन्द्रजी के सपुत्र है और इस समय संस्थान के डायरेक्टर है तथा उनकी पत्नी हंसा जी जो सस्थान की डीन है, का निवास स्थान है।

म्यूजियम में हर तरह के जो योग प्रचलित हैं उनके लिये 'विजुयल' बनाया है और योग का इतिहास है। योग केवल आसन नहीं है बल्कि एक शिक्षा है। इससे मानसिक शारीरिक तथा आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त होता है। योग के लिये संन्यास लेना जरूरी नहीं है। गृहस्थ मे रहकर ही कर्तव्य निभाए करे वही योग है। संस्थान मे एक किचन तथा एक डायनिंग रूम है। यहा के कार्यक्रम निम्नप्रकार चलते हैं—

- **सात दिन का कैम्प**
- **दो दिन का कैम्प**
- **योग कक्षाएं**
- **बैटर लीविंग कैम्प**
- **हैल्थ चैकअप**
- **सत्संग**

इन सब कार्यक्रमो की अलग अलग फीस व समय निर्धारित है। सत्संग का कोई पैसा नहीं लगता। कम से कम 500 स्त्री-पुरूष तथा बच्चे प्रतिदिन यहां आकर मानसिक, शारीरिक तथा आध्यात्मिक लाभ उठाते हैं। जीवन में तो हम नाम और पैसा कमाने के पीछे भागते रहते है। यहां आने से अपने आप मे परिवर्तन आता है। हम सोचने लगते हैं कि हर चीज का क्या प्रभाव है। अपने अंदर देखने की आदत पड़ती है। आत्म ज्ञान होता है। हम किताबें पढते हैं लेकिन अपने आपको नहीं पढते। एव महिला का कहना था कि हमे यहां आकर मानसिक शारीरिक और आध्यात्मिक जागृति प्राप्त हुई है। हमारे स्वास्थ्य पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ता है।

वहा प्रवास के दौरान मैंने बच्चो की कक्षा में एक घंटा हंसा जी (संस्थान की डीन) का लैक्चर सुना जिसमे उन्होंने बताया कि हमें सुबह से शाम तक क्या खाना चाहिये और क्या नही खाना चाहिए। जिससे कि हम स्वस्थ रहें। लैक्चर मे उन्होंने एक ऐसी बात बताई कि जिसने मुझे बहुत प्रभावित किया और जीवन कल्प कर दिया। उन्होंने कहा कि हम किसी व्यक्ति के स्वभाव को नहीं बदल सकते इसलिये हमे उनके स्वभाव से दुखी नहीं होना चाहिये बल्कि उनमें गुण तलाश करने चाहिये। प्रत्येक व्यक्ति मे कोई न कोई गुण अवश्य होता है उसके गुणों से हमें लाभ उठाना चाहिये। एक और कक्षा में बताया कि योग के प्राप्त करने के आठ मुख्य अंग हैं जो इस प्रकार हैं —

- नियम (हमें जिन कर्मो से दूर रहना चाहिये)।
- नियम (हमें जो नियमितत रूप से करना चाहिये)।

- ❐ आसन (जिससे हमारा शरीर दृढ़ रहे)।
- ❐ प्राणायाम (जिससे हमारा मस्तिष्क स्वस्थ रहे और सास प्रक्रिया भी सतुलित बने)।
- ❐ प्रत्याहार (जो इद्रियों को बाह्य विकारों मे फसने से रोके)।
- ❐ धारणा (जो हमारे मन में एकाग्रता लाये)।
- ❐ ध्यान (जहां किसी भी वस्तु के बारे में पूरा ज्ञान प्राप्त हो)।
- ❐ समाधि (जहां किसी भी वस्तु के बारे में पूरा ज्ञान प्राप्त हो)।

वास्तव में योग, सुंदर, स्वस्थ तथा पवित्रता की कुंजी है।

यह सस्थान स्वच्छ, पवित्र तथा संसार भर में सबसे प्राचीन है इसकी कोई ब्राच नही है और संसार के लोग यहां आकर लाभ उठाते है। यहा के किचन में शुद्ध शाकाहारी सात्विक तथा पौष्टिक भोजन बनता है जो स्वास्थ्यवर्धक है। मिर्च मसालों का प्रयोग नहीं किया जाता। इस तरह हम भी योग को अपनाकर अपने जीवन को सुखमय बना सकते हैं। ❐❐

174, गांव देवली,
नई दिल्ली

जापान के प्राइमरी स्कूल

❐ जगमोहन सिंह राजपूत

116 वर्ष पहले स्थापित हुए आयोमा प्राइमरी स्कूल टोकियो मे आज मुझे और 13 अन्य देशों से आए हुए शिक्षा कर्मियों और शिक्षविदों को जाने का मौका मिला। अपने टोकियों प्रवास में हमने देखा कि विकसित देश और विकासशील देश के अंतर कितने स्पष्ट हैं। अधिकांश प्रतिभागियों के यहां समस्या सभी बच्चो को शिक्षा देने के प्रयत्नों से जुड़ी हुई हैं। निश्चित ही मेजबान देश ने सभी के लिए शिक्षा की व्यवस्था कर ली है--और यही नहीं अच्छी व्यवस्था कर ली है। अत उत्सुकता स्वाभाविक ही मानी जाएगी।

स्कूल के प्रांगण में पहुंचकर यह आभार नहीं होता है कि यह प्राथमिक शाला है। हमे बताया गया कि इसमे 287 बच्चे पढते हैं और उनके लिए 35 अध्यापक हैं। बड़ी ही विशाल और शानदार इमारत है। खेल का मैदान, उपकरण और आगे खुली हुई जगह, प्रवेश करते ही ध्यान आकर्षित करती है। प्रधानाध्यापक ने हमारा स्वागत किया और हमें इशारे से बताया कि हम अपने जूते निकाल दें और वहॉ पर रखे हुए जूते पहन ले। ऐसा करते हुए मेरा ध्यान सफाई की ओर गया और मैंने पाया कि हर तरफ हर चीज चमचमाती हुई साफ-सुथरी और करीने से सजी हुई दिखाई दे रही है। अंदर प्रवेश करने पर हमें एक सभा कक्ष में बैठाया गया जहॉ पर प्रारंभिक परिचय, कुछ प्रश्न-उत्तर और कुछ जानकारियाँ मिलीं। चूँकि हमारी गोष्ठी का मुख्य केन्द्र बिदु'' मूल्यो की शिक्षा'' था, अत. हमे बताया गया कि इस पाठशाला मे सप्ताह

में हर कक्षा मे एक बार एक पाठ नैतिक शिक्षा का होता है। साथ ही साथ वह भी कहा गया कि प्रत्येक अध्यापक अपने नित्य प्रति के कार्यकलाप में कक्षा के अदर और कक्षा के बाहर सदा इस बात का ध्यान रखता है कि बच्चें में अच्छे मूल्य ग्रहण करने की क्षमता विकसित हो और उन्हें ऐसी प्रेरणा लगातार मिलती रहे कि जीवन में मूल्य कितने महत्वपूर्ण हैं। और यह क्यो आवश्यक हैं। अध्यापक अपने आचार और व्यवहार में भी इसका ध्यान रखते हैं। पहला प्रश्न अप्रत्याशित नहीं था— आप मूल्यों का मूल्यांकन कैसे करते है? उत्तर था — हम विद्यार्थियों के व्यवहार, आचरण और आत्मसात करने की क्षमता का लगातार पर्यवेक्षण करते रहते हैं। कई बार विशेष परिस्थितियों में उनके व्यवहार को देखते हैं। शैक्षणिक दृष्टिकोण से कई स्थितियों में विशेष रूप से विकसित किए गए "टेस्ट" के दृवारा भी मूल्यांकन करते हैं।

इसके बाद कक्षा अध्यापक और प्रधानाध्यापक महोदय के साथ हम कुछ कक्षाओं में गए और बच्चों को पढ़ते और सीखते हुए देखा। हर कक्षा के बाहर बस्ते लटके हुए हैं। बच्चों के पास अंदर भी बस्ते हैं। एक स्कूल में ही रहता है दूसरा बच्चा घर ले जाता है। प्रत्येक कक्षा में शैक्षिणिक तकनीकी के सभी उपकरण उपलब्ध हैं। घड़ी, अल्मारी, टू-इन-वन, ओवर हेड प्रोजेक्टर, टेलीफोन, टेलीविजन, वी.सी.आर. और कक्षा की लाईब्रेरी जिसमें होती है लगभग 250 से 300 तक पुस्तकें। बच्चे स्वस्थ्य और प्रसन्न थे। प्रत्येक कक्षा में अनेक प्रकार के चित्र, मूर्तियाँ, नक्शे तथा बच्चों की बनाई कृतियाँ भी दीवारों पर लगी हुई थीं। संगीत सीखने के लिए बड़ा सभा-कक्ष था जिसमें विभिन्न प्रकार के उपकरण और वाद्‌य यंत्र दिखाई दिए। हम सभी इस भव्यता से प्रभावित हुए और शायद यही सोच रहे थे कि हमारे देशों में इस प्रकार की शिक्षा व्यवस्था क्या सभव हो सकेगी। मुझे यहाँ पर यह विचार बार-बार आ रहा था कि भारत के ग्रामीण स्कूलो से पढ़कर आए हुए कितने ही बच्चे जो किसी प्रकार उच्च शिक्षा प्राप्त कर लेते हैं, किस प्रकार वैज्ञनिक और तकनीकी क्षेत्रो मे विकसित देशो के विद्यार्थियो के साथ कंधे से कंधा मिलाकर कार्य करते हैं और कभी उनसे पीछे नहीं रहते। वह भारतीय विद्यार्थी जो भारत के विश्वविद्यालयो से डिग्री लेकर विदेशों मे उच्च शिक्षा के क्षेत्र मे काम करते हैं सभी को प्रभावित करते है तथा यदि उन्हें भी प्राथमिक स्तर पर ऐसा ही वातावरण मिला होता तो वे कितना और अच्छा करते।

इसके बाद हम उस कक्षा में गए जहॉ पर नैतिक शिक्षा का पाठ होना था। सबसे पहले प्रत्येक विद्यार्थी को उस कहानी की प्रति दी गई जो उन्हे आज पढ़नी थी। बच्चों ने कहानी पढ़ी। ये करीब 1½ पृष्ठ की थी। थोड़े समय बाद अध्यापक ने टू-इन-वन पर लगे कैसेट को चालू किया और कहानी पढ़ी जाने लगी। कुछ विद्यार्थी उसे सुनने लगे बाकी अभी भी अपने सामने रखे पृष्ठ को पढ़ रहे थे। कहानी संक्षेप में ये थी।

" एक बहुत ही गरीब जादूगर था वह केवल इतना कमा पाता था कि पेट भर रोटी खा सके। उसकी जीवन में एक ही इच्छा थी कि वह कभी एक बहुत बड़े स्टेज पर हजारों लोगों के सामने अपना जादू दिखा सके। वह सदा यही सोचता रहता था कि कब उसे यह अवसर मिलेगा। एक दिन उसने देखा कि एक खाली जगह पर एक छोटा बच्चा बहुत उदास बैठा हुआ है। जादूगर ने उससे पूछा कि वह प्रसन्न क्यों नहीं है। बच्चे ने बताया कि वह अकेला है और उसके पास खुश होने के लिए कुछ भी नहीं है। उसके पिता नहीं है तथा माँ दूर काम पर गई है। जादूगर ने उसे कुछ खेल दिखाए। बच्चा बहुत प्रसन्न हुआ, खूब हंसा और दोनों के बीच में मित्रता हो गई और यह तय हुआ कि कल सुबह बच्चे को जादूगर फिर खेल दिखाएगा। बच्चे ने जादूगर से कहा "वादा रहा" । जादूगर ने भी कहा "वादा रहा"। शाम को जादूगर को एक मित्र का संदेश मिला कि वह तुरंत एक दूसरे शहर के लिए चल पड़े जहाँ पर उसे एक बहुत बड़े स्टेज पर हजारों

लोगों के सामने जादू दिखाने का अवसर मिलना तय हुआ है। जादूगर बडे असमजस्य में पड़ गया। एक तरफ उसके सारे जीवन की अभिलाषा पूर्ण होने वाली थी और दूसरी तरफ एक छोटे बच्चे के साथ किया हुआ वादा था। जादूगर ने छोटे बच्चे के सामने किए गए वादे को पूरा करना ही ठीक समझा"। जब बच्चे कहानी सुन चुके तो अध्यापक ने पूछा क्या कहानी आप की समझ में आई?

- ❒ जी, हॉ कहानी हमारी समझ में आई ।
- ❒ आओ अब जादूगर की भावनाएं समझें। तुम ये जादूगर का चित्र देख रहे हो। जादूगर का सपना क्या था"?
- ❒ जादूगर का सपना था बडी जगह जादू दिखाना"।
- ❒ वह ऐसा क्यो चाहता था?
- ❒ वह मशहूर होना चाहता था।
- ❒ वह बहुत लोगों को खुश करना चाहता था।
- ❒ वह बडा आदमी बनना चाहता था।

जादूगर का चित्र अध्यापक ने बोर्ड पर लगा दिया। उसके नीचे उन्होंने बच्चे के सभी उत्तर लिख दिए। इसके बाद एक बच्चे का चित्र दिखाया जो अत्यंत उदास दिखाई दे रहा था और लगता था कि दूसरे दिन वह जादूगर का इतजार कर रहा था। अध्यापक ने बच्चे का चित्र भी जादूगर के सामने बोर्ड पर लगा दिया और पूछा जब जादूगर बच्चे को जादू दिखा रहा था तो उसे कैसा लग रहा था। उत्तर मिला— बच्चा बहुत खुश हो रहा था, आनन्द विभोर हो रहा था और उसकी खुशी से जादूगर भी खुश हो रहा था। एक उत्तर अत्यंत ही संवेदनापूर्ण था—चूंकि बच्चा अकेला था अतः जादूगर चाहता था कि उसे फुसलाकर अपने साथ कर ले और जादूगर बना ले। अध्यापक ने यह उत्तर भी बोर्ड पर लिखा और फिर पूछा "बताओ बच्चा क्या सोचता था"। बच्चों ने निम्न उत्तर दिए—

"बच्चा जादूगर को पिता समान समझता था"।

"जादूगर का जादू बहुत अच्छा था"।

इसके बाद अध्यापक ने बच्चो से पूछा कि तुम लोग जब किसी जादूगर को देखते हो तो तुम्हें कैसा लगता है? इस प्रश्न को सुनकर सारे बच्चे बहुत खुश हुए और लगभग एक साथ बोले" बहुत अच्छा लगता है, हम सब खुश होते है, क्या आप कक्षा मे जादूगर को बुलाएंगे"?

अध्यापक ने "रोल प्लेइंग टैक्नीक" का प्रयोग किया। उन्होंने मेज पर दो टेलीफोन रखे और बच्चें से कहा कि जादूगर और उसके दोस्त के बीच जो बातचीत हुई थी वह बात करके दिखाओ। कई बच्चें ने हाथ उठाए। कोई जादूगर बनना चाहता था, कोई उसका दोस्त। अध्यापक ने दो बच्चे को बुलाया और एक के गले मे जादूगर तथा दूसरे के गले में उसके दोस्त का चित्र लटका दिया। बातचीत शुरू कौन करे। निश्चित ही दोस्त ने खबर भेजी थी अत उसे ही शुरू करनी है। बच्चे ने खूब बातचीत की। दोस्त ने बार-बार कहा कि ऐसा मौका फिर नहीं आएगा। बच्चे को तो कभी भी जादू दिखाया जा सकता है। मगर जादूगर टस से मस नहीं हुआ। उसने कहा वादा किया है और अपने स्वार्थ के लिए वह उस वादे को नही तोडेगा। यह बातचीत काफी देर चली। जब खत्म हुई तो बच्चों ने तालियॉ बजाई। इसके बाद दो लड़कियों को बुलाया गया। उन्होंने भी इसी से मिलती-जुलती बातचीत की। लड़कियॉ ज्यादा आत्म-विश्वास और सरलता से बात कर रहीं थी। अध्यापन का मुख्य कार्य यहीं पर खत्म हो गया, अब मूल्यांकन करना था।

अध्यापक ने एक पृष्ठ पर चार-पाँच वाक्य लिखे। यह प्रश्न हैं। पहला है कि तुम अगर जादूगर होते तो क्या करते। बच्चों ने अपने-अपने उत्तर लिख लिए। खड़े होकर बताते हैं; उनके उत्तर इस प्रकार है—

- ❒ जादूगर अच्छा आदमी था।
- ❒ जादूगर मे हिम्मत थी।
- ❒ वह डरपोक था।
- ❒ उसे अच्छे जादू नहीं आते थे।

अध्यापक ने अगला प्रश्न किया कि क्या तुमने कभी वादा तोड़ा है और इसका उत्तर प्राप्त करने के पहले एक अपने जीवन की घटना सुनाई जब उसने

स्वय वादा तोडा था। बच्चों ने कुछ घटनाए बताई—

"एक बार खेलने का वादा किया था, तोड दिया"।

"एक बार मॉ को कहा कि शाम को 4 00 बजे लौट आऊँगी मगर 6 00 बजे तक खेलती रही"।

"एक मित्र के साथ सुबह दौड़ने का वादा किया था, तोड दिया"। अध्यापक ने इसके बाद कुछ ऐसी घटनाए बताई जब कठिनाई उठाने के बावजूद उन्होंने वादा निभाया था। इसके बाद तो बच्चें मे होड लग गई कि उन्होने कब-कब वादे निभाए थे।

हम सब फिर एक बार प्रधानाध्यापक के साथ सभा कक्ष में आए। मुझे प्रतिभागियो की तरफ से विचार प्रकट करने को कहा गया। मैंने उन्हे बताया कि यह कक्षा एक अध्यापक के दृष्टिकोण से आदर्श थी। इसमें बाल केन्द्रित शिक्षा की पद्धति का इस्तेमाल हुआ था, शैक्षणिक तकनीक का भी सही प्रयोग हुआ। अध्यापक और विद्यार्थियो की सहभागिता रही और मूल्याकन साथ ही साथ हुआ। जहा बच्चों पर कोई दवाब नही और कक्षा का वातावरण अत्यंत आनन्ददायी था। कहानी का अग्रेजी मे शीर्षक "प्रोमिस" था। मुझ कक्ष में बैठे-बैठे राबर्ट फ्रास्ट की वे पंक्तियॉ याद आई जो पंडित नेहरू ने 26 मई, 1964 को अपनी मेज पर अपनी हस्तलिपि में लिखीं थी। जिनका साराश यह था कि कठिनाइया बहुत हैं, निराशा के बादल घिरे है लेकिन मुझे अपने वादे निभाने हैं और अभी बहुत चलना है, आराम करने से पहले। जब ये पंक्तियॉ मैंने अग्रेजी मे सुनाई तो सभी बहुत प्रसन्न हुए और कई लोगो ने मुझे कहा कि मै ये पक्तियॉ उन्हें लिखकर दूँ। जो मैंने किया। लौटते समय मेरे मन मे केवल यह विचार थे जो कुछ मैने देखा है उसमें से क्या कुछ मै व्यावहारिकता मे अपनी कक्षाओ मे ला सकता हूं। ☐☐

5/8, एन.सी.ई.आर.टी. कैम्पस
नई दिल्ली

फार्म 4

(नियम 8 देखिए)

प्राइमरी शिक्षक

1.	प्रकाशन स्थान	नई दिल्ली
2.	प्रकाशन अवधि	त्रैमासिक
3.	मुद्रक का नाम	अरावली प्रिन्टर्स एंड पब्लिशर्स प्रा० लि०
	क्या भारत का नागरिक है?	हां
	यदि विदेशी है तो मूल देश का पता	लागू नही होता
	पता	डब्ल्यू-30, ओखला फेस-II, नई दिल्ली-110020.
4.	प्रकाशक का नाम	डा के.जे एस चतरथ
	क्या भारत का नागरिक है?	हां
	यदि विदेशी है तो मूल देश का पता	लागू नहीं होता
	पता	राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् श्री अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली - 110016
5.	मुख्य सम्पादक का नाम	राजेन्द्रपाल सिह
	क्या भारत का नागरिक है?	हां
	यदि विदेशी है तो मूल देश का पता	लागू नहीं होता
	पता	राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् श्री अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली - 110016
6.	उन व्यक्तियों के नाम व पते जो समाचार-पत्र के स्वामी हो तथा जो समस्त पूजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझेदार या हिस्सेदार हो	राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् श्री अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली - 110016 (मानव ससाधन विकास मन्त्रालय की स्वायत्त सस्था)

मै के जे एस चतरथ एतद् द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर लिखे गये विवरण सत्य है।

ह.

डा. के जे.एस. चतरथ

प्रकाशक

रजि न 32427/76

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित प्राइमरी शिक्षक एक त्रैमासिक पत्रिका है।

इस पत्रिका का उद्देश्य केन्द्रीय सरकार की शिक्षा नीतियों से संबंधित आधिकारिक जानकारी को शिक्षकों और सम्बद्ध प्रशासकों तक पहुंचाना है। इसका उद्देश्य कक्षा मे इस्तेमाल की जा सकने वाली सार्थक और सम्बद्ध सामग्री प्रदान करना भी है। भारत के विभिन्न केन्द्रों मे चल रहे पाठ्यक्रमों और कार्यक्रमों आदि के बारे मे समय समय पर इसमें सूचनाए प्रकाशित होती रहती है। शिक्षा- जगत मे होने वाली हलचलों पर विचार- विमर्श के लिए यह एक मंच का काम भी करती है।

इस पत्रिका के प्रमुख स्तम्भ है -

(1) प्राथमिक शिक्षा से सबंधित शैक्षिक नीतिया।

(2) प्रश्न और उत्तर।

(3) राज्यों के समाचार।

(4) कक्षा मे इस्तेमाल की जा सकने वाली सचित्र सामग्री।

स्कूलों के शिक्षकों की रचनाए प्रकाशनार्थ आमंत्रित है। हर प्रकाशित रचना पर पारिश्रमिक की व्यवस्था है। लेख हिन्दी या अंग्रेजी मे कागज के एक ओर लिखा होना चाहिए। सुविधा के लिए कृपया टाइप की गई या साफ- साफ, सुन्दर अक्षरों मे लिखी रचना की दो प्रतिया भेजे।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरबिन्द मार्ग, नई दिल्ली- 110016 के लिए सचिव द्वारा प्रकाशि तथा एडवांस टाइप सैटर्स (इण्डिया), 730/VIIII, रामकृष्णपुरम्, नई दिल्ली-110022 द्वारा कम्पोज होकर अरावल प्रिंटर्स एंड पब्लिशर्स प्रा० लि० ओखला फेज़- II नई दिल्ली- 110020 द्वारा मुद्रित।

ISSN 0970-9312

वर्ष 17 | अंक 4 | अक्टूबर, 1992

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्

NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

प्राइमरी शिक्षक

अकादमिक संपादक	सम्पादकीय सम्पर्क
द्वारिका नाथ खोसला	अकादमिक संपादक, पत्रिका प्रकोष्ठ,
मुख्य उत्पादन अधिकारी	राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
यू प्रभाकर राव	श्री अरबिन्द मार्ग, नई दिल्ली - 110016
उत्पादन अधिकारी	फोन : 652459
शिव कुमार	
उत्पादन सहायक	एक प्रति 4.00 रुपये, त्रैमासिक
सुबोध श्रीवास्तव	वार्षिक मूल्य 16.00 रुपये

पत्रिका संपादन - राजकुमार गुप्त

कृपया अपना चन्दा व्यावसायिक प्रबन्धक, प्रकाशन विभाग, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् नई दिल्ली - 110016 को भेजें।

प्राइमरी शिक्षक

वर्ष 17 | अंक 4 | अक्तूबर, 1992

इस अंक में

अध्यापक का सामाजिक दायित्व	1	योगराज
विकलांग बच्चों के लिए सृजनात्मक क्रियाएं	4	डा जनक वर्मा
शिक्षा एवं पर्यावरण	12	डा. ए के. त्रिपाठी
जल प्रदूषण, क्या, क्यों व कैसे	16	डा. सतीश कुमार
बाल पुस्तकालयों का शिक्षा में योगदान	21	के. बी. भारद्वाज
ग्रामीण प्रारम्भिक शिक्षा और समाजीकरण के द्वन्द आयाम	24	नरेश सिंह पुन्डीर
दत विज्ञान	28	डा. कमलेश डुडेजा
विकल्पों की खोज में साक्षरता	32	सुरेश चन्द्र मिश्र
प्रारम्भिक कक्षाओ मे लिखित कार्य—सशोधन एव गृह-कार्य	35	भगवती लाल व्यास
शिक्षकों ने लिखा है		
जल-चक्र	38	सुमंगला कपूर
बच्चो को खुलकर खेलने दीजिए	40	सुबुद्धि देवी गोस्वामी
बच्चो में स्वच्छता की आदत	41	स्वर्ण रिहानी
विचार		
गृहकार्य—बोझ किस प्रकार	43	महावीर प्रसाद भारद्वाज
उत्तर प्रदेश में आश्रम पद्धति विद्यालय	44	नन्हकू प्रसाद गुप्त
वर्तमान युग मे प्राचीन शिक्षा की सार्थकता	46	डा. चन्द्र प्रकाश

अध्यापक का सामाजिक दायित्व

❒ योगराज

वर्तमान युग भौतिक सुसम्पन्नता का युग है जिसके खर-शरों से आहत मनुष्यता आह कर उठी है। पुरातन मूल्यो की अवमानना, नित्यप्रति बदलते मूल्य, नव्य सजगता, वैज्ञानिक उपलब्धियाँ— यह सब दृष्टव्य है इस युग में। किसी सम्पन्नता का आधार उसकी भौतिक सुसम्पन्नता ही रह गयी है। यही मनुष्य के स्तर का मानदण्ड है और यही उसका परिचय। वस्तुतः यह सब भोग मूलक संस्कृति का परिचय है। हमारे मानस पटल से यह बात/तथ्य फिसल चुका है कि भौतिक ऊँचाइयों का सुख तभी लक्ष्य है यदि उनका प्रासाद मनुष्यता की आधारशिला पर परिनिर्मित हो। अन्यथा यही कुछ होगा जो हमारे चहुँदिश व्याप्त है— अनैतिकता का ताण्डव।

निश्चित ही बदलते पर्यावरण में शैक्षिक स्तर पर भी परिवर्तन अनिवार्य है। घटा भी है। परन्तु इस सबका तात्पर्य यह नहीं कि 'नकल' के लालच में सम्बद्ध देश एवं परिस्थिति के परिप्रेक्ष्य मे हम चिन्तन करना ही छोड़ दें और भूल बैठे वह सब जिन्हें मनुष्यता के इन्ग्रेडियेंट्स (ingredients) कहते है, पुरातन का मोह मात्र पुरातनता के लिए हेय है परन्तु पुरातन की अवमानना मात्र 'पुरातन' कहकर करना भी खतरे से खाली नही। सस्कृति सभ्यता का अप्रत्यक्ष एव खरा और सर्वोच्च प्रफुल्ल रूप है। भारतीय संस्कृति त्यागमूलक विचारधारा की पोषक रही है जिसका सारसूत्र 'तेन त्यक्तेन भुंजीथा' में निहित है। त्याग चाहे किसी भी स्तर का हो— सर्वोच्च है। यही भारतीयता का सच्चा परिचायक है और पाश्चात्य देशों के लिए शिक्षात्मक सूत्र है। यही त्यागमूलक संस्कार आधार रहा होगा जिसके कारण हमारे पूर्वजो ने 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की परिकल्पना की थी। आज ऐसी बाते मात्र उपदेशात्मक कहकर ठुकरा दी जाती हैं।

चारित्रिक हनन (moral impurity) ज्वलंत समस्या बनी है। आज कहीं भी दृष्टिपात कीजिए, ज्ञात होगा— सवर्त्र अपराध भावना, दुर्भावना, बेईमानी, स्वार्थपरता ने सबको ग्रस लिया है। समाज के समस्त अंग रोग ग्रस्त हैं। ऐसे में 'कल का भविष्य' क्या होगा जब नैतिकता का इतना ह्रास हे चुका है। जन-जीवन अस्त-व्यस्त हो रहा है; होगा भी, क्योंकि भवितव्य पीढ़ी यही अव्यवस्था तो सीख रही है। उसी मे पनप रही है। ऐसे मे, प्रश्न उठता है, एक अध्यापक क्या कर सकता है ?

दायित्व के इस प्रश्न को सुलझाने से पूर्व अध्यापक को पुरकाल के 'गुरु' पद का चिन्तन करना है। यद्यपि भौतिकता प्रधान युग मे आज के अध्यापक की अनेकानेक समस्याएँ हैं जिन्हें समाज एवं अधिकारी वर्ग न समझकर उनमे बढ़ोतरी करते हैं, परन्तु यह अनिवार्यता है कि अध्यापक अपने दायित्व को भली-भाँति समझे। उसे 'मानव' के पैरों पर खड़े होकर वह सब करना है जिससे प्रथमत: मानवता का प्रसार हो। यद्यपि हम 'मानव' के पॉवों पर खडे होकर कुछ करने की न तो हामी ही भरते हैं और न ही अपेक्षा करते है। इस हेतु परमुखापेक्षी न होकर गीता के अर्जुन की भॉति 'क्षुद्र हृदय दौर्बल्यं' त्याग कर चेतना रूपी ब्रह्म का विराट् रूप देख अपने भीतर उस देव अंश को जाग्रत करना है जो हमारे जीवट का शक्ति प्रदाता है। सबसे पहला कदम आत्म-ज्ञान होगा और होगा दायित्व का परिचय। सभी कुछ इस 'अर्थ' प्रधान युग में अर्थ से ही नहीं आंकना होगा।

आज जन-समूह विनाश के कगार पर खड़े है।

इसके प्रमुख कारणों मे हमारी शिक्षा का फॉर्मेटिव (formative) न होकर इनफॉर्मेटिव (informative) होना और पुरकाल के चिन्तन कोश का मात्र पुरातन कहकर त्याग है। सद्य स्थितियों में अध्यापक के लिए मात्र सम्बल उसके वंशधर 'गुरु' से ही प्राप्य है। वह 'गुरु' जिसे साक्षात् पर-ब्रह्म की पद्वी पर इसी भारत ने आसीन किया था, वह गुरु जो कुछ न लेकर सर्वस्व दान देता था। वह गुरु जिसका वन्दन शिष्यो का इस रूप में कण्ठहार रहा— 'अज्ञान तिमिरांधस्य ज्ञानाजनशलाकया, चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै। श्री गुरुवे नमे।' आज यदि परिस्थितियों के फेर में हम प्राणद् मूल्यों को भूल जाते हैं तो इसका मूल्य जाग्रत एवं विकसित युग के अध्यापक को अवश्य चुकाना होगा।

अध्यापक और छात्र के सम्पर्क की घड़ियॉ जीवन्त बोध की घडियॉ होती हैं छात्र के जीवन की। कहा है 'प्रवर्तितां दीप इव प्रदीपात'— पुस्तक पठन ही लक्ष्य नही है। ये तो निर्जीव माध्यम हैं उन्हे सजीव बनाने हेतु अध्यापक का सजीव सम्पर्क आवश्यक है— उनमे प्राण फूंके जा सकते हैं और इस, केवल इस माध्यम से भी एक कुशल अध्यापक छात्रों की आत्मा को वस्तु एवम् विषयी तत्व से प्राणवान् बना सकता है। छात्र हेतु छात्र जीवन मे अध्यापक से बढकर कुछ नहीं होता। वह अध्यापक के प्रत्येक 'एक्शन' में प्रभावान्विति परखता है। एक सधा हुआ अध्यापक अपने कर्म से, उपदेश से छात्र को सुकृत्यो हेतु प्रोत्साहित (galvanize) कर, देश हित, मानव जाति हित, संस्कृति सरक्षणार्थ हित साधक हो सकता है। एक जीवन्त भाषा अध्यापक 'मूल्यो' का प्रथम पाठ पढाकर 'भविष्यत् निधि' के अवमूल्यन को बचा सकता है।

किसी जाति, किसी देश को पदाक्रान्त करना अथवा करवाना हो तो उसके नवयुवकों को उस जाति/देश के इतिहास की भ्रष्ट तस्वीर प्रस्तुत कर यह सब किया जा सकता है। ऐसा लॉर्ड मैकॉले की शिक्षा सम्बद्ध विचारधारा से परिलक्षित है। इतिहास जाति/देश की अस्मिता का परिचायक है। यह एक अध्यापक का सामाजिक दायित्व है कि वह इतिहास की सच्ची एवम् निष्पक्ष तस्वीर प्रस्तुत कर विद्यार्थियों के मन सच्चाई की कौध उत्पन्न करे। इतिहास मनुष्यों की गलतियो का लेखा-जोखा भी माना जाता है। परन्तु भविष्य सुरक्षित हो और मनुजता का ह्रास न हो, इस हेतु अध्यापक अपनी सुसम्पन्न विचारधारा से बच्चों को— नन्ही अलिखित मस्तिष्क पट्टी पर कुत्सित लकीरों के रेखांकन से बचाकर उन्हें भवितव्य युग का जागरूक नागरिक बना सकता है ताकि वे गलतियॉ पुनः न दोहराई जाएँ कि मनुष्य फिर ब्लीक एज (Bleak age) में समुपस्थित हो।

चारित्रिक हनन, जिसे महात्मा गॉधी जी ने 'Miasma of moral impurity' कहकर सकेतित किया है, की सद्य परिस्थितियॉ देन हैं। सर्वत्र मनुष्यता से खिलवाड किया जा रहा है। कौन करेगा जाग्रत उस नन्हीं कली को जो विकसित होने से पहले ही विष से भरी जा रही है ? समाज को पतन के गर्त से कौन बचाएगा ? उत्तर है वर्तमान भारत की ही नही प्रस्तुत विश्व की कक्षाएँ— जिन्हे जागरण मंत्र देगा आज का जागरूक अध्यापक। वह अध्यापक कुण्ठा रहित होगा, उसका लक्ष्य मात्र वेतन भोगी बनकर केवल आर्थिक वृद्धि या अन्य सुविधाओ की ही मॉग करना नही होगा बल्कि होगा समाज की अस्मिता की रक्षा करना, जिसकी रक्षणार्थ वह निःशेष भाव से उत्सर्ग कर देगा। भविष्यत् समृद्धि— उसकी सुन्दरतम परिकल्पना के स्वप्न संसार को यथार्त में बदलने वाले होंगे आज के बच्चे जो कल के कर्णधार होगे और जाग्रत नागरिक— सच्चे एवं नेक मार्ग के पथिक— पाथेय जिनका होगा नेक-नियत, ईमान, मनुष्यता और मानव धर्म। इस चतुरंगिणी सेना से वह युग की कालिमा पर घोर प्रहार करेगे। नारा होगा— मनुष्यता का उद्धार— मनुजता का लाभ-हित-चिन्तन। दुर्घर्ष इस संघर्ष में — नेक नीयत के इस पथ का प्रेरणा स्रोत होगा आज का 'अध्यापक'। परिणाम बेहतर होगा। बुनियाद पक्की होगी जिसे पुरातन आदर्शो के मनसा-वचना-कर्मणा यथार्थ का सीमेण्ट लगा होगा। समाज जयनाद करेगा, युग के अर्जुन और सखा कृष्ण के शंखनाद से सच्चाई की प्रत्यंचा पर चढ़ा तीर पाप-कर्म का सर्वथा विनाश करेगा। युग पहचानेगा

युग-पुरुषों को। नतमस्तक होगा प्रणेता के प्रति। कराहट, कडवाहट सर्वथा दूर होगी। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का आदर्श व्यवहृत होगा क्योंकि युग-पुरुषो का आदर्श 'तेन त्यक्तेन भुंजीथा' का होगा। यही गुरुमत्र होगा जब, तब शान्त काल का उदय होगा। निद्रा की महारात्रि व्यतीत होगी। जागरण युग के प्रणेता ! देवर्षियों के वंशज— युग के अध्यापक— अपने दायित्व का आभास पाएँगे। युग अधीर हो चेतना-पुंज की ओर दृढ नयनों से निहार रहा है। समय निकल न जाए— 'निर्वादीपे किं तैल दानम्'

मानसिक चेतना युगीन कायाकल्प करती है। मानसिक गुलामी विनाश का प्रथम व अन्तिम चिह्न है। आत्मा की आवाज को पहचानना चैतन्य का चिह्न है। उसकी यथार्थ मे परिणति विद्वान, जाग्रत जनों की प्रकृति है। ऐसा कृत्य देव-कार्य है। सच्चा हृदय ही शुद्ध शोणित नसों में प्रवाहित कर सकने में समर्थ होता है, झूठ-फरेब का नही। कारण-कार्य का परिचय आत्यंतिक अनिवार्यता है। यह चैतन्य की ओर दृढ पग है। ऐसा सब सात्विक चेष्टावान् ही कर सकता है। 'प्रीसेप्ट' एवं 'प्रेक्टिस' मे विलगता बनी हुई है। इस कुत्सित लीला का विनाश अनिवार्य है अन्यथा मनुष्य की समस्त भौतिक ऊँचाइयॉ लील हो जाएगी। विनाश का ताण्डव, जो मनुष्य मन में चल रहा है, वह एक दिन अपना खेल दिखाकर धराधाम को कंकालों का निर्वसनधाम बना जाएगा। आज की भूल यह है कि मनुष्य ने चिन्तन ही त्याग दिया है कि भौतिक ऊँचाइयॉ सुसस्कृत हृदय की नीव पर ही टिकाऊ हो सकती है। इस भविष्यत् चिन्तन को सामाजिक हृदय में घर दिलाकर ही आज का शिक्षक अपने देव-ऋण से उऋण हो सकता है। इस प्रयत्न के फलत ही यह भारत-भूमि ऋतम्भरा, विश्वम्भरा बन पाएगी। स्वतंत्र हृदय से स्वतंत्र चिन्तन भटके राही को संन्मार्ग दिखा सकता है। मार्ग प्रशस्त है, युग की मॉग है— निर्भीक पथिक—अग्रसर हो इस साधुवाद के साथ ·

हो शुचि पुनीत यह जीवन
सागर सा प्रशान्त
स्रोतस्विनी सा प्रवाहमान
हो यह तब जीवन।

होगी हिय में मांगल्य कामना, पार पाने की चाह, नरत्व में ईशत्व के दर्शन की अभिलाषा पूर्ण अवश्य होगी तब। कर्मरत रहना सम्प्रति वांछित है। नर तो काल-कवलित होगा परन्तु नरत्व को जीवन्त रखने हेतु पुरखो से प्राप्त अध्यापकत्व के गुरुभार का अहसास हिय को दिलाकर आवश्यक है कि शिक्षा व छात्र के बीच सजग कड़ी बन अध्यापक मानवीयता के स्तम्भाधार समस्त मूल्यो का सजीव हस्तांतरण करे। सुजन सामाजिक संरक्षणार्थ निजलाभ को दृष्टिओझल कर विषाक्त स्थितियो में कार्यरत रहते हैं परहितार्थ। जाने-अनजाने वे गुणागार विषाक्त समुद्र में अमृत के ही छींटे देते हैं स्व-स्वभाववश, यह मानकर 'समुद्र बिच बूँद समानि'। इसी की अपेक्षा लिए समाज दृष्टि गड़ाए खड़ा है अध्यापक की ओर। ❑❑

ने. बी. टी. विद्यालय
नाहन
(सिरमौर) हि. प्र.

विकलांग बच्चों के लिए सृजनात्मक क्रियाएं

❑ डा० जनक वर्मा

सृजनात्मक का अर्थ है, 'सृजन करने की योग्यता' और 'सृजन' करने का अर्थ है किए हुए कार्य को स्वतंत्र और मौलिक रूप से कर पाना। इसका अभिप्राय सर्वथा नवीन वस्तु की रचना से नही है। इसका अर्थ है व्यक्ति अपने लिए अपनी सोच समझ के अनुसार कुछ रचना करे, कुछ नवीनता खोजे। यो तो शिक्षा के क्षेत्र मे सृजनात्मक क्रियाए सामान्य बच्चो के लिए अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम हैं परन्तु विकलांग बच्चो की शिक्षा मे इनका महत्व और भी अधिक है। सृजनात्मक क्रियाएं उन्हें अपने को अभिव्यक्त करने का अवसर देती है। साथ ही उनकी मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओ की पूर्ति भी करती हैं।

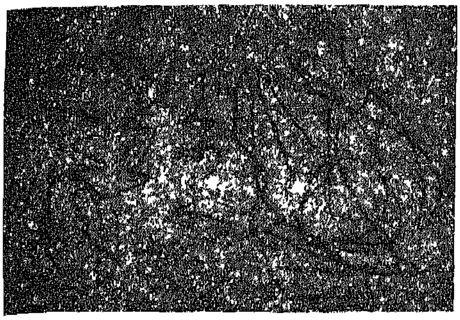
सृजनात्मक क्रियाए विकलांग बच्चो को उत्साहित कर प्रेरणा देती हैं और उनकी सृजनात्मक प्रतिभा को उभारकर विकसित करने में सहायक होती हैं। प्रत्येक व्यक्ति में सृजनात्मक प्रतिभा होती है। किसी में कम, तो किसी मे अधिक। यदि विकलाग बच्चो को समान अवसर मिले और कलात्मक अभिव्यक्ति द्वारा सृजनात्मक एकता का स्फूरण हो सके तो यह विधि उन्हें उनकी अपनी प्रतिभा और क्षमताओ को विकसित करने की प्रेरणा देगी जिससे उनका सामाजिक एकीकरण बेहतर हो सकेगा।

तरह-तरह की रचनात्मक कलाए अभिव्यक्ति का माध्यम तो है ही, साथ-साथ शिक्षण पद्धति का सशक्त साधन भी है। विकलांग बच्चो की शिक्षा में सृजनात्मक कलाओं का योगदान और भी अधिक महत्वपूर्ण है। सृजनात्मक क्रियाओ का उपयोग शिक्षण के साथ उनकी चिकित्सा के रूप मे भी होता है। विकलाग बच्चे में अपनी कमी के कारण, एक तरह का तनाव होता है या अपनी कमी का एहसास होता है। इन क्रियाओ में भाग लेने से वह तनाव मुक्त हो जाता है। इससे बच्चा अपनी क्षमता पहचानने लगता है, दूसरे बच्चों से उसे समझ और प्रोत्साहन मिलता है और इस तरह उसका अपने ऊपर विश्वास बढने लगता है। ये क्रियाएं उनके सही और समुचित विकास मे सहायक होती है।

रचना, क्रियाएं करवाते समय बच्चो की शारीरिक और मानसिक क्षमताओ का ध्यान रखना आवश्यक है क्योकि बच्चो में इनका स्तर भिन्न-भिन्न होता है। जिस प्रकार बच्चों के शारीरिक विकास का एक क्रम होता है; उसी प्रकार बच्चों की कलात्मक क्षमता के विकास का भी एक क्रम होता है। प्रत्येक बच्चा चाहे वह सामान्य हो या विशेष, इस विकास क्रम से गुजरता ही है, हो सकता है कि एक चरण से दूसरे चरण तक पहुँचने में उसे समय कुछ अधिक लगे। कुछ बच्चे विकास क्रम के अंतिम चरण तक नहीं भी पहुँच पाते। जैसे— मानसिक रूप से अवरुद्ध बच्चे। सामान्य बच्चो में कलात्मक क्षमताओ के विकास का क्रम निम्न होता है .

1. स्क्रिब्लिंग स्टेज

जो 2 से 4 वर्ष की उम्र तक रहती है। बच्चे लम्बाई मे एवं गोलाई मे रेखाएँ खीचते है।



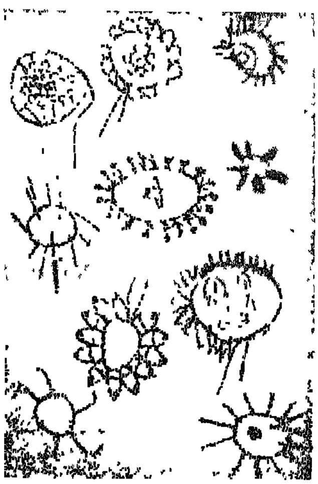
लम्बाई व गोलाई मे खीची गई रेखाये



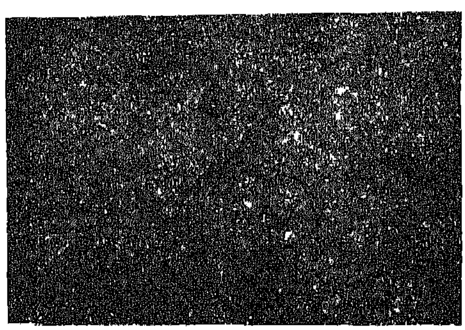
कल्पना और वास्तविकता के सम्बन्ध का प्रयास

2. प्री स्कीमैटिक स्टेज

धीरे-धीरे बच्चा प्री स्कीमैटिक स्टेज तक पहुँचता है। जो 4 से 7 वर्ष तक रहती है। इस चरण में चित्रों में कुछ वास्तविकता आने लगती है। बच्चा कल्पना और वास्तविकता का सह सम्बन्ध समझने लगता है।



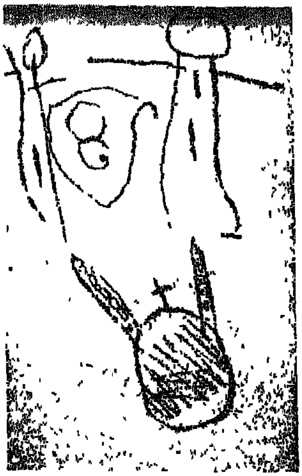
लम्बाई व गोलाई में खीची गई रेखाये



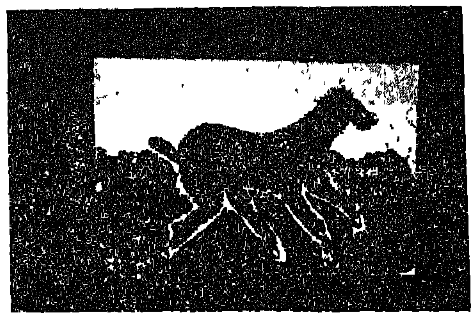
लम्बाई व गोलाई मे खीची गई रेखाये

3. स्कीमैटिक स्टेज

इसके बाद आती है स्कीमैटिक स्टेज, जो 7 से 9 वर्ष तक रहती है। बच्चा वास्तविक चीजो की रचना करने का प्रयास करने लग जाता है। रगो का, स्थान का चुनाव सही करता है। गतिमान वस्तुओ का चित्रण करने लगता है। इसके बाद चित्रों का रूप और विकसित होता जाता है। कला के विकास चरण, हर बच्चे में यही होते है। विकलांग बच्चों के विकास का क्रम भी यही रहता है। पर अपनी क्षमतानुसार उन्हें एक चरण मे समय कम या अधिक लग सकता है और उसकी अपनी क्षमता के अनुसार ही उसे उपलब्धि भी होती है। इन रचनात्मक क्रियाओं के बराबर अभ्यास से उपलब्धि स्तर बढ़ भी सकता है।



कल्पना और वास्तविकता के सम्बन्ध का प्रयास



गति का चित्रण



वास्तविकता की पहचान

रचनात्मक क्रियाए भिन्न-भिन्न प्रकार की हो सकती हैं–

- ❑ पेंसिल, ब्रुश, खड़िया व चाक आदि के प्रयोग से होने वाली क्रियाएं।
- ❑ उँगली के प्रयोग से होने वाली क्रियाएं।
- ❑ कागज के प्रयोग से होने वाली क्रियाएं।
- ❑ कोलाज
- ❑ मिट्टी की क्रियाएं

पेंसिल ब्रुश, खड़िया व चाक आदि के प्रयोग से होने वाली क्रियाएं

बच्चे कागज व पेंसिल के प्रयोग से तरह-तरह की क्रियाए करते हैं। जैसे—कागज पर पेंसिल या ब्रुश से तरह-तरह के चित्र बनाना। इसी प्रकार छोटे बच्चे स्लेट पर या बोर्ड पर स्लेटी से या चाक से या जमीन पर (चाक) खड़िया या कोयले से तरह-तरह के चित्र बनाते हैं। इन चित्रों से बच्चो के मन के भावों व उनकी क्षमताओं के विकास क्रम का पता लगाया जा सकता है। ये क्रियाए आगे चलकर बच्चों के मूल्यांकन में सहायक होती है।


ब्रश से चित्रकारी


चित्रकारी का अभ्यास


रगो के अभ्यास मे विलीन बच्चे


स्लेटी/चॉक से चित्रकारी

उँगली के प्रयोग से होने वाली क्रियाएं

बच्चो में अपनी उँगलियों का प्रयोग करने की एक सहज प्रवृत्ति होती है। वे हर जगह अपनी उँगलियो का प्रयोग चाहते है। इसीलिए उन्हे अपनी उँगलियों को रंगों में डुबो-डुबो कर तरह-तरह की आकृतियां बनाने मे बहुत आनद आता है और कुछ नहीं तो वे जमीन पर बैठे मिट्टी से अपनी उँगलियो के माध्यम से अपने मन की भावनाओं की अभिव्यक्ति करते रहते हैं। इन सब क्रियाओं के करने से बच्चे के हस्तकौशल का विकास होता है।



उगलियो के प्रयोग में तल्लीन बच्चे



उगलियो के प्रयोग में तल्लीन बच्चे

कागज के प्रयोग से होने वाली क्रियाएं

कागज के प्रयोग से भी बहुत तरह की क्रियाएं करवाने की संभावनाएं होती हैं। कागज सफेद, रंगीन, मोटा-पतला, कैसा भी हो सकता है। इसे विभिन्न आकारो में काटा या मोड़ा जा सकता है, इनके द्वारा आकारों का परिचय दिया जा सकता है। कागज की क्रियाओं से बच्चे ने फुटा यीं मापक के उपयोग करने की क्षमता भी आती है। पुराने रद्दी कागज को तोड़-मोड़ कर खेलने की वस्तुएं, जैसे— गुड़िया, भालू या कोई जानवर/ पक्षी आदि बनाया जा सकता है। मानसिक रूप से अवरुद्ध बच्चे इस प्रकार की क्रियाओं में बहुत रुचि लेते है। इनसे बच्चों मे आत्मविश्वास बढ़ता है और कुछ कर सकने का सतोष अनुभव होता है।



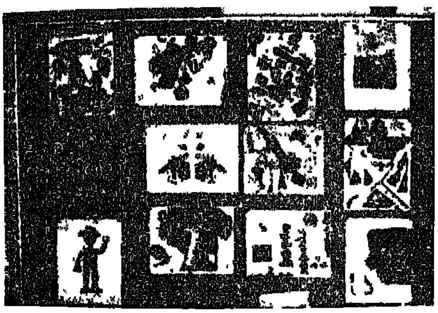
कागज़ की क्रियायें



कागज़ के फूल बनाते बच्चे

कोलाज

कोलाज भी अभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम है। इसके लिए रंगीन कागज, तरह-तरह के चित्र, कपड़े के टुकडे, दरी के टुकडे, आइस्क्रीम खाने वाले चम्मच, बटनचूडी आदि काम आ सकते हैं। कोलाज में विभिन्न प्रकार के आकारों, आकृतियो व डिजाइनो का प्रयोग किया जा सकता है। अध्यापक को कक्षा में पहले से कोलाज के विषय में चर्चा करनी होती है। इससे बच्चों की "फाइनर मोटर स्किल" विकसित होती है, जैसे—काटने से, फाडने से और पुनः सावधानी से चिपकाने से। ये क्रियाएं बच्चो के सम्मुख रंगों और सामग्री के चुनाव की संभावना रखती है तथा सबके सहयोग से एक सुन्दर रचना का निर्माण कर सकने का विश्वास जागृत होता है।



कोलाज मे दक्षता का बिन्दु



सूक्ष्म गतिकौशल्य समन्वयन



परस्पर सहयोग से प्राप्ती—एक सुन्दर रचना



सूक्ष्म गतिकौशल्य समन्वयन का एक और उदाहरण

मिट्टी की क्रियाएं

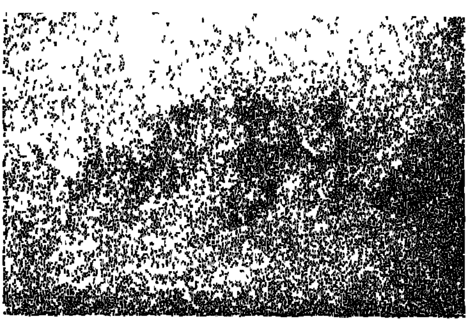
भला किसने बचपन में मिट्टी से नहीं खेला होगा ? तरह तरह की आकृतिया नहीं बनाई होगी। मिट्टी रचनात्मक क्रियाओ का एक बहुत अच्छा माध्यम है। इसे मनचाहा आकार दिया जा सकता है। यह सब जगह आसानी से उपलब्ध भी होती है। इससे बच्चे तरह-तरह की मनचाही आकृतिया बनाने का आनद लेते हैं, जैसे— गोले बनाना, विभिन्न प्रकार की ज्यामिति आकृति बनाना, जैसे—गोल, चौकोर, तिकोन आदि। बर्तन, जानवर, पक्षी व मनुष्यों की आकृतिया बनाना। तत्पश्चात् बच्चे उनमे अपनी कल्पना के अनुसार मनचाहा रग भरते है व उसे सजाते है। इससे उनकी उँगलियो की पकड व दक्षता बढती है।



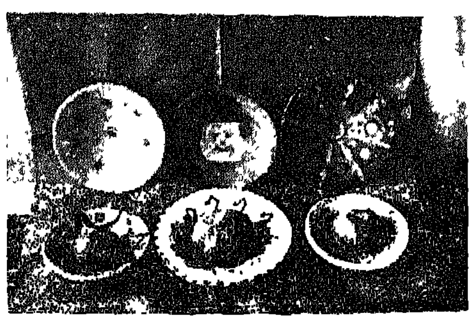
मिट्टी को मनचाहा आकार देने का प्रयास



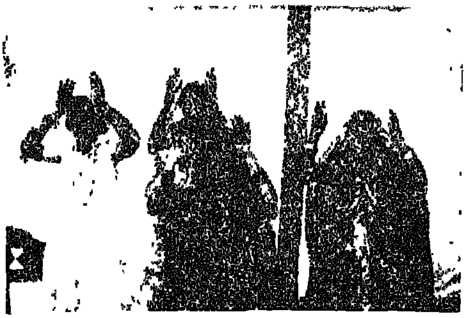
मिट्टी के गोले



विकलाग बच्चो द्वारा बनाई गई मिट्टी की विभिन्न आकृतियॉ



मिट्टी की ज्यातिमितिय आकृतियॉ



विकलांग बच्चो की लोक नृत्य मे रुचि



सगात व नृत्य सीखते हुए विकलाग बच्चे

संगीत और अभिनय के बिना सृजनात्मक क्रियाओ का उल्लेख अधूरा है। बच्चे बपचन से ही तरह-तरह की ध्वनियों के प्रति आकृष्ट होते है तथा विभिन्न प्रकार की ध्वनियाँ निकालते है जैसे— बाजा बजाकर, ताली बजाकर, मुँह से आवाजे निकालकर तथा चीजो को पटककर भी ध्वनियां सुनते हैं। विशेष बच्चे भी बहुत सुन्दर गाते हैं। विभिन्न प्रकार के वाद्य यंत्र भी बजाते हैं। अभिनय करते हैं। इससे बच्चों का संप्रेक्षण (communication) बढ़ता है, संवेदनाओ और मन की भावनाओं को अभिव्यक्ति मिलती है एवं तनाव दूर होता है, भाषा का सुधार होता है और भाषा भडार बढता है। मिलकर समूह में काम करने मे रुचि उत्पन्न होती है।

विकलाग बच्चो में नृत्य, संगीत व अभिनय की क्षमता कम होती है ऐसा सोचना सही नहीं है। वे पूरे मनोयोग, रुचि से, सगीत की बारीकियों को समझते हैं, सीखते हैं। विशेष बच्चों में ये क्षमताएं अधिक भी हो सकती हैं यदि उन्हें उचित अवसर मिले।

सृजनात्मक क्षमताओ का विकास करने मे अध्यापक का बहुत योगदान होता है। वे उनके अनुसार योजना तैयार करते हैं, बच्चों को सिखाते है, माता-पिता का सहयोग लेते है तथा स्वय भी तरह-तरह की क्रियाएं करते हैं। बच्चो की क्रियाए तैयार करते समय कला की तरह सगीत के लिए ध्वन्यात्मक क्रियाओ का समावेश करना भी आवश्यक है। विभिन्न प्रकार की ध्वनिया, लय-ताल बाल क्रियाएं बच्चो मे संगीत के प्रति रुचि और आकर्षण का विकास करती हैं। सृजनात्मक क्रियाएं बच्चों की दैनिक गतिविधियो का एक अभिन्न अंग होना चाहिए। बच्चे के समुचित विकास में, पढ़ने-पढाने में, क्रमबद्धता से ज्ञान देने के अतिरिक्त ये क्रियाएं उन्हें स्वयं अपना ससार ढूँढने में मदद करती हैं एक ऐसा उन्मुख वातावरण प्रदान करती है जहाँ उसे स्वयं तरह-तरह के प्रयोग करने की स्वतंत्रता होती है और कुछ कर दिखाने का अवसर प्राप्त होता है। ❑❑

रीडर— विशेष शिक्षा
अध्यापक शिक्षा विशेष
शिक्षा और विस्तार विभाग,
एन.सी.ई.आर.टी.,
नई दिल्ली

शिक्षा एवं पर्यावरण

❒ डा. ए.के. त्रिपाठी

शिक्षा मानव जीवन के चतुर्मुखी विकास का एक प्रबल साधन है। इसका मुख्य उद्देश्य व्यक्ति के अन्दर शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा अध्यात्मिक वृद्धि एव परिपक्वता ले आना है। शिक्षा के इन उद्देश्यो की पूर्ति हेतु प्राकृतिक वातावरण का ज्ञान आवश्यक है। प्राकृतिक वातावरण के बारे मे ज्ञानार्जन की परम्परा भारतीय संस्कृति में पहले से रही है। परन्तु आज के भौतिकवादी युग में परिस्थितिया भिन्न सी हो गई है। एक तरफ जहां विज्ञान एव तकनीकी के विभिन्न क्षेत्रों में नए-नए आविष्कार त्वरित हो रहे हैं, वहीं दूसरी तरफ मानव परिवेश भी उसी जाति से प्रभापित है क्योंकि प्रक्रिया में नैतिक मूल्यों के आधार पर वैज्ञानिक तथ्यो एव उनके अनुप्रयोगों के पुनर्मूल्यांकन का प्रावधान है जिससे व्यक्ति तथा समाज को उपयुक्त दिशा का ज्ञान होता है। वैज्ञानिक क्षण भर के लिए अपने अविष्कार की भावना के वशीभूत होकर मानव मूल्यों की अनदेखी कर सकते हैं जबकि शैक्षिक अन्तर्वस्तु में व्यक्ति एवं समाज के उत्थान की बात एक साथ आती है और यहॉ पर यह कहना महत्वपूर्ण है कि व्यक्ति तथा समाज के उत्थान का लक्ष्य तभी पूरा होगा जब हम प्राकृतिक वातावरण की गुणता पर ध्यान देगे।

पर्यावरण का सीधा सबंध प्राकृतिक वातावरण से है हम अपने परिवेश में तरह-तरह के जन्तु, पेड़-पौधे तथा निर्जीव वस्तुए पाते हैं। ये सब मिलकर पर्यावरण की रचना करते हैं। विज्ञान की विभिन्न शाखाओं भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान तथा जीव विज्ञान में उपरोक्त विषय के मौलिक सिद्धान्तों तथा उनके अनुप्रयोगों का अध्ययन करते हैं। परन्तु यदि स्थितियां भयावह हो जाएं, पर्यावरण के लिए गम्भीर खतरा उत्पन्न हो जाए, तो आवश्यकता इस बात की है कि पर्यावरण के विस्तृत अध्ययन के साथ-साथ इससे संबंधित व्यावहारिक ज्ञान पर बल दिया जाए। समाज के अन्दर पर्यावरण से संबंधित समस्याओ की शिक्षा व्यापक स्तर पर दी जानी चाहिए। इनसे निपटने के लिए बचावकारी उपायों की जानकारी दी जानी चाहिए। आज के मशीनी युग में हम ऐसी ही स्थिति से गुजर रहे है। प्रदूषण एक अभिशाप के रूप में सम्पूर्ण पर्यावरण को नष्ट करने के लिए खड़ा है। पर्यावरण एक गम्भीर चुनौती के दौर से गुजर रहा है। यद्यपि हमारे पास पर्यावरण सम्बन्धी पाठ्य-सामग्री की कमी है, संदर्भ-सामग्री की कमी नहीं है। सिर्फ उपलब्ध ज्ञान को व्यावहारिक बनाने की आवश्यकता है ताकि समस्या को जन-मानस तक पहुँचाया जाए तथा ऐसी विषम परिस्थिति में उनके कर्त्तव्य तथा जिम्मेदारी का एहसास कराया जाए। इस प्रकार समाज मे पर्यावरण के प्रति जागरुकता पैदा की जा सकती है। स्कूली शिक्षा के हर स्तर पर पर्यावरण शिक्षा का समावेश करना आवश्यक है।

पर्यावरण का अर्थ क्या है

सजीव तथा निर्जीव दो सघटक मिलकर प्रकृति का निर्माण करते हैं। वायु, जल तथा भूमि निर्जीव घटक मे आते हैं जबकि सजीव घटक जन्तु-जगत तथा पादप-जगत से मिलकर बनता है। इन संघटकों के मध्य एक महत्वपूर्ण रिश्ता यह है कि वे अपने जीवन निर्वाह के लिए एक दूसरे पर निर्भर हैं। यद्यपि जन्तु-जगत में मानव सबसे अधिक सचेतन एवं संवेदनशील प्राणी है तथापि यह भी अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु अन्य जन्तुओं, पादप, वायु, जल तथा भूमि पर निर्भर है। मानव

के परिवेश में पाए जाने वाले अन्य जन्तु पादप, वायु, जल तथा भूमि पर्यावरण की संरचना करते हैं। इनकी अन्तर्निर्भरता को निम्न प्रकार समझा जा सकता है।

- पादप के जीवन के लिए वायु, नमी तथा भूमि की आवश्यकता होती है। ये अपना भोजन खनिज, जल तथा कार्बन डाइ-आक्साइड से सूर्य के प्रकाश की उपस्थिति में बनाते हैं। इस प्रक्रिया को प्रकाश संश्लेषण कहते हैं। इस प्रक्रिया मे आक्सीजन एक उपउत्पाद के रूप में निकलती है। हरित पेड़-पौधे इस प्रकार सूर्य से ऊर्जा का अवशोषण करते है।
- मानव सहित छोटे-बड़े सभी जन्तु भोजन तथा श्वास के लिए पेड-पौधों पर निर्भर हैं। पेड़-पौधों द्वारा छोड़ी गई आक्सीजन का उपयोग श्वसन-क्रिया मे होता है तथा फिर कार्बन डाइ-आक्साइड बनती है। यहा तक कि पेड़-पौधे भी श्वसन मे आक्सीजन गैस का इस्तेमाल कर कार्बन डाइ-आक्साइड गैस वनाते हैं। परन्तु प्रकाश सश्लेषण के दौरान दूषित कार्बन डाई-आक्साइड का आक्सीजन में परिवर्तन हो जाता है। इस प्रकार पेड़-पौधे तथा जन्तु एक दूसरे के सहयोग के बिना नही रह सकते। खाद्य शृंखला और कार्बन डाइ-आक्साइड, आक्सीजन शृखला और कार्बन डाइ-आक्साइड आक्सीजन शृंखला को कायम रखने मे दोनों ही जगतों (जन्तु एवं पादप) की महत्वपूर्ण भूमिका है।
- जीवन की निरन्तरता में ऊर्जा की अहम भूमिका है। सूर्य ऊर्जा का स्रोत है परन्तु छोटे-बड़े किसी भी जन्तु को प्रकृति ने यह योग्यता नहीं दी है कि वह सूर्य से ऊर्जा का अवशोषण कर सके। केवल हरित-पेड़-पौधे ही इस कार्य को कर सकते है। मानव सहित सभी जन्तु पादप द्वारा सूर्य से अवशोषित ऊर्जा को मृतोपरान्त सभी प्रकार के जन्तुओं तथा पादपों को छोटे-छोटे अवयवों में तोड़ने का कार्य सूक्ष्म जीवधारी करते हैं। इस प्रकार सभी अवयव वायु, जल तथा भूमि में पुन. मिल जाते हैं। जिनसे उनकी उत्पत्ति होती है।
- पादप पृथ्वी को ढकने का कार्य करते हैं जिससे सूर्य का प्रकाश सीधे पृथ्वी पर न पडे और जन्तु सुरक्षित रह सकें। इसके अलावा पौधो की जड़े मृदा कणों को बाधने का भी कार्य करती है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि प्रकृति ने मानव को जन्म दिया तथा साथ में उपहार स्वरूप और जन्तुओं, पेड-पौधो तथा निर्जीव संसाधनों (जल, वायु तथा भूमि) का एक महत्वपूर्ण पर्यावरण दिया है। प्रत्येक जीव अपने जीवन के लिए प्रकृति का कर्जदार है। अब तक हमने पर्यावरण तथा मानव के मध्य विभिन्न संबंधो का वर्णन किया है तथा उपरोक्त वर्णन से यह सिद्ध हो चुका है कि मानव एवं पर्यावरण दोनो की खुशहाली के लिए उत्पादन तथा उपभोग के मध्य संतुलन की आवश्यकता है। इस प्रकार के सतुलन में विचलन होता है. तो उसका कुप्रभाव मानव तथा पर्यावरण दोनों पर ही पड़ेगा।

पर्यावरण में असंतुलन

पर्यावरण में असतुलन की स्थिति एक विकृत स्थिति है, जिसमें प्रकृति के निर्जीव घटक जैसे जल, वायु तथा भूमि दूषित होने लगते है इसको प्रदूषण कहा जाता है। प्रदूषण का दूरगामी परिणाम सजीव घटकों पर पड़ता है।

पर्यावरण के असंतुलन के दो मुख्य कारण हैं

1. प्राकृतिक विपदाएं।
2. मानव क्रियाकलाप।

प्राकृतिक विपदाएं

प्राकृतिक विपदाएं जैसे तीव्र आंधी, अत्यधिक वर्षा, ज्वालामुखी का फटना, भूकम्प इत्यादि प्राकृतिक ससाधनों को नष्ट करते हैं। वनस्पतियों का अभाव होने लगता है तथा जन्तु मर जाते है। इनसे पर्यावरण को सहसा काफी आघात लगता है।

मानव क्रियाकलाप

मानव जाति ने अपने विभिन्न प्रकार की सामाजिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पर्यावरण को गम्भीर नुकसान पहुँचाया है। उन मानव क्रियाओ को निम्न प्रकार समझा जा सकता है जिनसे पर्यावरण प्रभावित होता है—

- ❑ बढती हुई आबादी
- ❑ वनोन्मूलन
- ❑ औद्योगीकरण
- ❑ जन्तुओं का अभाव होना।

बढ़ती हुई आबादी

बढ़ती हुई आबादी से पर्यावरण मे असंतुलन जैसी स्थिति आ जाती है क्योंकि यह खाद्य श्रृंखला, कार्बन डाइ-आक्साइड, आक्सीजन तथा ऊर्जा श्रृखला इत्यादि प्रभावित होते है। इनमें उत्पादन एव उपभोग की दर महत्वपूर्ण हैं।

वनोन्मूलन

इस प्रक्रिया में भौतिक रूप से बार-बार वृक्षों की कटाई तथा पृथ्वी के ऊपर के वनस्पति आवरण को नष्ट करना आता है। वनोन्मूलन से ऊपजाऊ भूमि का अभाव होता है, बाढ़ की समस्या पैदा होती है तथा जंगली जीवन समाप्त हो जाता है।

औद्योगीकरण

मनुष्य द्वारा ऊर्जा का उपयोग पिछले 50 वर्षों में जितना बढा है उतना मानव सृष्टि के आरम्भ से अब तक नही बढा था। इस बढ़ी हुई मांग की पूर्ति के लिए मानव, ससाधनों का उपयोग करता है। मानव अपने उद्देश्यों की पूर्ति हेतु औद्योगीकरण का सहारा ले रहा है। औद्योगीकरण मे ईधन के रूप मे प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक उपभोग होता है। फिर कारखानों से निकलने वाले धुएं से वायुमण्डल विषाक्त होता जा रहा है। तरह-तरह की हानिकारक रासायनिक गैसों से मनुष्य के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पडता है। भोपाल के यूनियन कार्बाइड कारखाने की दुर्घटना को भुलाया नही जा सकता। पर्यावरण को असंतुलित करने में इसका महत्वपूर्ण योगदान है।

जीव जन्तुओं का प्रादुर्भाव

विभिन्न उद्देश्यो हेतु कुछ उपयोगी जन्तुओं को मारने से पर्यावरण प्रभावित होता है। कृषि में कीटनाशक दवाइयों के प्रयोग से कुछ उपयोगी जीव मर जाते हैं। केंचुए जिनका भूमि को उपजाऊ बनाने में महत्वपूर्ण योगदान है, ऐसे प्रयोगो के शिकार हो जाते हैं।

इस प्रकार मानव जाति अपनी विभिन्न प्रकार की सामाजिक आवश्यकताओं के वशीभूत होकर पर्यावरण को गम्भीर नुकसान पहुँचाता है।

हमारी प्राकृतिक सम्पदा नष्ट हो रही है, पहाड तोडे जा रहे है, जंगल काटे जा रहे हैं। नदिया छिछली होती जा रही हैं। नीला आकाश काला पड़ता जा रहा है। आधुनिक कल कारखाने पर्यावरण को रौंदते हुए नजर आ रहे हैं। इसका ज्वलन्त उदाहरण इन घाटी की बर्बादी है। यह घाटी एक सुन्दर तथा पर्यटन के दृश्य से महत्वपूर्ण है। घाटी के तरफ शिवालिक तथा हिमालय पर्वत है जबकि दूसरी तरफ गंगा तथा यमुना नदी है। कहां चूने के पत्थर की खान है जहा से अनियन्त्रित ढंग से इन पत्थरों को निकाला जा रहा है साथ ही साथ वनोन्मूलन भी जारी है। पर्यावरण विभाग की एक रिपोर्ट के अनुसार खान से निकले मलवे को नदी-नालों से गिरा दिया जाता है जिससे पानी के बहाव में बाधा उत्पन्न होती है तथा सिंचाई की आपूर्ति भी प्रभावित होती है।

उपरोक्त विवेचन के आधार पर यह कहना उचित होगा कि—

आज हमारी प्राकृतिक सम्पदा हमारी वजह से ही नष्ट हो रही है, धूल और धुआं सारी सुन्दरता को नीलता जा रहा है। अधाधुध औद्योगिक प्रगति एवं प्राकृतिक सम्पदा का विदोहन पर्यावरण संतुलन को रौंदती जा रही है। हर एक जीवित प्राणी की जान खतरे में है।

पर्यावरण संतुलन के उपाय

पर्यावरण में असंतुलन की स्थिति से निपटने के लिए निम्न बातों पर ध्यान देना होगा—

- ❑ जहा तक संभव हो सके हम अपने प्राकृतिक भंडार को बचाए रखें।
- ❑ ऊर्जा का उपयोग कम किया जाए। ऊर्जा को व्यर्थ होने से बचाएं। जरूरत न होने पर घर मे पंखे तथा बिजली के स्विच बंद रखे।

- अत्यधिक वृक्षारोपण कर हम पर्यावरण को संतुलित रख सकते हैं।
- प्राकृतिक ईधन जैसे पैट्रोल, डीजल तथा कैरोसीन तेल इत्यादि की खपत को कम किया जाए। इनसे वायु-प्रदूषण की समस्या उत्पन्न होती है।
- स्वचालितों के ईजन की दशा से यह पता चलता है कि वह कितना प्रदूषण उत्पन्न करेगा। अगर सीमा से ज्यादा प्रदूषण उत्पन्न करे तो इंजन की दशा ठीक करवानी चाहिए अथवा ऐसे इंजन का प्रयोग बंद कर देना चाहिए।
- आधुनिक कल कारखानों में प्रदूषण निवारक सयत्र को चालू रखा जाए। कारखानों से निकलने वाले अपशिष्ट पदार्थ का रासायनिक विश्लेषण कर प्रदूषण की सीमा का आकलन किया जाए।

इसके लिए आवश्यक है पर्यावरण के प्रति एक सामाजिक जागरुकता की। जैसा कि शुरू मे बताया गया है शिक्षा के हर स्तर के पाठ्यक्रम मे पर्यावरण शिक्षा को अन्तस्थ पाठ्यक्रम के रूप में शामिल कर बच्चों को शिक्षित कर इस उद्देश्य की प्राप्ति की जा सकती है। प्राइमरी स्तर पर बच्चो को पर्यावरण के विभिन्न तथ्यों, मानव क्रियाकलाप के प्रभाव तथा बचावकारी उपाय के बारे में बताया जाए। इनके अतिरिक्त पर्यावरण शिक्षा को निम्न प्रकार से लोकप्रिय बनाया जा सकता है—

- पर्यावरण सरक्षण की भावना को प्रबल बनाने के लिए फिल्मों, समाचार-पत्रों एवं रेडियो का माध्यम के तौर पर इस्तेमाल करना चाहिए। इसके प्रति समाज को जागरूक करने के लिए पोस्टर, लोकप्रिय नारे जैसे **"पर्यावरण की रक्षा मानव धर्म है"** तथा **"वृक्षारोपण धर्म महान, एक वृक्ष दस पुत्र समान"** इत्यादि का प्रयोग किया जा सकता है।
- पर्यावरण के क्षेत्र में विभिन्न व्यक्तियो द्वारा दिए गए योगदान को बताया जाए, इस संदर्भ में महत्वपूर्ण घटनाओ का उल्लेख किया जाए जैसे हरित क्रांति, टिहरी बाध परियोजना से सबंधित बाबा आम्टे का योगदान। विशिष्ट व्यक्तियो के आदर्श को व्यावहारिक शैली में बताया जाए ताकि बच्चे भरपूर प्रेरणा से बोझिल हो सकें।
- स्कूलो मे राष्ट्रीय सेवा योजना के तहत पर्यावरण संबधी कार्यक्रम को अधिक से अधिक शामिल करना चाहिए। इस विषय पर विभिन्न प्रकार की कार्यशालाओं का आयोजन कर समस्याओ का परिचय कराया जा सकता है।
- प्रदूषण पर विभिन्न प्रकार की शैक्षिक फिल्में बनाकर दूरदर्शन पर राष्ट्रीय स्तर पर दिखाया जाए।
- पर्यावरण संबंधी प्रायोगिक ज्ञान से बालक विशिष्ट अभिरुचियों, दृष्टिकोणों का विकास किया जाना चाहिए ताकि वे विरासत के रूप मे मिले एक स्वच्छ परिवेश की मर्यादा को समझे तथा आज उसके पास जो प्रदूषण संबधी अभिशाप है उनको दूर करने के लिए अपने कर्त्तव्य को समझे। ❑❑

17, बेर सराय, नई दिल्ली

जल प्रदूषण : क्या, क्यों व कैसे

❑ डा. सतीश कुमार

प्रस्तावना

लाखों वर्षों पूर्व इस धरती पर मानव की उत्पत्ति हुई थी। उस समय वह प्राकृतिक वातावरण मे उन्मुक्त रूप से विचरता था। वह आग, जल, पहाड़, नदी, झरना, वायु आदि पर विस्मयकारी दृष्टि से निहारते हुये मुग्ध होता था। एक छोटे बच्चे के समान वह विभिन्न वस्तुओं के प्रयोगों को अनुभव से सीखता था। चूंकि उसकी बुद्धि अन्य जीवधारियों से कहीं अधिक प्रबल थी, अत: मानव धीरे-धीरे उन्नति के शिखर पर चढने लगा। इस कारण आज संसार को स्वर्ण जैसा सुन्दर माना जा सकता है। परन्तु जिस प्रकार गुलाब के साथ कांटे उत्पन्न हो जाते हैं, उसी प्रकार मानव की अत्यधिक उन्नति के साथ पैदा होता है—प्रदूषण। प्रदूषण का अर्थ है—वातावरण में उत्पन्न हुई गन्दगी। आज जल जैसे प्राकृतिक संसाधनो में भी कई कारणो से प्रदूषण उत्पन्न हो गया है। वर्तमान में भारत के 70% जल-स्रोत प्रदूषण का शिकार बने हुए हैं।

जल प्रदूषण क्या है

वह जल जिसमें निलम्बित पदार्थ हो, जिसका स्वाभाविक रग-रूप परिवर्तित हो गया हो, जिसमें दुर्गन्ध उत्पन्न हो गयी हो तथा जिसका स्वाद अरुचिकर हो गया हो प्रदूषित जल कहलाता है तथा जल की इस विकृति को जल-प्रदूषण कहते हैं।

जल प्रदूषण क्यों

अधिकाश जल प्रदूषण जल में मानवीय गतिविधियों के फलस्वरूप प्रदूषणकारी पदार्थ के अत्यधिक मात्रा में मिलने से होता है, पर कुछ जल प्रदूषण प्राकृतिक कारणों से भी होता है। जल प्रदूषण के कुछ कारण निम्नलिखित है—

- ❑ घर के कूड़े-करकट, मनुष्य एव पशुओं के मल-मूत्र, साबुन का पानी, कागज व कपड़े के टुकड़े, सड़े हुए फल तथा तरकारियाँ, आदि जल के नालो में प्रवाहित कर दिये जाते हैं और ये गंदे नाले, नदियों, झीलों, तालाबों आदि मे मिलकर जल प्रदूषित करते हैं।
- ❑ औद्योगीकरण के परिणामस्वरूप कलकारखानो की संख्या मे पर्याप्त वृद्धि हुई है। ये कलकारखाने अपने उत्पादन कार्य मे उपयोग करने के पश्चात् दूषित पानी, कूडा-करकट, गन्दगी, अपशिष्ट पदार्थ आदि आस-पास के नदी-नालों, तालाबों, पोखरों आदि में बहा देते हैं जिससे जल में जीवाणु उत्पन्न हो जाते हैं। यह प्रदूषित जल उपयोग मे लेने से नागरिकों को मलेरिया, पेचिस, पीलिया, हैजा आदि गम्भीर बीमारियों का शिकार होना पडता है तथा बच्चों में अतिसार, बुखार, फोडे-फुन्सी आदि बीमारियाँ फैल जाती हैं। कभी-कभी इस प्रदूषित जल से आस-पास के खेत तक नष्ट हो जाते हैं तथा जल मे कार्बनिक पदार्थो के सडने से उसमें आक्सीजन की मात्रा कम हो जाती है जबकि जलीय जीव अपने श्वसन के लिये जल में घुलनशील आक्सीजन पर ही निर्भर रहते हैं। अत: वांछित मात्रा में आक्सीजन प्राप्त करने के लिये मछलियाँ तेज गति से श्वसन करती हैं जिससे कितने ही दूषित पदार्थ उनके शरीर में चले जाते है। फलत: वे मर जाती है एवं जल और अधिक दूषित हो जाता है। इस

प्रकार से हमारी खाद्य-श्रृंखला की एक महत्वपूर्ण कडी नष्ट हो जाती है।

- खेतों का वाहितमल कभी-कभी जल में उगते हुये शैवाल में वृद्धि कर देता है जिसमें नाविकों व तैराकों को असुविधा होती है तथा कभी-कभी ऐसे जल में इतनी बदबू उठती है कि आसपास बसने वाले लोगों का रहना भी कठिन हो जाता है।
- प्रारम्भ में वर्षा का जल शुद्ध होता है। परन्तु वायुमण्डल से उसमें अशुद्धता आ जाती है। इस जल में वायुमण्डल से धूल, हाईड्रोजन सल्फाइड, कार्बन डाई-आक्साईड, नाईट्रोजन, अमोनिया आदि गैसें मिल जाती हैं। पहले-पहल की वर्षा के जल मे बहुत-सी अशुद्धताए चिड़ियो की बीटों, कीड़े-मकोड़ों के अण्डो, गन्दगी आदि के द्वारा भी पैदा हो जाती है।
- नदी का जल अपने स्रोत पर शुद्ध होता है परन्तु जब वह मैदानों में होकर दूर-दूर तक बहता चलता है तब उसमे बहुत-सी अशुद्धताएं उत्पन्न हो जाती हैं। एक सर्वेक्षण द्वारा यह पाया गया है कि 20 वर्ष की तुलना मे आज नदिया और झीले 6 गुना अधिक प्रदूषित हो चुकी हैं। गंगा, यमुना, सरस्वती, कावेरी आदि नदियो को पवित्र माना जाता है, किन्तु गौर किया जाये तो इनमें अब कूड़ा-करकट, शव तैरते हुए दिखाई देते है। फलस्वरूप, इनमें जलीय जीवों तथा किनारे पर रहने वाली मनुष्यो की आबादी कम होती जा रही है। राजस्थान में पाली जिले में टेक्सटाइल उद्योगों से निकलने वाले रासायनिक पदार्थों में कुछ ऐसे विषैले पदार्थ होते हैं जो बांदी नदी के जल को दूषित कर देते हैं। जानवर जब इस नदी का जल पीते हैं तो उनमें अनेक भंयकर रोग फैल जाते हैं। जल में इन पदार्थों की उपस्थिति के कारण कई बार प्रवासी पक्षियों के आने पर भी प्रतिबन्ध लग जाता है। हिन्दुस्तान जिंक लिमिटेड, देबारी (उदयपुर) द्वारा द्रवीय अपशिष्ट पदार्थों को आयड़ नदी मे प्रवाहित किया जाता है जिससे जल की गुणता का क्षय होता है। डूगरपुर के लिये पेयजल का एकमात्र साधन गेप सागर दिन ब दिन प्रदूषण का शिकार होता जा रहा है। सारे नगर की गन्दगी इसमें आकर गिरती है। लोगों द्वारा नहाने, कपड़े धोने, विष्ठा और झूठे दोने डालने से गन्दगी बढ जाती है। शाम को सागर की पाल पर खड़े होने वाले खोमचे वाले भी अपनी गन्दगी इसमें डालते हैं। औद्योगिक इकाइयों के कारण हुगली, गंगा, गोमती, चम्बल आदि तथा शहर का मल जल मे मिलने से यमुना झेलम आदि नदियो में जल प्रदूषण दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा है।
- अस्पताल व उद्योगों में विद्युत जनित संयत्रों को ठण्डा करके जल वापिस नदी में पहुँचा दिया जाता है। जिससे नदी के जल का तापमान बढ़ जाने से उसमें रहने वाले जीव जन्तुओं की मृत्यु हो जाती है।
- राजस्थान की नैनी झील और कश्मीर की डल झील में जलीय पौधों के कारण उथलापन आता जा रहा है, जिसके कारण ये स्थान तैरने, नौकाचालन और मछली का शिकार करने के लिए अनुपयुक्त होते जा रहे हैं। इसी प्रकार उड़ीसा की चिल्का झील और राजस्थान मे भरतपुर व रामगढ़ की झीले भी वातावरणीय प्रदूषण का शिकार होती जा रही है। फलतः प्रत्येक वर्ष इन पर आकर रहने वाले अलम्य पक्षियों की सख्या में कमी हो रही है। उदयपुर की पिछोला व फतहसागर झीलें, माउन्ट आबू की नक्की झील, अजमेर की आनासागर झील एवं जोधपुर की बालसमन्द झील भी मानवीय हस्तक्षेप के कारण प्रदूषण का शिकार बनी हुई है।
- वर्षा जल के साथ-साथ गन्दगी नदियों में प्रवेश

करती है। नदियो का यह दूषित जल फिर समुद्र मे जाता है। इस प्रकार समुद्र दूषित पदार्थों का सग्रहालय बन जाता है। समुद्र के जल में अत्यधिक प्रदूषण के कारण आज ट्यूना मछली को खाने के लिये निषिद्ध कर दिया गया है।

- ऊर्जा प्राप्त करने के लिये परमाणुवीय विस्फोट तथा नाभकीय हथियारों के समुद्र में परीक्षण करने से रेडियोऐक्टिव कणो के कारण जल प्रदूषण होता है। इससे समुद्र के जीव-जन्तु जैसे मछलियॉ, केकडे आदि में रेडियोधर्मिता फैलती है। खाद्य पदार्थ की श्रृंखला के माध्यम से यह कण मनुष्य तक पहुँच कर कैसर जैसी भयानक बीमारियॉ उत्पन्न करते है।
- तेल समुद्रों मे प्रदूषण फैलाने वाला मुख्य पदार्थ है। समुद्री जल का तेल प्रदूषण निम्न कारणो से होता है— घरेलु धन्धो और उद्योगो से निकले अपशिष्ट तेल का जल मे मिलना, जलयानों की सफाई करने पर अपशिष्ट पदार्थ (तेल) मिलना, जलयानों की मशीनों में तेल देना, जलयान के तेल टैंकरों से तेल लीक करना, तेल वाहक जलयानो मे तेल चढ़ाना या उतारना, एक जलयान से दूसरे जलयान में तेल स्थानान्तरण करना, तेल वाहक जलयानों मे खराबी होना, तेल वाहक जलयान दुर्घटनाग्रस्त होना, समुद्र में प्राकृतिक स्रोत से तेल रिसना तथा युद्ध के समय बम वर्षा करना। तैलीय जल से पक्षियों के पंख चिपचिपे हो जाते हैं जिससे पक्षी आसानी से उड़ नहीं पाते है। यह तेल पक्षियो के पंखों द्वारा प्रदान की जाने वाली प्राकृतिक ऊष्मीय अवरोधन क्षमता को नष्ट कर देता है और पक्षी ठंड से ठिठुरने लगते हैं। कभी-कभी अधिक ठण्ड के कारण पक्षी निमोनिया का शिकार होकर मर जाते हैं। तैलीय जल से समुद्री घास, केकडे, मोलस्का-प्राणी आदि भी नष्ट हो जाते हैं। खाड़ी युद्ध के दौरान समुद्र मे तेल को बहा देने से पडोसी देशों को एक जबरदस्त पर्यावरणीय चुनौती से गुजरना पड़ रहा है। पर्यावरण प्रदूषण का संकट केवल पेयजल तक ही सीमित नहीं है। समुद्री जल में तेल की परत आ जाने से मछलियों, समुद्री गायों और अन्य समुद्री जीवो व पक्षियों का मरना शुरू हो गया है। यही क्रम जारी रहा तो खाड़ी का जल जहरीला हो जायेगा तथा मरे हुए जानवरों की दुर्गन्ध से पड़ोसी राष्ट्रों को बड़ी मुसीबत का सामना करना पडेगा।
- जनसख्या-वृद्धि के साथ-साथ मानवीय गतिविधियॉ बढने से भी जल प्रदूषण बढ़ता जाता है। उनमें से कुछ मानवीय गतिविधियाँ निम्न है—कृषि में कीटनाशक औषधियॉ उपयोग मे लेना, जल-स्रोत के किनारे या अन्दर स्नान करना, बर्तन माजना और धोना, मल-मूत्र त्यागना, शौच करना, शौच-सफाई करना, कूड़ा-करकट फेकना, शवों को जलाना, राख बहाना, पशुओं को नहलाना या बैठाना, रोगी द्वारा हाथ-पैर धोना, जल निकालने का पात्र स्वच्छ न रखना, जल मे खड़े होकर जल भरना, गन्दे कपड़े धोना, मृत पशुओं की खाल साफ करना, जल स्रोत की सफाई न रखना, जल-स्रोत ढका हुआ न रखना, सन, जूट, खाल आदि जल में भिगोना या गलाना, मृत पशुओं या शवों को जल मे डालना, बस्ती की गन्दगी को जल स्रोत मे छोड़ देना, वाहन धोना आदि।

जल प्रदूषण रोकें कैसे

गेटे की उक्ति है, "प्रत्येक वस्तु जल ही से उद्भवित हुई, प्रत्येक जल द्वारा ही प्रतिपालित होती है।" यह उक्ति वर्तमान पारिस्थितिक ज्ञान के प्रकाश में और भी अधिक सत्य प्रतीत होती है, क्योंकि हम देखते हैं कि समस्त स्थानीय तथा जलीय परितन्त्रों में जीवो का उद्भव, उनकी सरचना तथा उनके परिपालन के लिए जल अनिवार्य रहता है। 500 ई. पूर्व पिन्डारोज नामक

ग्रीक कवि ने जल की महिमा का गुणवान "जल सभी वस्तुओं से सर्वोत्तम है" कह कर किया है। अत: बढ़ते हुए जल प्रदूषण को रोका जाना महती आवश्यकता है। वैसे भी प्रदूषित जल के दुष्प्रभावो के परिपेक्ष्य में जल स्रोतों के प्रदूषण को नियत्रण करने की आवश्यकता स्वयं सिद्ध है। जल प्रदूषण को रोकने के लिए कुछ उपाय निम्न हैं—

- घरो से निकलने वाले मलिन जल तथा वाहित मल को एकत्रित कर संशेधन संयंत्रो में पूर्व उपचार के उपरांत ही नदी या तालाबों में विसर्जित किया जाना चाहिए तथा सम्भव हो तो इस प्रकार से उपचारित जल का प्रयोग खेतों मे सिचाई के लिए भी किया जा सकता है।
- मल-मूत्र, कूड़ा-करकट, गोबर आदि को घरो के पास नही डालना चाहिए, बल्कि जल स्रोत से बहुत दूर निर्धारित स्थान पर इनके लिए गड्ढे खोदे जाने चाहिए तथा वैज्ञानिक ढग से सदुपयोग कर उनसे खाद बना लेनी चाहिए।
- उद्योगों को सैद्धान्तिक रूप से जल-स्रोतों के निकट स्थापित ही नहीं होने देना चाहिए। इसके अतिरिक्त पहले ही से स्थापित उद्योगों पर अपशिष्टो को जल स्रोत मे विसर्जित करने की पाबन्दी लगा देनी चाहिए। यदि डालने की मजबूरी हो तो डालने से पूर्व अपशिष्टो को पूर्व उपचारित कर लेना चाहिए। इसके लिये कार्बनिक पदार्थों का आक्सीकरण तथा विषैले जल का शोधन किया जा सकता है। ठोस अपशिष्टों को भूमि में गहराई तक भी दफनाया जा सकता है या उन्हें कुछ महत्वपूर्ण वस्तुओं में बदला जा सकता है, जैसे नारियल के बचे भागों से कागज और जूट के बचे पदार्थ से हार्डबोर्ड बनाये जा सकते हैं।
- कुएं के चारो तरफ लगभग 200 फीट तक स्थान स्वच्छ रखना चाहिए। कुंआ पक्का होना चाहिए। कुए के चारो और 2 1/2 फीट ऊँची मुंडेर तथा ढलवा चबूतरा होना चाहिए। कुए का ढक्कन होना चाहिए। कुएं के चारों तरफ से गन्दा जल बाहर निकालने हेतु निकास बनाना चाहिए। कुए से जल बाहर निकालने के लिए हैण्ड पम्प का प्रयोग किया जाय तो उपयुक्त होगा अथवा स्वच्छ रस्सी व धातु की बाल्टी से जल निकालना चाहिए। कुएं पर बैठकर कपडे नहीं धोने चाहिए तथा स्नान भी दूर ही करना चाहिए। कुएं के पास वृक्ष नहीं लगाने चाहिए। कुएं के जल की गहराई 10 फीट से अधिक होनी चाहिए।
- तालाब के चारों और पक्की ऊँची दीवार या कंटीले तारों की बाड बनानी चाहिए। तालाब में उगी वनस्पति को बाहर निकालते रहना चाहिए। तालाब में स्नान करना एवम् कपडे धोना निषेद्य होना चाहिए। तालाब से जल निकालने के लिए पम्प या नलों की व्यवस्था की जानी चाहिए। जल की स्वच्छता हेतु तालाब मे मछलियाँ छोड़ी जानी चाहिए।
- बावडी से जल निकालते समय सीढ़ी का प्रयोग नहीं करना चाहिए, बल्कि हैण्ड पम्प की व्यवस्था की जानी चाहिए।
- जल को सुरक्षित रखने के लिये उसे सदैव ढक कर रखना चाहिए।
- घडो में से जल हत्थेदार बरतन से निकालना चाहिए। गन्दे हाथों से जल को नही छूना चाहिए।
- झीलो, नदियो, समुद्रो आदि के किनारे या उनके जल में अनुपयोगी कागज, खाली डिब्बे, झूठे दोने आदि नही फेंकने चाहिए।
- खुले स्थानों, खेतो तथा तालाब, नदी, झरने आदि के किनारो पर मल-मूत्र आदि नहीं त्यागना चाहिए, बल्कि दूर बोर होल या ट्रेन्च पाख़ा की व्यवस्था कर लेनी चाहिए।
- जल स्रोत के अन्दर या पास में गन्दे कपडे, रोगी का सामान, वाहन आदि साफ नही करने चाहिए।

- तालाब तथा नदी में पशुओ को बिठाना तथा नहलाना वर्जित होना चाहिए।
- मृत जानवर, शव व अस्थिया नदियो में विसर्जित नहीं की जानी चाहिए।
- मछलियाँ जो मच्छरो के अण्डे, लारवा व जलीय खरपतवार का भक्षण करती हैं को जल स्रोत मे पाला जाना चाहिए।
- समय-समय पर जल स्रोत में उपस्थित अनावश्यक जलीय पौधों तथा तल में एकत्रित गन्दगी को निकालकर जल को स्वच्छ बनाए रखने का प्रयास किया जाना चाहिए।
- कृषि कार्यो मे आवश्यकता से अधिक उर्वरको तथा कीटनाशकों के प्रयोग को हतोत्साहित किया जाना चाहिए।
- जल को विसक्रमित करने के लिए फिटकरी, कॉपर सल्फेट, कैल्शियम आक्साइड या बिना बुझा चूना, ब्लीचिग पाउडर, पोटेशियम परमैगनेट, नेसफील्ड टिक्कियां आदि रासायनिक पदार्थों का प्रयोग किया जाना चाहिए।
- समुद्र मे परमाणु विस्फोट परीक्षण करने की पाबन्दी लगा देनी चाहिए।
- तैलीय प्रदूषण को जहॉ तक हो सके रोकने के प्रयास किये जाने चाहिए।
- "जल प्रदूषण नियत्रण एवं निवारण अधिनियम, 1974" सख्ती से लागू किया जाना चाहिए।
- संयुक्त राष्ट्र संघ को युद्धों पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगा देना चाहिए।
- जल प्रदूषण से सम्बन्धित कर जनसख्या शिक्षा पर प्रचार-प्रसार किया जाना चाहिए।
- जल स्रोत को स्वच्छ रखने की चेतना जगाने के लिए जगह-जगह पोस्टर चिपकाये तथा नारे लिखे जाने चाहिए।
- जनसाधारण को जल प्रदूषण के कारणों, दुष्प्रभावो तथा निवारणों के बारे में शिक्षित तथा जागरूक करना चाहिए और जल प्रदूषित न करने का सकल्प दिलाना चाहिए।

उपसंहार

जल प्रदूषण वर्तमान युग की बहुत विकट समस्या है। इसका निवारण नहीं किया जाता है तो इसका असर आने वाली पीढ़ियों पर पडेगा। यदि हम ऐसा न कर पाए तो आने वाली पीढ़ियॉ हमें कभी माफ नहीं करेंगी। जल जैसी प्राकृतिक धरोहर पर आने वाली पीढ़ियों का हक है। वैसे भी जल एक अमूल्य निधि है जिसके बिना मानव जीवित नहीं रह सकता है। अत जल प्रदूषण की रोकथाम के उपाय निश्चित रूप से तेज करके हमे सुखद संसार की कल्पना मे योग देना चाहिए। ❑❑

उप प्रधानाचार्य
जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान
माउन्ट आबू (सिरोही)

बाल पुस्तकालयों का शिक्षा में योगदान

❒ के.बी. भारद्वाज

सच्ची व अच्छी शिक्षा का अर्थ मनुष्यों व बच्चों का सर्वांगीण विकास करना है। यह विकास मनुष्य जीवन मे बिना विराम के जीवन भर चलता रहता है। मानव जीवन के प्रारंभ से लेकर वर्तमान समय तक शिक्षा व शिक्षितों को विशेष महत्व दिया जाता रहा है। इस विज्ञान के युग में और महत्व बढ़ गया है।

वर्तमान शिक्षण संस्थाओं में नई स्फूर्ति व नवजीवन सचार के लिए अच्छी पाठ्य-सामग्री उपलब्ध कराना परम् आवश्यक है। जिससे प्रत्येक पुस्तक प्रेमी की भूख मिटायी जा सके। समय-समय पर वैसे शिक्षा का स्वरूप बदलता रहा है। प्राचीन काल में मोक्ष प्राप्त करना शिक्षा का उद्देश्य था। मध्यकाल में व अंग्रेजों के काल में शिक्षा का उद्देश्य धार्मिक व अपने साम्राज्य को मजबूत बनाना रहा। पर स्वतंत्र भारत मे आज शिक्षा का उद्देश्य अच्छे, सुसंस्कार, चरित्रवान देश भक्त नागरिकों का निर्माण करना है। बालकों मे देश प्रेम व "वसुधैव कुटुम्बकम्" का विचार भरना है। उनके चरित्र का उन्नयन करना है। इन सब चीजों को प्राप्त करने के लिए उपयुक्त पाठ्य-सामग्री की नियमित आपूर्ति आवश्यक है। इसके लिए अनेक प्रकार के पुस्तकालय वर्तमान काल में खोले गये हैं।

पुस्तकालय, पाठको की पाठ्य अभिरुचि, व बौद्धिक स्तर, आयु की सीमा आदि मे भेद होता है। इस बात को ध्यान में रखते हुए पाठको के लिए पुस्तकालय सेवा देने हेतु अनेक प्रकार के पुस्तकालय खोले जाते है। अतः अलग-अलग स्तरों को ध्यान मे रखते हुए मुख्य रूप से पुस्तकालयों को निम्न तीन भागों में विभक्त किया जाता है–

1. शैक्षणिक पुस्तकालय : जिनमें विद्यालय पुस्तकालय, महाविद्यालय व विश्वविद्यालय पुस्तकालय आते हैं।
2. सार्वजनिक पुस्तकालय : जिनमें ग्रामीण, पचायत, अखड नगर, राज्य केन्द्रीय पुस्तकालय आदि आते हैं।
3. विशेष पुस्तकालय : इनमें बाल पुस्तकालय, शोध विभागीय अस्पताल, नेत्रहीनो, श्रृव्य-दृश्य पुस्तकालय आदि आते है।

बच्चे देश के भावी निर्माण करने वाले माने जाते हैं जैसे बच्चे होगे वैसा ही वे राष्ट्र व देश का निर्माण करेंगे। इसलिए बालकों के मानसिक व शारीरिक स्वास्थ्य पर अधिकाधिक ध्यान देना प्रत्येक परिवार, समाज व राष्ट्र का परम् कर्तव्य है। उनका भावात्मक व संवेगात्मक स्तर बढायें, उनका चहुंमुखी विकास करें। हमारी आबादी की अधिक संख्या अभी साक्षर नहीं है। वह अभी अपने पूर्ण अधिकार व कर्तव्यो का भी ज्ञान नहीं रखते। प्रजातंत्र की सफलता और देश के चतुर्दिक विकास के लिए जन-जन शिक्षित रहना आवश्यक है। जनतंत्र अशिक्षित और निरक्षर जनसंख्या के आधार पर खडा नही रह सकता।

कहा जाता है वर्तमान पीढ़ी के बच्चे जैसा निर्णय करेंगे, जैसा उनका आचरण होगा आगे का समय भी और समाज भी वैसा ही निर्मित होगा। इसलिए समाज के प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है कि हमारे बच्चे अच्छे व स्वस्थ वातावरण में पलें। उनका मानसिक और शैक्षिक विकास के लिए ठीक प्रबन्ध हो। उपयुक्त वातावरण के अभाव मे बच्चों का विकास असंतुलित ढंग से होने पर उनका व्यक्तित्व सबल, आकर्षक व

चरित्रवान नहीं बन सकता। बच्चे का विकास सरल व स्वाभाविक ढंग से हो सके इसके लिए आसपास का वातावरण स्वस्थ व मनमोहक हो।

ऊपर वाले लक्ष्य को पाने के लिए बच्चों को उपयुक्त पाठ्य-सामग्री प्रदान की जानी चाहिए। इससे बाल सुलभ जिज्ञासा की तुष्टि मिलती है तथा नई-नई बाते बच्चो के हृदय में आगे बढ़ने का कौतूहल उत्पन्न करेंगी। यह सब होगा जब देश में बाल पुस्तकालयों का जाल बुन जायेगा। जाल बुनने पर शिक्षा के क्षेत्र मे एक अभूतपूर्ण परिवर्तन आयेगा। सब जगह साक्षर ही साक्षर नजर आएगे।

यह कहावत अक्षरस सत्य है कि खाली दिमाग शैतान का घर होता है। बच्चों को कोई काम न दिया जाय तो वे शरारत करते है या उनकी जिज्ञासा की भावना कुठित हो जाएगी। अन्त मे परिणाम के रूप मे मिलेगा पढ़ने की रुचि का समाप्त हो जाना। जब पढ़ने की रुचि होगी तो बच्चों के हृदय में स्वय पुस्तकालय का उपयोग करने की आदत तो बनेगी। इसलिए बच्चों के पुस्तकालयों का बडे सार्वजनिक पुस्तकालयों के साथ होना बडा आवश्यक है। वह अपने बुजुर्गों के साथ-साथ फायदा उठा सकते हैं। जब उनके माता-पिता सार्वजनिक पुस्तकालयों में आयेगे तो वो अपने बच्चो को पास में ही बाल पुस्तकालयो मे छोड सकते हैं। बच्चो को यहा पर सामाजिक शिक्षा तो मिलेगी ही साथ ही साथ उनका पुस्तकालय आने पर शर्मीलापन भी खत्म होगा। संकोच की भावना समूल नष्ट हो जाएगी। बच्चों की काल्पनिक दुनिया की सारी रंगीन बाते पुस्तको मे मिल जाएगी, वो खुशी-खुशी उनको पढ़कर आनन्द लेंगे। व्यक्तित्व निर्माण में कल्पना का बड़ा महत्व है। ये सारी बातें पुस्तकों द्वारा ही उपलब्ध होना संभव हैं। परन्तु आज के महगाई के युग में प्रत्येक माता-पिता स्वयं ये सामग्री अपने बच्चों को उपलब्ध नहीं करा सकता, अतः बाल पुस्तकालय की स्थापना अर्वाचीन समाज व सरकार का परम् कर्तव्य है और माता-पिता का भी कर्तव्य है कि वो अपने बच्चो को बाल पुस्तकालय में नियमित रूप से भेजने का प्रत लें और स्वस्थ पाठ्य-सामग्री की तरफ उन्हें आकृष्ट करे।

पश्चिमी देशों में बाल पुस्तकालयो की दिशा में बहुत अधिक प्रगति हुई है। वहां प्रत्येक सार्वजनिक पुस्कालय के साथ सुन्दर बाल पुस्तकालय भी है। बच्चे अधिकाधिक संख्या में आते हैं तथा पुस्तके ले जाते हैं। बाल पुस्तकालयों का शैक्षणिक व सामाजिक महत्व असीमित है। बाल पुस्तकालय में बहुत से परिवारों के बच्चे भिन्न-भिन्न रुचि वाले आते हैं। उनके भिन्न-भिन्न स्कूल व स्थान होते हैं। वे एक ही कक्ष में बैठकर अनुशासित ढंग से बैठकर अध्ययन करते हैं तथा एक दूसरे से हर क्षेत्र में फायदा उठाते हैं। वहां अधिक पढने की प्रतिस्पर्धा की भावना भी उत्पन्न होती है।

आधुनिक बाल पुस्तकालय बच्चों के आचार-विचार, व्यवहार और शील गुण निरूपण में भी बहुत सहायता करता है। वह जब पुस्तकालय कक्ष मे बैठकर अध्ययन करता है तो अपने को अकेला न समझ कर समुदाय का अंग समझता है। घर में बच्चे उछल कूद करते हैं किताबो पर स्याही लगा सकते है किताबों को इधर-उधर फेंक सकते हैं, फाड़ सकते है पर पुस्तकालय मे आकर वे सीखते हैं कि ये आदतें बुरी है। पुस्तकों को बच्चे बाल पुस्तकालय में बड़ी सभाल कर रखते हैं। फिर स्वभावत. उन्हें घर मे भी वैसा ही आचरण करने का अभ्यास होता है। बच्चों के लिए एक विस्तृत वातावरण की आवश्यकता होती है, जिसके बीच रहकर वो मानसिक, शारीरिक और बौद्धिक विकास कर सके। पुस्तकें मानव जीवन को सुन्दर साचे में ढालने के लिए सर्वोत्तम साधन हैं, और फिर पुस्तकों का इतना महत्व है तो पुस्तकों के समूह पुस्तकालयों का क्या कहना ? वह तो कामधेनु गाय के समान है जो चाहो वही प्राप्त करो।

बाल पुस्तकालयों की दीवारों पर सुन्दर चित्र हों जिससे वो बच्चो को अपनी तरफ आकृष्ट कर सकें। यह स्पष्ट समझ लेना चाहिए कि मात्र घटिया व साधारण पुस्तको के सग्रह से बच्चों की भलाई नहीं की जा

सकती। बाल पुस्तकालय मे अनेक प्रकार की पाठ्य-सामग्री कविता, कहानी, जीवनी, खेलकूद, ज्ञान-विज्ञान आदि की पुस्तके सचित्र व मोटे अक्षरो में रहनी चाहिए। जिससे बच्चे उनकी तरफ आकृष्ट हो सकें। बाल साहित्य ही हो। बाल साहित्य का अर्थ बच्चों का साहित्य। बच्चो के लिए साहित्य बनाने के लिए विद्वानों को अपने को बच्चो के धरातल के समकक्ष लाना पड़ता है। बच्चों के साहित्य लिखने वाला लेखक बच्चा ही होता है। वही रचना सबसे सफल मानी जाती है जो बच्चो को अपनी तरफ आकृष्ट कर सके। बच्चों के साहित्य का वर्गीकरण करें तो शिशु साहित्य, बाल साहित्य और हम किशोर साहित्य कहकर विभाजित कर सकते हैं। बाल एकांकी, बाल नाटक, बाल कहानी, बाल जीवनी, बाल उपन्यास, बाल उपयोगी, विज्ञान साहित्य, बाल गीत आदि का होना परम् आवश्यक है। बाल कहानियो, नाटकों व बाल जीवनियो के माध्यम से बच्चो को साहसी, वीर, धीर, देश भक्त बनाया जा सकता है।

बाल पुस्तकालय मे बच्चो के बैठने के लिए आरामदायक जैसे मेज कुर्सी होनी चाहिए। बाल पुस्तकालय मे रोशनी का ठीक प्रबन्ध होना चाहिए। समय-समय पर बालोपयोगी फिल्म, वार्तामाला और सगीत आदि का आयोजन होना चाहिए। नियमित रूप से आकाशवाणी द्वारा प्रसारित किये जाने वाले बाल उपयोगी कार्यक्रम की सूचना बालकों को दी जानी चाहिए और उसे सुनवाने का प्रबन्ध भी करना परम् आवश्यक है।

देर से ही सही अब हमारे देश में भी बाल पुस्तकालयो को अधिक महत्व दिया जाने लगा है पर अभी प्रगति संतोषजनक नहीं कही जा सकती। अभी पुस्तकालयों की स्थिति दयनीय है। जब तक यह स्थिति अच्छी नहीं की जाती, बाल पुस्तकालय का शिक्षा क्षेत्र में भरपूर लाभ नहीं लिया जा सकता। भावी पीढ़ी के उत्थान के लिए बाल पुस्तकालयो का शिक्षा क्षेत्र में योगदान और अधिक तभी हो सकता है जब भारत के सभी पुस्तकालय नालन्दा, तक्षशिला, विक्रमशिना व बल्लभी जैसे पुस्तकालय नहीं बन जाते। प्राचीन समय में इन पुस्तकालयो में बाल विभाग भी बडे सुन्दर व आकर्षक होते थे। भारत उस समय विश्व के सभी देशो में अग्रणी था। सोने की चिड़िया कहलाता था। यह सब शिक्षा, पुस्तकालयों के चर्मोत्कर्ष का ही फल था। यदि पुन अपने बाल पुस्तकालयों व शिक्षा पर ध्यान केन्द्रित करेगे तो पुनः वही भारत का गौरव लौट आयेगा। □□

पुस्तकालय अध्यक्ष
रा.उच्च.मा. विद्यालय नं. 2
सरोजिनी नगर, नई दिल्ली।

ग्रामीण प्रारम्भिक शिक्षा और समाजीकरण के द्वन्द आयाम

नरेश सिंह "पुन्डीर"

शिक्षा सदैव ही विकास और सामाजिक परिवर्तन का माध्यम रही है। गॉधी जी के शब्दों में "शिक्षा वह है जो बच्चे के बौद्धिक, शारीरिक एवं आध्यात्मिक विकास को पूर्ण कर सके।" इसमें संदेह नही कि शिक्षा व्यक्तित्व का एक अभिन्न अंग है और समाजीकरण में अपनी महती भूमिका निभाती है। इस सबको ध्यान में रखते हुए भारतीय संविधान मे चौदह वर्ष तक की उम्र के सब बच्चों को मुफ्त और आवश्यक शिक्षा देने का प्रावधान है। ग्रामीण जनता, आर्थिक रूप से पिछड़े हुए लोगों और अन्य लोगों को जो शिक्षा पाने में असमर्थ हैं, शिक्षा देने का प्रावधान किया गया है।

परन्तु भारतीय समाज की आर्थिक एवं सामाजिक विषमताओं के परिणामस्वरूप शिक्षा के क्षेत्र मे एक अलग अभिजात्य वर्ग पैदा हो गया है जो भारतीय होते हुए भी पश्चिमी सभ्यता की जीवन शैली को अपनाकर ऐश्वर्य के सब क्षेत्रों में अन्य लोगो से आगे रहा। यद्यपि संविधान निर्माताओं ने बच्चों की मुफ्त शिक्षा एव ग्रामीण परिवेश में शिक्षा पा रहे छात्रों की उत्तमावस्था हेतु सुझाव दिये। पंचवर्षीय योजनाओं एवं वार्षिक बजट में भी प्रारम्भिक शिक्षा पर उचित ध्यान रखा गया। परन्तु यह सब केवल सैद्धान्तिक रूप से ही हुआ। शिक्षा हेतु ये सब प्रावधान केवल विचार-विमर्श तक ही सीमित रह गये। व्यावहारिक रूप में ग्रामीण प्रारम्भिक शिक्षा में कोई भी सैद्धान्तिक मुद्दा कार्यान्वित नहीं हुआ।

प्रस्तुत लेख में यह जानने का प्रयास किया गया है कि किस प्रकार से ग्रामो में प्रारम्भिक शिक्षा पा रहे छात्रों को व्यावहारिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है और उनके व्यक्तित्व के विकास हेतु उचित समाजीकरण में कितनी बाधायें कार्यरूप में सामने आती है। ठीक इसके विपरीत ग्रामीण प्रारम्भिक शिक्षा के लिए सैद्धांतिक प्रावधानो का भी पुर्नावलोकन किया गया है। नयी शिक्षा नीति के फलस्वरूप ग्रामीण प्रारम्भिक शिक्षा में परिवर्तन व बच्चो का उचित समाजीकरण हो सकेगा या नही, यह भी जानने का प्रयास किया है।

ग्रामीण परिवेश मे प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त कर रहे छात्रों को अनेक सामाजिक विसगतियों से गुजरना पड़ता है। शिक्षा प्रणाली में परिवर्तन या नई शिक्षा पद्धति लागू करने से पूर्व प्रारम्भिक शिक्षा में सुधार की महती आवश्यकता है। छात्रों की परिवार व स्कूल के संदर्भ में अन्तःक्रिया, दोनों संस्थाओं में अलग-अलग समाजीकरण और दोनो के अन्तर्सम्बन्धित समाजीकरण से उत्पन्न हुआ संघर्ष एवं उसके दुष्परिणाम आदि अनेक सामाजिक विसंगतियां प्रारम्भिक शिक्षा से जुड़ी हुई हैं।

बच्चे के समाजीकरण में परिवार की नकारात्मक भूमिका

प्रारम्भ में बच्चे का समाजीकरण परिवार में होता है। समाजीकरण के प्रथम सोपान में वह परिवार के अन्य सदस्यों का अनुकरण करता है। रोने के फलस्वरूप इच्छित वस्तु मिल जाने से उसे यह आभास हो जाता है कि रोना वस्तुओं को प्राप्त करने का माध्यम है। परन्तु साथ ही डराना या धमकाना उसे किसी काम को न करने का सकेत देता है। यह प्रक्रिया लगभग पाँच वर्ष तक चलती रहती है। उसके बाद बच्चा अपने बडे भाई या बहन के साथ या फिर पड़ौसी के बच्चों के

साथ स्कूल में प्रवेश करता है। बैठने के लिए टाट का टुकडा, रोशनाई की दवात, तख्ती, प्रारम्भिक पुस्तक, स्लेट आदि सामग्री साथ होती है। पंक्तिबद्ध होकर प्रतिदिन बैठना, लेखन व अध्ययन सामग्री का प्रतिदिन ले जाना, उसे एक अनुशासन की ओर संकेत करता है, जहाँ पर सभी बच्चों को अनुशासनबद्ध रहना पडता है। कुछ परिवारों में बच्चे की पढ़ने व स्कूल मे जागरुकता देखकर बच्चे को स्कूल के लिए तैयार करने मे माँ-बाप या अभिभावक की विशेष रुचि पैदा हो जाती है और समाजीकरण के अच्छे परिणाम सामने आने लगते है। यह बहुधा उन परिवारों मे होता है जो या तो नाभिकीय या सीमित संयुक्त परिवार होते हैं अथवा पढने मे बच्चे की रुचि वंशानुगत विशेषताओं के आधार पर अच्छी होती है।

परिवार एव स्कूल की बच्चे के समाजीकरण में अन्तर्निर्भरता मे परिवार की अहम् भूमिका है। उन समाजों में जो सामाजिक विभेदीकरण के निम्न स्तर में हैं और औपचारिक शिक्षा नहीं है (जैसे जनजातीय समाज, कबीलाई समाज, घुम्मकड़ जत्थे आदि) परिवार ही समाजीकरण का मुख्य अभिकर्त्ता है। लेकिन अत्यधिक विभेदीकृत समाजों (ग्राम, कस्बा, नगर) में समाजीकरण की प्रक्रिया में परिवार की भूमिका का स्थान अधिकाधिक रूप से औपचारिक शिक्षा ले लेती है। परन्तु इसके बावजूद भी परिवार समाजीकरण में अपनी भूमिका निभाता रहता है। यह शिक्षा को गति भी दे सकता है और उसे कम भी कर सकता है। पारिवारिक परिवेश व सामाजिक पर्यावरण का बच्चे की शिक्षा मे उपलब्धि और असफलता पर प्रभाव पड़ता है। समाजशास्त्रियों के लिए यह अध्ययन करना महत्वपूर्ण होगा कि किस प्रकार शिक्षा में बच्चे की योग्यता के पीछे परिवार का हाथ रहता है। परिवार में संबंधो का जैसा स्वरूप होगा वैसा ही व्यवहार बच्चा अन्यों के साथ करेगा। और यही बहुत कुछ हद तक बच्चे के सम्बन्ध अध्यापक के साथ भी निर्धारित करते हैं। उदाहरणार्थ यदि एक परिवार में पिता का व्यवहार बच्चे की प्रति निरंकुश है तो वह बच्चा स्कूल मे अध्यापक से भी झिझक महसूस करेगा तथा साथ ही वह विद्रोही व अनाज्ञाकारी भी होगा।

शिक्षा के संदर्भ में बच्चे के समाजीकरण की प्रक्रिया परिवार में सकारात्मक दिशा में बहुत कम चल पाती है। बच्चे को अनेक सामाजिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। बहुत से परिवारो में उसे सवेरे ही स्कूल में जाने के लिए तैयार नहीं किया जाता और यथास्थिति में पहले से जा रहे बच्चों के साथ स्कूल में भेज दिया जाता है। ऐसा भी देखने मे आया है कि बहुत सी स्त्रियां घर में बच्चे अधिक होने की वजह से गृह कार्य अधिक होने के कारण कम उम्र के बच्चों को भी अपने बड़े बच्चों के साथ स्कूल में खेलने के लिए भेज देती है। समाजीकरण के इन नये मानदण्डों से एक द्वन्दात्मक स्थिति पैदा हो गयी है जो कि बच्चे में तनाव व दबाव पैदा करती है।

जैसे-जैसे कक्षा तीन पास की, कभी तो घर के काम की वजह से बच्चे को स्कूल नही भेजने दिया जाता और प्रतिरोध करने पर कह दिया जाता है कि आज की अनुपस्थिति के बारे में हम तुम्हारे अध्यापक से बचाव हेतु स्पष्टीकरण कर देंगे। इसका दूसरा परिणाम यह होता है कि बच्चे का जिस दिन अध्यापक द्वारा दिया गया गृह-कार्य पूरा नहीं होता वह स्वयं ही स्कूल नहीं जाता और यह बहाना सदैव उसकी सहायता करता रहता है कि घर के काम की वजह से स्कूल नहीं आया था। कभी-कभी बच्चे की स्कूल वेशभूषा समय पर न बनने के कारण अथवा अभिभावक द्वारा पूर्णतः मना कर देने पर बच्चे के मन में हीन भावना उत्पन्न हो जाती है। और वह यह महसूस करता है कि उसे परिवार में कम महत्व दिया जा रहा है। अध्यापक के द्वारा दोपहर का भोजन मंगाने तथा घर पर माँ द्वारा मना कर देना भी उसके लिए एक अन्य मानसिक परेशानी व अपमान का द्योतक है। फलतः बच्चे की शिक्षा पर समुचित ध्यान न देना, उसके कार्यों एवं स्वयं उसे महत्व न देना बच्चे में नियम हीनता की स्थिति उत्पन्न करते हैं। कक्षा में छात्र प्रतिनिधि द्वारा बच्चे की शिकायत करना तथा सजा के तौर पर अध्यापक द्वारा पिटाई करना एक ऐसी स्थिति को जन्म देती है

जहाँ पर उसे लगता है कि उसके साथ न्याय नहीं हो रहा है।

गलत शिक्षण पद्धति

महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि क्या स्कूल मे बच्चे की शिक्षा सुचारू रूप से चल रही है। यदि नहीं तो उसमें क्या-क्या कमियाँ हैं ? अवलोकन के आधार पर अनेक कमियाँ देखने मे आयी हैं। प्रारम्भिक स्तर पर छात्रो मे समझने की अपेक्षा रटने की ज्यादा प्रवृत्ति पायी जाती है। मसलन एक छात्र स्मरण किये हुए भारत के प्रदेशों के अथवा उत्तर प्रदेश की नदियों के नाम मानचित्र पर पढ रहा है। हाथ में पकड़ी हुई संकेतक छड़ी कही और पड रही है तथा छात्र कुछ और बोल रहा है और अन्य सब छात्र वही बोल रहे हैं। जो नेतृत्व कर रहा छात्र बोल रहा होता है, परन्तु देख कहीं और रहे होते हैं। चूंकि छात्र बहुत जोर-जोर से बोलते हैं अतः अध्यापक महोदय को यह भ्रान्ति हो जाती है कि बच्चे बहुत परिश्रम कर रहे हैं। शायद ही कभी अध्यापक महोदय यह समझाने का प्रयत्न करता है कि भारत के पदेशों या उत्तर प्रदेश की प्रमुख नदियों की भौगोलिक स्थिति क्या है। ग्लोब प्राय: निष्प्रयोग ही रहता है। अध्यापक भी बहुत कम जानते है कि दिन और रात कैसे बनते हैं। यही स्थिति वैज्ञानिक प्रयोगो के सामान की है जो बेकार ही रहते है। रटने की इस विधा के दुष्परिणाम उस समय आते हैं जब छात्र हाई स्कूल में प्रवेश करता है और रटने के बजाय समझने पर ज्यादा जोर दिया जाता है। शिक्षा पद्धति के सुचारू रूप के लिए अध्यापकों की भूमिका महत्वपूर्ण है। अध्यापकों को चाहिए कि बच्चों को रटने की बजाय प्रयोगों व जन-जीवन के उदाहरण देकर बात को समझायें।

उम्र की भी एक परेशानी विद्यार्थी के सामने यह आती है कि छात्र एक या दो रुपया अध्यापक भगाने पर प्रवेश हेतु घर से ले जाता है। परन्तु यह अध्यापक की इच्छा पर निर्भर करता है कि उसकी उम्र क्या लिखे। इसका परिणाम यह होता है कि विद्यार्थी शारीरिक व मानसिक रूप से पूर्ण परिपक्व भी नहीं हो पाता कि वह भारतीय प्रशासनिक सेवा एवं लोक सेवाओं की परीक्षा के योग्य हो जाता है। ऐसा इस वजह से होता है कि पाठशाला मे बच्चे की उम्र प्रवेश के समय अधिक लिख दी जाती है।

नई शिक्षा नीति का मूल्यांकन

आज ग्रामीण शिक्षा में गुणात्मक सुधार और उसके विस्तार पर ध्यान देने की आवश्यकता है। पहली बार नई शिक्षा नीति से संबंधित दस्तावेज " शिक्षा की चुनौती " में यह स्वीकार किया गया है कि शिक्षा पर कुल खर्च का 75 प्रतिशत वेतन भुगतान तथा अन्य 10 प्रतिशत वेतन भुगतान से संबधित प्रशासन पर व्यय किया गया है। और भी अनेक कमियों को उजागर किया गया है जैसे, देश मे 1 91 लाख ग्रामों में स्कूल नहीं हैं। उपलबध स्कूलो में से 9 प्रतिशत मे भवन बिल्कुल ही नही है। 40 प्रतिशत स्कूलों के भवन पक्के नहीं हैं। 39.72 प्रतिशत स्कूलों में श्यामपट्ट का अभाव है। 60 प्रतिशत स्कूलों मे पेयजल की व्यवस्था नहीं है। 35 प्रतिशत स्कूलों में एक शिक्षक ही तीन-चार कक्षाएं अकेला पढ़ाता है और इन सब कमियो के कारण कक्षा आठ तक केवल 23 प्रतिशत बच्चे ही पहुँच पाते है। शिक्षा सामग्री के अभाव से उभरने के लिए "आपरेशन ब्लैक बोर्ड" की योजना चलाने का प्रावधान नई शिक्षा नीति में रखा गया है। परन्तु ये सैद्धातिक घोषणाएं व्यवहार रूप मे कार्यान्वित हो सकेंगी इसमें संदेह है। केवल योजना बनाना और निर्णय लेना ही पर्याप्त नहीं। बल्कि यह भी जरूरी है कि जो निर्णय लिये गये हैं वे समय पर निर्णायकों के विचारोनुरूप कार्यान्वित किए जाएं।

इस बात में भी संदेह है कि जहां केवल शिक्षा पर कुल व्यय का 15 प्रतिशत ही शिक्षा के कार्यान्वयन कार्यों मे लगाया जाता है, वहाँ शिक्षा में गुणात्मक और संरचनात्मक सुधार हो पाएगा। शिक्षा से सबंधित अनेक आयोगों की संस्तुतियाँ इस बात को प्रमाणित कर चुकी हैं कि सैन्द्धांतिक दस्तावेजों को व्यावहारिक रूप में नहीं लाया गया।

प्रारम्भिक शिक्षा में गुणात्मक सुधार हेतु नई शिक्षा नीति मे प्रत्येक जिले में एक नवोदय विद्यालय खोलने

का निश्चय किया गया है। ये विद्यालय कुछ जिलों में तो शुरू भी हो गये हैं। तर्क यह है कि प्रत्येक जिले के ग्रामीण मेधावी छात्रों को समुचित शिक्षा दी जाये। इन विद्यालयों का व्यय प्रारम्भिक पाठशालाओं के व्यय से बहुत अधिक है। अर्थात ये नवोदय विधालय एक जनसमाज की शिक्षा की कीमत पर समाज के कुछ गिने-चुने बच्चों को शिक्षा देंगे। एक नया अभिजात्य वर्ग पैदा करने की सोच है यह। इसमे प्रवेश के नये-नये तरीके भी शिक्षा मे पहले से पनप रहे अभिजात्य वर्ग ने ढूँढ लिये है। बच्चा पढता है शहर के कान्वेंट स्कूल मे लेकिन नवोदय विद्यालय में प्रवेश पाने हेतु उसका फर्जी नाम ग्रामों की पाठशाला में भी दर्ज कराया जाता है। क्या ग्रामीण छात्र नवोदय विद्यालय में प्रवेश हेतु परीक्षा प्रतियोगिता में इन कान्वेंट शिक्षित बच्चो के सामने टिक पायेंगे।

सारांशत: ग्रामीण प्रारम्भिक पाठशालाओं मे आवश्यक अतः संघटन सुविधाओं का अभाव है। इस तथ्य को " शिक्षा की चुनौती " दस्तावेज में स्पष्ट रूप से स्वीकार किया गया है। जिन पाठशालाओं में ये सुविधाएं हैं भी उनमे इनका उचित उपयोग नही हो रहा है। शिक्षण पद्धति की तरफ शिक्षकों का ध्यान बहुत कम है। दूसरी ओर जो बच्चा पढना भी चाहता है उसे उचित सामाजिक परिवेश के अभाव में पारिवारिक सहयोग नहीं मिल पाता। परिणामस्वरूप बच्चे का शैक्षिक समाजीकरण पाठशाला व परिवार दोनों ही सस्थाओं में नकारात्मक होता है। बच्चे की स्थिति एक दोलायमान की भाति होती है। न तो वह पढ़ ही पाता है और न ही अन्य कार्यों में रुचि दिखा पाता। ग्रामीण बच्चे की उचित शिक्षा के लिए नीति में परिवर्तन का निर्माण; शिक्षण पद्धति, अंत: संघटन सुविधाओं व पारिवारिक- ग्रामीण परिवेश को ध्यान में रखते हुए जरूरी है। □□

जूनियर प्रोजेक्ट फैलो
सामाजिक विज्ञान व मानविकी
शिक्षा विभाग,
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और
प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविन्द मार्ग,
नई दिल्ली

दंत-विज्ञान

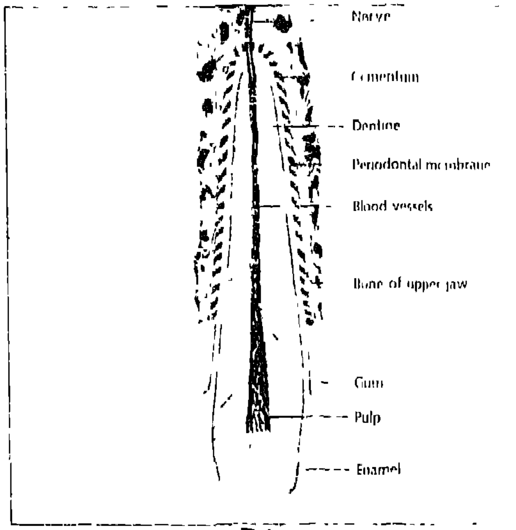
❑ डा. कमलेश डुडेजा

दत-विज्ञान कोई नया विज्ञान नहीं है। इसका वर्णन कई देशों के इतिहास के पन्नों मे भी मिलता है। दात की बीमारी के कारण शरीर में पैदा होने वाले रोग को रोकने के लिए दांत निकालने की सलाह सीरिया के इतिहास में ईसा पूर्व (722-609) दी गई है। दांतों की सफाई के लिए चबाने वाली डंडी का प्रयोग चीनी इतिहास में दिया गया है। दंत-विज्ञान का ठोस प्रमाण हिपोक्रेटस की लिखाई में मिलता है जो कि 377 ई. पूर्व लिखा गया था। उसमे दांतों का बनना, बोलने से उसका सम्बन्ध, दांतों का घिसना और दंत क्षय, दांत का दर्द और दांतों को निकाले जाने का भी वर्णन दिया गया है। धीरे-धीरे यह विज्ञान विकसित होते-होते आज पूर्ण रूप से उभर कर आ गया है।

नावट

त एक सख्त खनिज पदार्थो का मिश्रण है जो कि बडो में स्थित होते है और खाना चबाने के काम आते हैं। जीवन काल में दो प्रकार के दांत आते हैं। पहले दूध के दांत जो अस्थाई होते हैं और दूसरे स्थायी दांत। सभी दांत एक ही आकार के नहीं होते और भिन्न-भिन्न प्रकार के दांत भिन्न-भिन्न कार्य करते हैं। इनके नाम क्रमशः इन्साइज़र केनाइन, प्रीमोलर और मोलर हैं। इन्साइज़र काटने का काम करते हैं, केनाइन चीरने का; और मोलर और प्रीमोलर चबाने के काम आते हैं। भोजन चबाने या काटने के अतिरिक्त दांत बातचीत में सहायक होते हैं एवं चेहरे का सौंदर्य बढ़ाते हैं। साहित्य में शृंगार-रस का वर्णन करते समय धवल दंत-पक्ति को मोतियों की उपमा दी गई है और दांतों को महत्वपूर्ण स्थान मिला है।

CROSS SECTION OF ANTERIOR TOOTH



दांत को दो मुख्य भागों में बांटा जा सकता है— क्राउन और जड़। सूक्ष्मदर्शी उपकरण से देखा जाए तो प्रत्येक दांत को तीन प्रकार की परतों में बांट सकते हैं। यह क्रमशः बाहर से भीतर क्राउन में एनामल, डेन्टीन और पल्प होती है और जड़ में सीमेन्टम, डेंटीन और पल्प होती है। एनामल क्राउन की बाहरी परत होती है जो शरीर के किसी भी भाग से सख्त होती है। हड्डी भी एनामल से कुछ नर्म ही होती है। एनामल का रंग भी सबसे सफेद होता है। इसमें 96% ठोस पदार्थ और केवल 4% पानी की मात्रा होती है। ठोस पदार्थों मे ओरगैनिक (0.5%) और इनओरगैनिक (95.5%) दोनों प्रकार के पदार्थ पाये जाते हैं। जड़ों की बाहरी परत जिसको सीमेन्टम कहते हैं। एनामल से

कुछ नर्मी लिए होती है। सीमेन्टम का 50% भाग इनओरगैनिक साल्टस का होता है और शेष 50% भाग आरगैनिक मैटर और पानी का बना होता है। जिस स्थान पर सीमेंटम और एनामल मिलते हैं उसे सीमेटो एनामल जक्शन कहा जाता है। डेन्टीन हड्डी के समान सख्त होती है और इसमें ठोस पदार्थ और पानी की मात्रा 65% और 35% के अनुपात में होती है। पल्प दात को जीवन प्रदान करती है। इसमें रक्त की नाड़ियां, मज्जा तन्तु और सैल होते हैं। पल्प के भी दो भाग होते है। क्राउन के अन्दर की परत वाले भाग को पल्प चेम्बर कहते हैं और जड के अन्दर के भाग को जड़ की नाडी कहा जाता है। जड़ें सख्या मे एक से तीन तक होती हैं। इन्साइजर और केनाइन की जड़ एक ही होती है जबकि प्रीमोलर और मोलर की जड़ो की संख्या एक, दो अथवा तीन होती है। हर जड़ में सीमेंटम, डेन्टीन और पल्प तीनों क्रमशः होते है।

ऊपर और नीचे दोनों जबड़ों के खोल बने होते है जिनमें दांतों की जड़ें दांत को सुरक्षित रखती हैं। दांत और हड्डी को जोड़ने वाले भाग को मसूड़ा कहा जाता है। पेरियाडेटल लिगामेंट (Periadental Ligament) एक ओर से हड्डी और दूसरी ओर से सीमेंटम के साथ जुड़ा होता है।

दांत निकलना और गिरना

दूध के दातों का बनना गर्भावस्था में ही शुरू हो जाता है। गर्भावस्था के छठे सप्ताह में दांतों के बनने की प्रक्रिया आरम्भ हो जाती है। शिशु जब लगभग 4 या 6 मास का होता है उस समय पहला दूध का दांत मुंह में दिखाई पड़ता है। नीचे दी गयी तालिका मे दातों के आने का क्रम दिखाया गया है।

दूध के दांत अथवा अस्थाई दांत

ऊपरी जबड़ा	
इनसाइज़र बीच	7½ मास
इनसाइज़र दूसरा	9 मास
केनाइन	18 मास
प्रथम दाढ़	14 मास
दूसरी दाढ़	24 मास
निचला जबड़ा	
इनसाइज़र	6 मास
इनसाइज़र	7 मास
केनाइन	16 मास
प्रथम दाढ़	12 मास
दूसरी दाढ	20 मास

स्थायी दांत

ऊपरी जबड़ा	
इनसाइज़र	7-8 वर्ष
इनसाइज़र	8-9 वर्ष
केनाइन	11-12 वर्ष
पहली छोटी दाढ़	10-11 वर्ष
दूसरी छोटी दाढ़	10-12 वर्ष
पहली बडी दाढ़	6-7 वर्ष
दूसरी बड़ी दाढ़	12-13 वर्ष
तीसरी बड़ी दाढ़	17-25 वर्ष
नीचे का जबड़ा	
इनसाइज़र	6-7 वर्ष
इनसाइज़र	7-8 वर्ष
केनाइन	9-10 वर्ष
पहली छोटी दाढ़	10-12 वर्ष
दूसरी छोटी दाढ़	11-12 वर्ष
पहली बड़ी दाढ़	6-7 वर्ष
दूसरी बड़ी दाढ़	11-13 वर्ष
तीसरी बड़ी दाढ़	17-25 वर्ष

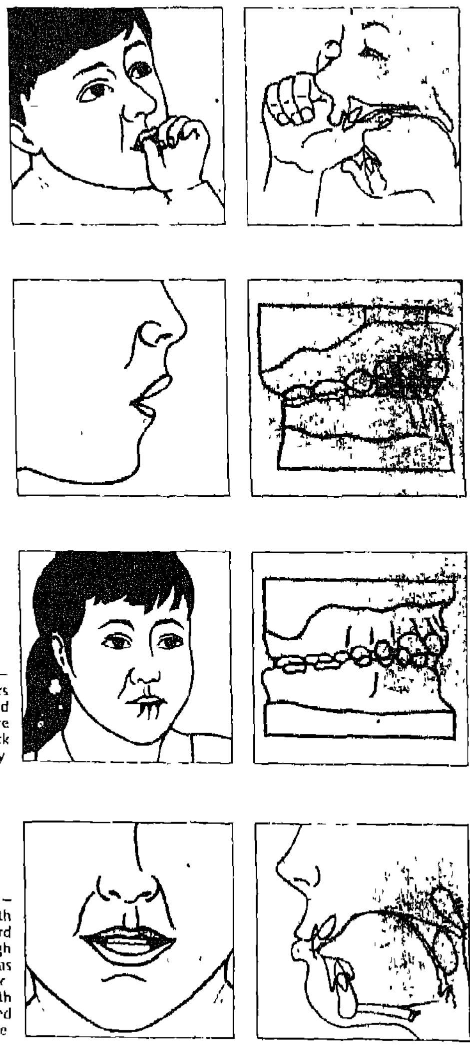
जैसा कि ऊपर की तालिका में दिखाया गया है दूध के दांत यानि कि अस्थायी दांत 6 माह की अवस्था मे आने प्रारम्भ होते हैं और यह क्रम 2½ वर्ष तक चलता है। छः वर्ष की आयु मे दूध के दात गिरने शुरू हो जाते हैं और स्थायी दांत उनका स्थान लेना प्रारम्भ कर देते है। दूध के दांतों के गिरने का क्रम नीचे दिये गये टेबल में दिया गया है।

ऊपर का जबड़ा	
इनसाइज़र	6-7 वर्ष
इनसाइज़र	7-8 वर्ष
केनाइन	10-11 वर्ष
पहली दाढ़	9-10 वर्ष
दूसरी दाढ़	9-10 वर्ष

नीचे का जबड़ा	
इनसाइज़र	5-6 वर्ष
इनसाइजर	6-7 वर्ष
केनाइन	8-9 वर्ष
पहली दाढ़	9-11 वर्ष
दूसरी दाढ	10-11 वर्ष

दूध के दातो की संख्या 20 और अस्थायी दांतो की संख्या 32 होती है। इसका मुख्य कारण यह है कि बच्चों के जबड़े छोटे होते हैं और जैसे-जैसे बच्चे की आयु बढ़ती जाती है जबडे का माप भी बढ़ता जाता है। यही एक कारण दातों के माप का भी होता है। अस्थायी दातो का माप छोटा होता है और स्थायी दात माप में बड़े होते हैं।

HABITS LEADING TO MALOCCLUSION



1 THUMB SUCKING – Upper front teeth and often the upper jaw are pushed forward while the lower are displaced towards the tongue

2 MOUTH BREATHING Nasal obstruction as by adenoids and tonsils cause protrusion of the upper front teeth and a narrow upper jaw

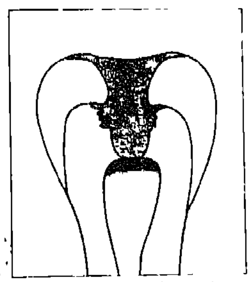
3 LIP BITING – Upper incisors are pushed forward lower teeth are pushed back and spread slightly

4 TONGUE BITING – Upper front teeth are pushed forward often, though not as much as in the previous case. Lower front teeth may be depressed leaving an open bite

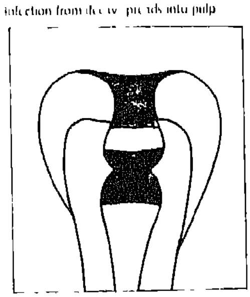
दांतों की बीमारियां

दत क्षय एक ऐसा रोग है जो दांत को खोखला कर देता है। भोजन करते समय भोजन के कुछ कण दातों में फंसे रह जाते हैं। मुंह में कुछ जीवाणु पाये जाते हैं जो भोजन के कणों के ऊपर आक्रमण करते हैं और कुछ इस प्रकार अम्ल पैदा करते हैं जो दांत की ऊपरी सतह को गलाना प्रारम्भ कर देते है। धीरे-धीरे यह प्रक्रिया डेन्टीन से होती हुई पल्प चेम्बर तक पहुँच जाती है। मरीज़ को दर्द होने लगता है या फिर वहां फोड़ा बन जाता है और जबड़े मे सूजन आ जाती है या पीक भी निकलने लगती है। कभी-कभी वदबू भी आती है। जब तक दत क्षय एनामल और डेन्टीन तक सीमित रहता है उसे साफ करके भर दिया जाता है। *यदि यही रोग बढ़ते-बढ़ते पल्प चेम्बर तक* पहुच जाये तो खाली दात को भरने से काम नहीं चलता उसमे Root Canal Treatment किया जाता है। जिसमें पल्प चेम्बर और पल्प नली मे से नाडिया और मज्जा ततु निकाल कर उसे साफ कर दिया जाता है और फिर उसे भर दिया जाता है परन्तु इस रोग के हड्डी में घुसने से हड्डी भी गल जाती है। ऐसी दशा मे या तो आपरेशन किया जाता है या फिर दात को निकाल देना पडता है।

DECAY MANAGEMENT



Infection from decay spreads into pulp



Infected portion of pulp removed and replaced with an antiseptic cover before tooth restoration

पायरिया एक दूसरी बीमारी है जिसमें मसूढे खराब हो जाते है और हड्डी में दातों की पकड कमजोर हो जाती है। दांत हिलने लग जाते हैं और अतत: गिर जाते है। पायरिया की बीमारी का भी मुख्य कारण विषाणु ही होते हैं। यह विषाणु दांतों के स्थान पर मसूढों पर आक्रमण करते हैं। भोजन के अंश दांतों पर चिपके रह जाते हैं और यदि उनको साफ न किया जाये तो विषाणु और लार के प्रभाव से दातो के ऊपर एक परत सी जम जाती है जो साफ न की जाने पर सख्त हो जाती है जिसे प्रतिदिन की सफाई से हटाना मुश्किल हो जाता है और दंत चिकित्सक की सहायता अनिवार्य हो जाती है और यदि इसे साफ न किया जाए तो यह मसूढ़ों को कमजोर कर देती है। मसूढ़ो की बीमारी के लक्षण मुख्यत: मसूढो से खून आना, मुँह से बदबू आना या दातों को ठंडा या गर्म लगना होता है। ठीक समय पर उपचार होने से इस रोग का निवारण किया जा सकता है।

कभी-कभी दांत टेढ़े-मेढे निकलते हैं। इसके कई कारण हो सकते हैं जैसे कि जबडे के माप का छोटा होना, दांतों के माप का बड़ा होना, अस्थायी दांतों का समय से पहले गिरना, स्थायी दांतों का समय से पहले निकलना, नाखूनों को दातो से काटना, नाक के स्थान पर मुह से सास लेना, अगूठा चूसना आदि। आधुनिक काल मे विज्ञान ने इतनी उन्नति कर ली है कि इस प्रकार टेढे-मेढे निकले दांतो को भी अपने ठीक स्थान पर लाया जा सकता है। परन्तु इस कार्य के लिए विशेषज्ञ के पास ही जाना जाहिए। इस प्रकार का उपचार एक (Orthodentist) ही कर सकता है।

यदि किसी कारण से दांत गिर जाए या उन्हें निकलवाना पड़ जाए तो उनके स्थान पर नये दांत अवश्य लगवा लेने चाहिए जिससे बचे हुए दांतों का स्वास्थ्य बना रह सके। इन सब बातो पर ध्यान देकर हम अपने-अपने दांतो को लम्बे समय तक सुरक्षित रख सकते है। दांतो का स्वस्थ रहना ही हमारे स्वास्थ्य के लिए हितकर है। ❑❑

विभागाध्यक्ष
दंत विभाग, सफदरजंग अस्पताल,
नई दिल्ली

विकल्पों की खोज में : साक्षरता

❑ सुरेन्द्र चन्द्र मिश्र

टी.बी. पर साक्षरता के इश्तहार और गत दशक के साक्षरता प्रयासों को लेकर एक व्यापक मुद्दा सामाजिक कार्यकर्त्ताओं के समक्ष उठता है—'लोगों के बीच' और 'लोगों के साथ' काम करने का अर्थात् यह मान लिया जाता है कि सामाजिक कार्यकर्त्ता लोगों को सिद्धान्ततः कुछ देने के लिए निकले हैं और लोगो को इसे विनीत भाव से ग्रहण कर लेना चाहिए। दी जाने वाली चीज चाहे कोई भौतिक वस्तु हो अथवा ज्ञान—प्रत्येक विषय में भावना कुछ देने की ही रहती है। इसी के साथ यह बात भी संबद्ध है कि लोग अज्ञानी है, इसलिए उन्हें ज्ञान देना है ! लोग अंधविश्वासी हैं, इसलिए उन्हें विज्ञान देना है!! लोग गरीब हैं, इसलिए उन्हे दान देना है!!! वास्तविकता यह है कि लोग वंचित हैं और मिलजुलकर इस स्थिति से निपटना है, जूझना है, किन्तु देने वाली लीक में लोग मात्र दीन-हीन ग्राहक हैं, उनकी कोई महत् भूमिका नहीं है—इस परिस्थिति को बदलने मे शिक्षा के साथ भी यही स्थिति रही है कि वह लोगो को एक उपदेश देने का माध्यम बन गई है।

आजकल साक्षरता की हवा बह रही है, 'राष्ट्रीय एकता के लिए साक्षरता,' 'साक्षर भारत—सशक्त भारत' जैसे नारे उछल रहे हैं। केरल में शत-प्रतिशत साक्षरता का लक्ष्य प्राप्त होने से सम्पूर्ण देश में साक्षरता प्रयास का उत्साह देखा जा सकता है। केरल की सामाजिक परिस्थिति का आकलन किए बिना सम्पूर्ण देश में साक्षरता की बाढ़-सी आ गई है। अभी परिणाम शेष हैं, जिसके सम्बन्ध में इतनी जल्दबाजी मे कुछ कहना उचित नहीं। साक्षरता अभियानों का सबसे गूढ़ तथ्य है—प्रौढ़ साक्षरता की सर्वोत्तम रणनीति। बच्चो को जिस ढग से स्कूल में पढ़ाया जाता है, क्या वही तोता रटन्त-पद्धति वयस्कों के साथ भी कारगर सिद्ध होगी ? क्या वही क,ख,ग वयस्कों को प्रेरित एवं उत्साहित कर पायेंगे, जो बच्चों को उबाऊ लगते हैं और जिसका विज्ञापन दूरदर्शन के इश्तहारों मे प्रायः किया जाता रहा है ? आज अधिकांश शिक्षाविद् यह मानते है कि शायद वर्णमाला, बिना मात्रा के शब्द, मात्रा वाले शब्द, सयुक्ताक्षर वगैरह वाली रेखीय विधि उतनी कारगर नही है। बच्चों के लिए इसकी उपयोगिता पर अधिकाधिक प्रश्न उठने लगे हैं। दलील यह है कि इस तरीके से लिखना-पढ़ना सीखने के लिए काफी अभ्यास की आवश्यकता होती है जिससे अधिकांश सिखैया बीच में ही सीखना छोड़ देते हैं। कभी सुदूर भविष्य मे रोचक कहानी पढ़ने के लिए आज इतनी बोझिल प्रक्रिया थोड़ी जटिल अवश्य है। दूसरी दलील यह भी दी जाती है कि भाषा की इकाई वस्तुत. अक्षर नहीं होती। अक्षर तो एक निरर्थक संकेत है। भाषा की इकाई तो शब्द और वाक्य होती है। इसलिए सीखने की शुरुआत यहीं से होनी चाहिए।

उक्त समीक्षा को ध्यान मे रखकर कई समूहों ने नयी सामग्रियाँ तैयार की हैं; जैसे—पुस्तक, चार्ट, पोस्टर, वीडियो कैसेट आदि। इस सामग्री की एक विशेषता यह रही कि व्यक्ति का प्रारंभिक सामना अक्षर रूपी निरर्थक संकेतों से नहीं होता। आरंभ में उसके सामने कुछ पठनीय सामग्री आती है। कुछ प्राइमरों में प्रारम्भ जानी-पहचानी कविता या कहानी से की गई है और कुछ प्राइमरों का आरंभ नए शब्दो और वाक्यों से

किया गया है। इस संदर्भ में दो प्राइमरों का उल्लेख करना अधिक समीचीन होगा। पहला प्राइमर है, मध्य प्रदेश मे होशंगाबाद जिला के जन-शिक्षण अभियान, पिपरिया द्वारा तैयार की गई पुस्तिकाएँ—'हाथी घोडा पालकी' तथा 'गोधूलि' और दूसरा प्राइमर है, बगलौर के एक समूह त्रिकोण एसोसिएट्स द्वारा प्रकाशित 'बाबा बबली' की कहानी; जिसे बिहार और उडीसा में चल रहे कुछ साक्षरता कार्यक्रमों के साथ मिलकर तैयार किया गया है।

वस्तुत' पिपरिया के जन-शिक्षण अभियान तथा बिहार एवं उड़ीसा के साक्षरता कार्यक्रमो की पृष्ठभूमि में एक समानता है और यह समानता उनकी सोच में झलकती है। यही समानता महिला चेतना अभियान द्वारा चलाए जा रहे प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रमों मे भी दिखलायी देती है। तीनो ही मामलो मे साक्षरता कार्यक्रम का निकट संबध लोगो के बीच संगठनात्मक गतिविधियों तथा चेतना, जागरण के कार्य से रहा है। इसीलिए इनमें जनता के मुद्दो को अभिव्यक्ति मिली है। तीनो ही संस्था मानती है कि साक्षरता अपने आप में एक स्वतंत्र लक्ष्य नहीं अपितु, यह लोगों के हाथ में जानकारी एव सोच का औजार देने का एक माध्यम है। अतः तीनो ही समूह साक्षरता के बाद के कार्यक्रम को उतना ही महत्वपूर्ण मानते हैं। इस दृष्टिकोण के अन्तर्गत जहाँ बगलोर समूह की पुस्तिका मे शब्दों और वाक्यों से प्रारंभ की गई है, वहीं पिपरिया समूह ने अपनी पुस्तिका में सीधे कहानी और कविता को आधार बनाया, जबकि महिला चेतना समिति, दिल्ली ने दूरदर्शन द्वारा प्रौढ़-शिक्षा कार्यक्रम को चलाने का प्रयास किया है। साक्षरता अभियानो ने विश्लेषण की नींव रखने की दृष्टि से शब्दो, वाक्यों और कहानियो का चयन काफी सूझ-बूझ के साथ किया है। लोगों के जीवन, उनकी कठिनाईयों, खुशियो, संघर्षों को इनमें अभिव्यक्ति मिली है।

विगत दशक मे शिक्षा की उपदेशात्मक प्रवृत्ति को लेकर जो प्रश्न उठा है, उससे 'बाबा बबली की कहानी' और 'अक्षर से मैत्री तक' पुस्तिकाएँ भी वंचित नहीं रही। इन पुस्तिकाओ में भी कही न कहीं साक्षरता अभियान के अन्तर्गत शिक्षा की उपदेशात्मक प्रवृत्ति झलकने लगती है और दूरदर्शन का उद्देश्य ही मनोरंजनात्मक शिक्षा देना है, यद्यपि 'बाबा बबली की कहानी' कहानी के कलेवर में लिखा गया है तथापि सभी कहानियाँ सोद्देश्य हैं, अर्थात् पहले उद्देश्य निश्चित किया गया फिर कहानी लिखी गई। फलतः कथाये काल्पनिक-सी लगती है और उद्देश्य उन पर हावी हो रहे हैं। कई बार प्रतीत होता है कि पुस्तक लेखकों ने निश्चित कर लिया है—अमुक ज्ञान दिया ही जाना है; *एक बार निश्चित करने के पश्चात् ही उन्होंने उपयुक्त* विधा की खोज की। पिपरिया समूह की पुस्तिकाओं में अधिकतर गीतो का संकलन है, जो मात्र पुस्तिकाओं के लिए नहीं लिखे गए अपितु विभिन्न अवसरों पर उभरे भी हैं।

दूसरी ओर, बंगलौर समूह की पुस्तिका में भाषा का प्रश्न उठता है। बंगलौर समूह ने खड़ी बोली अर्थात् मानक भाषा का प्रयोग किया है, जबकि पिपरिया समूह ने मुख्यतः स्थानीय बोली, 'बुंदेली' का प्रयोग किया है। दोनों के निजी कारण हैं। स्थानीय भाषा का लाभ यह है कि उससे लोग परिचित होते हैं। इससे साक्षरता अभियान प्रारम्भ करने में आसानी होती है, परन्तु बंगलौर समूह के समीर बनर्जी का कहना है कि सभी लोगों का सबध मानक भाषा से अंततः है, तो क्यों न प्रारंभ भी उसी भाषा से की जाए। फिर, समीर बनर्जी, जो पुस्तिका के लेखक समूह का सदस्य है, का मत है कि ये पुस्तिकाएँ मात्र मॉडल हैं। कोई भी संस्था जब इनका उपयोग करे तो इन्हें अपनी आवश्यकता के अनुरूप ढाल सकता है।

अब प्रश्न उठता है कि इन पुस्तिकाओं के उपयोग करके किस ढग के परिणाम प्राप्त किए जा सकते हैं ? इस संबध मे एक बात महत्वपूर्ण है कि सरकारी साक्षरता

कार्यक्रम जहाँ अक्षर की यान्त्रिक समझ से ग्रस्त रहा, वहीं स्वैच्छिक प्रयासों ने अपनी सीमा इतनी बढ़ा ली है कि साक्षरता उसमे कहीं विलीन हो गई है। उदाहरणार्थ, स्वैच्छिक प्रयासों में प्रायः कहा जाता है कि हमारा उद्देश्य मात्र अक्षर ज्ञान ही नहीं प्रत्युत् हम लोगों के बीच एक संवाद, एक चेतना को उभारना चाहते है।

आंध्र प्रदेश मे इसी साक्षरता अभियान के अन्तर्गत ओपन स्कूल अर्थात् खुला विद्यालय की योजना चल रही हैं। इस खुला विद्यालय मे वैसे बच्चो को साक्षर बनाया जा रहा है, जो आर्थिक अथवा अन्य कारणवश न पढ-लिख पाये हैं। यह सरकारी प्रयास भी साक्षरता अभियान का अंग है। कुल मिलाकर, साक्षरता एक माध्यम है। आवश्यकता, इस बात की है कि हमारा उद्देश्य और माध्यम दोनो सबल बनें। ❐❐

केन्द्रीय विद्यालय, कोयलानगर
धनबाद (बिहार)

प्राथमिक कक्षाओं में लिखित-कार्य, संशोधन एवं गृह- कार्य

❑ भगवती लाल व्यास

भाषा के दो रूप है—मौखिक एवं लिखित। जीवन मे व्यक्ति को इन दोनो ही रूपों का प्रयोग करना पड़ता है इसलिए भाषा शिक्षक के लिए यह जरूरी हो जाता है कि वह अपने छात्रों में इन दोनों ही रूपों के कौशलो को विकसित करने के समुचित प्रयत्न करे।

लिखित-कार्य से हमारा आशय उस कार्य से है जिसे छात्र कक्षा-शिक्षण के दौरान तथा कक्षा-शिक्षण के उपरान्त लिखित रूप में करता है।

लिपि चिन्ह ध्वनि प्रतीकों के चित्र हैं। ध्वनि प्रतीकों के माध्यम से शब्दों का निर्माण होता है। यह शब्द बालक के मानस पटल पर उस वस्तु या व्यक्ति या स्थान का बिम्ब उपस्थित करता है। लिपि चित्रों के प्रयोग से यह सम्प्रेषण सुरक्षित रहता है तथा कई लोगों के उपयोग मे आ सकता है।

उदाहरण के लिए आपने कहा 'हाथी'। 'हाथी' ध्वनि प्रतीकों से केवल उपस्थित श्रोता या श्रोताओं तक ही यह बिम्ब सम्प्रेषित होगा लेकिन लिपि मे जब आप 'हाथी' लिख देंगे या छाप देंगे तो ये लिपि चिन्ह 'हाथी' के बिम्ब को उन लोगों तक भी पहुँचा सकेंगे जो उस समय वहाँ उपस्थित नहीं है। इस प्रकार भाषा का लिखित रूप भाषा को अधिक संप्रेषणीय, संग्रहणीय तथा हस्तांतरणीय बताता है।

शिक्षण के दौरान लिखित-कार्य के अवसर

- ❑ श्रुतलेख के समय।
- ❑ श्यामपट्ट कार्य की अनुलिपि के समय।

कक्षा-शिक्षण के अतिरिक्त लिखित कार्य के अवसर

- ❑ गृह-कार्य अथवा दत्त-कार्य
- ❑ सृजनात्मक लेखन—भित्ति पत्रिका, विद्यालय पत्रिका आदि।

लिखित-कार्य के उद्देश्य

- ❑ छात्रों की लिखित अभिव्यक्ति में सुधार करना।
- ❑ शुद्ध, स्पष्ट, सुवाच्य लिपि में भाव एव विचार अभिव्यक्ति करना।
- ❑ सामान्य वर्णन, विवरण आदि स्वतत्र रूप से लिखने की रुचि विकसित करना।
- ❑ लिखते हुए अवबोध विकसित करना।
- ❑ स्वाध्याय के लिए लिखित कार्य का प्रयोग करने की क्षमता उत्पन्न करना।

कक्षा-शिक्षण के दौरान लिखित कार्य के समय शिक्षक क्या करें ?

कक्षा—शिक्षण के दौरान जब छात्र लिखित-कार्य कर रहे हों तब शिक्षक को चाहिए कि वह कक्षा में घूम-घूम कर लिखित-कार्य का अवलोकन करें तथा यह देखें कि—

- ❑ छात्रों के आसन (Postures) ठीक हैं।
- ❑ वे कलम को सही ढंग से पकड़े हुए हैं।
- ❑ अक्षरों की बनावट, अनुपात, शब्दों के बीच परस्पर दूरी आदि बातों का ध्यान रख रहे हैं।
- ❑ जिन छात्रों का लेख सुवाच्य न हो उन पर विशेष ध्यान दें।
- ❑ वर्तनी-सबंधी अशुद्धियों की ओर ध्यान दें तथा तत्काल उन्हें ठीक करवायें।

गृह-कार्य

गृह-कार्य या दत्त-कार्य शिक्षण का एक महत्वपूर्ण पक्ष है किन्तु प्रायः इसे एक औपचारिकता की तरह निभाया जाता है जिससे इसके उद्देश्य पूर्ण नहीं होते। कई बार गृह-कार्य देते समय इस बात का भी ध्यान नहीं रखा जाता कि इससे हम कौन से उद्देश्यों की पूर्ति करना चाहते हैं ?

हिन्दी शिक्षण के संदर्भ में प्राथमिक स्तर पर गृह-कार्य के कुछ उद्देश्य इस प्रकार हो सकते हैं—

- कक्षा-शिक्षण की पुनरावृत्ति
- स्वाध्याय के लिए अवसर
- अगले पाठ की तैयारी
- शब्द भंडार की अभिवृद्धि
- लिखित अभिव्यक्ति का विकास

गृह-कार्य देते समय अध्यापक ध्यान रखे कि—

- गृह-कार्य लिखित एवं मौखिक दोनों रूपों में दिया जाए।
- गृह-कार्य में भाषा तथा विषय वस्तु संबंधी दोनों प्रकार के प्रश्न हों।
- गृह-कार्य मात्रा की दृष्टि से इतना अधिक न हो कि छात्र उसे आसानी से न कर सकें।
- गृह-कार्य एक शैक्षिक चरण है इसलिए केवल छात्र को व्यस्त रखने की दृष्टि से ही न दिया जाए।
- अध्यापक यह ध्यान रखें कि जिस तरह वह अपने विषय का गृह-कार्य दे रहा है उसी प्रकार अन्य विषयों के अध्यापक भी अपने-अपने विषय में गृह-कार्य देंगे और इस प्रकार छात्र द्वारा किया जाने वाला सभी विषयों का गृह-कार्य शाला के बाद उसे मिलने वाले समय से अधिक तो नहीं है।
- ग्रामीण क्षेत्र की शालाओं के अध्यापकों को इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि विद्यालय के बाद बालकों को अपने पारिवारिक कार्यों मे भी हाथ बँटाना पड़ता है। कई घरों में उचित प्रकाश तथा स्थान की भी व्यवस्था नहीं होती। कई बार अपेक्षित स्टेशनरी आदि जुटा पाना भी छात्र के लिए कठिन होता है। यदि अध्यापक अपने छात्रों की इन सीमाओं को ध्यान में रखेगा तो न उसे निराश होना पड़ेगा और न छात्र को अपमानित होना पड़ेगा।
- जो गृह-कार्य छात्र को दिया गया है उसका उत्तर उसे किस तरह देना है, यह समझा दिया जाना चाहिए या छात्रों से पूछ कर यह पता लगा लेना चाहिए कि क्या वे गृह-कार्य के प्रश्नों को समझ गए हैं?
- गृह-कार्य ऐसा हो जिसे छात्र स्वयं कर सके। प्रायः ऐसा देखा जाता है कि छात्र गृह-कार्य में दिए प्रश्नों की नकल कुंजी से कर लेते हैं या अपने अभिभावकों से पूछ कर लिख लाते है। ग्रामीण क्षेत्र के छात्र ऐसा कम ही कर पाते हैं इसलिए उन्हें अध्यापक जी का कोप-भाजन बनना पड़ता है। यह स्थिति न आने दे।

गृह-कार्य प्राप्त होने पर शिक्षक क्या करे ?

- अच्छा तो यह होगा कि सप्ताह में गृह-कार्य देने और वापस प्राप्त करने के दिन निर्धारित कर दिए जाएं।
- गृह-कार्य प्राप्त होते ही यथाशीघ्र उसका संशोधन कर उत्तर पुस्तिकाएँ छात्रों को लौटा दी जानी चाहिए।
- जो छात्र गृह-कार्य करने में अनियमित हो उनके अभिभावकों से संपर्क कर उन कारणों का पता लगाना चाहिए जिनसे वे गृह-कार्य समय पर नहीं कर पाते।
- अन्य अध्यापकों से भी पूछना चाहिए कि अमुक छात्र क्या उनके विषय में भी गृह-कार्य करके लाने में अनियमित हैं ?
- वर्ष भर में कितना गृह-कार्य दिया जाएगा, यदि इसकी पूर्व योजना बना ली जाए तो गृह-कार्य के उद्देश्यों को प्राप्त करने में आसानी रहेगी।

गृह-कार्य संशोधन

- छात्र द्वारा गृह-कार्य किया जाना जितना महत्वपूर्ण है उतना ही महत्वपूर्ण है अध्यापक द्वारा उसका सशोधन किया जाना।
- सशोधन का उद्देश्य छात्र को इस प्रकार निर्देशित करना है जिससे उसके अगले गृह-कार्य का स्तर सुधरे।
- प्रायः यह देखा जाता है कि संशोधन के नाम पर हम अध्यापक लोग छात्रों की उत्तर-पुस्तिकाओ में सही या गलत का चिन्ह लगा कर अंत में अपने हस्ताक्षर कर देते है और समझते हैं कि हमने संशोधन-कार्य कर लिया है जबकि वस्तुतः यह 'सशोधन' नही है यह 'निर्णय' है। आपको 'निर्णय' नहीं देना, संशोधन करना है।
- कई बार शिक्षक गलत वर्तनी वाले शब्द के चारों ओर लाल स्याही से गोला तो बना देते हैं पर यह नहीं लिखते कि सही वर्तनी क्या है ? जब यह उत्तर-पुस्तिका छात्र के पास जाएगी तब वह गोले देख-देख कर कुढने के अलावा और क्या कर सकेगा ? कभी सोचा है आपने? इसलिए जब आप किसी वर्तनी के चारों ओर गोला बनाएं तो हाशिए पर उस शब्द की सही वर्तनी भी लिख दें ताकि छात्र यह जान सके कि उसने क्या गलती की है ?
- कभी-कभी ऐसा भी होता है कि छात्र का उत्तर गलत होता है तो शिक्षक क्रोध में आकर पूरे पृष्ठ को इतनी बेरहमी से काटता है कि उत्तर के साथ-साथ कागज भी कट जाता है। कई बार नीचे के खाली कागज भी कट जाते हैं।

हमारे इस प्रकार के संशोधन कार्य से हमारी नाराजगी, खीझ और आक्रोश तो प्रकट होता है किन्तु छात्र को कोई लाभ नहीं मिलता। न उसे आगे सुधार की कोई दशा मिलती है। क्या हम यही चाहते हैं ?

यदि नहीं तो हम

- गृह कार्य का सशोधन इस प्रकार करें कि छात्र को उत्तरोत्तर सुधार के लिए दिशा-निर्देश मिले।
- प्रत्येक प्रकार की अशुद्धि के लिए कुछ चिन्ह बना दें और ये चिन्ह छात्रों को भी बना दें जैसे वाक्य रचना अशुद्ध है तो हाशिए पर 'वा.र.' लिख दें। यदि छात्र ने उत्तर मे चाही गई विषय वस्तु प्रस्तुत नहीं की है तो हाशिए पर 'वि.व.' लिख दिया करे।
- कभी-कभी बहुत कमजोर छात्रों की उत्तर-पुस्तिकाएं उनके सामने ही जांचे ताकि उन्हें उनकी गलतिया अच्छी तरह पता लग सकें।
- कुछ गलतियाँ सामान्य प्रकार की होती हैं जिन्हें कई विद्यार्थी करते हैं। ऐसी गलतियों के बारे मे सामूहिक मार्गदर्शन लाभदायक हो सकता है।

साराश यह है कि लिखित कार्य चाहे वह कक्षा में हो या गृह-कार्य के रूप में हो छात्र की लिखित अभिव्यक्ति को सशक्त बनाता है बशर्ते उसका नियोजन-आयोजन और संशोधन सोद्देश्य हो तथा समय-समय पर यह देखा जाए कि छात्र इस दृष्टि से कितनी प्रगति कर सके है।

प्रवक्ता
रा. वि. लोकमान्य तिलक टीचर्स कॉलेज
डबोक (उदयपुर)

शिक्षकों ने लिखा है

जल-चक्र

❒ सुमंगला कपूर

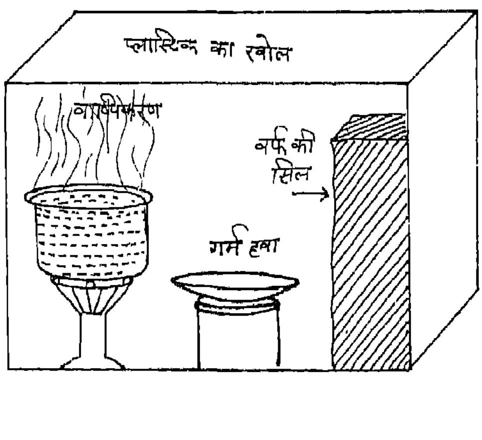
भारतवर्ष में प्रत्येक वर्ष कुछ महीनो के लिए मानसूनी हवाओं तथा मानसून की वर्षा का दौर रहता है। आप सबको यह बात तो अवश्य ही मालूम होगी कि मानसून क्या होता है। साथ ही यह भी कि मानसून की वर्षा इस देश की एक प्रमुखता है जो संसार के बाकी इलाकों में नही होती है। अब सवाल यह उठता है कि आखिर यह मानसून यहां कैसे आते हैं तथा मानसून की एक प्रमुख विशेषता काले बादल होते हैं। आखिर यह बादल कैसे बनते हैं। यह बादल वर्ष के बाकी महीनो में क्यो नहीं आते, किसी खास महीनो में ही क्यो आते हैं। इन बादलो से पानी कैसे बरसता है।

यह बादल अपनी यात्रा एक छोर पर स्थित सागर के तटीयवर्ती इलाकों से शुरू होकर हमारे गांव तक का सफर कैसे करते हैं। इन साधारण सवालों का जवाब पाने के लिए हम एक प्रयोग करेंगे।

भारत वर्ष में मार्च से लेकर जून का महीना गर्मी का होता है। इन महीनों में जमीन तथा सागर का पानी धीरे-धीरे गर्म होकर भाप बन कर वातावरण में मिलने लगता है। ज्यादातर भाप सागर के गर्म होने से बनती है। यह भाप जब काफी ज्यादा बन जाती है तो हल्की होने से ऊपर उठती जाती है। इस क्रिया में यह भाप ठण्डी होकर पानी हो जाती है और सफेद बादलो का रूप धारण कर लेती हैं। जैसे-जैसे गर्मी पड़ती जाती है भाप ज्यादा तेजी से तथा ज्यादा मात्रा में बनती है और धीरे-धीरे ऊपर उठती जाती है और सफेद बादलों का रूप ले लेती है। इन बादलों के बनने में और कुछ क्रियाओं का भी योगदान रहता है पर आसामी के लिए उनको इस सबक मे शामिल नहीं किया जा रहा है। इन बादलों मे जब नमी बढ़ जाती है तब यह सफेद बादल काले हो जाते हैं।

मानसून हमेशा गर्म मौसम के बाद जुलाई के महीने में इसलिए आता है क्योकि बादल गर्मी की वजह से ही बनते है। यह बादल तटवर्तीय इलाको से हमारे गावो की तरफ इसलिए आते है क्योंकि सागर तथा बर्फीले पहाडो के बीच में एक उच्च तथा निम्न दबाव के क्षेत्र बन जाते हैं जो हवा के बहाव में मदद करते हैं तथा हवा के बहाव के साथ-साथ यह बादल भी बहना शुरू कर देते हैं। और जगह-जगह पानी बरसाते जाते हैं। यही पानी मानसून की वर्षा होती है। इस तथ्य को हम एक साधारण प्रयोग द्वारा समझाएगे।

प्रयोग



(**निरीक्षक के लिए टिप्पणी** . इस प्रयोग मे बर्फ की सिल हिमालय को प्रदर्शित करती है और गर्म तवा अथवा गर्म लोहे की चादर गर्म जमीन तथा वाष्पीकरण यत्र तथा इससे निकलने वाली भाप समुद्र में बनने वाली भाप को दर्शाता है। प्लास्टिक का खोल भारतवर्ष के एक मानसूनी वातावरण को प्रदर्शित करता है।)

इस प्रयोग को करने के लिए निम्नलिखित सामान की आवश्यकता होती है—

प्रयोग का सामान

- प्लास्टिक का एक खोल 1 मी^{3}
- स्टोव
- पानी गर्म करने का बर्तन
- गरम तवा अथवा लोहे की चादर
- बरफ की सिल

प्रयोग का विवरण

इस प्रयोग के लिए किसी एक दीवार के सहारे एक मीटर की ऊँचाई की प्लास्टिक का आयताकार खोल रखकर उसके अन्दर एक स्टोव एक किनारे रखना चाहिए। दूसरे किनारे पर बर्फ की एक सिल खड़ी कर देनी चाहिए तथा बीच मे गर्म तवा अथवा लोहे की गर्म चादर रख देनी चाहिए। इस तरह जल-चक्र के लिए उचित वातावरण तैयार कर लिया जाता है। अब स्टोव को जलाकर उसके ऊपर एक बर्तन मे पानी भर कर रख दिया जाता है। और इस तरह प्रयोग शुरू कर दिया जाता है।

जैसे-जैसे पानी गरम होता जाता है उससे भाप बन कर ऊपर उठकर अन्दर के वातावरण मे मिल जाती है। इस क्रिया से उस बर्तन के ऊपर एक कम दवाब का क्षेत्र बन जाता है। इसी तरह से गर्म तवे के आस-पास का क्षेत्र भी कम दबाव के क्षेत्र को बढ़ाने में सहायक होता है। इसी तरह से बर्फ के सिल की ठण्डक के क्षेत्र का वातावरण एक उच्च दबाव का क्षेत्र बन जाता है। इस तरह प्लास्टिक के खोल के अन्दर उच्च तथा निम्न दवाब वाले क्षेत्र तथा इनके बीच एक प्रवाह शुरू हो जाता है।

उच्च दवाब वाले क्षेत्र से हवा निम्न दवाब वाले क्षेत्र की तरफ बहने लगती है तथा बर्तन के ऊपर की भाप दूसरी तरफ (बरफ की सिल की तरफ) प्रवाहित होने लगती है। इस तरफ से प्रवाहित हो रही भाप अपनी गर्मी आसपास के वातावरण में विसरित करती जाती है और धीरे-धीरे ठण्डी होकर बादल का रूप लेने लगती है। यह बादल नमी से भरपूर होते हैं। अन्त में यह प्रवाहित हो रहे बादल जब बर्फ की सिल के पास पहुँच जाते हैं तो पूर्णतया ठण्डी होकर नन्हीं-नन्हीं जल की बूंदों का रूप ले लेती है। उसके पश्चात् घनी तथा भारी होकर वह नीचे वातायरण में आ जाती है। और उस हवा के साथ, जो बर्फ की सिल की तरफ से वाष्पीकरण यन्त्र की तरफ वापस आने लगती है और मार्ग में हर तरफ वर्षा के रूप में नीचे गिर जाती है और इस तरह वर्षा शुरू हो जाती है। ❑❑

एफ. 103, नारायणा विहार
नई दिल्ली

बच्चों को खुलकर खेलने दीजिए

❑ सुबुद्धि देवी गोस्वामी

ससार के सभी बच्चे स्वभावतः नटखट होते है। अत उनकी खेलकूद में विशेष रुचि होती है। खेलों के द्वारा ही उनके व्यक्तित्व का सर्वागीण विकास सम्भव होता है। बच्चे बचपन में जितना अधिक खेलते है, आगे चलकर उतने ही बुद्धिमान एवं अनुभवी बनते है। खेलों के माध्यम से ही बच्चे अपनी रुचियों का सकेत देते हैं। खेल ही खेल मे वे डाक्टर, इजीनियर, अध्यापक और वैज्ञानिक बन जाते है और अपनी रुचि की जानकारी देते रहते है। कभी वे गुड्डे-गुड्डियों का विवाह रचाते है तो कभी पानी में नाव चलाते हैं। कभी वायुयान बनाकर उड़ाते हैं तो कभी जहाज तैराते है। वे ऐसे खेल भी खेलते है, जिनके लिए अपनी बुद्धि का प्रयोग करना पडता है, जैसे शतरज, कैरम इत्यादि। इन सभी प्रकार के खेलों से शारीरिक शक्ति भी बढती है और बच्चे मानसिक रूप से भी स्वस्थ रहते हैं।

अनेक बार यह देखने में आया है कि कुछ अभिभावक यह चाहते हैं कि उनके बच्चे थोडी देर भी न खेलें बल्कि हर समय पढते रहे क्योंकि परीक्षा में उनके अंक बहुत कम आते हैं जबकि वास्तविकता यह होती है कि बच्चे पढाई में इसीलिए कमजोर होते है कि उन्हें कुछ समय के लिए भी खेलने नहीं दिया जाता। परिणामस्वरूप किताबे उनके हाथ में होती हैं और दिलो-दिमाग खेलने के मैदान में। इस तरह वे मन ही मन कुण्ठित होने लगते हैं और खेलने के लिए मानसिक तौर पर छटपटाते रहते हैं। ऐसी हालत मे वे कभी-कभी अपनी आवाज खो बैठते हैं या किसी लम्बी बीमारी के शिकार हो जाते हैं।

बच्चों को रोगों से छुटकारा दिलाने और उनकी सेहत बनाने के लिए अभिभावको को चाहिए कि वे बच्चों को उनकी रुचि के अनुकूल खेल का सामान उपलब्ध करने का प्रयत्न करे। खेल ही खेल मे अपनी कल्पना के द्वारा वे खिलौनो अथवा उपलब्ध खेल.वस्तुओ के माध्यम से एक विचित्र संसार की सृष्टि करने में सक्षम हो जायेंगे।

अगर बच्चो को खेलने से रोका जायगा तो हो सकता है क्रियाशील प्रवृत्तियो के अभाव के कारण वे अपने मन में उठने वाली उमंगों को प्रकट करने के लिए विध्वंसात्मक रुख अपना लें। अपना ध्यान वे खेलों से हटाकर कप-प्लेट तथा घर के दूसरे सामान को तोड़ने-फोडने, फर्श पर हथोडे मारने, दरवाजों को जोर-जोर से खोलने बन्द करने में लगा दें। अत उनकी चेष्टाओ को सृजनात्मक मोड देने के लिए भी आवश्यक है कि उन्हे खेलने के लिए प्रोत्साहित किया जाय।

बच्चों की विकसित होती मांसपेशियाँ और बढ़ता हुआ शरीर अनेक प्रकार की चेष्टाओ की माग करता है। यह माग वे अन्य बालको के साथ खेलकर पूरी करते है। जो शारीरिक शक्ति या ऊर्जा उनका शरीर संचित करता है। उसे वे खेलने में ही व्यय करते हैं। अच्छी खेल-सुविधाओ और साधनो के अभाव में बच्चों के बुरी संगत में पड़ जाने की भी सम्भावना होती है जिससे उनके चरित्र मे अपराधी प्रवृत्तियों का समावेश हो जाता है। बच्चों को इस दोष से बचाने के लिए यह भी जरूरी है कि वे जिन बच्चों के साथ खेलते हैं, उनका भी ध्यान रखा जाय।

खेलों के द्वारा ही बालक का सर्वांगीण विकास

होता है। उनका स्वास्थ्य ठीक रहता है। शरीर सुदृढ़ होता है। खेलों के माध्य‹ र्ग उसका शारीरिक व्यायाम हो जाता है और रक्त संचार सामान्य बना रहता है। साथ ही मांसपेशियाँ मजबूत बनती हैं। मानसिक एव वैचारिक दृष्टि से भी वे स्वस्थ रहते है और इस प्रकार वे दूसरों के विचार तथा उनका अनुभव ग्रहण करने में समर्थ होते है। इसी से उनमें आत्म विश्वास, सहानुभूति एव सहयोग की भावना जन्म लेती है।

छोटी उम्र में बच्चे प्राय· अकेले ही खेलना पसन्द करते हैं। जैसे-जैसे वे बडे होने लगते हैं, उनके अन्दर समूह बनाकर खेलने की भावना घर करने लगती है और वे फुटबाल, बालीबाल, हाकी, क्रिकेट जैसे खेलों में रुचि लेने लगते हैं। ऐसा करने से उनमें सहयोग की भावना उत्पन्न होती है।

बच्चे जब थोडी देर खेल लेते हैं तो तनावों और दिनभर की थकान एव ऊब से छुटकारा पाकर नये उत्साह के साथ पढने लिखने के लिए बैठ जाते हैं। खेलो के माध्यम से ही वे अनेक प्रश्नों के उत्तर पा लेते हैं। अतः बच्चों को सभी दृश्टि से स्वस्थ एवं निरोग ‹खने के लिए आवश्यक है कि उन्हें पढने-लिखने के बाद थोडी देर तक खेलने दिया जाय। उन्हें खेलने से रोकने का अर्थ है उनके व्यक्तित्व के विकास में बाधक बनना। खेल ही वस्तुतः बच्चों के व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं। अत· उन्हें खेलने के लिए सदैव प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। ❑❑

3/117, मालवीय नगर
जयपुर

बच्चों में स्वाध्याय की आदत

❑ **स्वर्ण रिहानी**

हर विद्यालय में प्रतिदिन कोई न कोई अध्यापक छुट्टी पर रहता है। एक अध्यापक की यह विशेष ड्यूटी होती है कि वह इस अध्यापक के स्थान पर किसी दूसरे अध्यापक को भेजने का प्रबन्ध करे। विषय-अध्यापक के स्थान पर जाने वाला अध्यापक प्राय· उस विषय का कार्य तो नही करवाता, हॉ बच्चों को काम में लगा कर उनकी देखभाल करता है।

अपने 25 वर्ष के अध्यापन-जीवन में मैंने यह अनुभव किया कि ऐसे कालांशों मे अधिकाश बच्चे केवल डांट से बचने के लिए कोई न कोई किताब-कापी खोल लेते है और बस पढ़ने का केवल नाटक। कई बार तो 5-10 मिनट इस बात को तय करने में लगा देते हैं कि कौन सी किताब खोलें। पहले एक किताब खोलते है; कुछ पन्ने उलट-पलट कर वह किताब बन्द। फिर दूसरी किताब, फिर कोई और कापी इस उलट-पलट और फैसला करने में कि 'क्या पढ़ा जाए' या पढ़ने के नाटक में पूरा कालांश समाप्त हो जाता है और उपलब्धि शून्य अथवा नाममात्र।

विषय पर विचार करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि विद्यार्थियों को स्वाध्याय की आदत नही है।

अचानक समय मिलने पर न तो वह स्वाध्याय के लिए कुछ निर्णय कर सकते हैं और न ही उन्हें इस प्रकार के निर्णय के लिए पूर्व-योजना (Pre-planning) की शिक्षा दी जाती है।

हमने अपने विद्यालय में स्वाध्याय की आदत का विकास करने का अभियान चलाया। हर शनिवार को दो कालांश सह-शैक्षिक क्रियाओं के लिए होते हैं। जब अन्तर्सदनीय-प्रतियोगिता होती है तब तो दो कालांशों की आवश्यकता होती है पर जब केवल सदनों की बैठक होती है तो दो कालांश का समय बहुत अधिक होता है। अत: यह अभियान आरम्भ किया कि एक दिन पहले ही बच्चों को यह सूचना दे दी जाए कि एक कालांश में सदन-बैठक होगी और दूसरे कालांश में हर कक्षा के बच्चे स्वाध्याय करेंगे।

बच्चो को स्पष्ट रूप से यह बता दिया कि हर बच्चा पहले से ही यह सोच कर आयेगा कि वह किस विषय में क्या काम करेगा। गृह-कार्य पूरा करने या दूसरे बच्चे की कापी से कक्षा-कार्य उतारने की अनुमति नही दी जाएगी। दो-तीन अध्यापक इस स्वाध्याय कार्य की देखभाल करेगे और वे बच्चों से किए गए कार्य के विषय में प्रश्न भी पूछ सकते हैं।

अभियान के पहले दिन हमारे मन मे यह शका थी कि न जाने सफलता मिलती है अथवा नही, परन्तु वास्तव में आशा से अधिक सफलता मिली। शायद इसका मूल कारण था पूर्व-सूचना और पूर्वायोजन। यह अभियान कक्षा 7 से कक्षा 12 तक चलाया गया। प्रसन्नता की बात यह थी कि एक दो कक्षाओं को छोड़ कर शेष कक्षाओं में मानीटर अपने स्वाध्याय का कार्य भी कर रहे थे और कक्षा पर नजर भी रख रहे थे। जिन कक्षाओं मे मानीटर केवल कक्षा की देखभाल कर रहे थे, उन्हें यह समझाया गया कि वे भी अपना काम साथ-साथ करते रहें क्योंकि उनके लिए भी स्वाध्याय उतना ही महत्वपूर्ण है जितना अन्य बच्चों के लिए।

अगले शनिवार यह अभियान फिर से दोहराया गया। इस बार इस कार्य की देखभाल के लिए दो-तीन अध्यापक नियुक्त नहीं किए गए। केवल एक वरिष्ठ अध्यापक ने पूरे विद्यालय में घूम कर देख लिया। इस बार पहले से भी अधिक सफलता मिली।

आजकल अभियान का अन्तिम चरण चल रहा है। बच्चो को यह शिक्षा दी जा रही है कि प्राय: कोई न कोई अध्यापक छुट्टी पर रहता ही है, इसलिए प्रतिदिन वे कम से कम एक कालांश के लिए स्वाध्याय की पूर्व-योजना बना कर आएं। यदि उस दिन सभी अध्यापक उपस्थित होंगे तो कोई हानि नहीं, यही योजना इससे अगले दिन काम आ जायेगी। इस पूर्व-योजना से सबसे बडा लाभ यह होगा कि जो समय केवल पढने का नाटक करने, पन्ने उलटने-पलटने और 'क्या पढ़ा जाए' सोचने में नष्ट हो जाता है, वह बच जायेगा। दूसरा बच्चों में आत्म-अनुशासन एव आत्म-निर्णय के गुण भी विकसित होंगे। □□

केन्द्रीय विद्यालय नं. 1
फरीदाबाद

गृहकार्य–बोझ किस प्रकार

❒ महावीर प्रसाद भारद्वाज

आजकल विद्यालयों में एक प्रवृत्ति देखने को मिलती है। अध्यापक/अध्यापिकाएं छात्रों को गृह-कार्य के रूप में लिखने का ढेर सारा काम दे देते हैं। बच्चे घर आकर घंटों तक गर्दन झुकाए गाइडों और कुंजियों की मदद से प्रश्नों के उत्तर टीपते नजर आते हैं। टीचर चूंकि आदेश देने की स्थिति में होते हैं, अतः वे अपने कंधों का बोझ बच्चों के कंधों पर डालकर निश्चिंत हो जाते हैं। शैक्षिक प्रक्रिया का सामान्यतः और गृह-कार्य की संकल्पना का विशेषतः यह विकृत रूप है।

क्या गृह-कार्य का दिया जाना वास्तव में अवांछनीय और अनुचित कार्य है ? अनुभव से यह सिद्ध हो चुका है कि गृह-कार्य शैक्षिक प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण अनुपूरक एवं अनुवर्ती सोपान है। आवश्यकता इस बात की है कि इस सोपान का प्रयोग अधिकाधिक प्रभावी ढंग से किया जाए, ताकि सकारात्मक परिणाम प्राप्त किए जा सके।

गृह-कार्य के महत्व को देखते हुए इसे सौद्देश्य बनाया जाना चाहिए। दिए जाने वाले गृह-कार्य के उद्देश्य अध्यापक के दिमाग में स्पष्ट होने चाहिए। गृह-कार्य के उद्देश्यों मे से एक है, बालकों के प्राप्ति स्तर को अभिनिश्चित करना तथा उसकी पुष्टि करना। दूसरा, बच्चों की विषय के साथ सम्बद्धता को बनाए रखना। तीसरा, पढ़ाए गए विषय को स्मरण कराना। चौथा, बच्चों मे नियमित परिश्रम की आदत डालना। पॉचवां, बच्चों की मौलिकता को पनपने का अवसर देना। छठा, बालकों को नए पाठ या नए ज्ञान के लिए उत्प्रेरित करना।

अब यह अध्यापक को देखना है कि वह उपर्युक्त उद्देश्यों की प्राप्ति को किस प्रकार सुनिश्चित कर सकता है। इसके लिए उसे गृह-कार्य के सम्बन्ध में कुछ मूलभूत निर्धारण करने होंगे। पहला सिद्धान्त है, गृह-कार्य की सार्थकता उसे पूरा किए जाने मे है। इसके लिए गृह-कार्य की मात्रा और कठिनाई स्तर तथा कक्षा के आकार (छात्र संख्या) पर ध्यान देना होगा। गृह-कार्य की मात्रा इतनी रखी जाए कि कक्षा के बहुसंख्यक छात्र उसे पूरा कर सकें। इसी प्रकार गृह-कार्य के कठिनाई स्तर को बहुसंख्यक छात्रों के प्राप्ति स्तर से जोड़ा जाना चाहिए, अन्यथा या तो बच्चे उसे पूरा नहीं कर पाएंगे या उसे पूरा करने के लिए अनुचित साधनों का प्रयोग करेंगे। अधिक छात्र संख्या होने पर गृह-कार्य की जॉंच करना एक समस्या बनेगी। अतः ऐसी स्थिति में गृह-कार्य की मात्रा कम रखी जानी चाहिए। गृह-कार्य पूरा करने के लिए छात्रों को पर्याप्त समय मिलना चाहिए।

गृह-कार्य का दूसरा सिद्धान्त है, दिए गए गृह-कार्य को चेक किया जाना चाहिए। प्रायः देखा जाता है कि गृह-कार्य दे तो दिया जाता है किन्तु जब बच्चे किसी प्रकार उसे पूरा कर के ले आते हैं तो उसे चेक करना अध्यापक द्वारा मुसीबत समझा जाता है अर्थात गृह-कार्य को देने मात्र में ही कर्त्तव्य की इति श्री समझ ली जाती है। कई अध्यापक कापियो की जॉच छात्रों से कराते हैं। इससे उनका काम तो हल्का हो जाता है किन्तु कार्य की जॉंच स्वयं करने से जो अन्तर्दृष्टि अध्यापक को मिल सकती है जिसका उपयोग वह बच्चों पर व्यक्तिगत ध्यान देने में कर सकता है, उससे व

वंचित रह जाता है। अत. गृह-कार्य यदि दिया जाता है तो उसकी जाँच स्वयं करना भी उसका नैतिक दायित्व बन जाता है।

गृह-कार्य का तीसरा सिद्धान्त है, उसकी जॉच हो जाने के बाद अध्यापक तथा छात्रों के द्वारा उस पर अनुवर्ती कार्यवाही की जानी चाहिए। बच्चों द्वारा किया जाने वाला गृह-कार्य अध्यापक के लिए छात्रों के नैतिक, मानसिक तथा सामाजिक स्तर का दर्पण बन सकता है जिससे वह अपने दायित्व के वहन के लिए पाथेय जुटा सकता है और बच्चों तथा अभिभावकों का सही दिशा मे मार्गदर्शन कर सकता है। छात्रों के लिए अनुवर्ती कार्यवाही यह है कि वे अध्यापक द्वारा बताई गई गलतियों का अहसास करें, उनका शोधन करे तथा आगे उन गलतियो को न दोहराएं।

सामान्यतः इन सिद्धान्तों का पालन नहीं किया जाता जिसके परिणामस्वरूप न केवल छात्रों को गृह-कार्य बोझ मालूम देता है बल्कि अध्यापक को भी यह मुसीबत नजर आती है। इन सिद्धान्तो के पालन के अभाव में गृह-कार्य एक निरर्थक शैक्षिक प्रथा बन कर रह जाती है जो कि सुधी अध्यापकों के लिए शैक्षिक प्रक्रिया का सही दिशा मे एक ठोस सकारात्मक सोपान बन सकता था।

इस सारी विवेचना का निष्कर्ष यह है कि गृह-कार्य को अध्यापकों द्वारा इतने हल्के ढंग से नही लिया जाना चाहिए जितना प्रायः लिया जाता है। गृह-कार्य शैक्षिक प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण अंग है। ◻◻

संसदीय भाषान्तरकार
राज्य सभा सचिवालय
नई दिल्ली

उत्तर प्रदेश में आश्रम पद्धति विद्यालय

❒ नन्हकू प्रसाद गुप्त

उत्तर प्रदेश में समाज कल्याण विभाग द्वारा स्थापित एवं वित्त पोषित सम्प्रति 64 आश्रम पद्धति विद्यालय चल रहे हैं। यह शासन द्वारा संचालित एक महत्वपूर्ण एवं लोकोपकारी व्यवस्था है, जिसका उद्देश्य सामाजिक आर्थिक रूप से पिछड़े अनुसूचित जाति, विमुक्त जाति एवं अनुसूचित जन जाति के बच्चों के लिए निःशुल्क प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा के साथ ही आवास, भोजन, वस्त्र, लेखन-सामग्री आदि सुविधायें भी उपलब्ध कराना है इन विद्यालयों में यद्यपि शिक्षा विभाग द्वारा स्वीकृत एवं अनुमोदित पाठ्यक्रम के अनुरूप शिक्षण व्यवस्था की जाती है फिर भी समाज कल्याण विभाग द्वारा पूर्ण नियंत्रित होने के कारण शिक्षा विभाग का हस्तक्षेप मात्र औपचारिक है।

शिक्षा से वंचित रहने की सदियो पुरानी परिपाटी में पले अनुसूचित जाति, अनुसूचित जन जाति एवं विमुक्त जन जाति के बच्चों में स्वतंत्रोत्तर काल में आश्रम पद्धति विद्यालयों के माध्यम से उपलब्ध करायी गयी आश्रम पद्धति विद्यालयीय शिक्षण से एक नयी

चेतना का जागृत होना स्वाभाविक है। उत्तर प्रदेश मे आश्रम पद्धति विद्यालयो का एक विशिष्ट स्थान है। यह विद्यालय अपनी विशेषताओं के कारण दुर्बलतर वर्गों की शिक्षा ही नहीं वरन संस्कृति के भी अनुपम केन्द्र हैं। इन विद्यालयो में बालक-बालिकाओं के शैक्षिक विकास के साथ-साथ उनके शारीरिक, मानसिक तथा व्यावसायिक विकास पर ध्यान दिया जाता है। आर्थिक कठिनाइयों से छात्रो की शिक्षा पर कुप्रभाव न पडे इसलिए बच्चों के शैक्षिक, भोजन सबंधी, वस्त्र, बिस्तर, पाठ्य-सामग्री सम्बधी समस्त व्यय का वहन विभाग द्वारा किया जाता है। विद्यालयो में विभाग ने यदा-कदा शैक्षिक पर्यटन के द्वारा बच्चों के व्यक्तिगत विकास हेतु धन का प्रावधान कर रखा है। जूनियर हाई स्कूल एवं माध्यमिक विद्यालयो में मनोवैज्ञानिक परीक्षाओं के द्वारा बच्चों के मानसिक विकास का अध्ययन समय-समय पर करने के लिए मनोवैज्ञानिकों की नियुक्ति भी की गयी है।

उत्तर प्रदेश में बालक तथा बालिकाओ के लिए पृथक-पृथक आश्रम पद्धति विद्यालय है। यह विद्यालय प्राथमिक, जूनियर हाईस्कूल, हाईस्कूल तथा इण्टरमीडिएट स्तर तक के हैं। निजी सस्थाओं, व्यक्तियों और न्यासों द्वारा तीन आश्रम पद्धति विद्यालय संचालित किये जा रहे हैं जो समाज कल्याण विभाग द्वारा शत-प्रतिशत अनुदान प्राप्त करते हैं। इन तीन विद्यालयों के अतिरिक्त शेष विद्यालय राजकीय हैं। उत्तर प्रदेश में आश्रम पद्धति विद्यालयों का प्रारम्भ वर्ष 1964 से हुआ है। प्रारम्भ में प्राथमिक स्तर तक के विद्यालय स्थापित हुये थे जिन्हे धीरे-धीरे आगे बढ़ाया गया। इन विद्यालयों में यद्यपि वर्षानुवर्ष क्रमोत्तर कक्षाएं खोलने के प्रावधान किये गये थे। किन्तु वित्तीय कठिनाइयो एवं प्रशासनिक कारणो से अपेक्षित स्तरोन्नयन नही हो सका। प्रारम्भ में सभी विद्यालय समाज कल्याण निदेशालय से संचालित होते रहे। वर्ष 1984 मे जन जाति विकास निदेशालय के पृथकीकरण के फलस्वरूप अनुसूचित जन जातियो के आश्रम पद्धति विद्यालयों के संचालन का दायित्व जन जाति विकास विभाग को सौंप दिया गया। अनुसूचित जाति एवं विमुक्त जाति के आश्रम पद्धति विद्यालयों का संचालन समाज कल्याण विभाग के दायित्वाधीन है।

भारत सरकार की नयी शिक्षा नीति के तहत वर्ष 1987 से 'नवोदय विद्यालय' प्रारम्भ किये गये है। नवोदय विद्यालय केन्द्र सरकार द्वारा स्थापित आवासीय शैक्षिणिक संस्था है जिसे प्रत्येक जनपद मे एक आदर्श विद्यालय के रूप में स्थापित किया जा रहा है। यहां पर गरीब किन्तु प्रतिभाशाली छात्रों को प्रतियोगिता के माध्यम से प्रविष्ट किया जाता है और उन्हें नि.शुल्क आवासीय शिक्षा सुविधा प्रदान की जाती है। आश्रम पद्धति विद्यालयों में यह व्यवस्था समाज के दुर्बलतर वर्गों के बच्चों के लिए जातिगत आधार पर प्रदान की जाती है।

नवोदय विद्यालयों में संसाधन एवं सुविधा की तुलना में आश्रम पद्धति विद्यालयों में सुविधा मे अपेक्षाकृत कम है, किन्तु शासन द्वारा इसमें सुधार का प्रयास किया जा रहा है। समाज कल्याण निदेशालय द्वारा प्रति वर्ष नये आश्रम पद्धति विद्यालयों की स्थापना का प्रयास भी जारी है। वर्ष 1990-91 में प्रदेश में 11 विद्यालय तथा वर्ष 1991-92 में 15 जनपदो में एक-एक विद्यालय खोले जाने का प्रस्ताव है। आशा है कि शीघ्र ही प्रदेश के प्रत्येक जनपद मे कम से कम एक आश्रम पद्धति विद्यालय स्थापित हो सकेगा। □□

ग्राम–छित्तूपुर
पोस्ट–खुटहन
जिला–जौनपुर

वर्तमान युग में प्राचीन शिक्षा की सार्थकता

❑ डा. चन्द्र प्रकाश

हमारे शास्त्रों में प्राचीन आचार्यों (गुरुओं) ने जो व्यवस्था बनाई है वे सब नियम समाज की व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने के लिये ही उसमें कहा गया है कि—

मातृ दे वो भव,,
पितृ दे वो भव।

आचार्य दे दो भव इत्यादि वचन हमें अपने माता, पिता और गुरु की सेवा, अर्चना और आदर भाव करना सिखाता है इस प्रकार की शिक्षा हमें अच्छा और सच्चा गुरु ही दे सकता है। अतः शिक्षा क्षेत्र में हम लोग इस प्रकार की शिक्षा प्राथमिक शिक्षा के रूप में प्रदान करने की व्यवस्था करें ताकि देश का वर्तमान और भविष्य पुराने समय से अच्छा हो। हम जिस प्रकार की शिक्षा देंगे बच्चा वैसी ही शिक्षा को ग्रहण करेगा और उसी के अनुसार कार्य करेगा, कहावत

"बोये पेड बबूल का तो आम कहां ते होय"

आजकल की शिक्षा पद्धति अत्यन्त दूषित हो गई है यहां गुरु भी बेईमान है और चेला भी नालायक मिला है—

कबीर ने सच ही तो कहा है

जाके गुरू है आन्हरा चेला काह कराय।
अन्धे अन्धा ठे लिया तो दोनो कूप पडाय।।

इसलिये सबसे पहले गुरु या शिक्षक को ही पूर्ण ज्ञानवान होना चाहिए ताकि वह अपने शिष्य को अच्छी शिक्षा दे सके। वर्तमान शिक्षा पद्धति हमें अन्धेरे में भटका रही है क्योंकि यहां मौलिक शिक्षा मे धर्म, नीति और सदाचार का अभाव है। हम इसे विज्ञान का युग कहकर नैतिक पठन-पाठन का मूल्य नहीं समझ रहे हैं। लेकिन जब तक हम अर्थ प्रधान युग में कदम आगे बढ़ाते जायेंगे तब तक हम अपनी प्राचीन मौलिक-नैतिकता और सदाचार से दूर होते जायेंगे और अन्धानुद्धरण करते हुए अन्ध कूप में गिरते रहेंगे।

इसलिये हमे अपने दिल पर हाथ रखकर सोचना चाहिए कि केवल भौतिक मायाजाल ही ठीक नहीं है बल्कि प्रक्रति प्रदत्त शरीर, जीवात्मा और परम चेतनामय परमात्मा का भी कोई अस्तित्व है जो हम सभी को एक सूत्र में बांधकर रखता है। हम स्वार्थी बनकर केवल अपनी आत्मा को ही स्वर्ग और मोक्ष के लिए प्रयत्नशील नहीं होते रहे बल्कि अपने समाज देश के लिये भी कुछ सोचें। इस प्रकार हम इस जगत की सत्ता को भी जब तक सत्य नहीं मानेंगे तब तक इसकी अच्छाई के लिये प्रयत्नशील नहीं होंगे। इसलिये अपनी आत्मा को समझें। जो सत्य और ज्ञान पर बातें हों उस पर गौर करें तभी हम अपने माता, पिता, भाई, बन्धु, गुरु, श्रेष्ठजन, समाज और देश की महत्ता को समझेंगे। अतः इस जगत को मिथ्या न मानकर इसकी भलाई, और विकास के लिये प्रयत्नशील हो, क्योंकि केवल सत्य-झूठ को भ्रमजाल समझ कर इससे भागना उचित नही है। यदि आप इस जगत से भागेगे तो

आप स्वार्थी हैं। यदि आप अपने को इस जगत के विकास तथा समाज की भलाई के लिये यत्न करेंगे तो आप सन्त, महात्मा और सदाचारी माने जायेंगे। यदि आपको मोक्ष या कैवल्य प्राप्त होता है तो किसी को न्याय नही होगा लेकिन यदि आप दूसरो की ही सेवा, धर्म समझते है तो आपको लोग ईश्वर ही मानेगे और ईश्वर तक की उपलब्धि आपका परम् पद है। इसलिये ससार से भागना कोई युक्ति संगत बात नहीं है। बल्कि ससार में रहकर बुराई को अच्छाई में बदलना ही उपयुक्त है। इसलिये हम कहेंगे कि इस पथ पर बढ़ता चल बढ़ता चल, अर्थात

चरेवेति चरेवेति। ❑❑

18/382, लोधी कालोनी
नई दिल्ली

अध्यापको की सहायतार्थ
तथा उन्हें स्वावलम्बी
बनाने के लिए
पढ़िए

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसधान और प्रशिक्षण परिषद् द्वारा प्रकाशित

प्राइमरी शिक्षक

(एक त्रैमासिक प्रकाशन)

प्राइमरी शिक्षक मे गणमान्य शिक्षा-शास्त्रियो तथा अध्यापकों द्वारा निम्नलिखित विषयों पर लिखे गए शोध-प्रपत्र और लेख प्रकाशित किए जाते है

*नवीन प्रयोग तथा नवाचार;

*स्कूली शिक्षा की गतिविधियॉ, विशेष रुप से प्राथमिक स्तर पर;

*प्राथमिक शिक्षा पर होने वाला कार्य,

*शिक्षकों के लिए अध्यापन-शिक्षण सामग्री। उदाहरणार्थ-चित्र, रेखाचित्र आदि, जिनको कक्षा मे प्रत्यक्ष रुप से प्रयोग किया जा सके।

रजि नं. 32427/76

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित प्राइमरी शिक्षक एक त्रैमासिक पत्रिका है।

इस पत्रिका का उद्देश्य केन्द्रीय सरकार की शिक्षा नीतियों से संबंधित आधिकारिक जानकीरी को शिक्षकों और सम्बद्ध प्रशासकों तक पहुंचाना है। इसका उद्देश्य कक्षा में इस्तेमाल की जा सकने वाली सार्थक और सम्बद्ध सामग्री प्रदान करना भी है। भारत के विभिन्न केन्द्रों में चल रहे पाठ्यक्रमों और कार्यक्रमों आदि के बारे में समय समय पर इसमें सूचनाएं प्रकाशित होती रहती हैं। शिक्षा- जगत में होने वाली हलचलों पर विचार- विमर्श के लिए यह एक मंच का काम भी करती है।

इस पत्रिका के प्रमुख स्तम्भ हैं -

(1) प्राथमिक शिक्षा से संबंधित शैक्षिक नीतियां।

(2) प्रश्न और उत्तर।

(3) राज्यों के समाचार।

(4) कक्षा में इस्तेमाल की जा सकने वाली सचित्र सामग्री।

स्कूलों के शिक्षकों की रचनाएं प्रकाशनार्थ आमंत्रित हैं। हर प्रकाशित रचना पर पारिश्रमिक की व्यवस्था है। लेख हिन्दी या अंग्रेजी में कागज के एक ओर लिखा होना चाहिए। सुविधा के लिए कृपया टाइप की गई या साफ- साफ, सुन्दर अक्षरों में लिखी रचना की दो प्रतियां भेजें।

प्रकाशन विभाग में सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली 110 016 प्रकाशित तथा शगुन कम्पोजर्स, 92-बी, कृष्णा नगर, गली नं. 4 सफदरजंग एन्क्लेव, नई दिल्ली 110 029 में टाइपसेट होकर, अरावली प्रिंटर्स एंड पब्लिशर्स प्रा. लि. ओखला फेज - II, नई दिल्ली 110020 द्वारा मुद्रित।

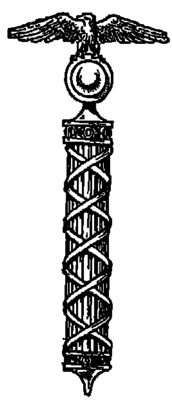
Questions and Topics for Discussion

1. Name four or more unions for special purposes among three or more nations. Why were – and are – all such unions, however limited their purposes, helpful in a larger way?
2. What is the situation of an American author with reference to international copyright? Why is this so?
3. In a number of instances the United States has resorted to the arbitration of disputes with Great Britain. Mention one of these cases that did not pertain to boundaries. From your study of United States history recall and mention at least one case of arbitration that pertained to the control of land or sea areas. (In the Venezuela boundary case the arbitration finally was between Great Britain and Venezuela – not the United States.)
4. What was the Hague Tribunal? Who sponsored it?
5. Tell briefly about the origin of the League of Nations.
6. Tell something about the purposes and the structure of the League.
7. Mention two disputes which the League of Nations settled.
8. Mention two matters of utmost importance which were brought before the League, wherein the League failed to act effectively.
9. Why were many of the small nations enthusiastic in their support of the League?
10. Trace briefly the relations between Italy and Ethiopia since the 1870's.
11. Compare the jurisdiction – that is, the proper work – of the Hague Tribunal with that of the Permanent Court of International Justice.
12. How have Americans as individuals figured in connection with the World Court?
13. What is the present situation of the International Labor Organization?
14. What were two or more of the outstanding weaknesses – internal or external – of the League of Nations?
15. In view of the whole record, what good, if any, did the League of Nations accomplish?
16. Tell briefly about the Washington Arms Conference of 1921 to 1922, its purpose and its membership.
17. Tell briefly what the Conference actually accomplished, and the net result of its efforts in the long run.

18. What was the Open Door policy?
19. Name three or four conferences of the 1920's, besides the Washington Arms Conference, and tell the purpose of each.

Optional Assignments

1. Read in a work of reference or elsewhere the story of the use of sanctions against Italy in connection with Mussolini's Ethiopian adventure. Let two or more students report to the class on this matter.
2. In 1915 Japan made her "Twenty-one Demands" upon China. Let one student or more than one look up the story of these demands and report to the class.
3. Look up and read the Lytton Report on the Japanese occupation of Manchuria. Let one or two students tell the class about the findings and the recommendations of the League's commission.
4. Find out about the most recent meeting of the International Labor Organization, what it did and what it planned.
5. The United States, as they fought the Revolution, were a league, or confederation, of states rather than a single power. What held them together?
6. When did the United States become a completely unified nation in the view of all the states, in 1789 or in 1865? What observations on world organization are suggested by the history of our union of states?



IV

RUMORS OF WAR AND THE FACT OF WAR

War is honorable
In those who do their native rights maintain;
In those whose swords an iron barrier are
Between the lawless spoiler and the weak;
But is in those who draw the offensive blade
For added power or gain, sordid and despicable
As meanest office of the worldly churl.

JOANNA BAILLIE

CHAPTER 10

EUROPE BETWEEN WORLD WARS, 1918 TO 1939

ROUGHLY paralleling the ups and downs of the League of Nations (pages 177 to 195) were those of the individual nations, particularly in Europe, during the lifetime of the League. Reconstruction and peace were the commonly proclaimed objectives of the time. From 1919 to 1923 there was a period of post-war disorganization during which the nations were struggling to restore order after the wrecking experiences of the First World War. There followed a period of reorganization and coöperation during the years 1924 to 1930. The future looked reasonably promising during this period. Of course economic conditions steadily grew worse after the onset of world depression in 1929; but it took two years for the depression to reach its lowest depths. The end of the year 1930 is considered to mark the close of this second period. A third period, 1931 to 1939, was marked by economic difficulties and by political crises that terminated in the renewal of general warfare. The League of Nations, like an abandoned hulk, somehow kept afloat through the Second World War.

POST-WAR NATIONAL PROBLEMS

It will throw light on international developments if we here note briefly the crucial difficulties of Great Britain, France, Hungary, Austria, and Germany, following 1918.

GREAT BRITAIN

Following the Armistice, Great Britain assumed that she could pick up the threads of industry, commerce, and finance where they had been dropped in 1914. However, she found that financial leadership would have to be shared with New York. The United States, Japan, some of the British dominions, British India, and even China had stepped up their manufactures. None of these countries had borne so much of the brunt of warfare as had Great Britain. Those of them that were industrially advanced could export more goods than before, cutting into British markets; all were meeting their own needs more fully. World shipping had fallen largely into other hands. The demand for British coal fell off because of the increased use of oil for fuel and because the Germans, under reparations clauses of the Treaty of Versailles, were supplying great quantities of coal to France, Belgium, and Italy. The British had to face business stagnation, unemployment, and huge war debts.

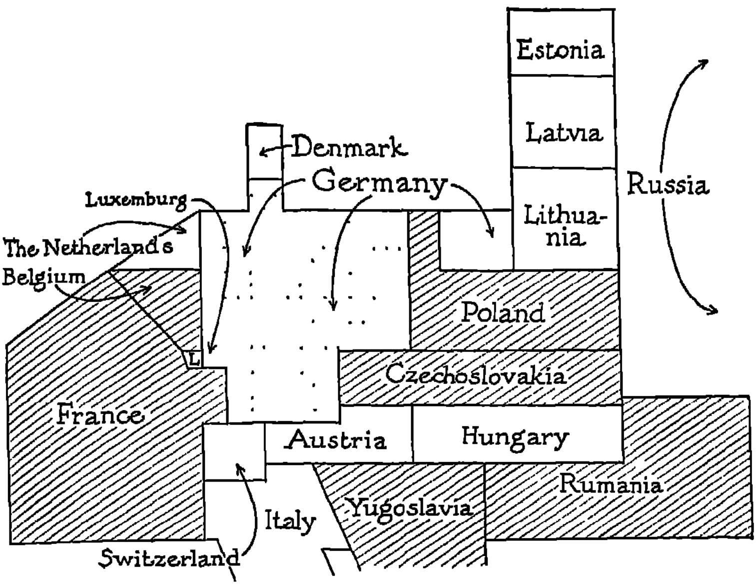
FRANCE

The World War of 1914 to 1918 left France with military supremacy, as it left Great Britain with naval supremacy, among the nations; and France, like Great Britain, profited territorially. But no war gains could cure the wounds of war. The whole northern part of France had been used as a battlefield, and for years this rich area was unproductive. German labor was applied directly to some of the work of reparation in France, but this was a drop in the bucket. Reparations payments were expected to compensate for the bulk of the damage; but French expectations and even German good intentions came to little.

In France, as in every other land, the cost of living had gone up by leaps while salaries failed to keep pace and many other sources of income dried up. France had financed the war not by boosting tax rates, but by selling bonds to her own people

and by borrowing money abroad. The national budget continued to be unbalanced, and the payment of interest on the bonded debt became increasingly difficult. Inflation and devaluation of the currency ran their course, as in other countries (pages 126, 127, and 213–215).

The principal goal of French foreign policy was security for France. The French insistence on a large army and on alliance with Poland and with the Little Entente — Czechoslovakia, Yugoslavia, and Rumania — was for the purpose of assurance against Germany.



In this map-graph the diagonal shading indicates the alliances of France with Poland and the Little Entente — Czechoslovakia, Yugoslavia, and Rumania. To bolster her allies, France lent large sums of money to all of them at a time when she herself was having serious financial troubles. The purpose of France in her alliances on the continent was to keep Germany, Austria, and Hungary within the bounds set for them at Versailles. These French alliances amounted to little after the Germans succeeded in annexing Austria in 1938, to nothing at all after the Munich Accord in the same year.

HUNGARY

During the three years following the war Hungary suffered bitterly. By the Treaty of Trianon she lost many of her own people to Rumania, Yugoslavia, and Czechoslovakia, along with the lands on which they lived. The Hungarians, or Magyars, are a proud people with a long history, and they deeply resented their national humiliation. In the spring of 1919 the Communists under Bela Kun gained control of the government and were rapidly setting up their system. With the help of a Rumanian army, Admiral Nicholas Horthy and the conservatives of Hungary drove out Bela Kun. Horthy set up a kingless kingdom: since the Hapsburg family could not at the time be permitted to return, Horthy himself served as the head of the government under the title of regent. The new régime was considered a bulwark against the spread of Communism, and it was given support by the Great Powers.

AUSTRIA

Hungary's neighbor and late partner in the Dual Monarchy, Austria, was the most helpless country in central Europe. The great city of Vienna, shorn of her ancient political and economic leadership in central and southeastern Europe, was like a living head without a body. The remnant of Austria left with the capital was a region of scanty agricultural and mineral resources. Industry was paralyzed if not dead. The country was bankrupt and was saddled with a huge war-reparations obligation. Citizens starved while their leaders solicited help from abroad — and secured a measure of it.

GERMANY

The British blockade of Germany and her late allies was kept in force for months after the Armistice (page 67). Germany was about at the end of her resources when she accepted the Armistice; and the blockade made almost impossible conditions

worse. In the first days of the German revolution of 1918, a republic was proclaimed by a group of leftists – Socialists and others – who took matters into their own hands. Thereafter, in the city of Weimar, a constitution was drawn up and a republic was regularly established (pages 104 and 234).

The new government was confronted with the facts of defeat, financial collapse, and administrative chaos. Besides, it was harried by the agitation of extreme radicals who would not take into account the actualities of their country's helpless condition. Particularly violent was a group of Communists who called themselves Spartacists. The leaders of this group were arrested and murdered, and the rank and file were machine-gunned out of existence.

With reference to foreign affairs the great issue was whether to follow a policy of passive resistance to the Treaty of Versailles or a policy of coöperation, fulfilling the treaty obligations as far as possible. After considerable hesitation the "policy of fulfillment" was settled upon, and reparation payments were undertaken.

INTERNATIONAL PROBLEMS

The nations are a family whose members have often and for long periods got along badly with one another. As in an individual family, diseases among them are often contagious. This is true literally, as when the Spanish influenza, so-called, overspread much of the world between 1918 and 1922. It is true, somewhat figuratively, in economic, social, and political matters. Thus the problems of Germany, following the World War of 1914 to 1918, became – indeed, were from the beginning – the problems of all the rest of the world.

During the conflict there were persons who mouthed the formula "hang the Kaiser!" as if putting a knot on the Kaiser's neck would untie the complicated and hard international knot; but things were not so simple – they never are.

DIFFICULTIES INHERENT IN THE REQUIREMENT OF REPARATIONS

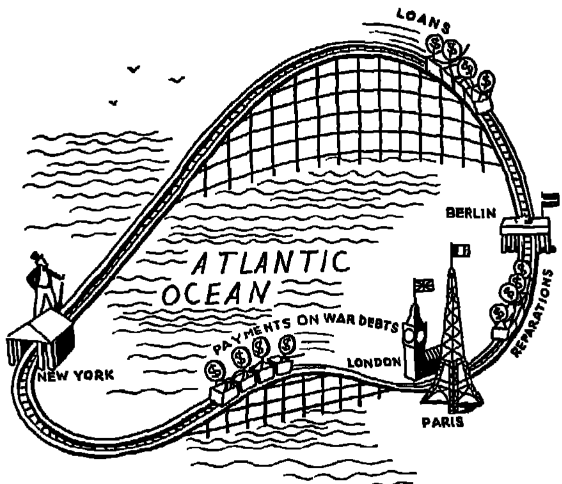
The reparations required of Germany by the Treaty of Versailles could have been made in gold, if Germany had been able to secure enough of it; or they could have been made in goods or in services directly rendered. Actually, limited reparations were made in each way.

It was said that there was not enough gold available in all the world to meet the total of Germany's reparations obligation (fixed at $32,000,000,000 in 1921). Besides, according to the wisdom that prevailed among men of finance in the 1920's, a country's currency must have some gold backing; it was necessary for the financial health of the world to let the Germans keep part of the little gold they could find.

If the Germans were to make reparations payments in gold, it was to be expected that they would get the necessary gold through international trade. To this end they would have to export goods to far greater value than the value of their imports. And payment of reparations in goods and services would also have required vastly greater exports than imports on the part of Germany.

The recent enemies of Germany, her natural competitors in world markets, did not wish to have the Germans undersell them everywhere in order to establish an extremely favorable balance of trade out of which to pay reparations. Neither did they wish to have German goods distributed among themselves in direct payment. What, they asked, would in that case happen to their own industries? The exports of coal and manufactured products from Germany to meet reparations obligations, so far as carried out, did operate to dislocate industry in England and in other countries. A small dose of that kind of thing was enough.

For a time there was a solution of the reparations difficulty, happy for everybody except the Americans. The Germans



Uncle Sam as the operator of a financial roller coaster. A cartoon drawn by Bunji Tagawa for *Battles without Bullets*, a *Headline Booklet* of the Foreign Policy Association

borrowed money from citizens of this country and out of their borrowings made payments to the reparations-collecting nations. (Our country, under President Wilson's guidance, would have no share in reparations and would take none of the spoils of war.) After a while this source of funds began to dry up.

FRENCH OCCUPATION OF THE RUHR

In 1922 the German government failed in part to meet its reparations obligations. Raymond Poincaré, who had been the wartime president of France, was premier. Early in 1923 his government, with that of Belgium, undertook the occupation of the Ruhr Valley, rich industrial area in western Germany, as a penalty for Germany's delinquency. The British government strongly objected to the French procedure of occupying the Ruhr; but Mussolini, who had come into power in Italy, gave his approval. The occupation, carried out largely with French colonial troops, in a lesser way prefigured the unhappy

occupation of France by German troops which began in 1940. The result of the Ruhr adventure was disastrous for all the nations concerned (page 104). Partly because of the Ruhr blunder Poincaré lost the premiership. In August, 1925, during the premiership of Edouard Herriot, the occupying troops were withdrawn from the Ruhr.

The Ruhr affair caused vast losses to Germany, on top of her direct war losses. As a result German ability to continue reparations was obviously lessened.

PAYMENT PLANS AND DEFAULTS

Successive plans were made, under international auspices, to solve the problems connected with German reparations. In 1924 the Dawes Plan was put into operation. When that did not give desired results, the Young Plan was launched in 1929. These plans were named for the two American financiers who, in connection with international commissions, were concerned with framing them. In 1931, when world depression was nearing its worst, President Hoover sponsored the Hoover Moratorium, suspending reparations payments and "war debt" payments for one year. The agreement reached at the Lausanne Conference of 1932 (page 197), so far as actual practice was concerned, canceled reparations; but there was a proviso that the release of Germany from reparations payments to the late Allies depended on the release of the Allies from their so-called war debts to the United States.

The debts owed to the United States government had been incurred in great part after the Armistice of 1918; they had been scaled down; and they represented money and goods delivered to the Allies at their insistent solicitation, with promises to pay. Among the debtor nations were Germany, Austria, and Hungary, who had been enemy nations and to whom money had been lent after the war. Also among them were a number of countries that were the creations, or re-creations, of the Treaty of Versailles, like Poland.

Americans considered the attitude of the debtor peoples shabby; and the debtors bitterly referred to Uncle Sam as "Uncle Shylock." Great Britain, France, and Italy made partial payments for a time; in the end these and other nations simply defaulted, with little or no apology. Only Finland, which had asked and received its independence from Bolshevist Russia in 1918, continued to make payments through the years. Uncle Sam chose not to become a bill collector; but for a time he suffered seriously from disillusionment.

CURRENCY TROUBLES

The staggering expenditures of modern warfare always lead to currency inflation (page 130). Gold is hoarded by governments and by private persons; the paper currency ceases to be convertible into gold; and the value of paper money drops. Sometimes an old issue of paper money never regains its former value. Again, there may be gradual deflation during a post-war period; a government resumes the redemption of its paper money in gold on demand, and the paper goes back to par value. Thus it was with the old greenback currency of the United States during and after our Civil War. And so it was again in this country during the World War and the immediate post-war period. The European nations, and especially the defeated nations, suffered greatly from currency inflation and depreciation following the war of 1914 to 1918. Besides inflation and depreciation there was deliberate devaluation, the effect of which upon trade we considered on pages 126 and 127.

Great Britain, once dominant in the money market of the world, had her post-war financial pangs and ultimately dropped the gold standard. British notes ceased to be exchangeable for gold on demand.

By 1928 the French franc had fallen to about one fifth its pre-war values in terms of United States currency (page 126); and thereafter it depreciated further.

By the spring of 1921 the German mark, originally worth about twenty-four cents, was worth a little over one cent in the then existing gold currency of the United States. That was the time when Germany was required to make the first of its heavy reparations payments in gold. The country was drained of sound money and its equivalents (largely borrowed, at that). To supply a circulating medium the German printing presses were set to work, turning out paper marks. The more of these that were put into circulation, the less they were worth; and the less they were worth, the more of them were put into circulation. By the earlier part of 1924 paper marks had depreciated so fantastically that it took a billion-mark note to equal the value of the pre-war mark. Then a new mark, called the "reichsmark," was issued by Germany (page 130). So a reichsmark was assigned the value of a billion marks of the inflation issues, or the value of one pre-war mark.

The course of inflation was very much the same in Austria. There is a story of a man in Vienna who bought a house and furnished it before the war. He gave his note and mortgage at the bank, to cover the greater part of the purchase money. Following 1918 the mortgage fell due. The debtor looked over his furniture, picked out one chair that the family had never liked anyway, and sold it. The money he received in Austrian paper crowns amounted to enough to pay off the mortgage and interest. The bank had to receive the money, for it was legal tender; but the actual value of that paper was almost nothing. In Germany a man was reported to have paid off a heavy mortgage on real property with the proceeds of the sale of a single spool of thread. Many landed proprietors of the arrogant Junker class freed themselves thus of their obligations.

Such inflation destroyed the value of savings, insurance policies, and investments that thrifty citizens had made over long years. The process also wiped out the domestic debts of the governments concerned; but the incidental sufferings of

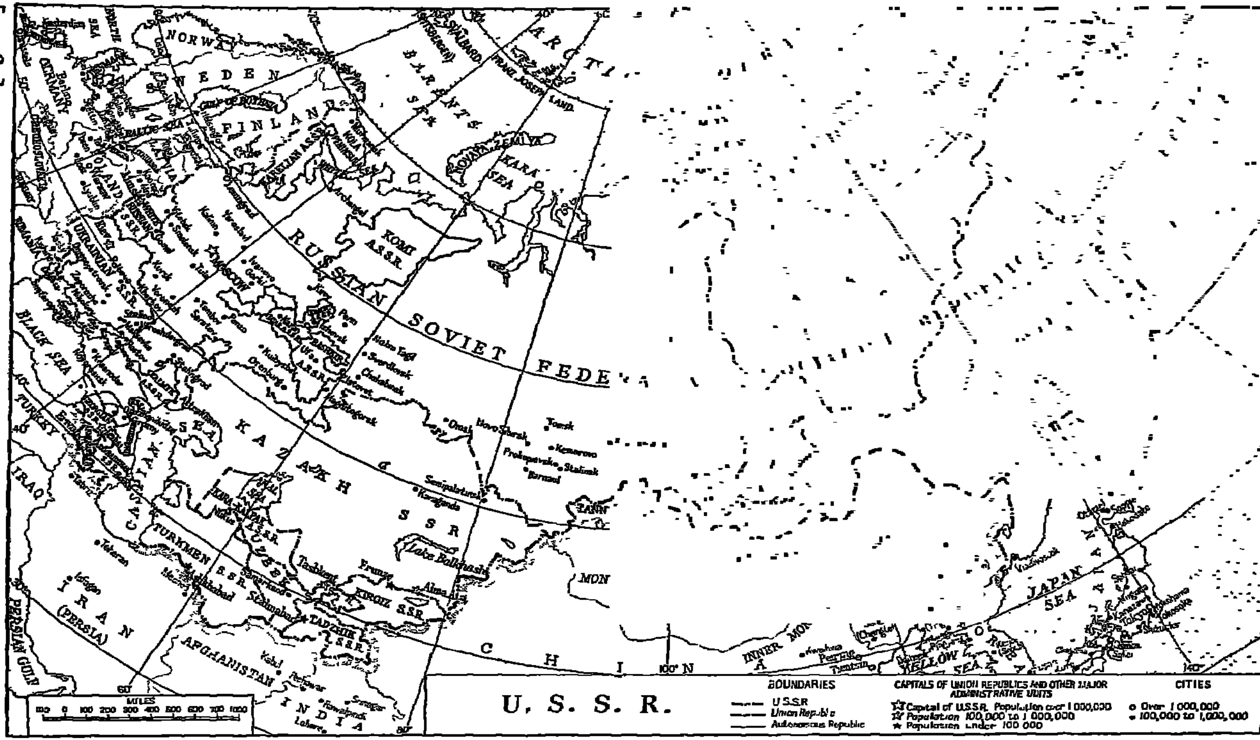
the people were extreme. Repudiation through inflation amounted to about the same thing as the outright repudiation and outlawing of all debts, public and private, by Bolshevist Russia.

POST-WAR DIFFICULTIES OF THE NEUTRAL NATIONS

The nations that had managed to stay neutral during 1914 to 1918 did not go unscathed. They also experienced difficulties in the post-war period. The purchases of the warring nations had taken all the goods that Spain, Switzerland, the Netherlands, and the Scandinavian countries could part with. As a result there was a tremendous increase in the cost of living in those lands. The people who had products to sell made great profits, while those with fixed incomes suffered. In Spain during the war years the farmers, for once, were really prosperous. With the fighting and the war boom over, the late neutral nations had to make many economic readjustments. In Spain the position of farmers and other workers became desperate. Increasing resentment among Spaniards against the indifferent and inept government led first to dictatorship under the monarchy and then, in 1931, to the overthrow of the monarchy. Although the Scandinavian nations and the Netherlands fared better, all were deeply affected by the change from a war to a peace economy.

THE FEAR OF COMMUNISM

The political thinking of the people of western Europe and of our own country, following the events in Russia during 1917 (page 97), was colored by fear of the possible spread of Communism. Communism, in its theory, seems to require the communization of the world. To that end it has, or has had, its international organizations: the First International, the Second, the Third International. The same widespread feeling for nationalism that proved the greatest stumbling block for the League of Nations operates against international Communism.



The Union of Soviet Socialist Republics in 1939.

In its theory Communism is completely ruthless: overnight it would destroy all privilege whether of class or property, whether of capitalism, labor unionism, professionalism, or social position. No matter how much it might hurt anybody or anything now, Communism would summarily abolish all other régimes, not gradually supersede them. Naturally in countries where a measure of general well-being exists, where the people are not so downtrodden that they would welcome any change as for the better, only an extremely small part of the people favor Communism. Some of those favor it because they are converts to its theory — whatever that may be; some favor it because they are temperamentally revolutionists; some pretend to favor it because they enjoy shocking their neighbors and friends, because they are egoists who enjoy the attention that the pose of extremism gives them.

The connection between Communism and one brand and another of Socialism is not clear to most persons, perhaps not to anybody. It is worthy of note that the official title of the Russian government has never included the term "Communist"; the term used is officially "Socialist." Russia is called "The Union of Soviet Socialist Republics." Russian Communists will sometimes explain that their country is not now Communistic but Socialistic; Communism, they say, is the ideal toward which the U. S. S. R. is heading. It seems, however, that Lenin and Trotsky at first did try to establish Communism in Russia in accordance with its pure theory (pages 97 and 98).

Russia was long hated and dreaded as the center and source of Communistic infection. In Hungary, as we have noted, Communists actually did take control of the country during 1919; and in Germany the Communists were for a time active, as well as in Italy and the Balkan countries. However, as economic conditions improved in one country and another the danger of Communism lessened, fear of Russian influence gradually decreased, and Russia came to be on better terms with other nations.

WORLD EVENTS, 1919–1939

(*A*) POST-WAR DISORGANIZATION, 1919–1923

A period of unsettled conditions and sharp adjustments, the direct result of the war. All the nations, including those that had been neutral, suffered in the general let-down which followed the war boom.

Year	Great Britain	France	Germany	Italy	Soviet Union	United States	Japan	Other Nations
1919	Limited self-government for India.	The Peace Conference meets at Paris.	Weimar Assembly makes constitution. Friedrich Ebert first president.	Epidemic of strikes. D'Annunzio seizes Fiume.	Bolsheviks consolidate hold on country. Lenin and Trotsky in power. Third International formed.	Serious industrial and labor adjustments.	Fruitless expedition in southeastern Siberia (1918–1920).	Political collapse in Central Europe; starvation. Bela Kun, Communist, seizes control of Hungary. Admiral Horthy, conservative, in control later (July). Paderewski ministry in Poland.

1920	Industrial disturbances.	Railroad strike.	Industrial unrest. Reichstag elections.	Continued economic and political unrest. Treaty of Rapallo between Italy and Yugoslavia, Free State of Fiume set up (formally annexed by Italy in 1924).	Bolsheviki defeat General Wrangel. Invasion of Poland fails. Russia at lowest ebb, economically (1920–1921).	Harding elected President. Return of AEF complete. Railroads return to private management. 19th Amendment adopted (Woman Suffrage).	There is a semblance of parliamentary government (1920–1930).	Turkish-Greek War. Poles seize Vilna. Treaty of Trianon between the Allied Powers and Hungary. Little Entente formed. League of Nations begins to function at Geneva.
1921	Anglo-Irish Treaty gives Irish Free State dominion status.	Aristide Briand is premier.	Allied Reparation Commission fixes reparations.	National Fascist party formed.	Famine conditions. New Economic Policy (NEP) inaugurated.	Trade restrictions removed from Russia. Washington Arms Conference (1921–1922).		Turkish-Greek War (Ends in Lausanne Treaty, 1923).

WORLD EVENTS, 1919–1939 (*Continued*)

(*A*) POST-WAR DISORGANIZATION, 1919–1923

Year	Great Britain	France	Germany	Italy	Soviet Union	United States	Japan	Other Nations
1922	Conservative Party wins the elections. Egypt is given nominal self-government.	Raymond Poincaré becomes premier.	Economic and political confusion. Inflation. Default on reparation payments.	The Fascists march on Rome and Mussolini seizes control of the government.	Commercial treaties with Germany and Italy.	Fordney-McCumber Tariff Law (high protective, with flexible features). Continued depression in agriculture.	Shantung Province restored to China at the demand of the European powers. Troops evacuated from Siberia. Former German islands in west Pacific retained as mandates.	Civil war in China.

1923	Stanley Baldwin is Prime Minister. Naval base at Singapore is developed.		The Ruhr region occupied by French and Belgian troops. Height of inflation. Gustav Stresemann Chancellor. Hitler's Beer Hall *Putsch* fails.	New election law (plurality party given $\frac{2}{3}$ of seats). Fascist reorganization of the army.	American relief commission completes its work. Second Constitution adopted (First, in 1918).		Disastrous earthquake.	Primo de Rivera dictator in Spain under monarchy. Turkish Republic proclaimed.

WORLD EVENTS, 1919–1939 (*Continued*)

(*B*) REORGANIZATION; EFFORTS FOR CONSTRUCTIVE COÖPERATION, 1924–1930

Year	Great Britain	France	Germany	Italy	Soviet Union	United States	Japan	Other Nations
1924	Conservatives win elections. Baldwin again Prime Minister.	Edouard Herriot, Premier, adopts a more conciliatory tone in German relations. Uprisings in Morocco and Syria.	Reichstag election; increase in Nationalist and Communist votes. Evacuation of the Ruhr by French and Belgians. Stabilization of money in new Reichsmark. Dawes Plan for reparation payments.	Treaty with Yugoslavia over Fiume. Political murder of Matteotti.	Lenin dies; succeeded by Joseph Stalin as actual executive head of the government.	Marines withdrawn from Nicaragua. Johnson Quota Law (annual immigration of each nationality limited to 2% of those of that nationality or blood here in 1890). Japanese Exclusion Act. Election of Calvin Coolidge Soldiers' Bonus Act.		

1925	Gold standard restored. Coal-mine operators subsidized, to prevent strikes over wage cuts.	Financial crises. Several ministerial changes. Locarno treaties for the better assurance of peace.	Hindenburg elected President. Last French troops leave the Ruhr. Evacuation of Rhineland by Allied troops begun.		Economic recovery. Non-aggression treaty with Turkey.			Death of Sun Yat-Sen, founder of the Republic of China.
1926	General strike (May 3–12).	Franc at 25.19 to the dollar. Poincaré forms national (all-party) government; balances the budget.	Admitted to League of Nations. Neutrality treaty with Russia.	Attempted assassination of Mussolini	Effort to secure co-operation of peasants.	Senate votes to join World Court, with reservations (not accepted by World Court)		General Chiang Tso-Lin seizes Peiping. Pilsudski dictator of Poland.

WORLD EVENTS, 1919–1939 (*Continued*)

(*B*) REORGANIZATION; EFFORTS FOR CONSTRUCTIVE COÖPERATION, 1924–1930

Year	Great Britain	France	Germany	Italy	Soviet Union	United States	Japan	Other Nations
1927	Independence of Iraq recognized.	Trade treaty with Germany.	Progress in industrial expansion; formation of international trusts.	Ministry of Corporations created. New election laws; increased control by Mussolini.		President Coolidge suggests a disarmament conference to meet at Geneva; meets; fails.	Hirohito becomes Emperor Foreign Minister Shidehara; a more conciliatory foreign policy.	Stronger national government emerging in China.
1928	Continued depression.	New minimum wage law. Franc on gold standard. Pact of Paris (Kellogg-Briand treaty).		Law for a Fascist Grand Council.	Five-Year Plan.	Election of Herbert Hoover. As President-elect, Hoover makes tour of South America.	Signed Pact of Paris (as did most other nations).	New Chinese constitution. Chiang Kai-shek, President. New tariff treaties made by China with United States and other nations.

1929	Universal adult suffrage. Labor Party wins election. Ramsay MacDonald becomes Prime Minister.	André Tardieu becomes Premier.	Communist riots in Berlin. Young Plan further reduces reparation requirements.	Lateran Accord (the Pope and Mussolini).	Leon Trotsky exiled.	October, break on New York Stock Exchange; panic.		King Alexander I of Yugoslavia becomes dictator. Riots in Palestine.
1930	"Civil disobedience" movement in India, inspired by Gandhi. Unrest in Egypt. Naval Disarmament Conference meets at London	Briand urges a United States of Europe.	Nazis and Communists make gains in Reichstag election.		Collective farms established.	Hawley-Smoot Tariff Law (high tariff, with flexible features).	Becomes a party to the London Naval Treaty.	Austria relieved of reparation payments. End of Primo de Rivera's dictatorship in Spain. Civil war in China. Carol seizes throne in Rumania.

WORLD EVENTS, 1919–1939 (*Continued*)

(C) ECONOMIC AND POLITICAL CRISES; AGGRESSIONS, 1931–1939

With the deepening of world depression, a number of nations gave themselves up to dictatorship in the hope that the national problems would be more ably coped with. Failing confidence in the League of Nations and in coöperative action intensified the armaments race. The Japanese invasion of Manchuria marked the beginning of a series of armed aggressions that resulted eventually in general warfare.

Year	Great Britain	France	Germany	Italy	Soviet Union	United States	Japan	Other Nations
1931	National coalition Cabinet; MacDonald still Prime Minister. Gold standard abandoned. Free trade abandoned.		Plan for a customs union with Austria given up under pressure. Bruening, Chancellor.		Rapid industrialization under Five-Year Plan. Socialization of agriculture.	Hoover Moratorium announced. Severe drought in West Business depression and bank failures.	Invasion of Manchuria.	Failure of Creditanstalt (Austrian bank) King Alfonso XIII exiled; Spanish Republic established.

1932	Imperial Economic Conference in Ottawa.	Briand resigns as Premier. Left-wing group gains in elections. Tardieu, Herriot, Paul Boncour, successive Premiers	President Hindenburg re-elected. Nazi vote increased.		Non-aggression treaties with France and Poland. Famine in some regions.	Lausanne Reparation Settlement, in effect makes invalid war and post-war debts to the United States Economic depression. Election of F D. Roosevelt. Insistence on "Open Door" for China. Refusal to recognize Manchukuo (Stimson Doctrine).	Puppet state of Manchukuo set up. Shanghai attacked. Attempt to force Chinese to end boycott of Japanese goods.	Geneva Disarmament Conference (1932–1934), called by League of Nations; nothing accomplished. Bolivia and Paraguay at war.

WORLD EVENTS, 1919–1939 (*Continued*)

(*C*) ECONOMIC AND POLITICAL CRISES; AGGRESSIONS, 1931–1939

Year	Great Britain	France	Germany	Italy	Soviet Union	United States	Japan	Other Nations
1933	De Valera President of the Irish Free State. Constitution for India announced. World Economic Conference at London. World Wheat Conference at London.	Continued government deficits.	Reichstag fire. Nazi victory in Reichstag elections. Hitler, as Chancellor, suppresses all opposition, placing country solely under Nazi rule. Germany withdraws from the League of Nations and from the Geneva Disarmament Conference.	Four-Power Peace Pact signed at Rome (Italy, France, Germany, Great Britain).	Non-aggression treaties with Turkey and eight other nations.	Britain invited to discuss war debts. First inauguration of F.D. Roosevelt. Bank "holiday." Gold standard suspended. "New Deal." Soviet Union recognized.	Withdraws from League of Nations. Military forces penetrate Jehol (south of Manchukuo). Truce with China.	Chancellor Dollfuss resists Nazi penetration in Austria; he crushes the Socialist Party.

1934		The Stavisky Affair (financial scandal).	Hitler's "blood purge." Hindenburg dies and Hitler becomes head of the state. Anti-Jewish decrees. Ten-year non-aggression pact with Poland.			Reciprocal tariff with Cuba. Platt Amendment abrogated. Dollar devalued. Tydings-McDuffie Law: a Philippine Commonwealth to be followed after ten years by an independent Philippine government.	Hold in Manchukuo and North China consolidated.	Dollfuss of Austria assassinated by Nazis, who fail to seize Austria. Schuschnigg becomes Chancellor.

WORLD EVENTS, 1919–1939 (*Continued*)

(C) ECONOMIC AND POLITICAL CRISES; AGGRESSIONS, 1931–1939

Year	Great Britain	France	Germany	Italy	Soviet Union	United States	Japan	Other Nations
1935	Silver jubilee of King George V. Stanley Baldwin again Prime Minister	Pierre Laval Premier. Economic depression.	Saar returns to German rule. Compulsory military service. Naval treaty with Great Britain.	Conquest of Ethiopia undertaken.	Seventh World Communist Party Congress in Moscow.	Constitution for the Philippine Commonwealth. Neutrality legislation. Reciprocity agreement with Canada.	Chahar in North China seized. Manchukuo buys Russian interest in the Chinese-Eastern Railway.	Death of Marshal Pilsudski, dictator of Poland.
1936	Edward VIII succeeds to throne; abdicates. George VI becomes King.	Popular Front government, with Leon Blum as Premier Nationalization of	German troops occupy Rhineland. Rebels in Spanish Civil War aided.	Aid given to rebels in Spanish Civil War. Rome-Berlin Axis declared.	New Constitution adopted. Treason trials; liquidation of opposition.	President Roosevelt attends Inter-American Congress for the maintenance of	Signs Anti-Comintern Pact with Germany. Reactionary military revolt in Tokyo;	Spanish Civil War. Turkey fortifies the Dardanelles.

1936 (*cont.*)	Britain neutral with reference to the Spanish Civil War (1936–1939).	munitions manufacture.	Four-Year Plan to make Germany economically self-sufficient. Anti-Comintern Pact entered into with Japan.			peace, at Buenos Aires.	progressive statesmen assassinated.	
1937	Chamberlain becomes Prime Minister. Difficult situation arises out of the Spanish War.	German penetration of Morocco checked. Chautemps Premier.	Rome-Berlin-Tokyo Axis.	Anti-Comintern Pact entered into with Germany and Japan.		New neutrality law. In a speech at Chicago President Roosevelt advocates quarantine of aggressor nations.	Attack on United States vessel *Panay*. Peiping, Shanghai, and Nanking taken.	Belgium proclaims a neutral position (swings away from France). Brussels Conference; seven nations condemn the use of force in international relations.

WORLD EVENTS, 1919–1939 (*Continued*)

(C) ECONOMIC AND POLITICAL CRISES; AGGRESSIONS, 1931–1939

Year	Great Britain	France	Germany	Italy	Soviet Union	United States	Japan	Other Nations
1938	The Munich Accord; Prime Minister Chamberlain announces "peace in our time."	Edouard Daladier Premier. Enlarged military preparations. Agrees to the Munich Accord.	Austria annexed in March. The Sudetenland taken from Czechoslovakia. Chamberlain, Daladier, and Mussolini confer with Hitler at Munich; Czechoslovakia practically abandoned. Persecution of Jews and liberals intensified.	Agrees to the Munich Accord.	First session of the Supreme Soviet elected under the new constitution.	Eighth International Conference of American States is held at Lima.	Chinese war continues. Tokyo announces that it will not recognize "Open Door" in East Asia.	Mexico expropriates American and British oil properties.

1939	War declared against Germany on September 3. (See page 279.)	War declared against Germany on September 3.	In March occupation of remainder of Czechoslovakia (except eastern part occupied by Hungary). Pressure on Danzig. Lithuania surrenders Memel to Germany. Military alliance with Italy. Nonaggression pact with Soviet Union. September 1, invasion of Poland, opening event of a general war.	Seizes Albania. Declares neutrality in war of Germany with Poland.	Undeclared war with Japan on Manchukuan border. Russo-German Pact. Russia occupies eastern part of Poland; absorbs Estonia, Latvia, and Lithuania. On December 6 war is begun with Finland.	In July, Japan gives six months' notice for abrogation of the American-Japanese trade treaty of 1911. President Roosevelt advances a policy of national defense.	Chinese war continues. End of warfare with Russia along Manchukuan border.	The Franco dictatorship in control in Spain.

1939 and after. World warfare. See pages 309–318.

GERMANY'S RETURN TO POWER

A numerous and intelligent and energetic people, somehow advantageously located, may suffer frightful attacks from pestilence, as in other times, and from war, but it will "come back" again and again to influence and to power. It has been thus repeatedly with the Germans and the French; to a less degree it has been so with the English, who, however, never suffered such calamities at home as were suffered by the Germans and the French. The Germans came back after slaughter by the Romans, after the Thirty Years' War (1618 to 1648), and after Napoleon's triumph over them. It should not have been surprising that they came back after 1918. We hope that they will not come back in wrath and power after the crushing overthrow that they suffered in 1945. Our people and our leaders need to take thought, that they may deal wisely and firmly and withal honestly and justly, having rewon the victory of 1918. Some of the mistakes of the past may be avoided if we consider well the record of the past.

TWO PRESIDENTS

When the German National Assembly of 1919 had framed the Weimar Constitution for the new German Republic, Friedrich Ebert, a rather conservative Socialist, was elected president. A sensible man and a sincere patriot, a man above party, he remained in office until his death in 1925. He was succeeded by Paul von Hindenburg, who had been the principal commander of the German armies during the war of 1914 to 1918. Hindenburg came to the office of president with immense prestige. In an extremely difficult position he managed well for a time; but advanced age was against him, and with ebbing physical strength he weakened in decision. A serious loss came to Germany and the world when Gustav Stresemann, once chancellor and again foreign minister under Ebert and under Hindenburg, died in 1929. Stresemann followed the way of

honor in his dealings with foreign nations, as did Aristide Briand of France, with whom he collaborated in securing the Locarno agreements (page 197).

THE RISE OF HITLER

Adolf Hitler, an Austrian who had served with the Germans during the War of 1914 to 1918 and had been made a corporal, became a political agitator following the war. He devised a gospel of his own and preached it: Germany had not really lost the war; Germany must wipe out the stain of the war-guilt clause of the Treaty of Versailles, and the whole treaty must be scrapped; Germany must be restored to the position of a first-rate power; Jews must be persecuted; Communism must be extirpated everywhere; any means to the advancement of the desired ends should be used. Hitler built up a fanatical personal following.

Prematurely trying to seize power in the Munich Beer-Hall *Putsch* (coup d'état), Hitler was arrested and imprisoned in 1923. In prison he wrote the book, *Mein Kampf*, which has been called "the Bible of the Nazis." Released from prison in 1924, he emerged a hero to many misguided young Germans. He formed his own National Socialist party, called the Nazi party, from the German pronunciation of the word *National*. Within the party he organized a body of uniformed stalwarts whom he called Storm Troopers. These constituted something very like a private army.

By promising everything, by using men and groups and then betraying them, by posing as the coming savior of the country, Hitler so far advanced himself that he became a candidate for the presidency when Hindenburg stood for re-election in 1932; but the old general won.

With cunning surpassed only by his unscrupulousness, Hitler secured the support, financial and social and political, of the industrial leaders of Germany. The bait to these men was the control by Hitler, in their interest, of German labor. The

industrialists and others prevailed upon President Hindenburg to make Hitler chancellor of the Reich, the German equivalent of prime minister. This was at the beginning of 1933. Presently Hitler dominated Hindenburg and proceeded to strip the German Reichstag, or Parliament, of its powers.

His party now being in effective control of affairs, Hitler moved to crush all possible opponents within the party, any remaining persons who might raise their voices against his. On June 30, 1934, he launched his surprise "blood purge." Hitler himself operating in Munich and his lieutenant, Goering, operating in Berlin, on that occasion caused many persons to be murdered. The killers said that they slew seventy-seven; but it is thought that the number of victims ran into the hundreds and possibly into the thousands. Among those put to death were a former chancellor, and Captain Ernest Roehm, friend and ally of Hitler throughout his rise to power.

In the purge Goering's men failed to find Franz von Papen, an ex-chancellor of dubious record; they murdered two of Von Papen's secretaries. Afterward Hitler used this same Von Papen as a diplomat in Austria and in Turkey.

On his way up Hitler pleaded, sometimes in tears, to win followers. Once on top, he ruled at home by terror and got his way abroad by deceit varied with bullying.

Hindenburg died two months after the "blood purge." Thereupon Hitler became the absolute dictator of Germany, calling himself *Reichsführer,* or simply *Führer.* This means "leader of the realm," or "leader." (The word *Führer* is pronounced very much like the English word "fearer.")

The Nazi régime was marked from the beginning by a ferocious persecution of religious and intellectual elements, comparable with the persecution of the Christians during the reign of Nero. In supreme power, Hitler trampled on the rights of labor and capital alike; he lowered the status of women; he degraded learning and made truth a laughingstock; he enslaved most of the peoples of Europe, the Germans included.

THE SAAR VALLEY AND THE RHINELAND

In 1935 Hitler secured the first restoration of territory to Germany. The Saar Valley, a small district rich in coal, was ruled by a special League Commission, with the French working the coal and iron mines. Under the auspices of the League of Nations a vote was held in the Saar to decide whether the region was to stay with the League or France or Germany, and the result was overwhelmingly in favor of Germany. Doubtless the majority vote would in any case have been for Germany; but Hitler's Nazis had moved in and applied persuasion and pressure to the Saarlanders to influence their votes.

In March, 1936, while Great Britain and France were still uneasy over the aggression of Italy in Ethiopia (page 182), Hitler suddenly sent armed forces into the region west of the Rhine River. Under the terms of the Versailles and Locarno treaties this German territory, called the Rhineland, was to be kept permanently demilitarized. Hitler's troops remained in the territory, and the Germans proceeded to build tremendously strong continuous fortifications, called the Siegfried Line, following the French-German boundary.

It must be admitted that the Rhineland belonged to Germany, and it is arguable that it was unjust to keep the German side of the borderland demilitarized while the Belgian and French borders bristled with guns. However, the Locarno pledge (page 197), which had stabilized the western European situation for ten years, was contemptuously violated by Germany, which had voluntarily signed it and received benefits under it. When international agreements made in apparent good faith can be thus thrown overboard without notice, there is very little to guarantee a stable, peaceful world. Great Britain and France wrote sharp notes of protest to Germany concerning the remilitarization of the Rhineland, but those countries *did* nothing. Hitler's act remained a triumph for the Nazis and created a source of continual uneasiness for the rest of Europe.

THE SPANISH CIVIL WAR

In July, 1936, civil war broke out in Spain. The government, which had been elected the previous February, was Socialistic in character. The rebels, under the principal leadership of General Francisco Franco, were largely Fascist in character. However, among the mainstays of their forces were Moorish troops whom Franco brought into Spain from Spanish Morocco. These Mohammedans had precious little interest in the ideological differences that might prevail among Spaniards.

The Popular Front government of France, which was based on a working agreement among left-wing parties, was sympathetic to the governing Socialistic group in Spain. But Premier Leon Blum feared criticism and opposition at home, and instead of officially aiding the authorized Spanish government he promoted an embargo to apply to both sides in Spain. Russia sided with the Spanish government, and contrived to send it some aid. Germany and Italy, or rather Hitler and Mussolini, favored Franco. At first they sent troops and supplies to Franco under a pretense of secrecy. Later they openly sent strong forces with abundant equipment.

Great Britain was in a difficult position: if Franco and Hitler and Mussolini won in Spain, that would mean the extension of Italian and German influence; and if the Socialistic Spanish republic won, that would hardly please the reactionary elements in Great Britain. Our own government also straddled, and the net results of the things it did and of those it did not do seem to have been more favorable to Franco than to the Spanish republic.

Under the influence of Great Britain, and of France to a less degree, the League of Nations adopted a policy of non-intervention in Spain.

The Spanish, Italian, and German dictators' forces won in Spain, after almost three years of warfare that was at once barbarous and modern.

BERLIN, ROME, AND TOKYO IN AGREEMENT

In October of 1936 Germany and Italy formed an entente which came to be called the Rome-Berlin Axis; and they entered into an anti-Russian agreement, which was called anti-Communist. In 1937 Germany, Japan, and Italy entered into their Anti-Comintern Pact, directed against Soviet Russia — and against all the rest of the world, for that matter.

The term "Axis" was first used by Mussolini in a speech at Milan on November 1, 1936. Referring to the arrangement (not a formal treaty) which he had just made with Hitler, he said: "This Berlin-Rome protocol is not a barrier; it is rather an axis around which all European states animated by a desire for peace may collaborate on troubles." The designation "Anti-Comintern" is short for "Anti-Communist International." The Anti-Comintern Pact was really anti-Russian, for Moscow was the center of a Communist organization that called itself the Third International.

By the end of 1936 the old armaments race that had helped to bring on war in 1914 was revived without limitation All who would might enter and do their best — or worst. With the rise of Hitler in 1933 Germany began to rearm rapidly — at first secretly because of prohibitions in the Treaty of Versailles, afterward openly. Russia increased her armaments to provide protection against both Japan and Germany. Early in 1937 a Conservative government in Great Britain put through the largest peacetime appropriation for armaments to that date.

THE GERMAN ANNEXATION OF AUSTRIA

Austria after 1919 (and Hungary too) was the subject of bitter rivalry for influence or control, as between Germany and Italy; France also had her solicitude in this quarter. Financial aid was extended to Austria by the United States; and Americans, under the direction of Herbert Hoover, undertook the feeding of Austrians in the days of Austrian destitution immediately following the war of 1914 to 1918. The League

of Nations and France and Czechoslovakia also made loans to Austria in her days of extreme trial.

Austrian Nazis made an unsuccessful *putsch* in Vienna late in 1934. They murdered the chancellor of the country, Engelbert Dollfuss, and for their efforts those directly concerned in the assassination were hanged. The *putsch* was managed – or mismanaged – in the interest of Hitler. Because it failed he pretended that he had had no concern in the matter.

In 1938, while Mussolini was still much occupied in Spain, Hitler once more turned his attention to Austria. His procedure was the same as that which he followed later with Czechoslovakia, Danzig, and Memel. Local discontent was fanned by Nazi agents, for the most part native "fifth columnists"; pretexts were made for open interference in local affairs by Germany; the possibility of outside aid for the victim was eliminated by one device or another; when conquest had been practically assured by undercover work, Hitler moved openly to complete his work of aggression.

Early in 1938 Hitler demanded that Schuschnigg, the Austrian chancellor, admit several Austrian Nazis to the Cabinet. When this was done Nazi agitation in Austria became more intense than before. A plebiscite was proclaimed by Schuschnigg to be held on March 13, the people to vote on the issue of Austrian independence or annexation to Germany. On March 12 German troops marched, or rather motored, into the country, occupied Vienna, and took over the government. On March 13 Hitler declared Austria to be a part of the German Reich. Austria lost the name she had borne for centuries – *Oestreich,* the Realm of Austria. Instead she went back to a still more ancient name – *Ostmark,* the Eastern March.

THE DESTRUCTION OF CZECHOSLOVAKIA

The republic of Czechoslovakia was one of the "succession states," formed largely from territories of the broken-up Austro-Hungarian monarchy. It was made up of ancient

Bohemia, centuries earlier an important kingdom; Moravia; Slovakia; part of Silesia; and an area called the Carpatho-Ukraine. The Bohemians and Moravians are really one people. They are called Czechs, and they have had much in common, historically. Both were associated with Austria in the Austrian Empire. The Slovaks are closely related to the Czechs, their language differing but little from Czechish, or Bohemian; but under the Dual Monarchy they were associated with the Kingdom of Hungary and not with Austria and their Czechish kin. Old Bohemia was the core of Czechoslovakia. Within the outer rim of Bohemia, at the northwestern end of the new state, and particularly in the area of the Sudeten Mountains, lived somewhat more than three million Germans. Some of these were of Czechish descent, at least in part; but they spoke German and they favored Germanism. Other Sudetenlanders seemed to be at once German and Czechish, just as many Alsatians seemed to be both German and French.

Following 1919, Czechoslovakia enjoyed a liberal representative government under the leadership of Dr. Thomas G. Masaryk and Dr. Eduard Beneš. It was the most stable and most prosperous of the lesser nations of Europe. With the German annexation of Austria the position of Czechoslovakia became most insecure, because German territory now surrounded the entire western half of the nation. The Skoda works, one of the large munitions plants of the world, famed for the quality of the guns it produced, would be very valuable to Germany, as would the many other industries, the mineral resources, and the fine farm land of the country.

Hitler did not stay his hand long. Konrad Henlein, a Sudetenlander whose own mother was a Czech, at first agitated bitterly for greater local German control in areas where the German element was in the majority. Presently he agitated for the separation of the Sudetenland from Czechoslovakia and for its union with Germany. The Nazi element became unruly in Czechoslovakia and Hitler moved large bodies of German troops

to the borders of the country. Threatened from within and without, the Czechoslovak government mobilized its army.

France was bound by its alliance with the Little Entente to stand by Czechoslovakia; and Britain was pledged to support France. Italy, in the Rome-Berlin Axis, would stand by Germany. In September of 1938 the crisis came and was dealt with in the Munich Accord. Here Hitler, Mussolini, Prime Minister Chamberlain of Great Britain, and Premier Edouard Daladier of France agreed upon the immediate annexation of the German-speaking areas of Czechoslovakia to Germany. For the moment Hitler took the part of the country that he had specified, with minor additions. "I have no further territorial designs in Europe," he announced. Poland asked for the Teschen area, mostly Polish in population; and Hungary asked for a strip along the southern border of Czechoslovakia. Through the grace of Hitler, the demands of these two nations were met. The remnants of Czechoslovakia, with some ten million people, continued as a nation until the following March (1939). Then Hitler moved troops into Prague and occupied the rest of the nation with the exception of the eastern end, Carpatho-Ukraine, which was taken over by Hungary, that country itself being really a vassal of Germany.

MEMEL AND DANZIG

The Memel district, with the port of Memel on the Baltic, formed the northeasternmost corner of the German Empire under Kaiser Wilhelm II. This district was detached from Germany by the Treaty of Versailles and was placed under the direction of the League of Nations. In 1923 Lithuania seized the Memel district, and the League of Nations allowed Lithuania to hold it under conditions that it imposed. In March of 1939 Hitler retook Memel for Germany, Lithuania out of fear consenting to his act.

By the Treaty of Versailles the German city of Danzig, at the head of the Polish Corridor, was to be a free city under the con-

trol of a League of Nations commission. Much friction resulted between the German Danzigers and the Polish and League authorities; also between Germany and Poland. Upon the rise of Hitler the majority of the people in the city fell under the spell of Nazi propaganda; the local Nazis got control of the city government; Hitler declared that Danzig must be reunited with Germany. The demand for Danzig and for other concessions aroused the Poles, the British, and the French. On September 1, 1939, Hitler proclaimed that Danzig was once more a part of Germany; in the early hours of that same day he had sent his armies into Poland to destroy it; and once more the world had the carnival of death called war.

WHY ANOTHER GENERAL WAR CAME

The outbreak of warfare in Europe in 1914 surprised as well as shocked the great majority of the American people; but not so in 1939. The nations had experienced a series of crises and war scares. People everywhere were following world news, conveyed within the hour of occurrence by radio transmission – not in existence in 1914. In Europe especially people were under strain, clinging nervously to the vestiges of a hope for peace. Many felt sure that war was inevitable and imminent. National policies seemed to assure war, while leaders in peace-desiring nations made frantic efforts to postpone the evil day. The causes of war in 1939 have been well summarized by Walter Millis:[1]

> Certainly in the spring of 1939 there was no European people who wanted war; and it seems almost as certain that there was no national leader – not even Hitler or Mussolini or Stalin – who wanted another great war like that of 1914.
>
> And yet another great war came. It did not come for any one "reason," but because of everything which had gone before. It came because it turned out that – after all the

[1] Millis, Walter, *Why Europe Fights*, pages 247–249. William Morrow & Co., Inc., New York; 1940

fears and hatreds and violences of the years since 1918, after all the vacillations and uncertainties of the democratic powers and all the brutal but successful vigor of the dictators, after all the piling up of armaments, all the shrieking insults and half truths and fantastic theories of propaganda machines, and all the familiarity with the idea of war which these things left behind them – after all this, there was simply no way in which the knobbly building blocks of the European nations could be put together into a stable and working system without a war. It came, very largely because Adolf Hitler was the kind of man he was, and because he thought and acted as he did It came because of what he had done, because of the kind of ideas in which he believed – and in which he had taught the German people – or at least his Nazi party dictatorship – to believe. From beginning to end, his was the most active part; he was the man who, more than any other, did dangerous things when they might have been left undone, who failed to do the reasonable and conciliatory things when he might have done them, who took risks and forced the pace and who must bear the greatest responsibility in any ordinary meaning of the word.

Questions and Topics for Discussion

1. The Treaty of Versailles was hailed as the peace of Versailles. Now we look upon it as the truce of Versailles. Why the change in point of view?
2. What were some of the economic difficulties of Great Britain after 1918?
3. France wished for security and for reparations, following the World War of 1914 to 1918. Did she get both these, or either of them?
4. Compare the lot of Hungary with that of Austria, under the Treaty of Versailles.
5. For what famous city was the German Republic named? Under what circumstances did that republic come into existence? Upon what policy with reference to the Treaty of Versailles did the leaders of the republic decide?
6. Mention two or more practical difficulties that lay in the way of Germany's fulfillment of the reparation provisions of the Treaty of Versailles.

7. What is the character of the Ruhr region? What did the French do there in 1923, and why? What was the attitude of Great Britain? of Italy?
8. What was the long-run result of the French action in the Ruhr? Why?
9. Who was "Uncle Shylock," and what country was his most honest customer? What is the present situation of that country?
10. What method was resorted to by the Bolshevists to get rid of the debts of Czarist Russia?
11. How did Germany get rid of most of her national debt, aside from obligations under the Treaty of Versailles? Compare the net result in Germany with the net result in Russia.
12. Define the term "inflation" as it refers to currency. Define "devaluation."
13. In what way, if at all, did our country gain from the World War of 1914 to 1918? Give reason, or reasons, for your answer.
14. The small neutrals in Europe had business booms during the years 1914 to 1918. Were those countries actually benefited by the war? Give a reason for your answer.
15. Which one of the "succession states" in central Europe was most prosperous and most progressive? Tell why this was so.
16. Tell briefly about the attitude of other nations toward Soviet Russia until 1939.
17. Name the two presidents of the German Republic, and tell a little about each.
18. Very briefly, trace the career of Adolf Hitler.
19. Why was the remilitarization of the Rhineland tremendously significant?
20. The Balkan warfare of 1912 and 1913 was the curtain raiser for the World War of 1914 to 1918. What was the curtain raiser for the Second World War? Why do you answer thus?
21. What was the Popular Front government? Who headed it? What has become of him?
22. Tell briefly about the Anti-Comintern Pact.
23. Mention five annexations or reannexations of territory to Germany which were accomplished peaceably during the Hitler régime.
24. What was to be said in favor of the Munich Accord in countries other than Germany?
25. What made the Munich Accord disastrous?

26. Identify each of the following: Stresemann, Daladier, Horthy, Chamberlain, Lenin, Beneš, Bela Kun, Henlein.
27. Briefly trace the steps that led from Munich to the beginning of the Second World War.

OPTIONAL ASSIGNMENTS

1. Science had begun to give mankind the answers to many age-old economic questions – and especially those relating to food supply, power, and industrial materials – when the nations became involved in ruinous warfare in 1914. You may know some of these answers. Find out others. What further answers may we reasonably expect? Recent works on science designed for general readers carry information pertinent to this activity.
2. In *Business Week* for December 27, 1941, there is an editorial on page 68 entitled "The Trend." If you have access to the files of this magazine, read the whole editorial. The writer points out that after 1918, when many nations owed us money, we still were bent on selling to them more than we would buy of them. He concludes:

> Nation after nation tried to get hold of dollars to pay its debt to the United States, but dollars were hard to get, because, instead of importing goods and services, we were actually exporting, so instead of making dollars available, the United States, in its trade policy, was making dollars scarcer
>
> And after this war we shall face the same dilemma – only more so The scramble for dollars will be more intensified than ever before. And that means that the problem of international post-war readjustment is squarely up to the United States, as the world's greatest creditor. Will we, as a nation, accept the economic consequences of our financial pre-eminence? Will we be willing to import more goods, and perhaps export less? Will we be willing to reduce our tariffs, instead of raising them? Will we, in short, be a creditor nation in fact as well as balance sheet?
>
> Those are questions which ultimately we shall have to answer when sitting around a peace table. For, unless they are answered – and satisfactorily – there will be no peace.

Consider in class the points raised in the passage just quoted.

CHAPTER 11

NEW-WORLD AND EAST-ASIAN AFFAIRS

GEORGE WASHINGTON, John Adams, and Thomas Jefferson, our first three Presidents, by words and acts did their best to keep our country from becoming a party to the quarrels and wars of Europe. Washington's Presidency was embittered for him by the contentions of those who favored Great Britain or France in the war then raging between those two countries. In John Adams's Presidency limited warfare at sea was forced upon us by the French, following the X Y Z Affair. Under our fourth President, James Madison, we were in part forced into the War of 1812 with Great Britain, and in part we blundered into that war. Isolation, America first, or whatever else it may be called, was long an ideal promoted by many persons, but it has never been attained by this country.

THE MONROE DOCTRINE

Under our fifth President, James Monroe, we announced to the world a policy of America for Americans, the New World for its own peoples — the Monroe Doctrine. It is said that John Quincy Adams, Monroe's Secretary of State, wrote out the policy, or doctrine, following a British hint that something of the kind might be helpful. Monroe embodied it in his annual message to Congress in 1823.

THE WORLD SITUATION IN 1823

All the countries of the vast colonial empire of Spain in the New World, except Cuba and Puerto Rico, had established their independence by 1823. In Europe the principal re-

actionary governments, restored or strengthened after the fall of Napoleon, were allied (page 45). There was more than a hint that several of them might get together to reduce the Spanish-American countries once more to a colonial condition. Spain, presumably, was to get back some of her former colonies, while others of those colonies would go to Spain's helpers.

Neither Great Britain nor this country was pleased at the prospect. Spain had kept her several colonies pretty tightly closed to commerce with countries other than Spain. The English-speaking peoples wished to keep the Latin-American markets open. Besides, both Great Britain, for the safety of her own New World colonies, and the United States, for their own safety, were not willing to see continental European power extended over any part of the American continents. There was much of common interest between Great Britain and the United States, then so recently at war with each other; and that fact helps to explain how our young and not-too-powerful republic could lay down to the nations a new law of its own devising — the Monroe Doctrine.

It is worth noting that in 1823 the Russians were making moves to extend their North American colony (now Alaska) southward along the Pacific coast. Monroe had that fact in mind, among others, when he framed his message.

THE ESSENTIALS OF THE MONROE DOCTRINE

Tons of publications, old and new, deal with the Monroe Doctrine and its meaning. But the most light on the subject can be gained in the least time by considering some of the actual words that were contained in Monroe's message:

> In the wars of the European powers in matters relating to themselves we have never taken any part, nor does it comport with our policy so to do. It is only when our rights are invaded or seriously menaced that we resent injuries or make preparations for our defence.
>
> With the movements in this hemisphere we are of neces-



When President Monroe announced his "doctrine," Spain had not yet recognized the independence of her former colonies on the continents of North America and South America. Our claims between the 42nd parallel and 54° 40′ overlapped claims of Great Britain and Russia; and the Maine boundary had not been settled The whole of our present Southwest was still a part of Mexico.

> sity more immediately connected, and by causes which must be obvious to all enlightened and impartial observers. . . .
>
> We owe it, therefore, to candour, and to the amicable relations existing between the United States and those powers, to declare that we should consider any attempt on their part to extend their system to any portion of this hemisphere as dangerous to our peace and safety.
>
> With the existing colonies or dependencies of any European power we have not interfered and shall not interfere.
>
> But with the governments who have declared their independence and maintained it, and whose independence we have on great consideration and on just principles acknowledged, we could not view any interposition for the purpose of oppressing them or controlling in any other manner their destiny by any European power in any other light than as the manifestation of an unfriendly disposition towards the United States . . .
>
> . . . the American continents, by the free and independent condition which they have assumed and maintain, are henceforth not to be considered as subjects for future colonization by any European powers.

The quoted words are clear enough; they have been well understood abroad; and there have been few attempts to violate the principles set forth. The most notable of those attempts came while the United States were engaged in their Civil War. Then the French turned Mexico into an empire, making an Austrian archduke emperor as Maximilian I. Shortly after the Civil War our government placed a large army of veterans along the Rio Grande, menacing the French in Mexico. Napoleon III thereupon withdrew his forces from the country. Maximilian stayed on, only to be captured and shot by the Mexicans.

The Monroe Doctrine is part of our national thinking and background. In international law it is taken into account as a special rule, and it is recognized in the League of Nations Covenant. While the United States remain a first-class power there can be little danger that any part of the New World will

have its independence impaired or its liberties decreased by the action of any Old World power; the core of the Monroe Doctrine will not be touched.

THE QUESTION OF A CONVERSE DOCTRINE

If Europe must stay out of America, does it not follow that America ought to stay out of Europe? Until 1914 Europeans seemed so to hold, as did most Americans. Since 1914 invitations from partisans on the other side of the Atlantic, for us to come over there, have been strong on occasion.

Again, should the United States stay out of Asia? The Japanese said so in the '20's and '30's, though time was when they even welcomed our concern about Asiatic affairs. The Japanese said that they had a "Monroe Doctrine" of their own for eastern Asia. But their policy of ruthless aggression against China and every other land that happened to be weak, applied to the limit at every opportunity, was a thing quite different from our Monroe Doctrine.

OBSERVANCE OF THE MONROE DOCTRINE BY THE UNITED STATES

Before the American Civil War our government was itself aggressive at times toward Latin-American countries. The reason lay partly in the fact that our slave states desired expansion southward and southwestward to increase the wealth and the political influence of their section. The Texas annexation and the Mexican War resulted in immense accessions of territory; and there were designs, never carried out by the government, on Cuba and on other lands.

Following the Civil War our government rather consistently kept its own hands out of Latin-American affairs, the while it discouraged Old World meddling. In 1895 President Grover Cleveland successfully insisted upon arbitration for a boundary dispute between Venezuela and British Guiana, when Great Britain had been about to enforce her will upon Venezuela by military action.



All the European possessions in and around the Caribbean Sea have in the past been actual or potential menaces to one and another of the American republics

The Spanish-American War made the United States a colonial power. On the eve of that war, by treaty with the Hawaiian government, we annexed the Hawaiian Islands. As a result of the war, in the Western Hemisphere we annexed Puerto Rico as a territory, and we became greatly concerned in the affairs of Cuba; in the Eastern Hemisphere we took over the Philippine Islands. The incidents and accidents of war made us not only a colonial power but a world power.

From the Presidency of James Monroe to that of William McKinley we meddled very little in the internal affairs of any of the other republics of the New World. With Theodore Roosevelt as President (1901 to 1909), we entered upon a new application of the Monroe Doctrine. In addition to keeping Old World trespassers away from the weaker American republics, we began to act as their guardians. Our government undertook the financial guidance of different Latin-American states and even the policing of some of them. These things we did largely to prevent Old World meddling in the New World. The Mexican adventure of France in the 1860's had begun in a bill-collecting expedition made by British and French naval units. Imperialistic and aggressive powers in the nineteenth century commonly used force to compel payments of international debts owed by small nations. Europe, in a way, gave us the choice of compelling Latin-American debtor countries to put their houses in order or else of letting Europe do it. Theodore Roosevelt preferred to have the United States act.

ACTION BEYOND THE MONROE DOCTRINE

In time we took a large measure of control in Haiti, Santo Domingo, and Nicaragua.

We made easy the revolt of Panama from Colombia in 1903 and thereafter built the Panama Canal. Our interest southward became ever more tangible.

In 1914 our navy took and held Vera Cruz, in Mexico, for a time. This it did at President Woodrow Wilson's direction, following a difficulty between Mexicans and a party of American marines at Tampico. In 1916 President Wilson sent forces under General John J. Pershing into northern Mexico. Pershing's errand was to capture the Mexican chieftain, Francisco Villa, who was thought to be responsible for a raid of bandits from Mexico into United States territory at Columbus, New Mexico. Villa was not captured and our relations with Latin America were not bettered by the two Mexican "incidents."

After the Vera Cruz affair, representatives of Argentina, Brazil, and Chile met with representatives of this country and of Mexican factions, at Niagara Falls. They undertook to mediate between the United States and to be somehow helpful to Mexico, which was torn by civil warfare; but they accomplished little or nothing. The important thing about this "A B C" mediation was the fact that three major South American nations should have been invited thus to mediate in North American affairs.

HEMISPHERE COÖPERATION

For half a century preceding the outbreak of general warfare in 1939 there were efforts in our country and other American republics for the promotion of peace and coöperation throughout the New World. These efforts were often halting, and they were sometimes neutralized by unfortunate words or acts; nevertheless, they laid the foundation for the satisfactory understanding that exists among the American nations in this time of great trial for all the world.

THE PAN-AMERICAN UNION

At the end of 1889 and the beginning of 1890 the first Pan-American Congress met at Washington, D. C. It established the Bureau of American Republics, which became the Pan-American Union. Similar congresses have since been held

at various Latin-American capitals. The Union, embracing twenty-one American republics, has done much to promote understanding and coöperation within this hemisphere. The Bulletin of the Pan-American Union is published each month at Washington, D. C., in English, Spanish, and Portuguese (for Brazil).



South America as it is divided among ten independent republics and the three Guianas — British, Dutch, and French.

THE GOOD-NEIGHBOR POLICY

President Wilson successfully urged Congress to indemnify Colombia for the loss of Panama. President Calvin Coolidge recalled the occupying American marines from Santo Domingo; President Hoover recalled them from Nicaragua; and President Franklin D. Roosevelt recalled them from Haiti.

Secretary of State Cordell Hull, with the active support of President F. D. Roosevelt, developed a much more friendly feeling between us and the Central and South American nations. At the Montevideo Pan-American Conference in 1933, Secretary Hull made it clear that the United States has no intention of intervening in the internal affairs of the other American nations. In the Cuban turmoil incidental to the overthrow of President Machado in 1933 there was no intervention by the United States, and there has been none since. The Platt Amendment, a provision in the constitution of Cuba allowing direct intervention, has been done away with by a treaty between the United States and Cuba, much to the satisfaction of the Cubans. By actions as well as words Secretary Hull asserted and reasserted the Good-Neighbor policy of the United States. If serious trouble arises in an American nation, that policy looks to joint action by several of the American republics.

Upon the outbreak of war in Europe on September 1, 1939, a special conference of Pan-American statesmen was held at Panama within the month. It declared that the belligerents might not engage in warfare within three hundred miles of an American shore. This stretched international law pretty far; it could not have any appreciable effect, because no provision was made for enforcement. In July, 1940, another such conference, held at Havana, passed the Act of Havana to supplement the Monroe Doctrine. The act declares in effect that if an Old World power takes a colony from another Old World power in the Western Hemisphere, the American republics will step in to liberate that colony from any foreign domination. Such a

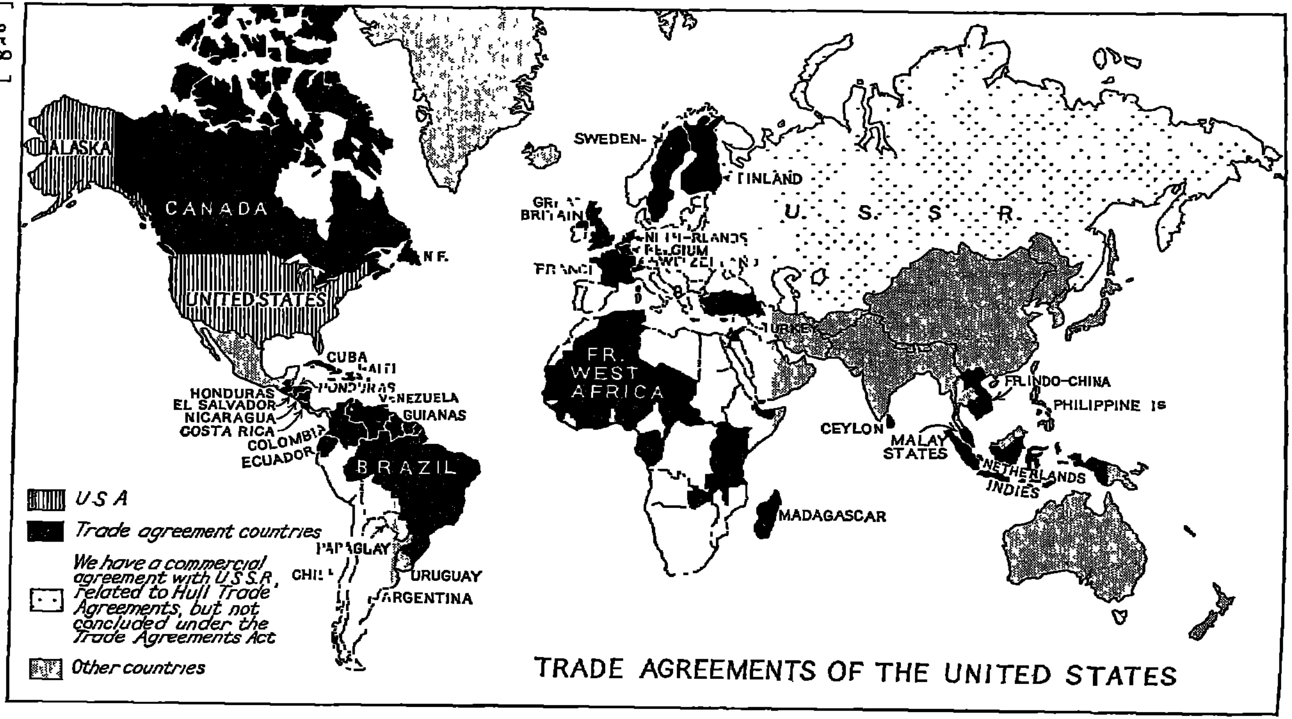
Pan-American policy is now more imperative than ever, since a hostile air power could use a single island like Martinique to harass both American continents.

"LATIN AMERICA" A BROAD TERM

Only too often the people of the United States have considered the twenty nations south of the Rio Grande in one sweeping classification, Latin America, while in actuality there are great differences among those nations. Only geographically do they constitute a natural bloc; there are various lines of cleavage. A number of them have had more contacts with Europe than with each other or with the United States. Force of circumstances caused Latin-American countries to look to the United States for trade and loans, and even guidance, during the First World War. During the Second World War all of them traded with us more extensively than before, trade and travel with Europe then being under severe handicaps.

Argentina, Brazil, and Chile are often grouped together. But Brazil is Portuguese-speaking and largely Negro, Chile and Argentina are Spanish-speaking, the former largely Indian and the latter almost wholly white.

Brazil has traditionally been friendly with the United States. Commercial relations have been the better because we want Brazil's coffee and tropical products, while Brazil wants our manufactured goods. It has been different with Argentina, which desires to export beef and grain and other temperate-zone products that we likewise produce in surplus quantities. The reciprocal trade agreement made by the United States and Argentina in 1941 was expected to mark a step toward further coöperation. All the Latin-American nations have comparatively small populations and limited or undeveloped resources, and they are directly dependent on foreign trade. The United States has encouraged Latin-American trade, extending help through loans from the Export-Import Bank; but loans are rather temporary helps.



Special trade relations of the United States with other nations, so far as they were arranged by the latter part of 1941. Since 1941 trade barriers *throughout* the New World have been broken down as never before.

Following the three dictators' victory in Spain, the Latin-American republics had more or less trouble because of subversive activities. Franco's Spaniards assisted the Germans and the Italians in encouraging South American home talent — fifth columnists — to plot against national liberty. The uncovering of Nazi and Fascist plots made our neighbors to the south lean more toward us. During the summer of 1941, on their own motion, they followed the lead of the United States in such actions as seizing Axis vessels in their ports.

When the Japanese attacked us at Pearl Harbor, the Central and South American nations responded almost immediately. Within three days eight Latin-American nations declared war on Japan; Mexico and Colombia severed relations with Japan; Mexico rushed reinforcements into Lower California, the troops being sent through our territory to get there quickly; Argentina, Brazil, and Chile invited the United States to use their ports.

The Conference of Foreign Ministers of the American Republics held at Rio de Janeiro, January 15 to January 28, 1942, was successful. All the delegates agreed in principle to the policy of breaking off diplomatic relations with Germany, Italy, and Japan. Eleven American countries, including this country and Canada, were already at war with the Axis Powers when the conference opened; and while the conference was in session Brazil, Uruguay, Peru, Bolivia, and Paraguay put an end to relations with the Axis. Incidentally, an old boundary dispute between Peru and Ecuador was placed in the way of settlement. Arrangements were made for greater economic solidarity — the lessening of tariffs and any other trade restrictions among all the American republics, for the duration of the war.

Only Argentina, dominated by a clique of Fascist inclination, seemed to favor the Germans and their allies during the war.

THE GOOD NEIGHBOR TO THE NORTH

More nearly democratic and more nearly a republic in actuality than many a so-called republic is the self-governing

Dominion of Canada. The Dominion is not a member of the Pan-American Union, probably because of her membership in the British Empire, which is a colonial power in the New World. For practical purposes Canada is linked with the Pan-American Union – the Inter-American System – through her solidarity with the United States.

The Dominion has a population of somewhat more than 11 million people, as compared with more than 131 million in our forty-eight states. The majority of the inhabitants of Canada are clustered in the southern part of the country near our borders and along the Atlantic and Pacific coasts. By agreement, the 3000-mile boundary line between Canada and the United States has been undefended on either side for about a century and a quarter. However, by a recent supplementary agreement the Great Lakes have been opened to the use of naval-training vessels of both countries. In Canadian-American relations the two countries have the immense advantage of the same language and similar cultural backgrounds. The large French-speaking population centered about Quebec contributes no international difficulty.

Since 1939 Canada has been transforming herself, under the pressure of war needs, into a more highly industrialized nation. The importance and influence of Canada are constantly increasing. She has vast resources and can support a much larger population. If she continues to industrialize, there will necessarily be important changes in her commerce with the United States. Not so many manufactured products will be wanted, while demand for citrus fruits, books, magazines, and luxury products will probably continue. We have long made heavy importations from Canada, including minerals, cattle, lumber, and large quantities of wood pulp for paper.

In 1931 a treaty was negotiated between the United States and Canada, providing for a deep waterway from Lake Superior to the Gulf of St. Lawrence. Such a waterway would permit the passage of large naval and cargo vessels from the Great Lakes

to the Atlantic, and incidentally would yield vast electrical power. Thus far our Senate has failed to ratify the treaty. A vote taken in 1941 showed a majority in favor of the St. Lawrence Waterway project, but not the necessary two-thirds majority. Work has been advanced on the United States' part of the project under ordinary Federal legislation; but completion waits on treaty ratification.

Canada has been in full accord with the United States in the program of hemisphere defense, and following the inauguration of our lend-lease program she received direct aid from us. Immediately following the Japanese attack on Pearl Harbor, Canada declared war on Japan. She coöperated effectively with the United States throughout the war.

The Western Hemisphere, not so immediately involved in the ever-recurring crises of Europe and Asia, is one area in which the methods of constructive coöperation among nations have a good chance for continued growth.

AMERICAN PARTICIPATION IN FAR-EASTERN AFFAIRS

In colonial times Americans thought of the lands of eastern and southern Asia chiefly as producers of tea and spices. The tea trade of the old British Empire was a monopoly in the hands of the British East India Company. Colonial Americans might sail in the company's vessels, but they might not own or operate vessels in the trade.

EARLY AMERICAN TRADING TO THE EAST

Independence did away with British Empire restrictions, and presently the brand-new Stars and Stripes were fluttering from mastheads in all the ports of the world that were open to foreigners. A brisk trade grew up with China. A vessel from Boston or Baltimore would gather the pelts of fur-bearing animals — particularly those of sea otters — on the northwesterly coast of this continent, would carry the pelts and other goods to

Chinese ports where foreign trade was tolerated, and would trade them for tea and other wares of China.

In 1854 Commodore Matthew Calbraith Perry persuaded – and perhaps also browbeat – the Japanese authorities of the time to throw the country open more widely to foreign trade, especially with the United States. From Perry's visit dates the beginning of the transformation of feudal Japan into a world power. The Japanese, not unappreciative, named an arm of the Bay of Tokyo for Perry's flagship – Mississippi Bay.

Until the end of the nineteenth century our interest in the Far East was confined to trade and the investment incidental to trade.

THE OPEN DOOR POLICY

In 1899, following our entrance into the Philippine Islands, President McKinley's Secretary of State, John Hay, took the lead in establishing the Open Door policy with reference to China (page 196). He sent a circular note to the powers interested in China, suggesting that all should agree: (1) that the "treaty ports" would be kept open; (2) that Chinese tariffs would apply equally on the goods of all nations; and (3) that harbor and railroad rates in China would be uniform. The purpose of the Open Door policy was to limit European and other imperialism in China and to maintain equal commercial privileges.

Hay's policy was generally accepted. At any rate it was not challenged for a long time. Serious opposition to the Open Door policy came ultimately from Japan. Steadily she pressed on the door to close it; and finally, in December of 1941, she attacked the principal keepers of the door, Uncle Sam and John Bull.

OUR ACQUISITION OF THE PHILIPPINE ISLANDS

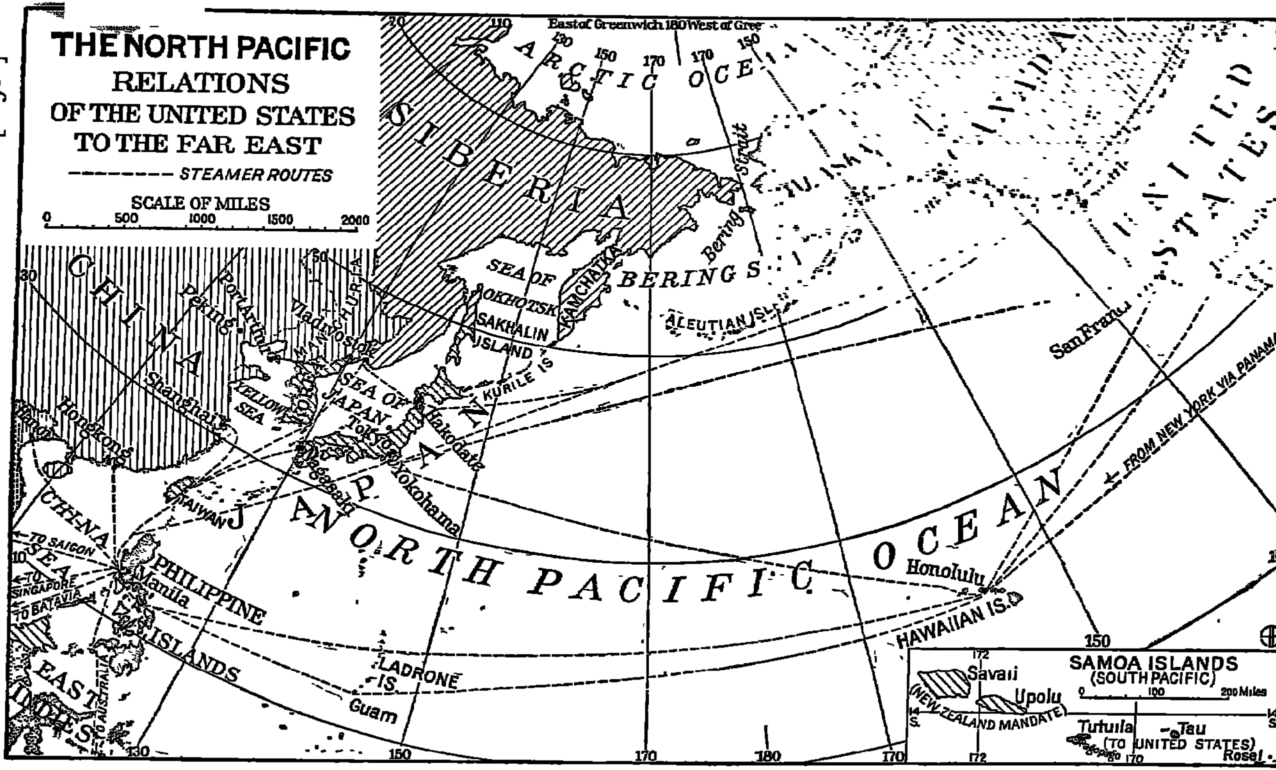
In 1898, 1899, and 1900 the United States took the Philippine Islands – Manila and a few other ports against the resistance of weakened Spanish garrisons beleaguered by Filipinos, and the

rest of the island dominion against considerable Filipino resistance. The Filipinos, although located off the southeastern coast of the Asiatic continent, had been a colonial people of Spain for more than three centuries. They were in revolt against Spain, having proclaimed a republic, when Admiral George Dewey destroyed the Spanish fleet in Manila Bay.

Our government promptly announced that our holding of the islands would be temporary and would lead to their independence. The typical United States reforms – roads, public schools, and the improvement of sanitation – were launched in the Philippines. These were paid for from taxes raised in the islands; but military and naval expenditures for the protection of the islands, and some other expenditures, were met by our treasury. The country developed a lively export trade with the United States, and there were few tariff barriers.

By and large, the Philippine Islands enjoyed greater autonomy than any state in the Union. Nevertheless, Filipino agitation for independence and American promises of independence when the time should be ripe for it were about continuous. In 1934 the United States Congress passed a law that authorized the setting up of a Philippine Commonwealth and provided for the full independence of the islands to begin, in effect, on July 4, 1946. This law was much desired by American sugar producers who wished to exclude Philippine sugar from the American market. Manuel Quezon was elected the first president of the Commonwealth, and the new government was inaugurated in December, 1935. On July 4, 1946, Manuel Roxas became the first president of the Republic of the Philippines.

The Japanese long looked hopefully to the time when we should get out of the Philippines, bag and baggage. When the Filipinos were rid of King Log, would they get King Stork? Simultaneously with their attack on Hawaii on December 7, 1941, the Japanese attacked the Philippine Islands. The Filipinos fought bravely and well to defend their flag and


THE NORTH PACIFIC
RELATIONS
OF THE UNITED STATES
TO THE FAR EAST
STEAMER ROUTES
SCALE OF MILES
0 500 1000 1500 2000
East of Greenwich 180 West of Gree
ARCTIC OCEAN
SIBERIA
UNITED STATES
CHINA
Peking
Port Arthur
Vladivostok
MANCHURIA
SEA OF OKHOTSK
SAKHALIN ISLAND
KAMCHATKA
BERING S.
Bering Strait
ALEUTIAN IS.
KURILE IS.
SEA OF JAPAN
YELLOW SEA
KOREA
Shanghai
Hongkong
Tokyo
Hakodate
Yokohama
Nagasaki
JAPAN
TAIWAN
CHINA SEA
TO SAIGON
TO SINGAPORE
TO BATAVIA
TO AUSTRALIA
PHILIPPINE ISLANDS
Manila
EAST INDIES
NORTH PACIFIC OCEAN
LADRONE IS.
Guam
San Francisco
FROM NEW YORK VIA PANAMA
Honolulu
HAWAIIAN IS.
SAMOA ISLANDS
(SOUTH PACIFIC)
0 100 200 Miles
Savaii
Upolu
(NEW ZEALAND MANDATE)
Tutuila
Tau
(TO UNITED STATES)
Rose I.

ours. The Japanese gained control of the islands in 1942, only to relinquish them to United States forces in 1944–1945.

AMERICAN FORCES IN CHINA

In 1900 a Chinese secret society of political character, alarmed at the increasing foreign influence in their country, rose against all foreigners, and against their own Manchu imperial government so far as it actually stood in their way. Its members called this society "The Order of the Literary Patriotic Harmonious Fists" – in short, the Boxers. The Boxers murdered many missionaries and other foreigners, and they laid siege to the foreign concessions in Tientsin and Peking. A joint expedition of European, Japanese, and American forces (from the Philippines) was sent into China under the supreme command of a German general, Count von Waldersee. The beleaguered foreigners at Tientsin and Peking were rescued and the Boxers were completely overcome.

The Manchu government of China was required to punish the Boxer leaders and was compelled to pay to the nations allied in suppressing the Boxers an indemnity of $333,000,000. The share of the United States was set at $24,000,000; but the losses sustained by citizens of the United States were found actually to be about one half that sum. Our citizens having been reimbursed, the remainder was marked for return to China. The Chinese handsomely refused to take the money; instead they had it placed in a fund to provide scholarships for Chinese students in the United States.

Following the Boxer revolt, bodies of foreign troops were stationed in several Chinese cities, ostensibly as a guarantee against a repetition of the Boxer episode. When American-Japanese relations looked bad in November, 1941, President Franklin D. Roosevelt recalled our marines from Peking, Tientsin, and Shanghai. The President was taking account of the fact that the Japanese forces in China could speedily

overwhelm these token forces of ours. He was right; for some two hundred of our marines who had not yet left Tientsin were promptly captured by the Japanese when the latter made their surprise attack upon our outposts on Sunday, December 7, 1941.

JAPAN ON THE MARCH

Japan's desire to dominate eastern and southeastern Asia had been made apparent in various ways for more than forty years, before she entered upon her desperate gamble, as the ally of Germany and Italy, for "world power or downfall."

JAPAN VICTORIOUS IN WARS WITH CHINA AND RUSSIA

In 1894 to 1895 Japan fought a victorious war with China, receiving the island of Formosa (Taiwan) and an indemnity. A big game of grab was on, with China holding the bag; and within a few years Russia, Great Britain, France, and Germany had enlarged their holdings of Chinese ports and territories.

At the beginning of this century the Russian Empire clearly menaced Japan from points in Manchuria and Korea. In 1904 and 1905 Japan fought a successful war with Russia, taking from Russia some of her Chinese holdings; also the southern two fifths of the Siberian island of Sakhalin.

RELATIONS WITH OTHER NATIONS AND WITH THE LEAGUE OF NATIONS

In 1902 Japan entered an alliance with Great Britain. With renewals, the alliance lasted until the agreements made at the Washington Disarmament Conference of 1921 to 1925 brought it to an end. The alliance covered the period of the war of 1914 to 1918, when Japanese forces policed Singapore and other points on behalf of the British, thus releasing British forces for service in Europe.

In 1910 Japan formally annexed the peninsula of Korea (Chosen), once a Chinese tributary, over which Japan had exercised a protectorate since the Russo-Japanese War.

Under the Treaty of Versailles Japan succeeded to holdings of Germany in China; also she took over as mandates most of the small island possessions of Germany in the Pacific. A mandate was theoretically a trusteeship exercised under the League of Nations and revocable by the League. However, when Japan resigned from the League in 1935 she kept her so-called mandates.

American and Japanese relations were strained in 1906 by anti-Japanese manifestations in California, and later by legislation in California and other states which was directed against the holding of real property in those states by aliens. An immigration bill passed by Congress in 1924 excluded the rank and file of Japanese from immigration to this country, just as the Chinese had been excluded a good many years earlier. This action was unnecessary and unfortunate, as the Japanese government, under a "gentlemen's agreement" with our government, had for some time very effectively kept its own people from coming here to settle. An unfortunate observation by the Japanese ambassador to this country, about the possible effects of Japanese exclusion, influenced the Congress to its brusque action; nevertheless the Congress, and perhaps the President also, incurred a grave responsibility in promoting Japanese ill will.

AGGRESSIONS IN THE 1930's

With Western nations in the depths of economic troubles in 1931, Japan invaded Manchuria and managed to set up there a puppet state which she called Manchukuo. For puppet emperor, the Japanese installed Prince Henry Pu-yi, who as a little boy had been the last Manchu to bear the title of Emperor of China. Made nominal ruler of Manchuria, or Manchukuo, the land of his ancestors of three hundred and more years ago, Pu-yi was given the name Kang Teh.

In 1932 the Japanese attacked the Chinese quarter of Shanghai, causing frightful losses in life and property.

By 1933 Japan had extended her control from Manchukuo to five border provinces in north China.

In 1937 Japan, completely in the hands of her militarists, undertook to subjugate the whole of China. At first she called her war the Chinese "incident." Afterward she referred to it as an "affair."

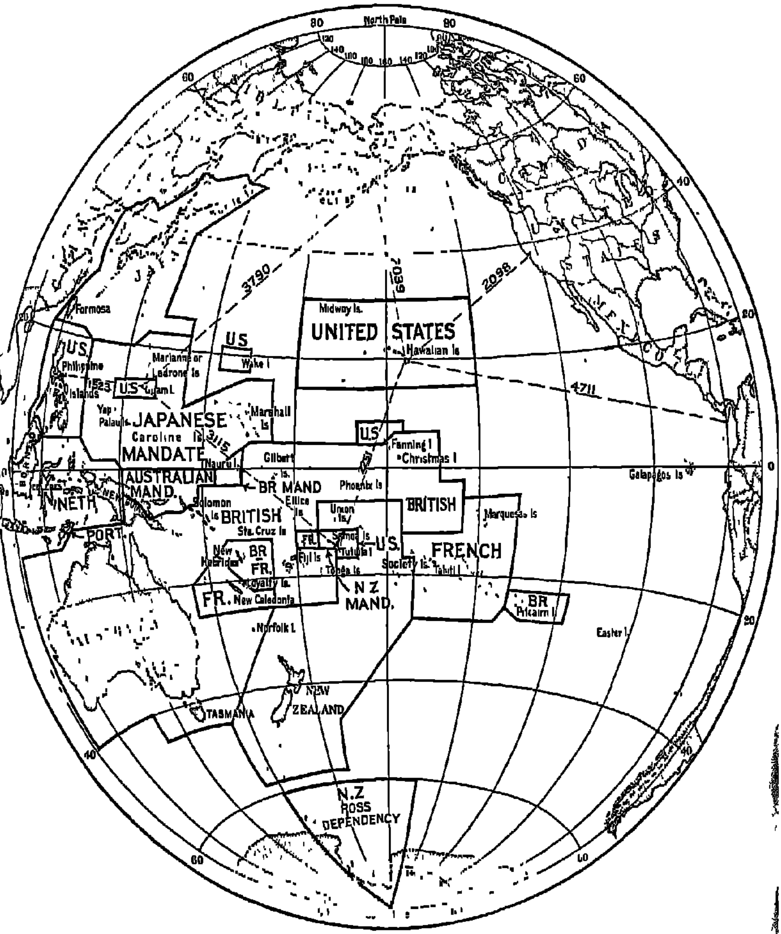
When Germany invaded Poland in September, 1939, Japan had already experienced two years of large-scale continuous fighting in central China. China had lost her seaports and President Chiang Kai-shek had moved the capital far west to Chungking. The campaigns had degenerated into a stalemate in which Japan was not able to conquer the Chinese and China was not able to drive out the Japanese.

JAPAN AS A COLLABORATOR WITH GERMANY AND ITALY

The war in Europe opened new possibilities for Japan's achieving her "new order for Greater East Asia." In September, 1940, Japan entered into an alliance with Germany and Italy and thus became an Axis partner. Thereupon Great Britain strengthened her forces at Singapore; the Dutch East Indies fortified themselves; and the United States made plans to build enough new warships to give us naval supremacy at once in the Pacific and in the Atlantic — that is, supremacy with reference to Nazi Germany and her allies.

By the middle of 1941 Japan had succeeded in taking over French Indo-China and was making threats in the direction of Thailand (formerly known as Siam), the Netherlands East Indies, and Singapore (Great Britain's great naval base). The German invasion of Russia, which began in June, 1941, brought the ever-present possibility of a Japanese attack on Siberia.

In 1941 the United States finally blocked exports of vital materials to Japan, cutting off her major supply — at the time —



Under the terms of the Treaty of Versailles, Japan received as mandates the former German colonies north of the equator. Great Britain and the dominions of Australia and New Zealand received the former colonies south of the equator. Note the locations of the islands of Midway, Wake, and Guam.

of oil, iron, cotton, and other goods. At the same time we boycotted the silk and other products of Japan. No longer were we an economic ally of Japan in her warfare with the Chinese, a people friendly to us on a basis of common interest.

A new Japanese premier, General Eiki Tojo, came to power in October, 1941, succeeding Prince Fumimaro Konoye. The general had been considered an aggressive leader, and his first official pronouncements bore out the impression. With extremist leadership in control, Japan was neither in the mood nor in the position to make a live-and-let-live arrangement with the United States, Great Britain, and China. Notions of national honor, or "face" as Orientals call it, made it practically impossible for over-assured and over-sensitive Japan to back down when it had taken a very determined stand in any matter. Curiously, honor or "face" seemed not to require the fulfillment of treaty obligations voluntarily assumed.

Beginning in April of 1941 and continuing into December, our government and that of Japan carried on discussions concerning their relations. Great Britain and the Dutch East Indies government tried also to arrange a tolerable working agreement with Japan. Incidentally, America, Britain, China, and the Dutch East Indies (strictly, *Netherlands* East Indies) came to be referred to as the A B C D powers.

In November the Mikado sent a special envoy, Saburo Kurusu, to Washington to assist the Japanese ambassador, Kichisaburo Nomura, in carrying on talks with Secretary of State Cordell Hull. These talks served no purpose other than to make clear to all the world our country's attitude on Far Eastern affairs and to give the Japanese a little more time to perfect their war plans. Mr. Hull insisted all along that four conditions were basic to good relations between the United States and Japan:

(1) The withdrawal of Japan from the Axis alliance.
(2) The renunciation of further aggression by Japan.

(3) The withdrawal of all Japanese armed forces from China and French Indo-China.

(4) Non-discrimination in trade in the Far East (the Open Door) and equal commercial opportunity for all nations throughout the Pacific area (the door opened wider).

While Mr. Hull and the Japanese diplomats were continuing their meetings the Japanese moved more large bodies of troops into Indo-China, increasing the threat to Thailand and the British and Dutch lands to the south. On December 6 President Roosevelt sent a message directly to Emperor Hirohito, once more urging the peaceful settlement of differences. On Sunday, December 7, the Japanese diplomats presented to our government their emperor's official reply — nothing was nearer to the heart of the emperor than the maintenance of peace in the Pacific. But three hours earlier the real reply of the emperor, or his government, had been delivered in fire and blood at Pearl Harbor on the island of Oahu (page 296).

Questions and Topics for Discussion

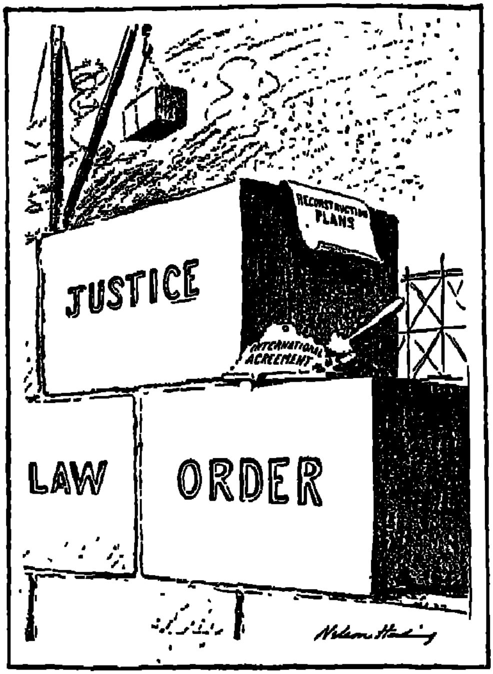
1. What great movement took place in Spanish America during the second decade and at the beginning of the third decade of the nineteenth century?
2. The victory of the enemies of Napoleon I brought a danger to Spanish America. What was that danger?
3. Just what did Monroe practically forbid in his Doctrine?
4. What made it possible for the United States to take so strong a stand in 1823?
5. What was the position of Russia in the New World in 1823 and until as late as 1867?
6. What was the "Japanese Monroe Doctrine"? Compare it with the original Doctrine, in theory and in practice.
7. In what circumstances did the United States take a stand on the Monroe Doctrine to the benefit of Mexico?
8. How did President Cleveland invoke the Doctrine on behalf of Venezuela?

9. How was our country plunged more deeply into Spanish-American affairs in the Presidency of William McKinley?
10. Under Theodore Roosevelt, Taft, and Wilson, did we concern ourselves more or less about the affairs of the other republics of the New World? Mention an act of each of these Presidents which is in point.
11. What is the membership of the Pan-American Union? What is its chief purpose?
12. What was the Platt Amendment?
13. Tell about the Good-Neighbor policy. Which President did most to advance that policy?
14. Tell about two or more important meetings of representatives of the Pan-American republics.
15. What does the term "Latin America" cover? the term "Spanish America"?
16. What are the "A B C powers"? the "A B C D powers"?
17. Why is it easier for our country to satisfy Brazil than to satisfy Argentina?
18. What has our government done to offset the bad effect of the Mexican "incidents" of 1914 and 1916?
19. "Canada has a nation within the nation." Explain.
20. What is the St Lawrence Waterway project? Baltimore and Boston had no enthusiasm for the Erie Canal when it was projected by the state of New York. New York City has no enthusiasm for the St. Lawrence Waterway. Various reasons — some good — can be given for the attitude of opposition; but what is the obvious common reason?
21. Tell about the action that gave lasting interest to the name of Matthew Calbraith Perry.
22. What is meant by the term "Open Door policy"? By rights, with whom does the control of any door lie?
23. How did the United States come into control of the Philippine Islands? What did we promise the people of the islands? What is their present condition?
24. Tell how it happened that a scholarship fund grew out of the Boxer Rebellion.
25. Why might China during the past century have been characterized as an open grab bag? Give instances.
26. During what period was the Anglo-Japanese Alliance effective? How did it serve Great Britain during the World War of 1914 to 1918?

27. Mention half a dozen military adventures of Japan since the early 1890's.
28. Tell about the beginnings of Japanese-American differences. Were these early differences unavoidable on our part? Why?
29. Tell about Japan's relations with China, 1931 to 1945.
30. What developments in 1940 and 1941 ended in war between the United States and Japan?
31. In the long run it was probably better for us to have Japan as an enemy than as an ally in the Second World War. Why?

Optional Assignments

1. Brazil's history in the nineteenth century was in some respects markedly different from that of any other Latin-American country. Let one or more students inform themselves, and then report to the class, on the manner in which Brazil gained independence, the form of government that prevailed for more than half a century following independence, the liberation of slaves, and the inauguration of the republic.
2. At expositions held in this country Latin-American countries have generally been well represented. Different members of the class might report on topics such as these: Dom Pedro's visit to Bell's exhibit at Philadelphia in 1876, President McKinley's words on Latin-American relations in his speech at Buffalo in 1901; exhibits of Latin-American countries at recent fairs, as the Century of Progress Exhibition at Chicago and the World of Tomorrow Exposition at New York.
3. There have been no fewer than three empires in Mexico, two of them in modern times. Find out about three Mexican empires.
4. Let several students find out about the extent of authentic unfriendly feeling toward our country in Mexico, and let them report to the class. What is the reason for such feeling? What, if anything, may be done about it?
5. Japan is basically far smaller and poorer and weaker than our country. Consider how it was possible for the island empire to make its prodigious war efforts within this century.


RECONSTRUCTION PLANS
JUSTICE
INTERNATIONAL AGREEMENT
LAW
ORDER

CHAPTER 12

THE ARBITRAMENT OF THE SWORD

WHEN minor powers like Paraguay and Bolivia make war on each other, stronger nations, and especially those at a distance, can and generally do remain neutral. It is far otherwise when major powers go to war; then neutrality becomes almost impossible. A weak neutral is likely to be bullied into rendering unneutral service to whichever belligerent can bring pressure to bear upon it. A powerful neutral is likely from choice to render unneutral service to the side it favors. The powerful neutral sees that its interest will be adversely affected or even that its safety will be imperiled by the victory of one contestant; therefore, secretly or openly, it undertakes to render unneutral service to the other side.

EFFORTS FOR NEUTRALITY AND PEACE

The path of true neutrality is narrow and difficult. It is a kind of slack rope that can be traversed only by the exercise of the most skillful statecraft. Leaning to one side or the other may mean falling into the abyss of war; leaning over backward seems to be safer.

RECENT NEUTRALITY LEGISLATION OF THE UNITED STATES

In 1935, when Italy was occupied with her conquest of Ethiopia, our Congress passed a Neutrality Act, the chief feature of which was a prohibition of the export of any implements of

war to belligerents; if the President should find that a state of war existed between nations, he would proclaim that fact and declare an arms embargo against the belligerents. Such a proclamation President Roosevelt presently made, touching Italy and Ethiopia. In 1937 there was further neutrality legislation.

In 1939, following the outbreak of war in Europe, the Congress passed a Neutrality Act that prohibited American vessels from entering war zones and forbade trading in the securities of belligerents and the making of loans by our citizens to belligerents. The Act, like much legislation of the time, gave the President considerable latitude — considerable control over the details of our neutrality.

According to the rules of international law neutrals have the right to trade with belligerents and to send their vessels into war zones, subject to the peril of seizure of contraband goods and seizure of vessels trying to run effective blockades. But regardless of that fact, the Allied Powers as well as Germany had disregarded our neutral rights from 1914 to 1917, when we ourselves went to war.

In 1939 Americans generally felt that no amount of war trade could possibly be worth the imperilment of our peace, and in the Neutrality Act of that year our government leaned over backward to be on the safe side. The Neutrality Act of 1939 had something in common with the Embargo Act of 1807, although it did not go so far. The drastic Embargo failed in Jefferson's time, and it was abandoned. And in November, 1941, Congress practically repealed its Act of 1939 (page 295).

APPEALS FOR PEACE ON THE EVE OF WAR

On April 15, 1939, when Mussolini had just conquered Albania and his henchmen were shouting for concessions from France, President Roosevelt sent to him and to Adolf Hitler practically identical messages. Mr. Roosevelt patiently and politely pointed out to the two dictators the immediate danger

and the folly, too, of war. He besought them to use the good offices of the United States in securing settlements rather than to resort to war. Hitler replied in a disingenuous and bitter speech, filled with denunciations. The President's message and the substance of Hitler's reply are to be found in the *World Almanac* for 1940, on pages 66 and 67. In view of subsequent events, the matter is worth reading.

In May, 1939, the Duke of Windsor, who had been King of Great Britain as Edward VIII, speaking over the radio as a private individual, made a plea for the preservation of world peace. Because this plea was well expressed, timely, and typical of the thought of all lovers of peace, it is worthy of a moment's consideration. Among other things, the speaker said: "I cannot claim for myself the expert knowledge of a statesman, but I have at least had the good fortune to travel the world and therefore to study human nature. This valuable experience has left me with the profound conviction that there is no land whose people want war. This I believe to be as true of the German nation as of the British nation to which I belong, as it is of you in America and of the French nation."

The Pope and other religious authorities made efforts to win the men of war to peace by persuasion. Our President continued to plead for world peace while he warned against war.

In June, 1939, King George VI of Great Britain, with the Queen, visited Canada and the United States. The royal tour was a British gesture of good will. The British were mending their fences, commendably.

All through the summer of 1939 the German volcano smoldered and rumbled. Hitler was bullying Poland; Danzig he must have, and a wide German corridor through the Polish Corridor. All the while Hitler was putting more and more pressure on the Czechs, whose national freedom he had taken away. The Poles were uneasy, to say the least. Expecting support from France and Great Britain, they refused to make hasty and abject submission to Hitler's demands.

THE RUSSO-GERMAN AGREEMENT OF 1939

Hitler had from the beginning of his career as an agitator denounced both Communism and Russia; he had proclaimed himself as a kind of dragon killer, the hero who was to save western Europe and the rest of the world from the Soviets. And had not he and Mussolini and the Mikado – and Franco also – entered into the Anti-Comintern Pact against Russia?

A REVERSAL OF RELATIONS

The British and the French and the Poles had been little less virulent toward Russia than the Germans had been. But during the summer of 1939, when war was in the air, the British and the French sent military missions to Moscow. The purpose was to form a working agreement with Joseph Stalin, the Soviet dictator, for the defense of Poland and the checking of German aggression. In *Mein Kampf* and in speeches after he became Fuhrer, Hitler had mentioned the rich spoils to be had from Russia, and particularly the grainfields of the Ukraine. Surely Stalin would welcome the opportunity to join with the French and the British to check the Germans!

Suddenly, toward the end of August, 1939, while the British and French military missions were still in Moscow, Germany and Russia announced that they had made a trade agreement. Presently they announced that they had entered also into a non-aggression pact to run for ten years. The Anti-Comintern Pact was ignored, for the time being.

A NEW BLOOD BATH FOR THE NATIONS

The news of the German-Russian agreement came with stunning effect to the rest of the world. Hitler now had a free hand, so far as Russia was concerned, to deal with Danzig and Poland.

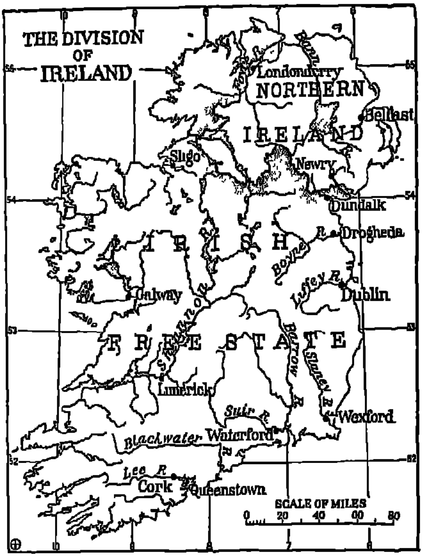
CONQUEST AND PARTITION OF POLAND

Great Britain and France assured Poland that they would support her in the event of a German attack, and the attack was not long in coming. Before dawn on September 1, 1939, German armies invaded Poland, without a declaration of war. A few hours later Hitler made a bombastic war speech, and on the same day he declared Danzig restored to the Reich (page 71). Two days later Great Britain and France declared war on Germany. Every step of this last mile on the road to war was instantly reported by radio to the whole civilized world. Metropolitan crowds and hermits in remote cabins alike heard Prime Minister Neville Chamberlain read before Parliament Great Britain's declaration of war.

The British Dominions, one by one, made their own declarations of war against Germany; the Irish Free State, now Eire, chose to remain neutral. Irish neutrality was an anomalous thing. There were disadvantages to Great Britain in Free State neutrality; probably advantages also. Britain had to get along without naval bases on the western coast of Ireland, sorely needed for operations against enemy submarines and other raiders. The Eire officials succeeded in avoiding actual warfare with Germany, and Empire forces were spared the task of helping to defend that commonwealth.

When the Germans had reached the gates of Warsaw, Russian troops marched into the eastern half of Poland and occupied it. This they did in perfect accord with the Germans, who were doing the heavy fighting.

In Poland the Germans demonstrated their *Blitzkrieg* — "Lightning War" — technique which they had calculatingly tried out on Spaniards in the Spanish Civil War. And it worked. Before the British and the French could render any effective aid whatever the German mechanized forces had destroyed the Polish armies and the German *Luftwaffe,* the air force, had blasted Warsaw into ruin and submission. The



The Irish Free State, or Eire, as this map shows, controls all the coasts of Ireland (including the northernmost point), except the northeast coast, which belongs to Northern Ireland. In January, 1942, the Irish Free State protested against the placing of bodies of United States troops in Northern Ireland, on the ground that this action endangered Irish neutrality

Poles, as ever, were brave; but their cavalry, which would have been the pride of the first Napoleon, was useless against tanks and their small air force could only bear heroes to their death. After three weeks of warfare Poland lay conquered and divided. The Germans took the more industrialized part of the country with some 18 million people; the Russians took the eastern agricultural area with some 14 million people.

"ALL QUIET ON THE WESTERN FRONT"

The French, being at war, manned the tremendously strong fortifications along their border with Germany. These fortifications, constituting the Maginot Line, had been built at very great cost to make France really secure against any possible

German attack. The Germans were holding their Siegfried Line, which was intended to make successful attack from France impossible.

British expeditionary forces joined the French, as they had done twenty-five years earlier.

Through the winter of 1939 to 1940 the rival armies glowered at each other across the Franco-German boundary line. The French crossed into Germany and the Germans crossed into France at one point and another, and the locality where the boundaries of France, Luxembourg, and Germany meet (or met) came to be called "the noisy corner"; but there was no determined attack upon either of the great defensive lines. Humorously and in questionable taste the war was called the *Sitzkrieg* — the "Sitting War."

CONTRAST BETWEEN 1914 AND 1939

Many persons made serious mistakes in judging the events of the war after September of 1939. They expected the new war to follow the same pattern as the war of 1914 to 1918. Except for the first six months on the western front, the war of 1939 to 1945 was characterized chiefly by rapid movement over vast areas. The German "blitz" warfare, with mechanized divisions highly coördinated with the air force, compelled other nations to revolutionize their methods in order to withstand German attacks. Until the German invasion of Russia early in the summer of 1941, the casualties were very small as compared with those of 1914 to 1918: superiority in tanks and planes decided the issue over wide regions without vast slaughter.

The war of 1939 to 1945, to an even higher degree than that of 1914 to 1918, involved whole populations, drawing on every resource of the world. People in cities, especially in England and in Germany, were in constant danger from air raids. Every inhabitant of London, for example, may be said to have been in the front line of battle. The morale of the whole people,

in one warring country and another, influenced the success of war efforts. The "war of words," in press reports, radio broadcasts, and official announcements by governments, was as much a part of the national effort as were the activities of the sea, land, and air forces.

WEAK NATIONS BETWEEN THE MILLSTONES

While the "Sitzkrieg" went on in the west, Russia added to the Soviet Union the three little Baltic states of Lithuania, Latvia, and Estonia. The Bear invited them to come in, and it was not for them to refuse. These lands, and Finland too, had been ruled by Russia until she met disaster in the war of 1914 to 1918.

Finland was given boundaries that brought her territory almost to the gates of Leningrad (long called St. Petersburg, then Petrograd, then Leningrad). Russia, at the moment being given a free hand by Germany, demanded the cession by Finland of territory that seemed necessary to the proper protection of Leningrad. The Finns refused, and the Russians attacked them. Through bitter winter weather fighting went on. For whatever reason, the Russians came off badly for several months; but in March, 1940, the Finns were compelled to yield. Everything considered, the terms on which the Russians made peace were lenient.

On April 9, 1940, without demand or warning, overwhelming German forces occupied neutral Denmark, which had no means of resistance. On that same day the Germans undertook the occupation of Norway. The Norwegians resisted, and French and British land and naval forces came to their aid; but in about one month the Germans had mastered the country to the Arctic Ocean.

On May 10, 1940, the Germans began the occupation of the Netherlands, Belgium, and Luxembourg, all unoffending neutrals. The Netherlanders and the Belgians resisted

valiantly. Although considerable French and British forces were thrown into Belgium, the Germans moved so rapidly in the Netherlands that no effective aid could be given there by the Allies.

The story of the conquest of Poland was repeated. After Rotterdam, great commercial city of the Netherlands, had surrendered to the Germans the *Luftwaffe* methodically and thoroughly bombed the place, causing great loss of life and untold property damage. The Germans said that this had happened as the result of some misunderstanding; but it is generally believed that the bombing was carried out to give to all the world a dread of the ruthless German power. On May 28, when France had already begun to waver, the King of the Belgians surrendered.

Remnants of Belgian, British, and French forces were surrounded by the Germans at Dunkerque, the northernmost port of France. Thence, under constant attack from the air, they were with difficulty removed to England by hastily assembled British water craft of all descriptions. Vast quantities of military equipment and supplies were left on the shore, spoils of war for the Germans.

THE FALL OF FRANCE

With the Low Countries prostrate, the Germans rapidly overran northern France. They had no need to assault the Maginot Line; they went around it. Just so they had proceeded in 1914 when they violated Belgian neutrality – marched through that country and crushed it, to get at France without attacking her then existing eastern defenses. The French, it seems, might have known.

The Germans drove through the French lines with "armored spearheads," army tank divisions fully mechanized, called in German *Panzer Divisionen*. Flying ahead of the armored units went the *Stukas* – dive bombers – swooping low and dropping bombs at close quarters, then suddenly reversing and

climbing upward preparatory to a new swoop. It is said that Ernst Udet, famed German ace and airplane authority (killed in a military accident in 1941), had seen aviators in the United States fly thus as a stunt and had taken the idea back to Germany, where military use was made of it.

After Dunkerque, Premier Paul Reynaud of France tried vainly to continue the war against Germany. By the middle of June Paris had been captured, and Reynaud's Cabinet and advisers were in favor of an armistice. Reynaud resigned; Marshal Henri Philippe Pétain, who won fame at Verdun in the World War of 1914 to 1918, was chosen Premier, and he asked for German terms. An armistice was arranged, and firing ceased on June 24. By the terms of the armistice Germany occupied more than half of France, including Paris, and held about two million French prisoners. The unoccupied part of France with the capital at Vichy was nominally left under the rule of the aged Marshal Pétain. The French colonies and the French navy were left to the Vichy government, for a time. Military equipment and supplies were to be delivered to the Germans; also any refugees from German rule anywhere, whom Hitler might demand, were to be surrendered. The French were to pay all costs of the German army of occupation. Pétain proceeded to govern by decree, dropped the old motto of free France, "Liberté, Égalité, Fraternité," and listened to his master's voice. The German boot was on every neck in France. Thus the Third Republic of France came to an end.

As the war progressed the Germans tightened their hold on "unoccupied" or "Vichy" France, as well as on the rest of the country. However, French patriots of the "underground" conducted secret and terrible warfare against the invaders. And when the war was over they rounded up and punished those persons who had collaborated with the Germans.

Important internal factors in the fall of France were these: Incompetent political leadership; the endless contentions of greedy groups and factions for advantage to themselves, regard-

less of the common weal; the incompetence and even the disloyalty of high-ranking military officers; a cynical attitude toward all things.

With wise and able leadership the French, following 1918, could have remained invincible on the continent of Europe — invincible as long as such leadership lasted.

ITALY IN THE WAR

While the Germans were moving irresistibly to take Paris, Italy gave signs that she would presently join them in the war. Pleas against this course, made to Mussolini by the Pope, by the British government, and by President Roosevelt, were of no avail. On June 10 the Italians announced a state of war to begin on the day following. Italian troops succeeded in getting a slight foothold in southeastern France before the armistice between the Germans and the French. Two days after that armistice, another was entered into (June 24) between the Italians and the French. Firing was to cease on June 25, and the Italians were to be allowed to occupy the southeastern corner of France, which they proceeded to do.

The fall of France left Germany in a much better position to continue her warfare against Great Britain. German-controlled territory now half encircled the British Isles; the coasts of Norway, Denmark, Germany, the Netherlands, Belgium, and France were available as bases to German raiders by sea and air.

GERMAN OCCUPATION OF THE BALKANS

Czarist Russia always had a direct interest in the Balkan countries (page 61). Large numbers of their people were Slavs whose speech was not far removed from Russian and whose religion was that of the Orthodox (or Eastern, or Greek, or — in Russia — Russian) Catholic Church. Russia had helped mightily to liberate these peoples from the rule of Turkey. Besides, Russia was always interested in Constanti-

nople (now Istanbul), desiring freer access to the Mediterranean for commerce. The Austro-Hungarian Monarchy and the German Empire were interested in the Balkans as sources for raw materials, as markets for manufactured goods, and as affording a highway to the Near East. And the French, and the Italians also, each kept an eye on southeastern Europe and the Near East. A Balkan incident had served as the match to blow up the European powder magazine in 1914; and following 1939 the Balkans could scarcely stay out of the trouble.

Rumania, having thrown in her lot with the Allies in 1916, was defeated by the Germans, as was Russia. But after the German surrender in 1918 the Rumanians took the border territory of Bessarabia — without force and without resistance — from their late friend, Russia. They also received accessions of territory from Hungary and Bulgaria. After the Russo-German Agreement of 1939, Russia took back Bessarabia, and Hitler required Rumania to retrocede some territory to Hungary and other territory to Bulgaria. Rumania and Bulgaria came under Hitler's thumb.

In October, 1940, Italian forces invaded Greece, until then neutral and desirous to avoid war. The Greeks put up such a stiff fight that the Italians were forced to withdraw; and the fighting continued, with the Italians retreating through Albania. The Germans put Yugoslavia under pressure, and that country also chose to fight The Germans blasted a way through Yugoslavia and went to the aid of the Italians, hard beset in Albania by the Greeks. The Germans went on and conquered mainland Greece, then took the island of Crete. This German advance to southernmost Europe, made by the middle of 1941, alarmed the British for the safety of the Suez Canal and Egypt.

Turkey continued to be under diplomatic pressure from Germany and Great Britain. What Turkey could do depended largely on the new developments in the eastern end of the Mediterranean. There the British took over French Syria.

WAR IN THE AFRICAN DESERT

After their entrance into the war the Italians undertook the invasion of Egypt from their colony of Libya. In 1941 British Empire forces drove them out of Egypt and out of the eastern half of Libya. Then German forces that had been landed in Libya despite British vigilance in the Mediterranean came to the aid of the Italians. The Empire forces were driven back to Egypt, all except a heroic garrison at Tobruk, a port in eastern Libya. Tobruk held out for seven months. Then, in November and December, 1941, Empire forces using many American-made tanks once more swept westward over Libya; and the Tobruk garrison, made up largely of Australians and New Zealanders, sallied forth against their besiegers. Beginning in mid-January, 1942, the British were again driven eastward, their forces having been weakened by withdrawals of men and materials for service elsewhere. Tobruk fell in June.

GERMAN INVASION OF RUSSIA

In June, 1941, Germany suddenly invaded Russia. There was no good pretext, even, for the German attack; and there was no warning other than that which the Russians might have taken from reports of German military preparations along the Russian borders. The Germans, with half a dozen satellite nations aiding them in one way or another, undertook the vastest military campaign in all history. But in place of a quick, easy victory, they found hard fighting, month after month, with great losses. They came within sight of Leningrad and Moscow; in the south they took most of the rich grainland of the Ukraine, which the Russians devastated before they yielded it, as part of their "scorched earth" policy. Toward the close of November, 1941, the Germans captured Rostov at the mouth of the Don River; they were in possession of much of the Crimea; and they were clearly on their way to the priceless oil fields of the Caucasus at the eastern end of the

Black Sea. The Russian losses in men and materials and national resources were tremendous, and a Nazi spokesman in Berlin announced positively, apparently believing his own words, that Russia was through and would never rise again.

Nevertheless, on December 6, 1941, the Russians began a colossal counter-offensive whose success in the weeks that followed amazed the world and most of all the Nazis. Winter gave the Russians, fighting in their own land, more advantage and less disadvantage than it gave the Germans, and vast numbers of the bravest and best German soldiers had been put out of action to stay out; but there was more than weather and German losses behind the Russian success. The Bear was strong.

The beginning of the year 1942 found the menace to Leningrad, Moscow, and the Caucasus lessened; the German armies were checked, for the time being, along a 2000-mile front.

In the autumn of 1941 Great Britain and the United States sent special missions to Moscow to make specific plans for help to the Soviets. The physical obstacles to sending help in sufficient quantities were tremendous. Some equipment and supplies were already arriving by October.

During the German invasion of Soviet territory, Great Britain suffered less than before from air raids and gained time to make better preparations for defense and for further attacks on Germany.

GOVERNMENTS IN EXILE

The King of Norway, the Queen of the Netherlands, high-ranking Belgian officials, the King of Yugoslavia, the King of Greece, and General Charles de Gaulle of France — about these individuals were formed governments in exile designed to carry on in behalf of their people until the continent of Europe should be liberated. Two opposing groups — one of them sponsored by the U S.S.R. — undertook to represent Poland.

Fighting men of the several conquered countries who had managed to escape or who were abroad at the time of their nations' disasters joined the British forces as individuals or in bodies of their own. General de Gaulle assembled formidable "Free French" forces which gave good account of themselves in Syria and Africa and later in France and Germany.

THE BRITISH AT BAY

With good reason, the British have always been alarmed when hostile forces have held ports on the English Channel or on the North Sea. It was thus in the days of Napoleon I and again in the days of Wilhelm II. Napoleon said of the Scheldt River, which flows out of France through Belgium and the Netherlands to the lower North Sea, "It is a pistol pointed at the heart of England."

When there is an enemy on the Channel the British put aside their traditional "muddling through" procedure and its exponents, and they raise their ablest men to political and military leadership. In May, 1940, when German forces invaded the Netherlands and Belgium, Great Britain changed her Prime Minister and policies with considerable determination and thoroughness. Neville Chamberlain, who had been a leading "appeaser" and who helped to put over the Munich Accord that dismembered Czechoslovakia, was replaced as Prime Minister by Winston Churchill, a man of tremendous energy, eloquence, experience, and determination. Laborite leaders were included in the Cabinet — Clement Attlee, Arthur Greenwood, and, as Minister of Labor, Ernest Bevin; also Anthony Eden and Alfred Duff-Cooper, who had bitterly opposed Chamberlain's policies. Churchill rallied the support of the British people, who were determined to defend themselves to the utmost in case of invasion and to carry the war to the enemy so far as possible. The summer and fall of 1940 were very dark months for the British, who stolidly endured

devastating air raids, night after night, and who faced the possibility of starvation through the loss of food ships by submarine attacks.

The battle of France having been ended, the battle of Britain was on. In the latter part of 1940 the British Royal Air Force, inferior in numbers to the *Luftwaffe,* was able to defend the English shores reasonably well and also to destroy in French ports much shipping that the Germans had assembled, probably for a projected invasion of England. There are those who consider that the battle of Britain was won then. The Germans never again had so good an opportunity to undertake the invasion of England. It seems that France fell sooner than the Germans had expected, leaving them unprepared to follow up their victory immediately with an invasion of England.

At sea, from the beginning to the very end of the war, the battle of the Atlantic was being fought. German submarines and surface raiders and occasional formidable German warships attacked any vessel flying the British flag; also they attacked some neutral vessels, while neutrality continued to exist. If the Germans could really cut off Great Britain from her several life lines to parts of the Empire and to the United States, they felt certain that they could bring her to her knees. If the Germans could not bring down Britain, they could not win the war, could not master the world. The shade of Napoleon Bonaparte might have told them that if they did not already know it, but they did know it.

For a list of events of the war see pages 309 to 318.

OUR COUNTRY IN ACTION

Somewhere in the Scriptures occur these words: "For no man liveth to himself alone, and no man dieth to himself." Mankind has been slow to accept that truth, slower still to accept the truth that no nation liveth to itself alone.

FORMER AMERICAN ATTITUDES TOWARD WORLD AFFAIRS

Following the World War of 1914 to 1918 our citizens differed among themselves in their view of foreign affairs. There were three rather well-defined attitudes.

Some of us held that it is the obligation of our country to participate actively in international affairs in order to insure the peace of the world. President Woodrow Wilson was the outstanding representative of this group, which favored the adherence of the United States to the League of Nations and the World Court and believed in "collective action of a group of nations to maintain peace."

Others zealously held that the United States should withdraw from foreign affairs as much as possible and maintain its supposed traditional policy of isolation. These held that Europe and the Orient always were, and are, and will be in a bad state and that the United States could not improve matters by plunging into their troubles.

Probably a heavy majority of Americans favored a middle course, something between full participation in world affairs and complete isolation. They realized that the United States could not save the whole world in spite of itself. At the same time, they realized that we could not wholly withdraw from world affairs and live a self-sufficient independent existence. While paddling our own canoe we should have to take account of others traveling over the troubled waters, occasionally throwing a line to one in distress. If a storm were to come up things would be different again; and the storm came.

FACING THE REALITY OF WAR

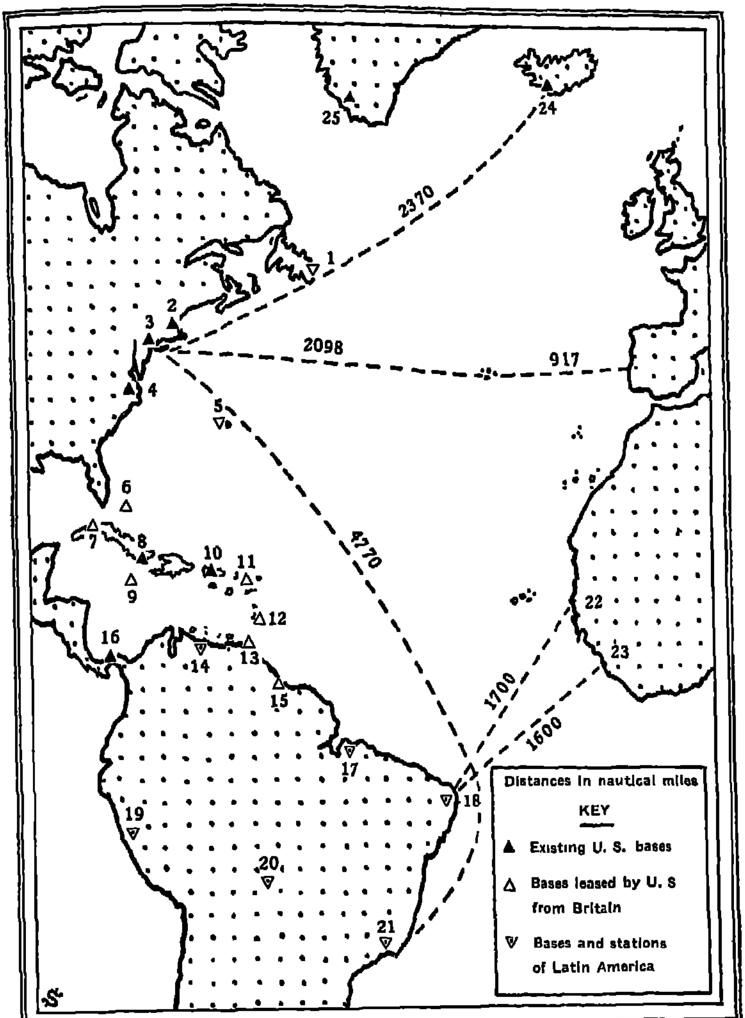
Immediately following the invasion of Poland in September, 1939, the United States took measures to get about 100,000 citizens out of the war zones, to coöperate with Latin America for the defense of the Western Hemisphere, and to change our neutrality legislation.

During the first six months of warfare in Europe there was general confidence among us in the ability of the Allies to carry on the war. Although our own defense preparations were increased, there was little feeling of immediate crisis. Business was stimulated by war orders; but many industries did not share this new — and necessarily false — war prosperity.

Upon the fall of France, the attitude of our people changed almost overnight. There came to be a lively sense of danger from Nazi aggressions; the question of Nazi designs and Nazi penetration in the Western Hemisphere loomed. The possibility of Great Britain's not surviving the air attacks and projected invasion alarmed us. We came to feel that it was necessary for Great Britain to survive if there was not to be a Nazi-dominated world; we would aid Great Britain in every possible way short of war to defeat Nazi ruthlessness. The hardening of American opinion was reflected in the various public-opinion polls and in the papers and magazines. At the same time some groups remained opposed to aid for Great Britain, in the hope that a course of complete neutrality might keep us out of the war.

The President was vigorously in favor of every possible measure for effective aid for Great Britain. By his direction, in August of 1940, the United States exchanged fifty over-age but still effective destroyers for a number of naval and air bases on British territory in the Western Hemisphere.

The National Guard was called for active duty. In September, 1940, for the first time in peace, a conscription act was passed to provide a large army. In place of business as usual plus defense efforts, the national program became defense first, with production for civilian needs limited according to defense needs. Direct control was extended over key raw materials. The Office of Production Management (OPM); the National Defense Mediation Board, to settle disputes between industry and labor; the Office of Price Administration; and other administrative and advisory boards were created.



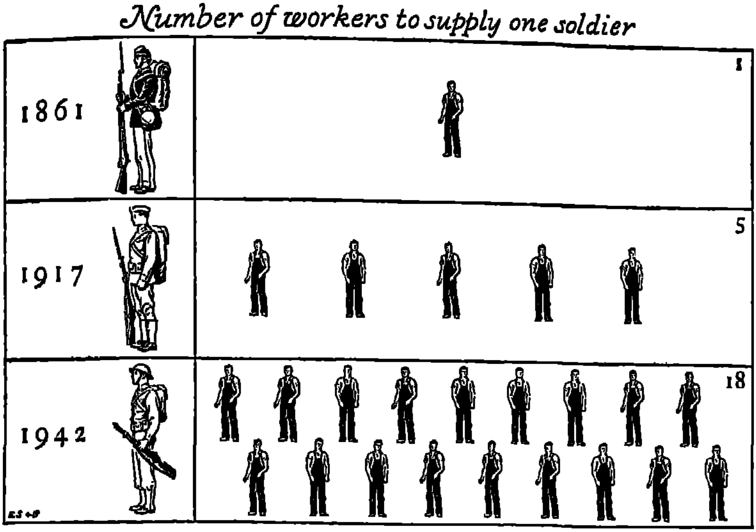
United States naval and military bases in the Atlantic area, as they were toward the close of 1941. The places keyed by numbers are as follows· 1 Newfoundland, 2 Boston, 3 New York, 4 Norfolk, 5 Bermuda, 6 Bahamas, 7 Havana, 8 Guantanamo, 9 Jamaica, 10 Puerto Rico, 11 Antigua, 12 St. Lucia, 13 Trinidad, 14 Puerto Cabello, 15 Georgetown, 16 Canal Zone, 17 Pará, 18 Natal, 19 Callao, 20 Ladario, 21 Rio de Janeiro, 22 Dakar (French), 23 Freetown (British), 24 Reykjavik, 25 Julianehaab

In March, 1941, Congress passed and the President signed the Lease-Lend Bill (or the Lend-Lease Bill). The new law gave the President power to deliver war materials and supplies, on terms that he might arrange, to any country whose efforts would help to defend the United States. Billions of dollars were appropriated by Congress for defense efforts and for Lease-Lend materials for Great Britain and other nations, including Canada, China, and later Russia.

On March 7, 1941, the President proclaimed an extreme national emergency. Our new army, conscripted for one year, was held in service. Congress raised the limit for national indebtedness to 65 billion dollars. New Federal taxes were voted, including high income taxes for 1941. The prospects were for more and higher taxes and for a still greater national debt limit in this critical emergency. In the national shift to a war economy, tremendous difficulties arose, and there were bound to be friction and hardship in the process of such rapid change. In Congress the isolationists continued bitterly to attack the administration's foreign and defense policies until war actually came to us on December 7, 1941.

By the fall of 1941 United States defense production was beginning to be encouraging. Thereupon an epidemic of strikes in industries vital to defense, as in coal mining and the manufacture of airplanes, embarrassed our government and the people of our land and probably gave heart to the enemies of democracy.

The stationing of American troops in Iceland and Greenland and the protection by our army of merchant vessels for two thirds of the way across the Atlantic simplified the task of Great Britain in getting supplies from overseas. United States naval units coöperated closely in patrol duty with the British. Perhaps in part because of German concentration on the Russian campaign and in part because of greater British efficiency in defense measures, British ship losses were greatly reduced during the summer and fall of 1941. In November, Congress



Modern warfare is in truth total Every civilian capable of doing so is required to contribute money or time, or both time and money; under conscription, the time of many men is taken, and the lives of some; long-range bombers bring the war home to civilian populations.

passed a bill to arm our merchantmen and a few days later passed another bill repealing the provision of our Neutrality Law of 1939 forbidding United States vessels to go into war-danger zones (page 276). The damaging of the United States destroyer *Kearny* and the loss of other vessels were accepted as part of the risk taken in protecting the deliveries of armament (assuredly contraband) and food to Great Britain. Thus we completed the cycle of neutrality. For limited purposes we remained legally neutral; for limited purposes we were at war with Germany and her allies by the middle of 1941. Such a status, however anomalous, was within the concept of international law; it was thus that we fought a limited war — a war of reprisal at sea — with France in 1798 and 1799.

The difficult international position of our country, in which we were for some purposes at peace and for some purposes at war, was clarified early on the morning of December 7, 1941.

On that day, while negotiations with Japan were still technically in progress for a peaceful solution of the differences between the two nations, Japanese forces attacked Hawaii. Thus, without warning, in 1904 Japanese destroyers had torpedoed and sunk Russian warships in the harbor of Chemulpo, Korea, starting the Russo-Japanese War (page 266). We might well have remembered this in 1941. We learn from history that we *could* learn from history. Also, as a cynical philosopher observed long ago, "We learn from history that we *do not* learn from history."

THE ROOSEVELT-CHURCHILL EIGHT POINTS

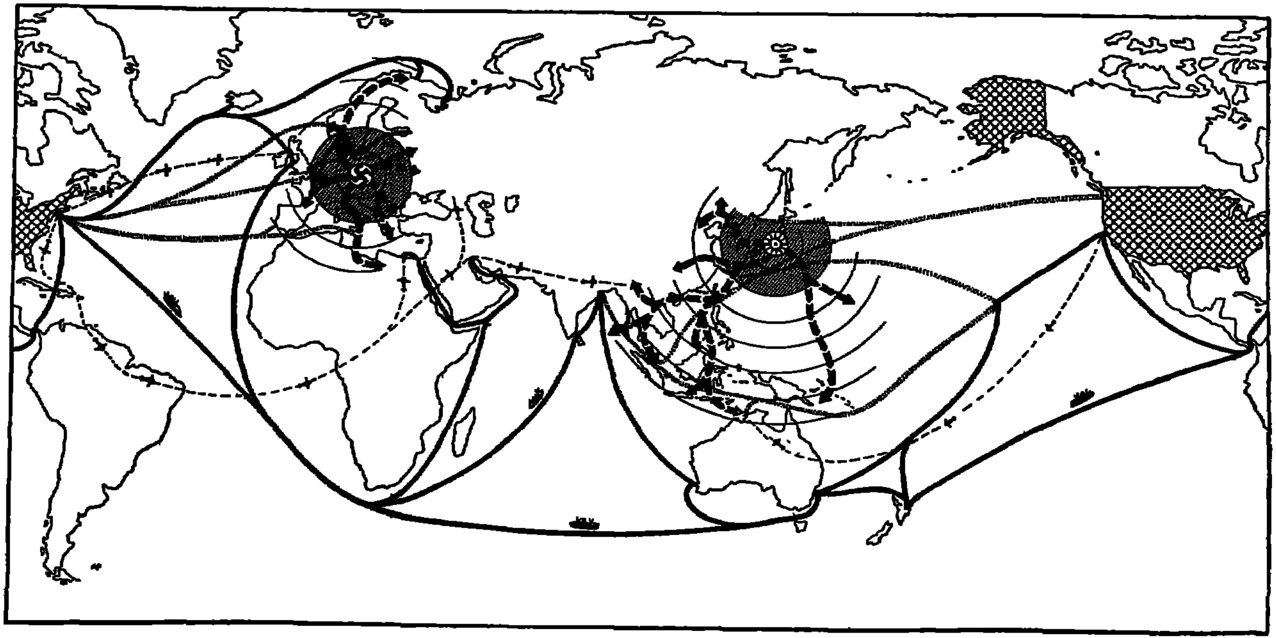
In August, 1941, Prime Minister Winston Churchill, with a group of British officials and officers, and President Roosevelt, with his group, met on shipboard in the Atlantic for a conference on war problems. There on August 14 the two leaders prepared and announced to the world a program of eight joint national aims in the then-existing world crisis. (Germany had already attacked Russia. Japan had not yet attacked us at Pearl Harbor.) This is the Roosevelt-Churchill program, which has come to be called the Atlantic Charter:

THE 8-POINT BOND OF DEMOCRACIES

> The joint declaration of the President of the United States of America and the Prime Minister, Mr Churchill, representing His Majesty's government in the United Kingdom; being met together, then deem it right to make known certain common principles in the national policies of their respective countries on which they base their hopes for a better future for the world.
>
> 1. Their countries seek no aggrandizement, territorial or other.
> 2. They desire to see no territorial changes that do not accord with the freely expressed wishes of the peoples concerned.

3. They respect the right of all peoples to choose the form of government under which they will live; and they wish to see sovereign rights and self-government restored to those who have been forcibly deprived of them.
4. They will endeavor, with due respect for their existing obligations, to further the enjoyment by all states, great or small, victor or vanquished, of access, on equal terms, to the trade and to the raw materials of the world which are needed for their economic prosperity.
5. They desire to bring about the fullest collaboration between all nations in the economic field with the object of securing, for all, improved labor standards, economic advancement, and social security.
6. After the final destruction of the Nazi tyranny, they hope to see established a peace which will afford to all nations the means of dwelling in safety within their own boundaries, and which will afford assurance that all men in all lands may live out their lives in freedom from fear and want.
7. Such a peace should enable all men to traverse the high seas and oceans without hindrance.
8. They believe that all the nations of the world, for realistic as well as spiritual reasons, must come to the abandonment of the use of force. Since no future peace can be maintained if land, sea, or air armaments continue to be employed by nations which threaten, or may threaten, aggression outside their frontiers, they believe, pending the establishment of a wider and permanent system of general security, that the disarmament of such nations is essential. They will likewise aid and encourage all other practicable measures which will lighten for peace-loving peoples the crushing burden of armaments.

The eighth point of this program, calling for the disarmament of the nations guilty of armed aggression, was aimed primarily at Germany, though of necessity it applied also to her allies, and especially to Italy and Japan. The other points present a democratic program for peace, dependent on achievement of the eighth point. It is interesting to compare the Eight Points



U. S. War Department

The position of the Axis Powers at the time of their greatest success, about May 6, 1942 (the date of the fall of Corregidor, last American stronghold in the Philippines) The heavy arrows with broken shafts represent Axis drives. The broad dotted lines represent shipping routes cut by the Axis forces The long black lines represent sea routes used by the United Nations. Air-supply routes of the United Nations are represented by the figures of planes

with the Fourteen Points (page 75) drawn up by President Wilson during the First World War.

THE DECLARATION OF WASHINGTON

On January 1, 1942, while Winston Churchill was at Washington, an agreement was entered into and a declaration was made by all the national governments then at war with Germany and any or all of her allies. These nations subscribed to the Atlantic Charter; each pledged all its resources for use against the nations with which it was at war (Russia was not then at hostilities with Japan); each pledged that it would not make a separate peace with the enemy nations.

In this Declaration of Washington, the nations whose representatives signed the document were referred to as the "United Nations." This seems to have been the first official use of that name. It is interesting in view of the fact that the world organization that came to be formed in 1945 was at first called "The United Nations Organization"; later, simply "The United Nations."

THE FIGHT TO THE FINISH

The attack on Pearl Harbor instantly forced a two-ocean war upon the United States. In effect, our country had two wars on its hands: one in and across the Pacific, with Japan; the other in and across the Atlantic, with Germany and Italy and their satellites. In the Pacific our principal fleet had received a paralyzing blow. We were not by any means prepared to push the war immediately and effectively in both directions. Courageously and wisely, as the outcome showed, our leaders chose to fight a holding war in the Pacific, first giving major attention to the European members of the Axis. This policy fitted in with the plans and the needs of our allies, particularly Great Britain and Russia (the Union of Soviet Socialist Republics). If they should fall in the fight, it would be very difficult for us to win;

if they should succeed, Japan could assuredly be dealt with. However sound this reasoning, many of our citizens became jittery over the danger of Japanese attacks upon our West Coast.

THE ROADS THAT LED TO BERLIN

On June 21, 1942, German and Italian forces under Marshal Erwin Rommel captured Tobruk in eastern Libya, not far from the Egyptian border (page 287). They swept on to within 60 miles of Alexandria, menacing the Suez Canal. On October 23, 1942, a British army, partly American equipped and supplied, defeated Rommel in an extremely important battle at El Alamein in Egypt. This British army was commanded by General Sir Bernard L. Montgomery. From El Alamein Montgomery pushed steadily westward.

On November 7, 1942, a huge fleet landed American and British forces, under the command of General Dwight D. Eisenhower, at points in Morocco and Algeria. Vichy French forces at Casablanca and at Oran offered some resistance; but within a week the Vichy official in control in Africa, Admiral François Darlan, entered into a working arrangement with the Allies, and many French North African troops went over to them. Eisenhower's forces, with at least one brief setback, fought their way eastward until they joined Montgomery's westward-moving army. The remnants of the German and Italian forces were trapped and captured at Cape Bon, in Tunisia, on May 12, 1943.

Cape Bon is the point of Africa that lies nearest to Sicily, extending like a finger toward that island. On July 10, 1943, Allied forces from Africa attacked Sicily, thus beginning the invasion of Hitler's "Fortress Europe." Early in September, forces under General Montgomery moved from Sicily into the southernmost peninsula of Italy, and forces under the American General Mark W. Clark established a beachhead at Salerno, a little south of Naples. On September 8, the Italian Royal

Government surrendered unconditionally to the Allies. However, German forces still held the upper hand in the greater part of Italy, including all the principal cities of the peninsula.

Mussolini had been forced to resign as premier, following the invasion of Sicily. He was succeeded by Marshal Pietro Badoglio, who arranged the surrender to the Allies. Mussolini was held prisoner for a time, then he was "kidnaped" by German paratroopers and taken within the German lines. Under German protection he set up a puppet Fascist government which nobody respected.

American and other forces slowly fought their way to Rome, which they took on June 4, 1944. Thence they moved steadily northward against obstinate German resistance in difficult mountainous country. German resistance in northern Italy crumbled in April, 1945. Then Italian partisans – patriot anti-Fascist guerrillas – captured Mussolini and a number of his principal henchmen. They conducted a very hasty so-called trial, and then, on April 28, 1945, they shot all the prisoners The bodies of Mussolini and others were carted to Milan, where the former dictator had founded the Fascist party in 1922. There the bodies were publicly exhibited and subjected to indignities.

If the war had continued much longer, after the Allies had won control of practically all of Italy, doubtless Allied troops would have somehow crossed the Alps, heading for Berlin. And Berlin was reached from Italy – by American and British bombers, which made shuttle trips between Italy and England, bombing Berlin and other enemy points, coming and going.

On June 6, 1944, two days after Rome was taken, huge Allied forces moving across the Channel from England, descended upon the coast of Normandy. General Eisenhower was in supreme command. Until the latter part of July, the Allies were occupied with securing their position and enlarging their holdings in Normandy. Then they broke through the German lines at St. Lo, and soon they cleared most of northern France of

Germans. Paris was liberated on August 28, 1944. On August 15, the Allies invaded southern France from the Mediterranean. In September they began the invasion and liberation of Belgium. The capture of the Channel coast freed the British of the scourge of rocket bombs and robot planes, which the Germans had for some time been directing across the Channel.

In October, 1944, the Allies began to break into Germany. In December the Germans made one last mighty counteroffensive in the famous battle of the Bulge. With that thrust broken, the Allies swept into Germany. All the while, American, British, and other air forces kept hammering at the Germans everywhere, destroying military installations, railroads, and whole cities.

In 1942 the Germans made tremendous and desperate efforts to take the Russian manufacturing city of Stalingrad, on the Volga River some 200 miles from the Caspian Sea. By the close of the year the Germans had clearly been defeated at Stalingrad. For two years after the delivery of Stalingrad the Russians pushed the Germans before them, along the whole immense eastern front. They cleared the territory of the U.S.S.R., Finland, Poland, Czechoslovakia, much of the Balkan Peninsula, Hungary, and Austria of Germans. They overran eastern and much of southern Germany. On April 21, 1945, Russian armies stood before Berlin, which they took after 12 days' fighting. On April 25 American military units made contact with Russian units within Germany. On April 30, Adolf Hitler committed suicide within one of the last defended shelters in Berlin.

On May 6, 1945, members of the German High Command signed documents to the effect that their country and all its armed forces surrendered unconditionally to the Allies. President Franklin Delano Roosevelt had died less than a month earlier, on April 12, 1945. The victory over Germany was announced over the radio by President Harry S. Truman on May 8, the date set for the surrender to become effective. The

new President cautioned his countrymen that victory had not yet been completed, that Japan must still be overcome.

THE ROAD TO TOKYO

The Japanese, after Pearl Harbor, struck southward from their homeland. Immediately they attacked the Philippines. Their planes destroyed the greater part of the American air forces there, catching them on the ground as at Pearl Harbor. The defense of Bataan Peninsula by Filipinos and Americans was dramatic and heroic. On May 6, 1942, Corregidor, the little island at the entrance to Manila Bay, the last important defensive position in the Philippines, was surrendered to the Japanese. By that time they had taken Guam, Hong Kong, the Malay Peninsula, Singapore, most of the East Indies, the Andaman Islands in the Bay of Bengal, Burma, and Thailand (Siam). They had things their own way in China. In the direction of Hawaii they had taken Wake Island, and in the month of June they were to take the islands of Attu and Kiska in the Aleutian group. In the summer of 1942 the Japanese threatened Australia. At the same time the Germans were confidently attacking Stalingrad, and German and Italian forces, invading Egypt, menaced Suez at the principal crossroads of the Old World. It was the time of highest tide for the Axis, a time of low tide for the Allies. But tides turn.

A major Japanese attack was decisively beaten back in the naval battle of Midway, in June of 1942. Meanwhile, in Australia and New Zealand men and materials were being collected — chiefly American, but with the Australians and the New Zealanders contributing their fair share and more. General Douglas MacArthur, who had been in command in the Philippines, was in supreme command in Australia. When the Allies were strong enough to attack the Japanese, they did so. On August 7, American forces attacked the Japanese on the island of Guadalcanal in the Solomon Group. Battles by land and sea, for the control of the island, raged for seven months

before the Japanese were finally overcome. In 1943–44 there were battles for the possession of many islands and parts of islands, as Tarawa, Saipan, and New Guinea. Guam was recovered, as were Attu and Kiska, in the Aleutians.

In October, 1944, forces under General MacArthur landed in the Philippines, and on July 5, 1945, the general announced that the Islands had been cleared of Japanese. Iwo Jima, a tiny but important island south of Tokyo, and Okinawa, south and somewhat west of Japan proper, were taken after desperate fighting. Superfortresses and other planes, largely based on these two islands, hammered points in the principal islands of Japan. The Japanese navy had been reduced almost to helplessness by losses in many battles, as those off Midway and off the islands of the Philippine Archipelago. American warships entered Tokyo Bay, sank the Japanese warships they found there, and bombarded points on the shore.

On July 26, 1945, in a proclamation from Potsdam, Germany, the United States, Great Britain, and China called upon Japan to surrender if she wished to avoid complete destruction. The demand was ignored. On August 6 the most terrible weapon ever devised was employed against Japan. An atomic bomb was dropped on Hiroshima. The greater part of the city disappeared instantly in a cloud of dust and smoke that rose to the stratosphere. On August 7 Russia declared war on Japan. On August 9 an atomic bomb — the second to be used — was dropped on Nagasaki, with results comparable with those at Hiroshima. On August 10, the Japanese offered to surrender, but asked that their emperor might be allowed to remain on the throne. The request was granted for the time being, but without any guarantee for the future. On August 14 the Japanese government announced the unconditional surrender of the country. On September 2 (Tokyo time) the formal ceremony of the surrender of Japan to the Allies took place on board the battleship *Missouri,* in Tokyo Bay.

We have been interested in following the course of events that led to the renewal of world warfare in 1939 and to our involvement therein in 1942. We have noted in a very general way how the war developed and how it was brought to an end. We have not been concerned, in these particular studies of ours, with the details of campaigns and battles, with the part played by different fighting units, with the skill of one commander and another, with the war effort of our country on the home front, or with many other matters that have great interest in themselves. We have been chiefly concerned about the late war as furnishing part of the background for world events of the present time and of the future.

In Paris, on May 8, 1945, General Eisenhower issued a victory order of the day and proclamation to the men and women of the Allied Expeditionary Forces. His observations on the task concluded and the problems ahead are worthy of note by every citizen of each of the Allied nations. In part he said:

> Full victory in Europe has been attained. Working and fighting together in a single and indestructible partnership, you have achieved a perfection in unification of air, ground, and naval power that will stand as a model in our time.
>
> The route you have traveled through hundreds of miles is marked by the graves of former comrades. From them have been exacted the ultimate sacrifice: Blood of many nations — American, British, Canadian, French, Polish, and others — has helped to gain the victory. Each of the fallen was a member of the team to which you belong, bound together by a common love of liberty and a refusal to submit to enslavement.
>
> No monument of stone, no memorial of whatever magnitude, could so well express our respect and veneration for their sacrifice as would perpetuation of the spirit of comradeship in which they died.
>
> As we celebrate victory in Europe, let us remind ourselves that common problems of the immediate and distant future can be best solved in the same conceptions of coöperation and devotion to the cause of human freedom as have made

this expeditionary force such a mighty engine of righteous destruction.

Let us have no part in the profitless quarrels in which other men will inevitably engage, as to what country and what service won the European War. Every man, every woman, and every nation here represented has served according to his or her ability and the efforts of each have contributed to the outcome.

QUESTIONS AND TOPICS FOR DISCUSSION

1. What was the chief feature of the Neutrality Act of 1935? Did the duties of neutrality, as understood in international law, require this?
2. What was the chief feature of the Neutrality Act of 1937? Did the duties of neutrality require this?
3. In November, 1941, what did Congress do, in effect, with reference to then existing neutrality legislation?
4. What was the last area that Hitler annexed, or reannexed, to Germany without recourse to war?
5. What land did Mussolini annex to Italy in 1939?
6. On what areas did Hitler have designs in 1939?
7. Mention the successive positions that Hitler took with reference to Russia.
8. What is the name of Hitler's book? Where was the book written? For what purpose was it written?
9. What was the attitude of other nations generally toward Russia, following the Bolshevist revolution?
10. How did Hitler get a free hand on the eastern borders of Germany?
11. What happened to Danzig in 1939? to Poland?
12. What has been the position of the Irish Free State within the British Empire? with reference to the war?
13. What was the *Sitzkrieg?*
14. Mention several respects in which the war that began in 1914 and the war that began in 1939 differed greatly from all earlier wars.
15. What important powers that opposed Germany in World War I became military allies of Germany? Why did these powers take sides as they did, each time?
16. Mention a number of ways in which World War II differed from World War I.

17. Name the small nations that had frontage on the Baltic Sea, and tell the present status of each.
18. Name the countries that occupied territory in the Balkan Peninsula in the 1920's, and tell the present status of each.
19. What countries came under German domination during Hitler's régime?
20. Tell briefly about the *Blitzkrieg* of the earlier part of 1940
21. What did the Free French accomplish?
22. Why was the control of Libya of special importance in World War I? Study the map for your answer.
23. What was the situation with reference to the war, just before the surrender of Germany? of Russia? of Turkey? of Switzerland? of Spain? of Ethiopia? of the Irish Free State? of Italy? (See *The World Almanac* for 1946, pages 40–42.)
24. What did Napoleon I find out about Russia that Hitler might well have taken into account for his own good?
25. What did Napoleon I find out about Great Britain that Hitler might well have taken into account?
26. How did the two bicycle makers of Dayton revolutionize warfare?
27. Note briefly some of the successive stages of majority opinion in the United States, touching the war and our government's attitude toward it.
28. What did the Lease-Lend Bill provide for, principally?
29. What was the "destroyer deal"?
30. Compare the opening of the Russo-Japanese War in 1904 with the beginning of warfare between our country and Japan in 1941.
31. What are the Eight Points of the Atlantic Charter? Let the class undertake to list them.
32. What were the three important features of the declaration that was made at Washington under date of January 1, 1942?

Optional Assignments

Each of the topics that follow may be taken for special study by two or more students who will make a report to the class.

1. The story of the Anti-Comintern Pact, or pacts; of the present Communist International, if one exists.
2. The relations between Czarist Russia and the United States, especially during the American Civil War and in 1867.

3. The successive forms of government in France (with their dates) since the time of the American Revolution.
4. The place of emperor worship in Japan, before the surrender of Japan and after.
5. Find out about the totals of casualties for the different belligerents in World War I. Compare them with casualties in World War II There is matter on these points in *The World Almanac* for 1946, on pages 44 and 137



"The nightmare passes," a cartoon by David Low. Copyright all countries Reprinted by permission of the artist.

1939	
April 6	Poland receives French and British guarantees of aid in the event that her independence is threatened.
April 15	President Roosevelt appeals to Mussolini and Hitler to make new ten-year non-aggression pacts to help insure peace.
April 28	Germany demands the return of Danzig and a rail and motor road through the Polish Corridor to East Prussia.
May 3	The Soviet government removes Maxim Litvinov from the Foreign Office and replaces him with Viacheslav Molotov. This action marks a change in foreign policy, away from cooperation with Western democracies.
May 22	Germany and Italy sign a ten-year military pact.
August 16	Germany makes new demands on Poland.
August 23	A German-Soviet non-aggression pact is signed by Foreign Ministers von Ribbentrop for Germany and Molotov for the Soviet Union.
August 30	Poland announces general mobilization
August 31	Poland informs Germany that she accepts British proposals for negotiating their dispute
	Germany closes all lines of communication with Poland, Britain and France begin mobilization.
September 1	Hitler declares that force will be met with force. The German army invades Poland without any declaration of war Germany annexes the Free City of Danzig.
September 3	Great Britain and France demand an immediate reply to their ultimatum to Germany on withdrawal from Poland's territory The German government refuses to reply to the ultimatum. Britain and France announce that they are at war with Germany, and war begins on the western front.
	The British liner *Athenia* is torpedoed and sunk, 250 miles northwest of Ireland.
	The Germans cut off the Polish Corridor.
September 16	Soviet troops invade eastern Poland.
	The Germans, already at Warsaw, demand the surrender of the city.
September 22	Germany and the Soviet Union announce the division of Polish territory.
September 27	Warsaw surrenders
September 29	A ten-year pact between the Soviet Union and Estonia gives the Soviet Union the right to maintain naval bases and airfields in return for Soviet protection. (Latvia and Lithuania sign similar pacts by October 10.)
	Great Britain in a White Paper on the origin of the war states that all machinery of the League of Nations for the preservation of peace has collapsed.
October 7	British troops begin to arrive in France.

1939	
October 19	Great Britain, France, and Turkey sign a treaty of mutual assistance against aggression.
November 26	The Germans mass air attacks on the British fleet in the North Sea.
	The Soviet Union asserts that the Finns fired on Russian troops, and demands that Finnish troops withdraw from the border.
November 29	The Soviet Union breaks off diplomatic relations with Finland.
November 30	Soviet troops invade Finland.
December 3	A meeting of the League of Nations is called, on the appeal of Finland, to consider the Soviet-Finnish war.
December 13	British cruisers cripple the German pocket battleship *Graf Spee* near Montevideo. The *Graf Spee* is scuttled after leaving harbor on December 17.
1940	
January 13–14	Belgium calls all soldiers back from leave.
March 1	Soviet armies are within a mile of Viborg, Finland.
March 6	Soviet peace terms are given to Finland through Sweden.
March 12	The Soviet Union and Finland sign a peace treaty, by which Finland yields to Russia territory along her southern border, giving Russia command of the head of the Gulf of Finland.
March 16	President Roosevelt, in a radio broadcast, gives his views on the basic terms for a sound peace.
March 18	Hitler and Mussolini have a conference at the Brenner Pass (on the Italian-German border).
March 21	Paul Reynaud takes office as Premier of France.
March 28	The Anglo-French Supreme War Council declares the war and post-war unity of the two countries.
April 2	The British announce an intensified blockade against Germany.
April 6	Norway declares her intention to maintain neutrality.
April 8	Sweden declares neutrality.
April 9	Germany takes Denmark without fighting.
	German troops land in Norway and fight to overcome Norwegian resistance.
	Allied and German vessels fight along the Norwegian coast.
	President Roosevelt extends war zone (from which American merchant vessels are excluded under the Neutrality Act of 1939) to include the coast of Norway.
May 2	Prime Minister Chamberlain announces that the British have withdrawn from southern Norway.
May 10	Germany invades the Netherlands, Belgium, and Luxembourg.
	Britain occupies Iceland.
May 11	Neville Chamberlain resigns, and Winston Churchill becomes Prime Minister of Great Britain.

1940	
May 17	The Germans attack all along their western front; they break through the Belgian-French border.
May 20	The Germans drive toward Paris and push 300,000 British troops toward the Channel, along the Belgian-French border.
May 21	The Germans capture Amiens and Arras, and reach Abbéville on the Channel coast.
May 28	King Leopold surrenders the Belgian army.
May 30–31	The British evacuate Dunkerque.
June 4	The Germans capture Dunkerque.
June 9	German troops are within 35 miles of Paris.
June 10	Italy declares war against France and Great Britain.
June 14	The Germans occupy Paris.
June 16	Paul Reynaud resigns as Premier of France, and Marshal Henri Philippe Pétain succeeds him.
June 17	France asks for the German peace terms.
June 20	The Canadian Parliament passes an emergency conscription bill.
June 22–24	France signs an armistice with Germany and Italy.
	The battle of the Atlantic begins in earnest, the Germans attempting to sink every British vessel afloat.
	General Charles de Gaulle establishes a Free French organization in London to carry on war.
June 27	Rumania cedes Bessarabia and northern Bukovina to the Soviet Union.
July 3	Part of the French fleet is destroyed by the British at Oran in Algeria.
	King Carol of Rumania under pressure makes pro-German appointments.
July 17	Francisco Franco, dictator of Spain, warns Great Britain that the Spaniards want Gibraltar.
July 21–30	The Havana Convention, being the second meeting of the foreign ministers of the American republics; the Act of Havana, for hemisphere solidarity and defense.
August 11	German air raids on Great Britain are intensified. The British increase their attacks on German-held territory.
September 3	President Roosevelt announces the exchange of fifty over-age destroyers for leases of bases on British territory in the Western Hemisphere.
	Very heavy bombing of London and other cities in Great Britain continues
September 11	The British attack German vessels in the Channel.
	Churchill warns of invasion attempts.
September 17	Storms in the Channel damage and scatter German barges and supply ships.
	The Italians, in a drive into Egypt through Libya, pass Sidi Barrani, 55 miles within the Egyptian border.

1940	
September 27	Japan signs a military alliance with Germany and Italy.
October 10	German troops move into Rumania.
	Bulgaria orders partial mobilization.
October 12	Soviet forces are reported concentrating on the Rumanian border
October 28	Italian forces invade Greece.
	The Greeks push the Italians back and carry the fighting into Albania.
November 14	Coventry, in England, is devastated by German bombers
November 17	British naval units bombard Italian Somaliland, and British air forces attack Italian bases in Africa
November 18	The Royal Air Force attacks Hamburg; the Germans bomb Southampton.
	Free French forces of General de Gaulle are active in French Africa
November 21	British and Italian planes fight in Libya.
	The Greeks press into Albania.
December 15	The British drive the Italians back into Libya. The Greeks drive the Italians farther back in Albania.
1941	
January 11	German planes appear in the Mediterranean.
February 16	The Italians evacuate their last post in the Sudan
March 19	London has the heaviest air raid of the year, so far.
March 25	The Germans extend the war zone to Greenland, including British-held Iceland
April 3	The British retreat in Libya and advance in Ethiopia.
April 6	German forces begin fighting in Yugoslavia and Greece
April 27	The Germans enter Athens
May 15	The British strengthen their forces at Singapore.
	The British declare Syria (a French mandate) to be enemy-occupied.
May 21	German parachute troops begin an attack on Crete and gain full control of the island within ten days
May 24	The British battleship *Hood* is sunk between Greenland and Iceland.
May 27	The German battleship *Bismarck* is sunk west of Brest by the British.
May 31	Resistance in Iraq ends, and the British enter Baghdad
June 8–13	The British and the Free French take over Syria
June 22	Germany invades the Soviet Union, Russian troops retreat.
	After the German invasion of Russia begins, air raids on Great Britain are greatly reduced
	The Royal Air Force continues pounding German-occupied territory and German industrial centers
June 29	The Finns attack the Russians
July 3	The principal remaining Italian commander in Ethiopia surrenders.

1941	
July 12	A German air raid damages the Suez Canal.
July 24	The Russians hold the German forces in check; there is heavy fighting around Smolensk
August 14	A Joint Declaration of war and peace aims is made at a meeting on the Atlantic Ocean by President Roosevelt and Prime Minister Churchill (called the Eight-Point Program; also the Atlantic Charter).
	The British bomb wide areas on the hostile coasts and also German industrial centers; raids occur almost nightly.
August 24	The Russians destroy the dam and the immense hydroelectric plant on the Dnieper River in the Ukraine, to prevent the Germans from taking them over.
August 25–28	British and Russian troops enter Iran; a new pro-British government of Iran orders resistance to end.
September 19	German forces enter Kiev
September 28	The Russians report heavy German losses near Leningrad.
October 7	Finland reports to Britain that she will continue fighting Russia.
November 10	General Weygand, French commander in North Africa, "retires."
November 13	A British airplane carrier, the *Royal Oak*, sinks near Gibraltar
November 23	There is hard fighting in Libya, the British take Bardia.
	In Russia the Germans capture Rostov in the Crimea.
December 6	Great Russian offensive against whole German line begins.
December 7	The Japanese attack Pearl Harbor Japanese attacks on the Philippines, on Guam, on Midway and Wake Islands, and on British Far Eastern possessions follow within twenty-four hours.
December 8	The United States Congress declares a state of war with Japan. The Senate vote is 82–0; the House vote, 388–1.
December 11	Germany and Italy declare war on the United States.

THE UNITED STATES AND THE WORLD WAR THAT BEGAN IN 1939

1939	
September 8	President Franklin D. Roosevelt proclaims a limited national emergency.
September 21	A special session of Congress is called to repeal the arms embargo in the Neutrality Act.
September 23–October 3	A conference of American foreign ministers meets at Panama to consider New World neutrality. It makes the Declaration of Panama, forbidding hostile acts within 300 miles of the shores of any of the American republics
November 4	The President declares that American merchant vessels must stay out of the combat area in the European war.

1940	
January 15	The Permanent Pan-American Neutrality Committee is organized in Rio de Janeiro.
February 13	The lending power of the Export-Import Bank is increased; a loan to Finland is allowed.
	The largest peacetime naval supply bill is passed by Congress.
April 5	The reciprocal-trade program is extended three years.
May 16	The President asks Congress for defense appropriations of more than a billion dollars.
June 20	The President nominates Henry L. Stimson as Secretary of War and Frank Knox as Secretary of the Navy.
June 24	The Republican National Convention opens in Philadelphia. It nominates Wendell L. Willkie for President and Senator Charles McNary for Vice President.
July 11	The Two-Ocean Navy Act is passed.
July 15	The Democratic National Convention opens in Chicago. It nominates President Roosevelt for a third term and Henry A. Wallace for Vice President.
July 25	An executive order stops exports of American oil and scrap metal except under license.
August 16	The President announces negotiations for the lease of New World naval and air bases from Great Britain.
August 18	The President and Prime Minister Mackenzie King of Canada decide on a joint defense board for the United States and Canada.
August 28	The Congress passes and the President signs the National Guard mobilization bill.
September 1	The President calls 60,000 National Guardsmen to active service for one year.
September 2	The President calls for national unity for "total defense."
September 6	The Congress passes a $5,000,000,000 defense bill.
September 14	The Congress passes the Burke-Wadsworth Conscription Act, the first peacetime conscription in our history.
September 24	An executive order creates the Defense Communications Board, linking radio, wire, and cable in case of emergency.
September 27	The Senate ratifies the Act of Havana, intended, among other purposes, to block the transfer of any European possessions in the Western Hemisphere to other European powers.
October 22	The President creates the Priorities Board.
October 24	The War Department announces the enlargement of military forces in the Philippines.
December 30	The President creates the Office of Production Management (OPM), with William S. Knudsen as chairman.
1941	
January 24	Lord Halifax arrives as the new British Ambassador.
February 3	The Senate approves appropriations to build 200 cargo vessels.

1941	
February 10	The Senate confirms the appointment of John G Winant as Ambassador to Great Britain.
February 14	The State Department advises Americans to leave the Orient.
February 15	The Senate passes a bill to increase the United States debt limit to $65,000,000,000
March 11	Congress passes the Lease-Lend Act
March 12	The President asks for $7,000,000,000 for the Lease-Lend program.
March 19	The President creates the National Defense Mediation Board (NDMB) to settle strikes in defense industries.
March 20	Congress passes an appropriation of $3,950,000,000 for building naval and home defenses.
March 24	New naval defense areas are specified for Alaska.
March 30	Italian and German vessels in United States harbors are seized by the government. Danish vessels also are taken over.
April 11	The Office of Price Administration is created, headed by Leon Henderson.
April 17	It is announced that the automobile industry will cut production 29 per cent on August 1.
April 26	The United States Navy is ordered to extend its patrol far out into the Atlantic to protect shipping to Great Britain.
May 9	The Red Sea area is declared no longer in the combat zone; United States vessels deliver goods there to the British.
June 2	The President signs the Mandatory Priorities Act.
June 6	The President signs the Ship Seizure Act, which permits the taking over of foreign vessels in American ports.
June 13	The War Department requests a 50 per cent cut in automobile output.
June 19	The Office of Production Management (OPM) orders rubber rationing.
June 27	Congress appropriates more than $10,000,000,000 for the army.
July 18	The President announces that the United States will keep sea lanes open to Iceland.
August 1	OPM orders a stop to all raw-silk processing.
August 3	Secretary of the Interior Ickes orders gasoline stations in Eastern states placed on a twelve-hour day. The order is afterward revoked.
August 11	The President sets up a system of control over installment selling.
August 12	Congress passes the bill extending army service for conscripted men to two and a half years.
August 18	The President reports to Congress on his Atlantic meeting with Prime Minister Winston Churchill of Great Britain.
	A census of foreign-owned property is ordered.

1941	
August 29	W. Averell Harriman is named as head of a mission to go to Russia for the purpose of studying Soviet needs, in coöperation with a British mission.
September 11	The President announces that the navy is ordered to destroy German or Italian commerce raiders in American defensive waters.
September 17	United States army units are in Iceland.
	Secretary Knox states that the navy is escorting convoys.
October 6	Wendell L Willkie calls on the Republican party to lead the fight for the repeal of the Neutrality Law
October 9	The Supplies Priorities Allocation Board (SPAB) bans unessential building.
October 17	The United States destroyer *Kearny* is torpedoed and badly damaged off Iceland
October 24	Secretary Knox declares that the Far East situation is strained.
October 28	There is a new Lease-Lend appropriation of $5,985,000,000.
October 31	The United States destroyer *Reuben James* is torpedoed and sunk near Iceland.
November 5	The United States and Canada form a Joint Defense Production Committee.
November 14	President Roosevelt orders the withdrawal of United States marines from China.
November 17	Saburo Kurusu, special envoy from Japan, is received by President Roosevelt
November 19	Restrictions are removed by Congress from the Neutrality Act.
November 26	The State Department sends a note to the Japanese government, stating the basis for a general settlement (Information not released to the press until December 7)
December 6	President Roosevelt sends a personal note to the Emperor of Japan.
December 7	The Japanese government reply to the United States note states that clearly there is no basis for compromise of the conflicting views
	A Japanese attack on the United States naval base at Pearl Harbor, in Hawaii, begins the war between the United States and Japan.
December 8	The Congress of the United States declares the existence of a state of war with Japan since December 7
December 11	Germany and Italy declare war on the United States.
1942	
January 1	The Declaration of Washington embodies the Roosevelt-Churchill Atlantic Charter, or Eight-Point Program of August, 1941. To this all the nations at war with Germany and her allies subscribe.
January 2	Manila is occupied by the Japanese.
January 15–28	A convention is held at Rio de Janeiro, being the third meeting of the foreign ministers of the American republics.

1942	
April 9	Bataan falls to the Japanese.
April 18	Doolittle bombers raid Tokyo.
May 4–8	Japanese defeated in naval battle of the Coral Sea.
May 6	Corregidor falls to the Japanese.
June 21	Rommel's forces capture Tobruk.
August 7	Americans land on Guadalcanal.
August 19	Raid on Dieppe by British and Canadians
October 23	Montgomery defeats Rommel at El Alamein
November 9	Allies under Eisenhower land great forces in Morocco and Algeria.
December 13	British retake Tobruk.
1943	
January 13–24	Roosevelt and Churchill confer at Casablanca.
January 18	Russians break the siege of Stalingrad.
February 21	Americans lose Casserine Pass, Tunisia, retake it February 25.
March 1–4	Japanese defeated in naval battle in Bismarck Sea.
May 12	Axis remnants captured at Cape Bon, Tunisia
May 30	Last Japanese resistance overcome on Attu.
July 9	Allied forces invade Sicily.
July 25	Mussolini ousted. Badoglio Premier of Italy.
August 1	American *Liberators* bomb oil refineries at Ploesti, Rumania.
August 24	Roosevelt and Churchill meet at Quebec (first of two meetings there).
September 3	Allies invade Italy from Sicily.
September 8	Italian royal government surrenders unconditionally.
October 1	Allies take Naples.
October 13	Italian royal government declares war on Germany.
November 20	Americans land on Tarawa
November 22–26	Roosevelt, Churchill, and Chiang Kai-shek confer at Cairo
November 26–December 1	Roosevelt, Churchill, and Stalin confer at Teheran.
1944	
January 22	Allies land near Anzio, Italy.
January 31	Americans invade Marshall Islands.
May 10	Russians retake Sevastopol
May 18	Allies take Monte Cassino.
June 4	Allies take Rome
June 6	Allies under Eisenhower land in Normandy.
June 15	Americans land on Saipan.
June 16	First robot-plane bombs fall in Britain.
June 18–19	First battle of the Philippine Sea. Japanese defeated.
July 7	*B 29*'s bomb Japan.
July 18	Americans break through German lines at St Lo.

August 10	Guam retaken by Americans.
August 15	Allies land in southern France
August 25	Paris freed.
September 11–16	Second Quebec meeting of Roosevelt and Churchill.
September 24	Russians enter Czechoslovakia and Hungary.
October 4	British invade Greece.
October 19	Americans under MacArthur land in Philippines
October 24–25	Second battle of the Philippine Sea; Japanese naval strength crushed.
November 15	Mass drive on Germany starts under Eisenhower
December 20	Von Rundstedt begins the battle of the Bulge, last great German counterattack
1945	
January 15	Germans in full retreat from the Bulge.
January 17	Russians take Warsaw.
February 3–11	Roosevelt, Churchill, and Stalin confer at Yalta in the Crimea
February 13	Russians take Budapest.
February 19	Americans land on Iwo Jima Win complete control, March 17.
February 21–March 9	Inter-American Conference at Mexico City.
February 23	American forces enter Manila
March 8	Americans cross Rhine on Remagen bridge.
March 29	Frankfort-on-the-Main taken by Patton's forces.
April 1	Americans land on Okinawa.
April 12	President Franklin D. Roosevelt dies. Harry S. Truman, President.
April 21	Russians enter Berlin.
April 21	American and British forces take Bologna.
April 26	Russian and American troops join at Torgau, Germany.
May 8	Formalities of unconditional surrender of Germany completed and announced.
June 21	Last organized Japanese resistance on Okinawa overcome.
July 5	Last organized resistance by Japanese in Philippines overcome
July 17–August 2	Berlin-Potsdam Conference. Harry S. Truman; Winston Churchill, succeeded during the conference by Clement R. Attlee; and Joseph Stalin meet.
July 26	From Potsdam, Germany, the United States, Great Britain, and China call upon the Japanese to surrender.
August 6	First atomic bomb dropped on Hiroshima.
August 8	Russia (U.S.S.R.) declares war on Japan
August 8	Second atomic bomb dropped on Nagasaki
August 14	Unconditional surrender announced by Japan.
September 2	Formal surrender made by Japanese on battleship *Missouri* in Tokyo Bay.

V

WORLD AFFAIRS IN THE ATOMIC AGE

It is more difficult to organize peace than to win a war; but the fruits of victory will be lost if the peace is not well organized. ARISTOTLE (384–322 B.C.)

War will never yield but to the principles of universal justice and love. WILLIAM ELLERY CHANNING

CHAPTER 13

COÖPERATION IN WARTIME

IN WORLD WAR I the Allied and Associated Powers (the European Allies and the United States) cooperated effectively, and they won a great victory over the Central Powers. In World War II the Allies (including the United States, but with Italy and Japan in the enemy group) again coöperated effectively and again won a victory, which was complete on the land, at sea, and in the air. Coöperation in war can be highly successful, because the peoples see clearly the absolute necessity for working together. With missiles falling among civilian populations as well as on military objectives, even the most unimaginative persons realize what may be the results of failure.

THE PRINCIPAL ALLIES OF WORLD WAR II

When the Germans attacked Poland in 1939, they knew that they would immediately have Great Britain and France to fight. When Poland was conquered, the principal Allies opposed to Germany were Great Britain and France. France was beaten and the Italians – under Mussolini – joined the Germans, to be in at the kill. The Germans attacked Russia; and the British gladly made common cause with this huge ally that Hitler had given them. The Japanese attacked our country, and all three of the principal members of the Rome-Berlin-Tokyo Axis were involved. The Japanese action necessarily brought the United States into the war against Germany and Italy; brought Great

Britain into the war against Japan. The Japanese had long been fighting the Chinese. So our country found itself with a set of major allies, chosen for it by circumstances.

Newspaper men and others came to refer to the United States, Great Britain, and Russia (or the U.S.S.R., or the Soviet Union) as the "Big Three"; to the Big Three plus China, as the "Big Four"; to the Big Four plus "Free France," as the "Big Five." Commonly, also, the men at the heads of the governments of the Big Five were referred to in the same manner.

THE UNITED STATES AND GREAT BRITAIN BROUGHT TOGETHER: THE ATLANTIC CHARTER

When the leaders of Germany and Italy and Japan openly declared themselves and their countries to be opposed to democracy wherever it might exist, they necessarily lost the good will of the people and the government of our country. When Germany and Italy went to war with Great Britain and France, the sympathies of the great majority of our citizens were with the British and the French as the upholders of the cause of democracy – our cause. When the Third French Republic had been brought almost to its knees by the *Blitzkrieg* of the earlier part of 1940, the British government offered the French leaders a union with Great Britain, to be called "The Anglo-French Nation." The French leaders refused and France fell, although a "Free France" was maintained under the leadership of General Charles de Gaulle, with headquarters in London. The Free French controlled some of the outlying French possessions.

From June, 1940, until June, 1941, when Hitler brought Russia into the war against Germany, Great Britain with the British Dominions (but not Eire), British India, and the British colonies bore the brunt of the war. England (particularly London) and Scotland were *blitzed* from the air, and there was fear that the Germans might launch a huge invasion of Britain from the French side of the Channel, which might be

successful. Then the British government assured our government that Great Britain would never surrender; that even if Britain were overrun by the enemy the British government would find refuge in Canada, that the British fleet would continue in the war. Obviously, the hard-pressed British stood between us and the enemies of democracy. Nevertheless, many of our people were not mentally prepared for our country's entry into the war.

President Roosevelt clearly realized the danger, and he got Congress to pass a number of near-war measures (page 292). In an address to Congress, on January 6, 1941, he seemed to presuppose our involvement in the war and ultimate victory over the enemies of democracy. In the words that follow, he declared four goals, "four freedoms," that ought to be attained *everywhere in the world:*

> In the future days, which we seek to make secure, we look forward for a world founded upon four essential human freedoms.
> The first is freedom of speech and expression — everywhere in the world.
> The second is freedom of every person to worship God in his own way — everywhere in the world
> The third is freedom from want — which, translated into world terms, means economic understandings which will secure to every nation a healthy, peaceful life for its inhabitants — everywhere in the world.
> The fourth is freedom from fear — which, translated into world terms, means a world-wide reduction of armaments to such a point and in such a thorough fashion that no nation will be in a position to commit an act of aggression against any neighbor — anywhere in the world.

The Lease-Lend Act of March, 1941, was designed to help all effective enemies of the Axis Powers, but chiefly Great Britain.

In August of 1941, the Atlantic Charter was drafted and made public by Prime Minister Winston Churchill and President

Roosevelt (pages 296 and 297). It was a remarkable document, in view of the fact that our country was technically at peace with all the world. It reads like the declaration of two countries, *both* of which were engaged in warfare against Germany: "After the final destruction of the Nazi tyranny, they hope to see established a peace," etc. The fact is that our country was actually at war and should have been at war, but was not yet fully at war.

THE DECLARATION OF WASHINGTON: "UNITED NATIONS"

Pearl Harbor instantly put us completely into the war, less than four months after the Atlantic Charter was issued. By the 1st of January, 1942, twenty-six countries were at war with the Axis Powers. Their representatives, then gathered at Washington, Winston Churchill being present, issued the following:

DECLARATION BY UNITED NATIONS

A joint declaration by the United States of America, the United Kingdom of Great Britain and Northern Ireland, the Union of Soviet Socialist Republics, China, Australia, Belgium, Canada, Costa Rica, Cuba, Czechoslovakia, Dominican Republic, El Salvador, Greece, Guatemala, Haiti, Honduras, India, Luxembourg, Netherlands, New Zealand, Nicaragua, Norway, Panama, Poland, South Africa, Yugoslavia.

The governments signatory hereto,

Having subscribed to a common program of purposes and principles embodied in the joint declaration of the President of the United States of America and the Prime Minister of the United Kingdom of Great Britain and Northern Ireland dated August 14, 1941, known as the Atlantic Charter, being convinced that complete victory over their enemies is essential to defend life, liberty, independence, and religious freedom, and to preserve human rights and justice in their own lands as well as in other lands, and that they are now engaged in a common struggle against

savage and brutal forces seeking to subjugate the world, declare:

(1) Each government pledges itself to employ its full resources, military or economic, against those members of the tripartite pact and its adherents with which such government is at war.

(2) Each government pledges itself to coöperate with the governments signatory hereto and not to make a separate armistice or peace with the enemies.

The foregoing declaration may be adhered to by other nations which are, or which may be, rendering material assistance and contributions in the struggle for victory over Hitlerism.

Done at Washington.
January First, 1942.

The Declaration of Washington, by reference, put the signatory powers on record as favoring the principles of the Atlantic Charter. Let us look at that document (pages 296 and 297) and consider the Eight Points.

The first three points have to do with political security: (1) There is to be no aggrandizement; that is, aggression. (2) There are to be no changes in boundaries against the wishes of the peoples concerned (not fully applied to conquered enemy peoples). (3) All peoples are to be free to choose their own forms of government (not in practice applied to most colonial peoples).

Points 4, 5, 6, and 7 deal with one of Mr. Roosevelt's "Four Freedoms"; that is, "freedom from want" — economic security for men and nations. Points 6 and 7 also touch upon another of the "freedoms" — freedom from fear.

Point 8 deals with freedom from fear. It suggests the disarmament of aggressor nations and the reduction of armaments by other nations, in the interest of peace. Most significantly, it suggests — or assumes — *"the establishment of a wider and permanent system of general security"*; that is, a more complete

and effective international organization than the League of Nations.

The Declaration of Washington was headed "Declaration by United Nations." This was the first official use of the term "United Nations." The Declaration foreshadowed the establishment of the United Nations organization.

INTERNATIONAL CONFERENCES

MAJOR-POWER CONFERENCES: CASABLANCA; QUEBEC

The Atlantic meeting of Roosevelt and Churchill was the first of a series of comparable meetings which were held during the years 1939 to 1945. Roosevelt and Churchill met again at Casablanca, Morocco, in January of 1943, a year and a month after Pearl Harbor. For ten days they conferred about plans for the prosecution of the war in all parts of the world.

In August of 1943 Roosevelt and Churchill met at Quebec, to discuss war measures. This time China was represented by one of her statesmen, Mr. T. V. Soong.

MOSCOW

In October of 1943 the foreign ministers of the United States (Secretary of State Cordell Hull), Great Britain, and Russia met at Moscow and considered many details in the relations of their countries toward one another. Most important, they issued the Declaration of Moscow, in which they said, on behalf of their nations:

> They recognize the necessity of establishing at the earliest practicable date a *general international organization*, based on the sovereign equality of all peace-loving States, large and small, for the maintenance of international peace and security.

The Moscow Declaration carried a little further, made a little more definite, the reference in the Atlantic Charter to "a permanent system of general security."

CAIRO

At the end of November in 1943 Roosevelt, Churchill, and the head of the government of China, Generalissimo Chiang Kai-shek, met at Cairo. They planned to press the war on Japan, stripping her of her conquests.

TEHERAN

From November 26 to December 2, 1943, Roosevelt, Churchill, and Marshal Joseph Stalin, head of the government of Russia (the U.S.S.R.), met at Teheran. The Big Three planned the further prosecution of the war against Germany. (Marshal Stalin did not attend the Cairo Conference because his country was not at the time at war with Japan.) They pledged their countries to the effort to establish an enduring peace. They said that they would seek the coöperation of all peace-loving nations; that they would welcome them into *the world family of democratic nations.*

SECOND QUEBEC CONFERENCE

In September of 1944 Roosevelt and Churchill met again at Quebec. They considered the war in Europe, which was obviously drawing to its close, and they planned the final great push against Japan. Of this conference Mr. Churchill said: "Our affairs [British and American] are so intermingled that it would not be possible to conduct these great affairs and large combined plans without frequent meetings of the principals and their high officers."

UNITED NATIONS CONFERENCES: AGENCIES

In May of 1943 delegates from 44 United Nations met at Hot Springs, Virginia. As a result of this conference the *Food and Agriculture Organization of the United Nations* was set up in 1945. Its purpose is to make agricultural production more effective throughout the world. Its means to that end will be research and the spreading of information.

On November 9, 1943, in a meeting at Washington, representatives of the nations at war with the Axis agreed to set up the *United Nations Relief and Rehabilitation Administration.* The purpose of "UNRRA" was to give aid to individual victims of Axis aggression and cruelty. A "world community chest" of several billions of dollars was planned, the United States to supply a little more than three fifths of the amount. UNRRA began to function in 1944.

In July of 1944 a United Nations conference was held at Bretton Woods, New Hampshire. It dealt with problems of international finance. It planned an *International Monetary Fund* for keeping the currencies of the nations from fluctuating constantly in value. Also it planned a *Bank for Reconstruction and Development.* The purpose of this International Bank was and is to make or guarantee loans for repairing war damages and for aiding industry in underdeveloped countries. The Fund and the Bank came into existence in 1946

In November and December of 1944 an International Civil Aviation Conference was held in Chicago. Representatives of 54 countries — United Nations and neutrals — attended. They drew up a constitution for an international Civil Aviation Organization. Agreements were drafted under which the planes of signatory nations have some or all of the following rights: To pass over the territory of any member nation; to land for fuel and repairs; to take on and to land passengers, mail, and cargo. Committees of the Civil Aviation Organization concern themselves with such matters as the identification of aircraft, the licensing of airmen, weather reporting, and traffic control.

DUMBARTON OAKS AND YALTA MAJOR-POWER CONFERENCES

A major-power conference was held at Dumbarton Oaks in the city of Washington, from August 21 to October 7, 1944. Representatives of the United States, Great Britain, Russia, and China — the Big Four — drafted plans for a *permanent* organiza-

tion to be known as *The United Nations.* The name had become familiar following the Declaration of Washington; but no central authority had been set up: there were members and agencies, but no head.

In February of 1945 Marshal Stalin, Prime Minister Churchill, and President Roosevelt met at Yalta in the Crimea. The Big Three made plans for the occupation and control of Germany, which was still fighting. There were decisions regarding the governments of Poland and Yugoslavia. It was arranged that the foreign secretaries (our Secretary of State) of the three powers should meet periodically. Most important, it was agreed that a call should be made for a meeting of representatives of all the United Nations at San Francisco, to begin on April 25, 1945. The San Francisco Conference was to draw up a charter for the "general international organization" mentioned as a necessity in the Declaration of Moscow, the groundwork for such a charter having been prepared at Dumbarton Oaks.

INTER-AMERICAN CONFERENCE AT MEXICO CITY

From February 21 to March 9, 1945, there was held in Mexico City the Inter-American Conference on War and Peace. Back of this meeting were the conferences of American Ministers (Secretaries) of Foreign Affairs held at Panama in 1939, at Havana in 1940, and at Rio de Janeiro in 1942. (See pages 256 and 259.)

At the Mexico City Conference the Pan-American Union, or the Inter-American System, was given greater political strength. There were four major actions:

First. The governing board of the Union was given power on its own motion to consider any matter that might affect Inter-American relations. It was arranged that the Chairman of the Governing Board of the Union should be *elected,* beginning in 1946. Before Mexico City, our Secretary of State had always been the Chairman of the Board.

Second. The Dumbarton Oaks proposals for a permanent United Nations were approved in principle; but changes and additions were suggested in the interest of the Latin-American nations.

Third. The Conference adopted the *Act of Chapultepec.* It provided that during the war period the American republics would act together in *any* case of aggression – whether by a New World power or an Old World power – against any one of them. The Conference recommended that after the war new treaties should be made, making the same provision. The Act of Chapultepec was designed to turn the Inter-American System, or Pan-American System, into a regional collective-security organization.

Fourth. Argentina, having fallen into the hands of leaders of Fascist and Nazi sympathies, had not been invited to attend the Mexico City Conference. However, the Inter-American System would not be complete without Argentina, one of the most important of the American nations. A resolution was passed by the Conference, which stated that the Argentine government would be recognized by the other republics if she would declare war on Germany and Japan.

On March 27, 1945, when the situation of Germany and Japan was hopeless, Argentina declared war against them. All of the 21 American republics were now qualified and ready to participate in the San Francisco Conference, called for at Yalta, which was to plan a new organization for all peace-loving nations.

Questions and Topics for Discussion

1. Which nations constitute the Big Three? the Big Four? the Big Five?
2. From December, 1942, until April 12, 1945, who were the men that were referred to as the Big Three? the Big Four? the Big Five?
3. By what other designations is the Union of Soviet Socialist Republics often referred to?

4. What was "Free France"? "Vichy France"? Who led Free France? Who was the nominal head of Vichy France?
5. What were the "Four Freedoms" that Franklin Delano Roosevelt desired to promote? Where did he desire to have them promoted?
6. Under what circumstances was the term "The Anglo-French Nation" coined?
7. With reference to Pearl Harbor, when was the Atlantic Charter issued? the Declaration of Washington?
8. What was the first official use of the term "United Nations"?
9. What two pledges, with reference to the war, were made in the Declaration of Washington?
10. What were the political-security points of the Atlantic Charter?
11. Which two of Mr. Roosevelt's "Four Freedoms" were bolstered in the Atlantic Charter? By what provisions?
12. What was suggested by the words, "the establishment of a wider and permanent system of general security"?
13. Who met at Casablanca? For what purpose?
14. What was the most important statement included in the Moscow Declaration?
15. Which leaders met at Cairo? For what purpose?
16. Which leaders met at Teheran? For what purpose?
17. What did Prime Minister Churchill say concerning British-American affairs after the Second Quebec Conference?
18. What was the work of the Hot Springs Conference?
19. For what purpose was UNRRA. set up?
20. Which of the war years was marked by the largest number of international meetings?
21. What two international agencies did the Bretton Woods Conference plan?
22. Agreements to what end, or ends, were planned for at the International Civil Aviation Conference held at Chicago in 1944?
23. What was the notable work of the Dumbarton Oaks Conference?
24. At what major-power conference were the date and place of the San Francisco Conference set?
25. At Mexico City, in 1945, what was specified in regard to the office of Chairman of the Governing Board of the Pan-American Union?
26. What was done with reference to the Dumbarton Oaks proposals, at Mexico City?

27. What did the Act of Chapultepec provide with reference to aggression?
28. What did the Mexico City Conference specify with reference to Argentina?

Optional Assignments

1. Compare the Eight Points of the Atlantic Charter with Wilson's Fourteen Points.
2. Compare the Inter-American situation, or Inter-American relations, at the Mexico City Conference and after, with the situation during Theodore Roosevelt's Presidency (page 253).
3. Find out and report on the degree of success that attended the work of UNRRA. There is an article on this matter in *Harper's Magazine* for January, 1946, beginning at page 77. Find other periodical or newspaper matter on the subject, as recent as possible.



The emblem of the United Nations.

CHAPTER 14

THE UNITED NATIONS

THE United Nations came into being during World War II, and its Charter was drawn up before the war was over. Paradoxical as it may seem on the surface of things, the United Nations' actions and agencies during the war years were designed, very largely, to serve the ends of peace. The Declaration of Washington, in which the term "United Nations" was first officially used, by reference incorporated in itself the Atlantic Charter, which laid down principles for an enduring peace to come, rather than for war. The Charter of the United Nations represents the seedling planted in the Atlantic Charter, brought to fruition very largely through the efforts of Franklin D. Roosevelt. Mr. Roosevelt died on April 12, 1945, before the San Francisco Conference was to meet; but his successor, President Harry S. Truman, carried out his purposes with reference to that Conference and its work.

THE CHARTER OF THE UNITED NATIONS FRAMED AND ADOPTED

THE SAN FRANCISCO CONFERENCE

Beginning on April 25 and ending on June 26, 1945, representatives of 51 United Nations met at San Francisco – as was suggested at Yalta – to draft a charter for an international organization that was expected to supersede the League of Nations and to be far more effective. The nations represented

were the following: Argentina, Australia, Belgium, Bolivia, Brazil, Byelorussia S.S.R., Canada, Chile, China, Colombia, Costa Rica, Cuba, Czechoslovakia, Denmark, Dominican Republic, Ecuador, Egypt, El Salvador, Ethiopia, France, Greece, Guatemala, Haiti, Honduras, India, Iran, Iraq, Lebanon, Liberia, Luxembourg, Mexico, Netherlands, New Zealand, Nicaragua, Norway, Panama, Paraguay, Peru, Philippines, Poland, Saudi Arabia, Syria, Turkey, Ukraine S.S.R., Union of South Africa, Union of Soviet Socialist Republics, United Kingdom, United States, Uruguay, Venezuela, Yugoslavia.

Poland, recently liberated, was not represented at the Conference, because the government indicated for her at Yalta had not yet been set up. However, Poland, the first object of Hitler's attack in 1939, is considered an original member of the United Nations. Finland, which had been an ally of Germany but declared war against her on March 3, 1945, had not qualified as a United Nation and was not represented. Also unrepresented were Switzerland, Sweden, Spain, and Portugal – all neutrals and not members of the United Nations. The presence of representatives of the Franco government in Spain was not desired, for that government had been set up with the aid of Fascist Italy and Nazi Germany.

The chairman of the American delegation at San Francisco was our then Secretary of State, Edward R. Stettinius, Jr. With him were Senator Tom Connally, Senator Arthur H. Vandenburg, Representative Sol Bloom, Representative Charles A. Eaton, Dean Virginia C. Gildersleeve (Barnard College), and Commander Harold E. Stassen (former Governor of Minnesota). As consultants to our delegation there were present in San Francisco representatives of American business, labor, education, agriculture, women, religious faiths, and professional groups – in all, 42 national organizations.

The Charter that the Conference framed followed rather closely the proposals that were made at Dumbarton Oaks. However, there was one interesting addition in the Charter –

the mention of education – not only once but six times. Dumbarton Oaks had merely specified that there should be provision for "social and other humanitarian matters."

THE CHARTER SIGNED AND RATIFIED

On June 25 the delegates present voted unanimously their approval of the Charter which they had just completed. The text of the Charter is to be found on pages 115 to 121 of *The World Almanac* for 1946. Copies of the Charter may be obtained from the American Association for the United Nations, 45 East 65th Street, New York 21, N. Y.

The Charter was signed as of June 26, and separately there was signed the Statute for the International Court of Justice. The Charter provided that there should be such a court. The Statute followed closely the Statute for the Permanent Court of International Justice (the World Court that came into existence with the League of Nations).

On June 26, 1945, President Truman, having flown to San Francisco from Washington, addressed the Conference. In the course of his address he said: "If we had had this Charter a few years ago – and above all, the will to use it – millions now dead would be alive. If we should falter in the future in our will to use it, millions now living will surely die."

On July 28, 1945, the Charter was ratified by the United States Senate by a vote of 89 to 2.

On October 24, 1945, the Union of Soviet Socialist Republics completed its ratification of the Charter. The rest of the Big Five and a majority of the other signatory powers had already deposited their ratifications, as was required. And thus the United Nations organization came into existence.

PROVISIONS OF THE CHARTER

The success of any government depends, in the long run, on the knowledge and wisdom of the subjects of that government. And the effectiveness of any international organization will de-

pend on the informed good sense of people generally Whether or not the United Nations will fulfill the high hopes of the vast majority of mankind, lovers of peace, will depend in however slight a measure on the interest, understanding, and good will of each citizen of each United Nation, including each of us.

COMPARISONS

The preamble of the Charter begins, "We the *peoples* of the United Nations." The preamble of the United States Constitution begins, "We the people of the United States." In effect, the Charter says, "We the nations of the United Nations." The Charter operates on nations. It is to be compared in this respect with the Articles of Confederation which preceded our Constitution. The Articles operated on the Thirteen States and not directly on their citizens. The Constitution operates, in matters of Federal concern, directly on our citizens. That is why it makes us a nation and not a confederation or league or "organization."

In the preamble of the Covenant of the League of Nations, the "high contracting parties" are mentioned, and neither "peoples" nor "people."

The League was launched "in order to promote international coöperation and to achieve international peace and security." The United Nations was launched to promote peace, human rights, justice, and prosperity throughout the world.

The League of Nations had an Assembly. (See pages 189 to 192.) The United Nations has a General Assembly.

The League had a Council, roughly comparable with the upper house in a legislative body. The United Nations has a Security Council. The Security Council is expressly made capable of bringing overwhelming power to bear on a situation; it is not limited to sanctions and suasion. (Neither was the League Council, in theory, for that matter.) The original permanent members of the League Council included Italy and Japan. In the Security Council, Russia and China replace

Italy and Japan. (Just which nations are classified as "democratic" or "peace-loving" or both, from time to time, is an interesting matter.)

The United Nations has an Economic and Social Council; the League had none. The League had, and the United Nations has, economic and social agencies and affiliates.

The League had a Mandates Commission. The United Nations has a Trusteeship Council for the supervision or control of some dependent territories.

Associated with the League and yet separate from it was the Permanent Court of International Justice, or World Court. The United Nations has its Court of International Justice.

The League had its necessary Secretariat, as has the United Nations.

ORGANS OF THE UNITED NATIONS

The six principal organs, or branches, of the United Nations organization are those that have just been mentioned: the General Assembly, the Security Council, the Economic and Social Council, the Trusteeship Council, the Secretariat, and the International Court of Justice.

The General Assembly is the forum of the United Nations, the policy-making body of the organization.

It meets at least once a year, but it may meet more often.

Each nation that is a member of the United Nations has a single vote in the General Assembly, but it may have as many as five representatives there.

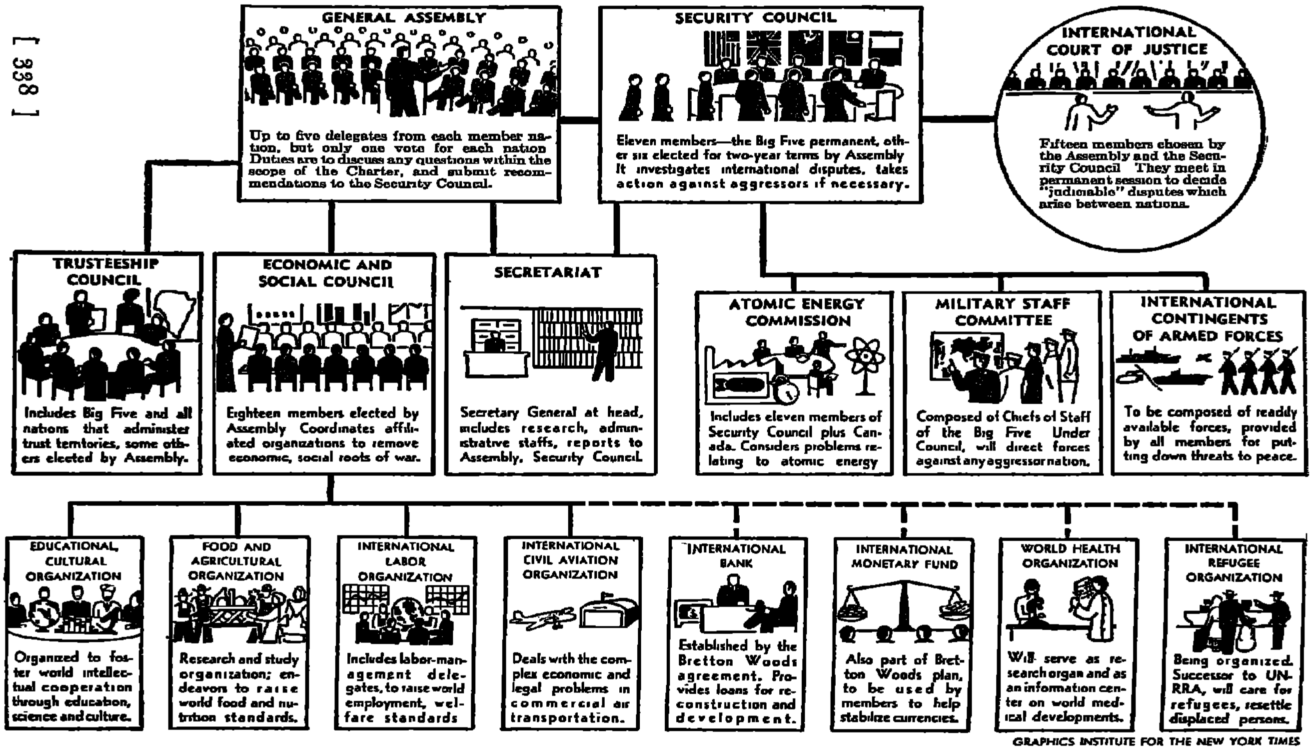
On important questions a two-thirds vote is required for decision. On routine and ordinary matters, a simple majority vote serves.

The Assembly elects its president for each session.

The Security Council has "primary responsibility for the maintenance of peace and security."

It is in continuous session.

It has eleven members. Five of these are permanent: China,



The organization and functions of the United Nations.

France, the U.S.S.R., the United Kingdom, and the United States. Six non-permanent members are elected to membership, by the General Assembly, for terms of two years each.

Routine matters may be decided by the vote of any seven members of the Council. In all cases that may lead to the use of pressure or force, the Big Five must be included in the necessary majority of seven. That is, in very important cases, any one of the Big Five has a veto on action by the Security Council.

If the Big Five and two other members of the Security Council agree, they can call upon particular nations to adjust matters by negotiation, arbitration, resort to the International Court of Justice, or still other means. These remedies being refused or failing, the Council may call for the application of sanctions (an old League weapon) against offenders — cutting off trade and also rail, sea, air, and other means of communication. If sanctions fail, the Council may call for the use of armed force against an offending nation or offending nations.

Regional alliances, or arrangements, for the maintenance of peace, like the Inter-American — or Pan-American — System, may continue to function; but any measures that regional allies may take must be reported to the Security Council, and those measures must be in accord with the principles of the United Nations.

The Economic and Social Council is designed to "promote higher standards of living, full employment, conditions of economic and social progress, . . . international cultural and educational cooperation, . . . universal respect for . . . human rights, and fundamental freedoms for all, without distinction as to sex, race, language, or religion."

This Council meets "as required in accordance with its rules." Meetings shall be held "on request of a majority of its members."

There are eighteen members, elected by the General Assembly for three-year terms, except that at the first election six members were elected for one year and six were elected for two years. There is no Charter requirement that any of the Big

Five shall be represented. The terms of six members expire each year, allowing the body a measure of continuity in the individuals composing it, as in the United States Senate.

Each member has one vote, and decisions are by simple majority.

The Economic and Social Council has no powers of compulsion. It may prepare agreements, to which the General Assembly may give force if it approves.

It may make studies of any subjects in its field, supply information to the Assembly or to the Security Council, and have a measure of oversight over such specialized agencies as the following: the Food and Agriculture Organization, the Bank for Reconstruction and Development, the International Monetary Fund, the Civil Aviation Organization (pages 328 and 338), and — perhaps — the International Labor Organization (pages 187–188), and the World Health Organization.

After the Charter became effective, representatives of the United Nations meeting at London (November, 1945) approved a plan for a permanent United Nations Educational, Scientific, and Cultural Organization (UNESCO). This organization, like the Food and Agriculture Organization and other specialized agencies, comes under the supervision of the Economic and Social Council.

The Trusteeship Council concerns itself about the welfare of dependent peoples. It will replace the Mandates Commission of the League of Nations.

The membership of this Council is made up of United Nations that administer trust territories; also an equal number that do not administer such territories. Probably neither China nor Russia will classify as an administrator of trust territories, but both those countries — belonging to the Big Five — must have places on the Council. Elective members of the Trusteeship Council are chosen by the General Assembly.

The decisions of the Council are made by simple majority vote.

The Council meets in accordance with its own rules. But special meetings are held at the request of a majority of the members.

Trust territories may include (1) territories formerly held under League of Nations mandates, (2) territories taken from the Axis Powers, and (3) dependencies voluntarily turned over for trusteeship by the nations in control of those dependencies. A United Nation, like India, cannot come under trusteeship. No United Nation holding any dependent territory is under compulsion to place it under the trusteeship of the United Nations. The United Nations may itself hold trusteeships, as over former Axis territories.

There are two classes of trusteeships: (1) over ordinary dependencies, and (2) over strategic areas, like Okinawa. Trusteeships of the first class come under the supervision of the General Assembly of the United Nations. Those of the second class come under the supervision of the Security Council.

The Trusteeship Council receives reports from the trustees of territories, accepts petitions — as for redress of grievances — from the inhabitants of trust territories, and may visit and inspect such territories. It reports to the General Assembly concerning ordinary dependencies under trusteeship. It may, also, concern itself about conditions in strategic areas.

Members of the United Nations that hold dependencies, whether or not under trusteeship, are expected to report regularly concerning their dependencies to the Secretary-General of the United Nations.

Trustees of strategic areas report on those areas to the Security Council of the United Nations.

The International Court of Justice is to the United Nations what the Permanent Court of International Justice was to the League of Nations (pages 185–187). It meets at The Hague, as did the earlier Court; but it may hold sessions elsewhere.

There are fifteen judges. The term of office is nine years; but at the first election five judges were elected for three-year

terms only, and five were elected for six-year terms. Judges are eligible for reëlection. The judges are elected by the General Assembly and the Security Council. For election, a candidate must receive a majority of votes in the Assembly and a majority also in the Council. Only one man at a time from any one nation may hold a judgeship. It is not required that any of the judges shall be citizens of Big Five nations.

All members of the United Nations are "parties to the Statute of the International Court of Justice." Comparably with the case of the Permanent Court of International Justice, a nation not a member of the United Nations may become a party to the Statute of the present Court on conditions laid down by the General Assembly and the Security Council.

The Secretariat has many duties, including the following: Making routine preparations for meetings, drawing up reports, conducting correspondence, registering treaties, and preparing budgets.

The chief official is the Secretary-General, appointed by the Assembly on the recommendation of the Security Council. He is the principal administrative officer for the General Assembly, the Security Council, the Economic and Social Council, and the Trusteeship Council, as well as for the Secretariat. He has nothing to do with the International Court of Justice, which has its own officers and assistants.

AMENDMENT OF THE CHARTER

Amendments may be made to the Charter of the United Nations. They must first be voted by two thirds of the members of the General Assembly. Then they must be ratified by two thirds of all the members of the United Nations, including all the permanent members of the Security Council — the Big Five.

A General Conference may be called for the purpose of reviewing and altering the Charter, as is provided in Article 109 thereof.

THE UNITED NATIONS IN OPERATION

There is wisdom as well as trite humor in the saying, "It's all right if it works." The League of Nations, for reasons some of which are now obvious enough, did not work very well. Will the United Nations organization work? It starts its career with the United States and Russia as original members, as the League did not. It starts, we trust, with more widespread and more intelligent support than did the League. The choice for the world has been made very simple. Either we shall have the peace that the United Nations is designed to promote, or we shall have *atomic* warfare.

THE BEGINNING

On January 10, 1946, in London, the General Assembly of the United Nations organization met for the first time. The session lasted until February 14.

The Assembly elected Paul Henri Spaak of Belgium as its president, and it elected Trygve Lie of Norway as Secretary-General.

It elected the six non-permanent members of the Security Council, as follows: Australia, Brazil, Egypt, Mexico, the Netherlands, and Poland. Edward R. Stettinius, Jr., represented the United States — it being a permanent member — on the Council.

It elected the eighteen members of the Economic and Social Council, as follows: Belgium, Canada, Chile, China, Colombia, Cuba, Czechoslovakia, France, Greece, India, Lebanon, Norway, Peru, Ukraine S.S.R., Russia (the U.S.S.R.), the United Kingdom, the United States, and Yugoslavia. Although the Charter does not require that any or all of the Big Five shall have places on this Council, they got them.

With the Security Council, the Assembly took part in the election of judges to sit on the International Court of Justice. The men chosen were from the following countries: Great Britain, France, Brazil, Chile, El Salvador, the United States, the

U.S.S.R., Mexico, Norway, Belgium, Canada, Yugoslavia, Poland, Egypt, and China. The American judge was Green Haywood Hackworth.

The Assembly created various committees and commissions. Among these is the Social, Humanitarian, and Cultural Committee. Mrs. Franklin D. Roosevelt, delegate to the Assembly, and John G. Townsend, formerly Senator from Delaware, were assigned to this committee. A Commission on Atomic Energy and Related Matters was set up.

The first session of the Security Council of the United Nations in the United States was held in interim headquarters at Hunter College in New York City on March 25, 1946. On August 28, the Security Council approved the applications of Afghanistan, Sweden, and Iceland for membership in the U. N. These countries had preserved their legal state of neutrality during World War II. In time, it is hoped that all nations, including those that took part on the losing side in the war, will apply for membership and be admitted.

Early in 1947 the United Nations Relief and Rehabilitation Administration was superseded by the International Refugee Organization, which is to carry on the work of UNRRA on behalf of displaced persons in Europe.

HEADQUARTERS OF THE UNITED NATIONS

After the first meetings of United Nations organs, which were held in London in January and February of 1946, the temporary headquarters were located at Lake Success and Flushing Meadows on Long Island. The permanent location was finally chosen in the heart of New York City. John D. Rockefeller, Jr., gave $8,500,000 for the purchase of this property. Plans for the building have already been drawn. The estimated cost is over $65,000,000.

Already the U. N. has replaced the League of Nations with a larger and more complex organization. The records of the League were transferred to the U. N. at its final meeting in

April, 1946, at Geneva. The World Court was put out of existence and replaced by the U. N. International Court of Justice, which met at The Hague on April 18, 1946.

THE VETO IN THE SECURITY COUNCIL

From the very beginning, Russia offered continuous opposition to the proposals of member nations, and for months the Security Council was blocked by Russia's use of her power of veto. The deadlock on control of atomic energy seemed hopeless, and angry words became more and more common. The United States insisted that the nations agree to joint control under the U. N and inspection of all areas where atomic material might be prepared. Russia insisted that the United States destroy its atomic bombs first and then discuss the question of control and supervision in the Security Council. An impasse resulted in which no joint agreement of any kind could be reached. The United States continued to manufacture atom bombs.

SECOND SESSION OF THE GENERAL ASSEMBLY

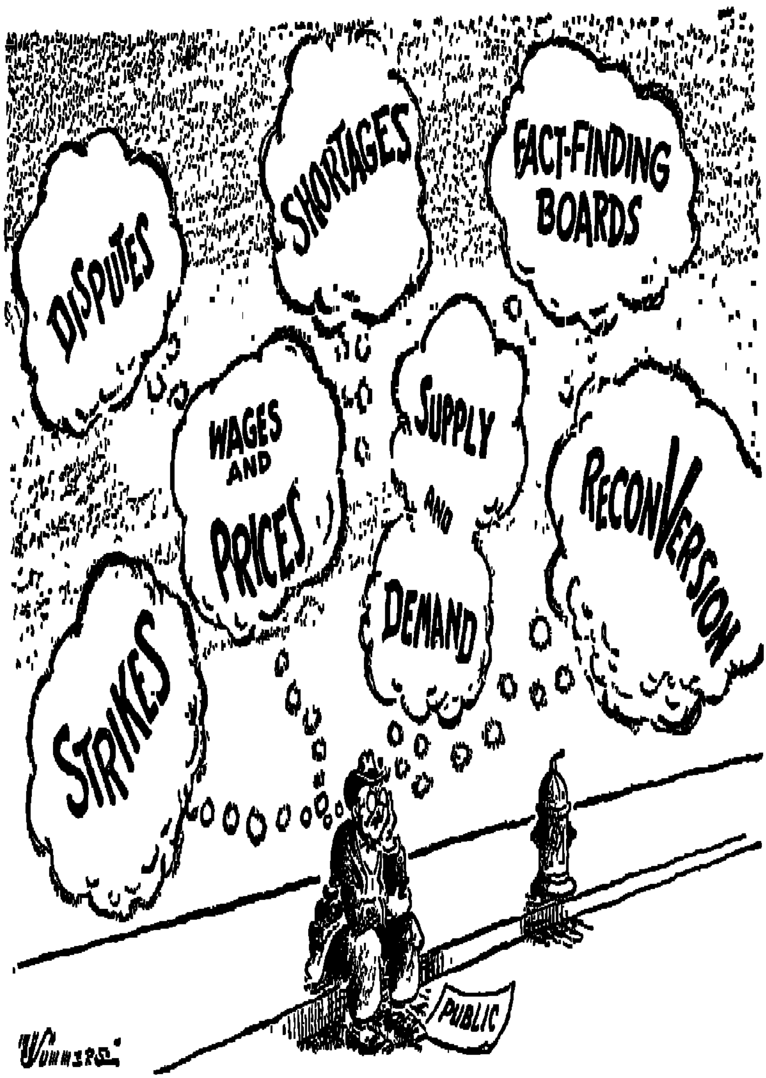
With the opening of the General Assembly on September 16, 1947, there was hope that it could ease the situation in the Security Council. Secretary of State Marshall made a series of proposals in his opening address. Among his proposals were: to provide a committee to study ways of limiting the veto of the great powers in the Security Council; to form another committee, made up of all U. N. members, to work between sessions on international problems. This committee could not be blocked by a veto. It could, perhaps, exert some pressure on the Economic Council for action. The Russian delegate, Andrei Vishinsky, angrily attacked the Marshall proposals and proposed a resolution to prohibit "warmongering." The United States replied that most of the war talk was a result of Russia's hostile attitude and actions. Thus the General Assembly faced the same problem as the Security Council in trying

to get cooperation and agreement on urgent problems, such as the partitioning of Palestine and the settlement of international difficulties in Greece and Korea.

Questions and Topics for Discussion

1. What group, or classification, of nations was represented at the San Francisco Conference?
2. What was the situation of Poland with reference to the United Nations at the time of the San Francisco Conference? of Argentina? of Spain? of Finland? of India?
3. Who was chairman of the American delegation at San Francisco?
4. A number of delegates to the Convention of 1787 refused to sign the Constitution which they had helped to draft Was there a comparable situation at San Francisco?
5. What "Statute," practically a part of the Charter, was signed separately?
6. What happened with reference to the Charter on July 28, 1945? on October 24, 1945?
7. Does the Charter operate directly on citizens of the United Nations? Did our Articles of Confederation do so? Does our Constitution do so?
8. Compare the chief organs of the United Nations with those of the League of Nations.
9. Who are the members of the General Assembly? How many votes has each? How large a majority is required to decide important questions? routine matters?
10. What is the chief purpose of the Security Council? What nations are permanent members? How many non-permanent members are there? Who chooses these?
11. Discuss the veto power that any one of the Big Five has in the Security Council.
12. Consider the power of compulsion that the Security Council possesses
13. How do regional arrangements for defense and peace fit into the United Nations setup?
14. What are some of the purposes of the Economic and Social Council? of some of its agencies?

15. How is the membership of the Trusteeship Council made up?
16. What are the two classes of trusteeships? Under the supervision of what body is one of those classes? the other class?
17. Compare the International Court of Justice with the Permanent Court of International Justice.
18. By whom or by what body, or bodies, are judges elected to the International Court?
19. What are the purposes of the Secretariat? Who happens to be Secretary-General at the present time? Of which country is he a citizen?
20. How may the Charter be amended? Could any member of the Big Five block the amendment of the Charter?
21. What, in its membership, seems promising for the United Nations, compared with the League of Nations?
22. What compulsion does the possibility of atomic warfare place upon "the peace-loving nations"?
23. Where, and at about what date, did the General Assembly of the United Nations meet for the first time? the Security Council?



In time of peace "Meditation," cartoon by Summers in *Buffalo Evening News*

CHAPTER 15

THE WORLD AT MID-TWENTIETH CENTURY

EVERY nation that was involved in World War II and survived had its difficulties multiplied and its domestic and foreign problems interlaced as never before. New patterns began to take shape — economic, social, and political — even before the fighting was over. Five years later the peace treaties for the defeated nations had not been written. The Soviet Union was making new advances in Asia, while the democratic nations of the west strove to curb the widening circle of Soviet control. In western Europe economic conditions were improving but remained unsettled. Forecasts in 1950 were for continued tension and uncertainty.

STRUGGLE FOR A NEW BALANCE OF POWER

In the last century there came to be five or six so-called great powers. Great Britain, with her Empire and great navy, served as a stabilizing force. Her policy of balance of power in Europe also served as a controlling factor. Great Britain was interested that no nation become too powerful. This was true with the France of Napoleon, with the Germany of the Kaiser in World War I, and, of course, with the Germany of Hitler. When any European nation or combination of nations threatened to dominate, Great Britain would join the other side. While still very important, the position of Great Britain and the Empire has weakened as a result of World Wars I and II.

About 1900 the United States came to be recognized as a great power and became more active in world politics. In the short time since then, the United States has had to assume leadership in world affairs. The industrial capacity and economic power of the United States during and following World War II were tremendous. Also, she was the only major nation that had not suffered the devastation of war. In post-war affairs it became more and more clear that the United States, Great Britain, France, and other democratic nations formed a western bloc as opposed to the policies of the Soviet Union and the satellite nations under her control. All the problems of reconstruction and of the functioning of the United Nations have been made more difficult because the world is sharply divided between the democratic nations of the west and the Soviet-dominated bloc of the east. As yet there has been no satisfactory balance or basis for coöperation. Let us pray that east and west can learn to harmonize relations for making a better world in the interests of peace and human welfare.

GREAT BRITAIN

After the German surrender the British people elected a new Parliament, and the coalition government headed by the Conservative Winston Churchill was replaced by a Labor government with Clement Attlee as Prime Minister. The new government undertook the socialization, or nationalization, of some of the more important industries that touch the lives of all the people. Among other businesses, it nationalized coal mining throughout the country, compensating the owners of mines. Of necessity, the rationing of food and clothing and other articles was continued; and during the summer of 1946 bread was for the first time put on the list of rationed foods.

Lease-Lend aid from the United States was terminated shortly after fighting came to an end. To help Great Britain to her feet, and incidentally to help our own country because we need to trade with Great Britain and need her as a friendly nation,

our government lent to the British government $4,400,000,000. Of this amount, $3,750,000,000 was to be furnished in cash. The remaining $650,000,000 had already, in effect, been advanced by our country. (The British had agreed to pay us that amount for surplus war supplies and other goods that we turned over to them.) The loan was voted by Congress in July, 1946, and President Truman promptly approved the act.

The British had not fully recovered from the effects of World War I when World War II, far more costly and more frightful, broke upon them. In fact, they were still carrying part of the indebtedness that had piled up against them during the Napoleonic wars, when World War I began in 1914. They find themselves in a difficult struggle to keep their country strong and reasonably prosperous and to help hold together the British Commonwealth of Nations. British interests run counter to those of the Soviet Union in central Europe, in the Near East, the Middle East, and the Far East. At some points the Soviet government has not been greatly inclined to compromise, and neither has the British government been so inclined — as has been shown in Iran.

The devaluation of the pound sterling in 1949 from $4.03 to $2.80 was a desperate effort to relieve economic problems and stimulate foreign trade. Exports to earn dollars were a necessity. In the election of February, 1950, the Labor and Conservative parties campaigned strenuously for popular support. The Labor party won, but by a very slight margin.

FRANCE AND BELGIUM

The liberated French gave no thought to restoring the kingdom or the empire. They decided to establish a Fourth Republic, in which they would try to improve on the constitutional machinery of the Third Republic. A provisional government was formed first under General de Gaulle, later under Georges Bidault, outstanding leader of the French underground movement during the German occupation of France.

Promptly France resumed her place as one of the five principal powers — the United States, Great Britain (perhaps more accurately here, the British Commonwealth of Nations), the Union of Soviet Socialist Republics, France, and China. The French were given control of one of the four zones into which Germany was divided, pending a German settlement. They re-annexed Alsace-Lorraine (pages 3 and 71), which Hitler had incorporated with Germany in 1940; they took over the Saar (pages 190 and 237); and they expect to annex some additional territory that was formerly a part of western Germany. France continues her fear of a revival of German power as a threat to her own security.

Belgium has advanced farther on the road to recovery than have most countries that were overrun by the Germans. The Belgian parliament has refused to permit King Leopold III (page 283) to return to his country; but the monarchy has not been abolished. The king's brother acts as regent.

THE UNION OF SOVIET SOCIALIST REPUBLICS

In each of the world wars of this century Russia suffered the devastation of more territory and the loss of more lives than all her allies put together. After she dropped out of the First World War her former allies treated her as an enemy (page 98). She came out of the Second World War suspicious of everybody and with a determination to establish her security in every direction. She annexed Estonia, Latvia, and Lithuania, took a large portion of eastern Poland, and dominated the Polish government. Her zone in Germany gave control of access to Berlin. In eastern Europe the satellite nations were under control — except Greece (and perhaps Yugoslavia). By 1950 penetration further into Europe seemed to have halted. However, her advances into Communist China opened prospects for further domination in Asia.

Many books and innumerable articles have been written about the problems that confront Russia, or the U.S.S.R., and

the problems that she presents to the rest of the world. The fundamental differences between Russia and western nations extend to all phases of life. They include methods of dictatorship as opposed to democratic ideas. Also, the Communist economic system is the opposite of our system of private property (capitalism). The whole cultural background is different. The "iron curtain" (Churchill's expression) of secrecy and censorship with which the U.S.S.R. has surrounded itself makes it difficult for us to learn about Russia and for the Russians to know the outside world. The Russians can hardly complain if people who are not permitted freely to inform themselves resort to conjecture, which cannot always be either accurate or favorable.

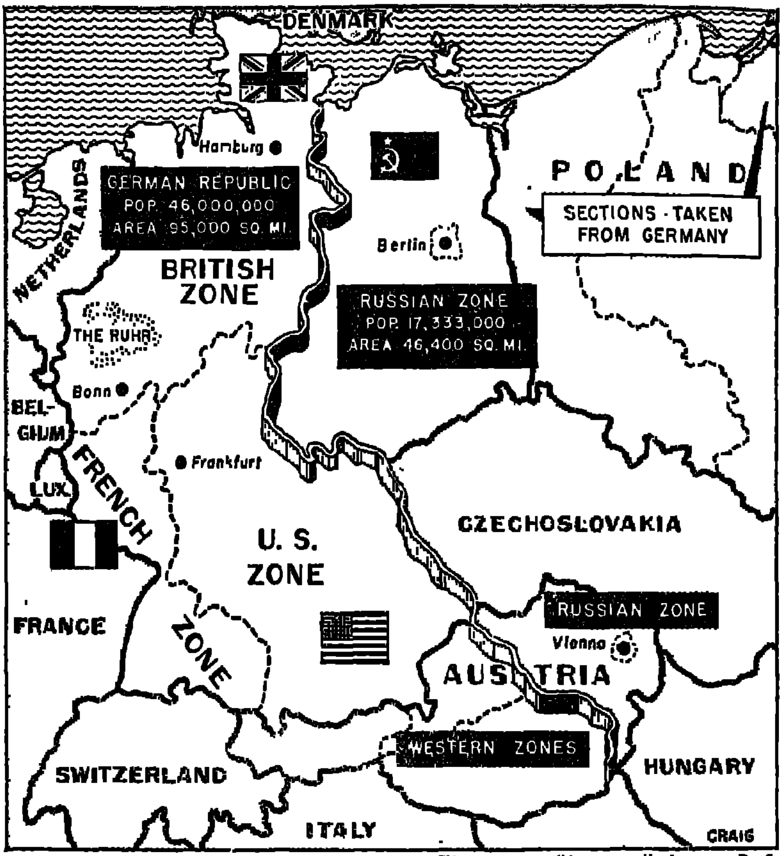
Still the world asks "What of the night?" as the constellation of the Great Bear looms in the sky (page 2). It will be well for us to keep as open-minded as possible about the U.S.S.R., and for our government to continue to be watchful as well as just in its negotiations with the masters of the great Russian people and their affiliated peoples.

GERMANY

Germany, divided into Russian, American, British, and French occupation zones, presents a formidable problem to all the world. Economists and others are sure that Europe cannot be put back on a reasonably satisfactory basis until Germany is once more made an economic and political unit. Some want Germany strengthened as a first line of defense against Communism. Others fear a revival of military power if German industries are restored.

The location of Germany makes it a buffer state and a scene of friction between the Russians and the West. The Soviet blockade of Berlin (1948–49) was countered by the American and British "airlift."

The Federal German Republic, organized in 1949 with its capital at Bonn, includes United States, British, and French



The American Observer, Washington, D C

Allied West and Soviet East Germany. West German State ("Federal German Republic"), population 46 million. East German State ("German Democratic Republic"), population 17 million

zones. It is a republic with a president, a chancellor, and a two-house parliament. The chancellor, the real executive, holds office during approval of the lower house. The three-member Allied High Commission (United States, Great Britain, and France) has charge of foreign affairs and may veto acts of parliament. Economic conditions are gradually improving in this heavily populated, highly industrial area. There is concern over possible revival of Nazism and lack of

basic democratic processes. The Soviets have formed a government in their zone.

ITALY

Defeated Italy went over to the Allies in October, 1943 (page 301). Liberal elements that had somehow survived the dictatorship of Mussolini came out of hiding and took control of affairs, the Allies permitting. In June, 1946, the Italians voted out their monarchy, and King Humbert II, after a very brief reign, went into exile. The post-war settlements imposed upon Italy were harsh, but not to be compared in harshness with those imposed, or to be imposed, upon her one-time major allies in the Rome-Berlin-Tokyo Axis. Italy was required to make some cessions of territory, including the city of Fiume (page 179) to Yugoslavia, to consent to the internationalization of Trieste, and to make some slight cessions in the northwest to France; also to make reparations payments to the U.S.S.R. Her army, navy, and air forces are to be closely limited. The country faces a difficult future. But her people now possess a greater measure of individual liberty than they have known in a long time, and there are indications that they appreciate the boon.

PLIGHT OF EASTERN EUROPE

Austria, set apart from Germany, is likewise separated into British, American, French, and Russian zones of occupation. Economic conditions are wretched. The once proud, rich city of Vienna is a poor shadow of its former self, isolated from western Europe.

Hungary is under occupation by the Russians, who seem to be dealing harshly with her. By the terms of the peace treaty of 1947, she was obliged to return to Rumania that part of the extensive mountainous province of Transylvania which was assigned to her by Hitler in 1939 (page 286).

Rumania was required to hand back to Russia two provinces,

Bessarabia and Northern Bukowina. Russian influence is strong in Rumania, and it will doubtless continue to be so.

Bulgaria was allowed to retain the province of Southern Dobruja, which was ceded by Rumania in 1940. Since 1947 Bulgaria has had a Communist government (called a republic) closely associated with Moscow.

Finland was required to give up to Russia a few small areas These areas are of great strategic value. Finland has been left without an outlet to the Arctic Ocean.

Czechoslovakia suffered German occupation; since the War the Russians have dominated the government. The Czechs' protests are bitter, as they once knew a higher standard of living and a democratic government.

Greece made valiant and effective resistance against Mussolini's forces, but was overwhelmed by the Nazis. The country suffered much under occupancy by German, Italian, and Bulgarian forces. Food was so scarce that people died in the streets of starvation. Those Greeks who were able to carry on guerrilla warfare against the invaders were divided into two factions, and they occasionally fought each other as well as the common enemy. After the German collapse British forces occupied parts of Greece for a time. Civil War between the Greek government and rebel factions (which had foreign support) continued for some years after the war.

Italy has been required to cede to Greece the Dodecanese Islands in the Aegean Sea, which she took from Turkey in 1912. In her territorial claim against Albania (page 358) Greece is opposed by Yugoslavia By the will of the Greek people, their government continues as a constitutional monarchy under King Paul.

Yugoslavia, like Greece, was torn by factional fighting while resistance to the Italians and Germans was being conducted. Joseph Broz (called "Marshal Tito"), supported by Russia, won out in the factional conflict, and the monarchy was abolished. In 1946 the opposing Yugoslav leader, General Draja Mikhailo-

vitch of the "Chetnik" guerrillas, was tried for collaboration with the enemy, found guilty, and put to death. While a Communist, Marshal Tito through 1948 and since has refused to follow orders from Moscow in regard to economic policies and confiscation of land. This defiance of Moscow has led to loans and trade benefits from western nations. Yugoslavia is a critical zone, and there is speculation on how long Marshal Tito can express independence.

LATIN AMERICA; CANADA

Since the close of World War II the United States and the countries of Latin America have continued to cooperate effectively and to the advantage of all. Only Argentina remains somewhat aloof in relations with her sister nations of this hemisphere (page 330). The wartime demand for all kinds of products at high prices brought a boom to much of Latin America. Inflation resulted and it still continues, with particular hardship to persons having small incomes. This has certainly been the case in Mexico.

Brazil has rid herself of the dictatorship of Getulio Vargas, which began before the war and continued through it. The nation has adopted a new democratic constitution which is being made to work. Other countries of Latin America seem also to be making progress on the road to true democracy.

Canada has grown in importance. With a larger area than the United States, she has 10 per cent of our population. Wide areas can support a larger population than they now have. Large industrial expansion has come in the southern portions. Migration continues from Britain and Europe.

Canada has had industrial difficulties of the kind that have troubled our own country, following the war. The relations of the United States with Canada continue to be as satisfactory as the relations among our own states. Between us and the Canadians there is a broad basis of understanding and — even

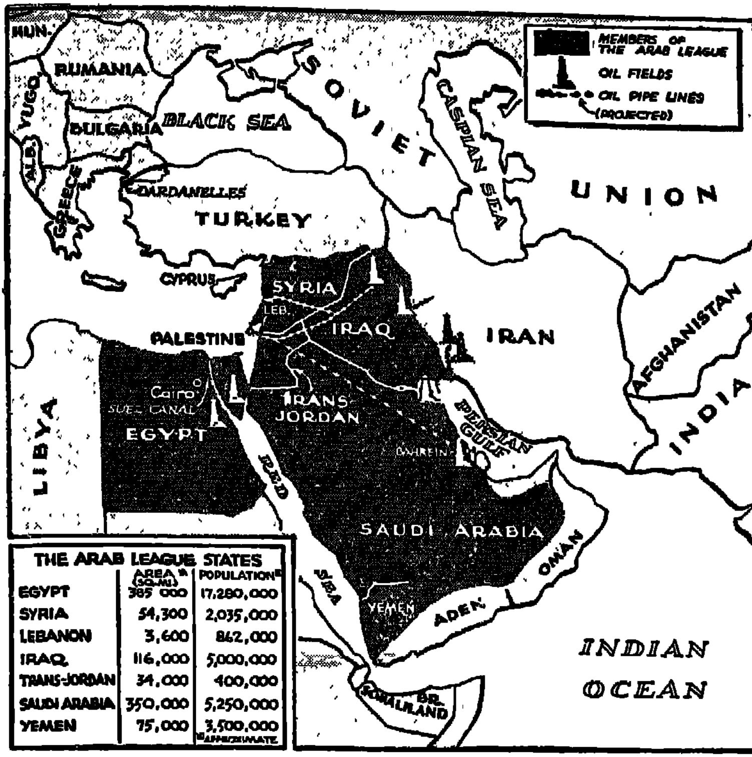
more important — good will. There can be no conflict where mutual understanding is reinforced with mutual good will.

THE MOSLEM WORLD

Turkey, which has undergone rapid Westernization under able leaders since her disastrous experience in World War I, has been under pressure from Russia recently, as in former times. For well over a century Russia has desired control of the Dardanelles, the narrow waterway which connects the Black Sea and the Mediterranean and separates Europe from Asia Minor. Always the Bear has sought "to put his feet in warm water"; and Turkey, with her principal city, Istanbul (Constantinople), planted on that waterway, has been in the way of the Bear. In standing out against extreme Russian claims, Turkey has had the support of Great Britain and France and other powers from time to time (pages 60–61, 65, and 75). And thus far Turkey remains in possession of the Dardanelles.

Albania is predominantly Moslem in population, as are some areas in Yugoslavia. The southern part of the country, largely Greek in population, is known to the Greeks as Northern Epirus; and the Greeks lay claim to it as rightfully a part of their country. The territory is important strategically, as it lies at the entrance to the Adriatic Sea.

Serious problems have been presented in those lands of the Middle East which are known collectively as the "Arab states." The greater number of these formed themselves into the Arab League, which includes Egypt, Syria, Lebanon, Trans-Jordan, Iraq, Saudi Arabia, and Yemen (southwestern Arabia). The League is represented by the Arab League Council, which held its first meeting at Cairo in June, 1945. All of the Arab League states are to some extent special subjects of both British and Russian interest. Saudi Arabia, Iraq, and Iran (Moslem but not under the control of Arabs) have rich deposits of petroleum, which circumstance greatly heightens the interest of other



New York Times

The Near East and the Middle East. Note how the countries of the Arab League lie across Great Britain's short route to the Far East.

countries in their affairs. Our own country and some of our oil interests have made special arrangements with the government of Saudi Arabia whereby much of the oil business of that country has come under American control. In some petroleum areas — in Iraq, for example — British and American interests work together. The arrangements are fair enough, probably, to the nations on whose land the oil is found; at any rate, their people would have little use for it. Whether the people profit as they should from the oil leases that their rulers grant is another matter.

In India the Moslem minority in the population constitutes one of the important pieces in the extremely complicated game

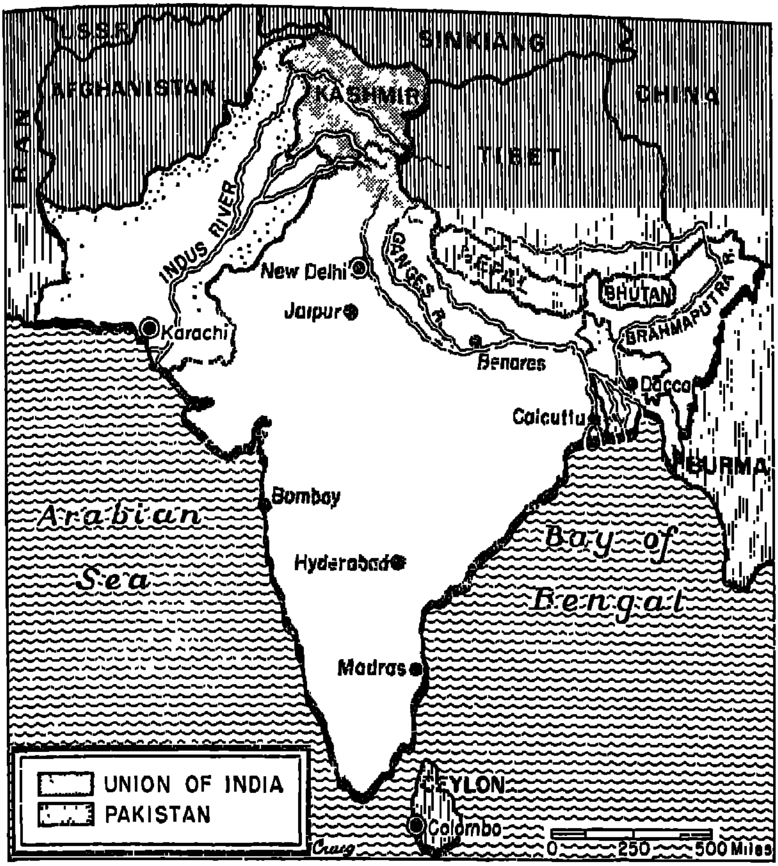
of politics that is always going on there. Moslems, Hindus, and numerous other religious groups for many years opposed British rule in India; they have also opposed one another enthusiastically. They rid themselves in 1947 of British rule when India (Hindu-dominated) and Pakistan (Moslem-dominated) became independent. Riots and bloodshed followed India and Pakistan now belong to the United Nations.

French and Spanish Morocco, Tangier (under international control), Algeria and Tunisia (French), and Libya (lost to Italy as a result of World War II) are all predominantly Moslem, and all have an important Arab element in their populations. Other parts of Africa also are Moslem.

Egypt alone, of all Moslem Africa, has independent status and has a voice of her own in international affairs. The British withdrew all their military, naval, and air forces from Egypt in 1946. The country stands with other "Arab states" in supporting the Arabs of Palestine in their opposition to the establishment of a separate Jewish state in Palestine.

Palestine, a British mandate until 1948, was long in a class by itself as a center of trouble (pages 31 and 145). The Jewish Zionists were for years prevented from realizing the hopes that were held out to them for a national homeland. The Arabs have prospered and greatly increased in the land since the Zionists began to colonize it. The Zionists brought capital and industry, which gave many Arabs opportunities to occupy themselves gainfully.

During World War II, Zionists begged Great Britain to allow entry of Jewish refugees without restrictions. Arab resentment ran high and fighting occurred. Finally Great Britain appealed to the United Nations for settlement of the Palestine issue. The General Assembly approved partition of Palestine into a Jewish and an Arab state, with Jerusalem an international zone. There was continued bloodshed and terror on all sides. The Arab League actively supported the cause of the Arabs. Count Bernadotte, the U.N. mediator, who worked tirelessly, was as-



The American Observer, Washington, D. C.

India as divided into the Union of India (now called the Republic of India), which is predominantly Hindu, and Pakistan, which is predominantly Moslem.

sassinated in September, 1948. Dr. Ralph Bunche continued his work. The future of Arab Palestine remained a problem, and there was dissatisfaction over Jerusalem as an international zone.

The new Jewish state — Israel — was given *de facto* recognition by the United States and other nations in 1948–49. Israel became a member of the United Nations in 1949.

THE FAR EAST

During most of the time that China was carrying on her defensive warfare against the Japanese, her people were also fighting among themselves. The principal group opposed to the central government was the Chinese Communists. In the last stage of the war against Japan, the Russians occupied Manchuria (the Japanese puppet Empire of Manchukuo). Not long after the Japanese surrender they evacuated the province. Thereupon the Chinese Communists took over. In China, the Communist armies of General Mao Tse-tung drove back the Nationalist government forces, until in 1949 Chiang Kai-shek fled to Formosa and bid for western aid to continue the fight. Mao Tse-tung went to Moscow for a long conference with Soviet leaders.

On July 4, 1946, the Philippine Commonwealth became the Philippine Republic (page 263), with Manuel Roxas as president. The United States has helped and undoubtedly will continue to help the Filipinos in their efforts to restore their war-ravaged land. Our armed forces retain bases in the islands. The Filipinos, having fought shoulder to shoulder with Americans for the liberation of their country from the Japanese, are glad to have our friendly forces near at hand.

The Netherlands East Indies are important producers of rubber, tin, petroleum, spices, quinine, and cordage fibers. British capitalists have heavy investments in the various Dutch colonial enterprises, and this circumstance complicates the economic and political pattern. The people of the islands, styling themselves "Indonesians," long wished for such freedom as the Filipinos enjoyed, first under the American flag and afterward under their own. In 1949 the United States of Indonesia was formed as an independent nation, with a relationship with the Netherlands similar to that of Canada with Great Britain.

Japan since her surrender has been under the virtual dictatorship of General Douglas MacArthur. There is an Allied Council for Japan, in which the Russians make themselves heard oc-

casionally. Japan is heavily overpopulated and has inadequate natural resources. Stripped of all her possessions except her ancient home islands, she has been cut off from important sources of raw materials. The whole Japanese nation was greatly sobered by the results of World War II.

Korea, for many years considered a province of Japan and called "Chosen," was divided, after the fall of Japan, into a northern section, which was placed under Russian control, and the rest of the peninsula, which was placed under American control. The Koreans quite understandably desire a united and independent Korea.

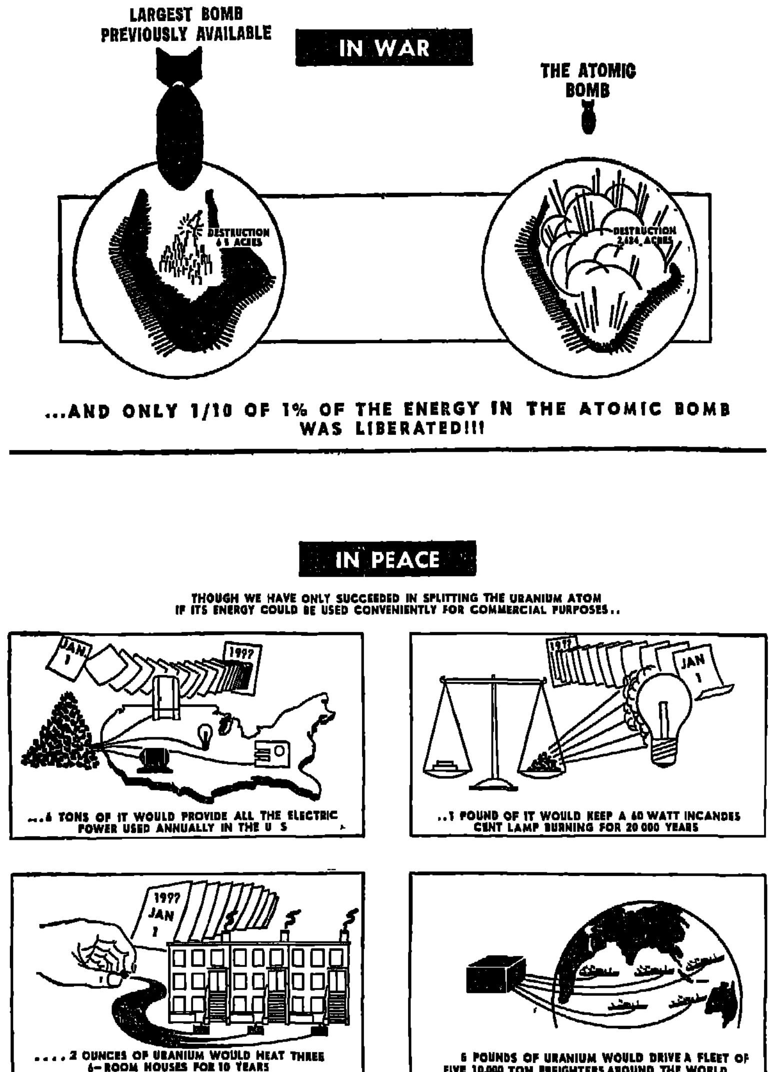
Siam, which chose for some years to be called "Thailand," was classed as an ally by the occupying Japanese. The Siamese puppet government seems to have been completely in coöperation with patriot groups who were opposing the Japanese by every possible means. This circumstance has influenced the victors to deal considerately with the country. The Japanese required the Vichy French to return to Siam a part of French Indo-China which the French had taken from Siam. The Siamese desire to retain some part of this territory, and they may be allowed to do so.

In French Indo-China the Fourth French Republic has granted the people a measure of self-government such as they never enjoyed under the Third Republic or under the Second Empire of Napoleon III (which established the colony). Late in 1946, part of the country was formed into the Republic of Viet Nam, under French protection.

Burma has organized her own republican form of government and is in the British Commonwealth.

WAR-GUILT TRIALS

Most notable of the war guilt trials was the one held at Nuremberg, Germany, from November, 1945, to September, 1946. Twenty-two of the principal figures in the Nazi govern-



Graphics Institute for Seventeen Magazine

The destructive effect of the atomic bomb as used at Hiroshima, compared with possible constructive effects of fissionable atomic material.

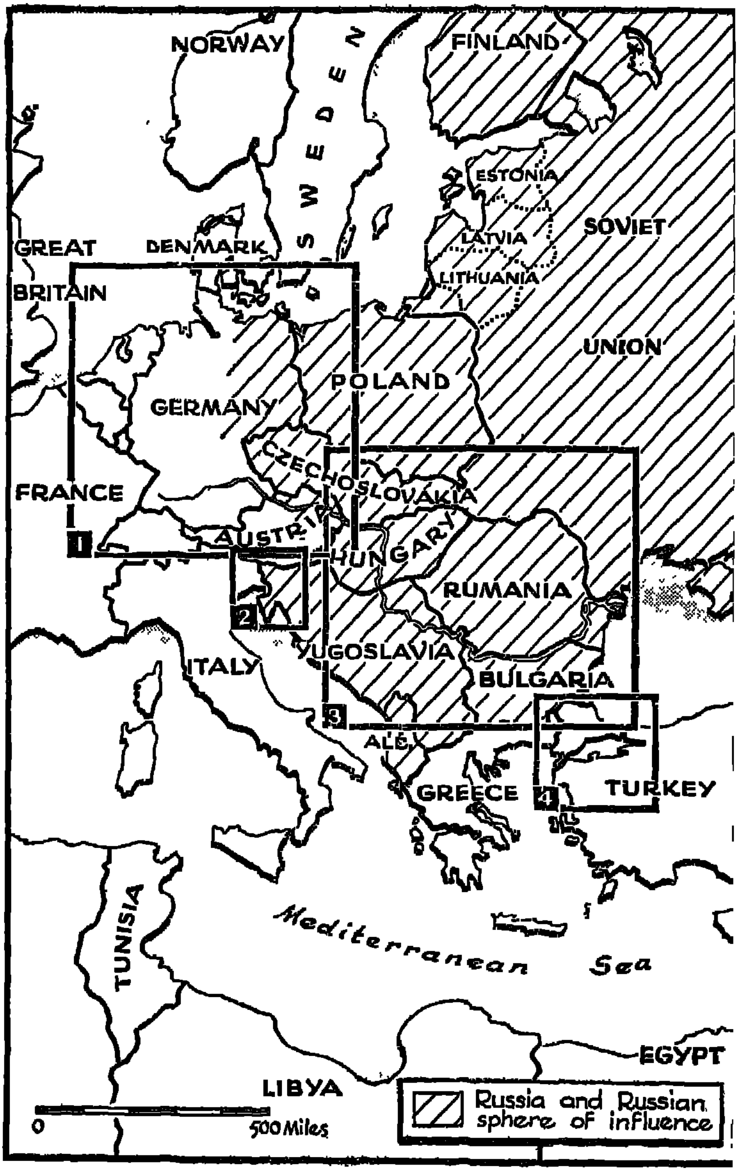
ment of Germany were tried. Nineteen of them were found guilty, twelve being condemned to death. In effect, the whole Nazi regime was investigated before all the world by a special international court. The theory on which they were tried is that they were guilty of crimes against all the world and that the peoples of the world have the right and the duty to punish such crimes. Also, Germany and her late allies had entered into the Kellogg-Briand Pact, outlawing war as an instrument of national policy; and of what use could such a pact be if its breach were not punishable as crime? The Nuremberg trial marks a step in the extension of international law to make it apply directly to individuals (page 157).

THE OLD QUESTION OF WORLD PEACE

The alternative to world peace seems to be atomic warfare, which would be inconceivably destructive. Our country, while it was in possession of the only stock of atomic bombs in the world, offered to the world the Baruch plan for the control of atomic power. The Russians do not like this plan because it provides for international inspections within the limits of any country that might be preparing fissionable atomic materials. The Russians have countered with a plan of their own, under which each nation would be trusted to carry out its promise not to prepare atomic material for use in warfare.

The lessons of Hiroshima and Nagasaki (page 304) lie open to all men. The Russians have announced making atomic bombs. The hydrogen bomb threatens to be the most devastating weapon of all. One might expect that most earnest efforts would be made to prevent the recurrence of world warfare. And it seems that they have been and are being made.

During World War II, our Presidents (Roosevelt, Truman) and the Prime Minister of Great Britain (Churchill and finally Attlee) met with Marshal Stalin on different occasions. Sup-



New York Time

The four European areas that present the chief obstacles to lasting peace: (1) Germany, (2) Trieste, gateway to central Europe, (3) the Danube Valley; (4) the Dardanelles, key to the Black Sea.

plementing these international meetings and continuing them after the end of the fighting were the meetings of the foreign ministers (our Secretary of State) of the Big Three and of other countries. The meetings have not always been fruitful; but they have kept the more powerful nations in touch with one another, even though not in full agreement, and they have preserved the possibility of coöperation among those nations and all nations.

CONFERENCE AT PARIS TO PLAN PEACE

On July 29, 1946, delegates from twenty-one of the nations that had made war against the Axis Powers met in a peace conference at Paris. They did not meet as representatives of the United Nations, though all the nations represented were members of that organization. The Conference was called by the Big Four (meaning, in this action, Great Britain, the United States, the U S.S.R., and France, rather than Great Britain, the United States, the U.S.S.R., and China). Immediately the differences of outlook among the nations, large and small, were given an airing. The Big Four — and especially Great Britain, the United States, and the Soviet Union — dominated the Conference. The Ukraine and Byelorussia, members of the Union of Soviet Socialist Republics but members also of the United Nations in their own right, generally stood with the U.S.S.R., as did Poland and other countries under Soviet influence. The United States and Great Britain usually stood together. France and most of the lesser nations represented threw such weight as they had to one side or the other, according to their own advantage as they saw it. Drafts of treaties were prepared which furnished what might be called blueprints for the restoration of a state of legal peace throughout Europe, except in Germany. The former allied nations, after repeated conferences of their foreign ministers, failed to finish the peace treaties. This deep disagreement on policies and purposes appeared in all international affairs.

The General Assembly of the U. N. met in New York (at Flushing Meadows, on Long Island) on October 23, 1946. Much the same alignments and divisions among the representatives of various nations appeared as had appeared in other U. N. meetings (pages 343 to 345) and at the Paris Conference.

THE MARSHALL PLAN

After more than two years of peace, the European nations continued in desperate condition. It was thought that an improvement in economic conditions would both relieve political pressure and hasten general recovery. On June 5, 1947, at Commencement Exercises at Harvard University, our Secretary of State, George C. Marshall, made a very important proposal in this direction. He suggested that the needy nations of Europe (1) draw up a balance sheet of European resources and needs, (2) work out a plan of self-help, and (3) submit to the United States a program in which dollars could best be used to help Europe help herself.

Sixteen nations of Europe met at Paris through July, 1947, to discuss plans and needs. Foreign Ministers Bevin of Great Britain, Bidault of France, and Molotov of Soviet Russia were the leading figures at the conference until Russia withdrew, after rejecting the British and French proposals. This was detrimental to the working out of the program because it meant that the countries in the Russian sphere of influence were unable to present their needs. Europe was divided. Russia tried to counteract the Marshall Plan by calling a meeting of nine nations to form a Communist Information Bureau ("cominform").

Some 22 billion dollars was submitted as the needs of the sixteen West European nations. About 16 billion dollars would have to come from the United States. This well exemplifies the continuing costliness of war even after fighting has stopped. The United States has already spent billions in relief and has given considerable aid to Greece under the Truman Doctrine of

helping countries to ward off Communism. How much more should be done to help in world recovery is a real problem.

BALANCE SHEET OF THE TWENTIETH CENTURY THUS FAR

At the beginning of the twentieth century, there was a widespread optimism that man was at last becoming civilized. There was a feeling that war, famine, and disease were being conquered and that the human race could rise to new heights of civilization. Actually, the record of the first half of the twentieth century is perhaps the worst in history in terms of war devastation, human suffering, and cultural collapse. It is no wonder that the world now is plagued with tremendous problems. The serious student realizes that it will take a long time to achieve real recovery and better world conditions.

It would be interesting to be able to survey world conditions in the year 2100 A.D. What kind of governments will exist; and will there be a world government to maintain peace? What will be the condition of the arts and sciences? What will be the conditions of human life? Will people have a higher culture, or will there be a new "dark age" of ignorance and isolation? What will the history books 150 years from now have to say about the events of our own generation? It is interesting, but rather a waste of energy, to wonder about the distant future. Concern with solving the problems of our present generation is the main issue. How they are solved may set the direction of events for many years to come. It is human to hope that future generations will learn to manage affairs better than has been done thus far in the twentieth century.

Questions and Topics for Discussion

1. If there were no more Germans in Germany, disposition of the territory of Germany would still present the nations with tremendous problems. Why?

2. Arrangement for which cession, or cessions, of territory by Italy caused the most disagreement among the victors? Why?
3. What has happened to Austria as a result of her having been a part of Nazi Germany for a time?
4. How did Greece fare under enemy occupancy? How did she fare in the matter of territory in the post-war settlements?
5. Why has the western world watched with interest the relations between Yugoslavia and Russia?
6. What is the condition of Egypt in regard to sovereignty?
7. Why did the British find their mandate, or trusteeship, in Palestine extremely difficult to administer?
8. Why has it been extremely difficult to help China, as our country has tried to do?
9. What is the condition of the Philippine Islands in regard to sovereignty? What was their former condition?
10. Why are the Netherlands East Indies of very great interest to the Dutch and to the British? What is the attitude of the Indonesians toward foreign overlordship?
11. Following the Japanese surrender, what man was placed in control of Japan? What two conditions are the principal causes of the country's present economic difficulties?
12. Why is the present situation of Korea very unsatisfactory to the Korean people?
13. What notable trial was held at Nuremberg, beginning in November, 1945? On what theory was the prosecution based?
14. Why does fissionable atomic material greatly impress many persons with the need for lasting world peace?
15. Tell about the most recent meeting of the General Assembly of the United Nations.

Optional Assignments

1. Freedom of the press is absolutely essential to the liberty of any people in the modern world. Bring together as many reasons as you can why this statement is true.
2. There are great diversities among the various free peoples of the New World, yet their governments get along with one another far better than do the governments of the rest of the world. Consider why this is so.
3. Report on some of the arrangements that must be made among the nations in order to liquidate World War II.

1941	
January 6	President Franklin D. Roosevelt declares as goals the "Four Freedoms."
August 14	Roosevelt and Churchill announce the Atlantic Charter.
1942	
January 1	Declaration of Washington. First official use of the term "United Nations."
1943	
May 18–June 3	Conference at Hot Springs, Virginia, plans Food and Agriculture Organization of the United Nations.
October 19–30	Moscow Conference (Hull, Eden, and Molotov) suggests "a general international organization."
November 9	United Nations Relief and Rehabilitation Administration proposed by a conference at Washington.
November 26–December 2	At Teheran, Roosevelt, Churchill, and Stalin refer to a "world family of democratic nations."
1944	
July 1–22	Bretton Woods Conference plans International Monetary Fund and International Bank.
August 21–October 7	Dumbarton Oaks Conference plans an organization for the United Nations.
November–December	International Civil Aviation Conference at Chicago plans International Civil Aviation Organization.
1945	
February 4–12	At Yalta in the Crimea, Roosevelt, Churchill, and Stalin agree on call for a United Nations Conference to meet at San Francisco, to draft charter for a "general international organization"
April 25–June 26	Conference at San Francisco draws up Charter for the United Nations Organization.
July 28	United Nations Charter ratified by the United States Senate
October 24	Russia (U.S.S.R.) deposits ratification of Charter. United Nations comes into being.
1946	
January 10–February 15	First session of the General Assembly of the United Nations is held at London.
January 17–February 16	First session of the Security Council of the United Nations is held at London.
January 24	General Assembly establishes "a commission to deal with the problems raised by the discovery of atomic energy."
March 25	Security Council meets for the first time in this country.
April 8–18	Last session of the Assembly of the League of Nations is at Geneva. (There had been no meeting since 1939.)
July 29	Peace Conference meets at Paris.
	General Assembly of the United Nations meets.

1947	
January 20–February 4	Social Commission holds first session at Lake Success.
January 27–February 10	Commission on Human Rights holds first session.
February 6–19	First session of Population Commission is held.
February 10–24	Commission on Status of Women holds first session.
February 28	Military Staff Committee announces completion of principles for use of armed forces
March 10	Security Council resolves to refer back to the Atomic Energy Commission the question of international atomic control and urges further study of the problem.
March 26–April 28	First meeting of Trusteeship Council.
April 28	Special session of the General Assembly called by the Secretary General on request of the Security Council to discuss the Palestine problem.
July 19–August 17	Fifth session of the Economic and Social Council.
September 16	Second session of the General Assembly at the temporary General Assembly Hall, Flushing Meadows, New York.
November 13	General Assembly adopts (Vote 41–6) the Interim Committee or "Little Assembly"
November 29	General Assembly votes (33–13) for partition of Palestine into Jewish and Arab states
December 18	The U.N Atomic Energy Commission control committee to work on international atomic control agency.
1948	
January 29	Soviet Union states that the United States must destroy atom bombs before the U.S.S R will agree to international atomic control.
June 18	The United Nations Committee on Human Rights adopts the International Declaration of Human Rights.
1949	
February 10	Switzerland becomes the 46th member of UNESCO.
September 2	International Refugee Organization announces provision made for over 600,000 displaced persons and refugees.
October 18	In the Security Council the Soviet Union vetoes a French proposal for world census of armed forces.
1950	
January 21	Soviet Union delegates walk out of U.N. meetings in protest to recognition of Chinese delegate of Nationalist (Chiang Kai-shek) rather than to Chinese Communist government of Mao Tze-tung

APPENDIX: LIST OF REFERENCES

(*A*) Series of Pamphlets and Booklets

This list includes the major series of special interest to the student of international affairs.

America Looks Ahead. World Peace Foundation, 40 Mt. Vernon Street, Boston. 25 cents.

The United Nations Economic and Social Council: Finer, Herman.

World Policing and the Constitution: Rogers, James Grafton

The United Nations in the Making, Basic Documents.

American Association for the United Nations, Inc., 45 East 45th Street, New York 21.

Various pamphlets (some free) and other publications on the promotion of world peace through justice.

Brookings Institution Publications The Brookings Institution, 722 Jackson Place, N. W., Washington, D. C. 25 cents.

Reports on economic and related matters.

Building America. Sponsored by the Association for Supervision and Curriculum Development, NEA. Grolier Society, 2 West 45th Street, New York 19. 30 cents each. $2.25 for eight issues

Public Opinion.

Machinery for Foreign Relations.

Experimental Units. Issued by The North Central Association of Colleges and Secondary Schools Ginn & Co., Boston. 42 cents.

Far Eastern Pamphlets. American Council, Institute of Pacific Relations, 1 East 54th Street, New York 22. 10 to 25 cents.

The Institute of Pacific Relations is responsible also for these publications:

The Inquiry Series. Monographs on economic, social, and political problems.

IPR Notes. Biweekly analyses.

Pacific Affairs. A quarterly devoted to nations on the Pacific Rim.

Headline Series. Foreign Policy Association, 22 East 38th Street, New York 16. 25 cents.

Atlas of Boundary Problems, European Jigsaw. Samuel Van Valkenburg.

Russia: Promise or Menace? Dean, Vera Micheles.

Public Affairs Pamphlets. Issued by the Public Affairs Committee. Silver Burdett Company, 45 East 17th Street, New York 3. 10 cents.

This series deals primarily with domestic issues.

(*B*) Periodical Publications

(1) Specialized Weekly Papers for Class Use

These are published throughout the school year. They usually provide special helps for teachers, and sometimes current-events tests for students.

American Education Press, Inc., 400 South Front Street, Columbus, Ohio.

Our Times, for high school seniors and juniors.

Every Week, less advanced.

Civic Education Service, 1733 K Street, N. W., Washington 6, D. C.

The American Observer, for high school seniors and juniors.

The Weekly News Review, less advanced.

Eton Publishing Company, 32 East 57th Street, New York.

Young America.

Scholastic Corporation, 430 Kinnard Avenue, Dayton, Ohio.

The Scholastic: Social Studies Edition.

(2) Weekly and Biweekly Issues

Chicago Council on Foreign Relations, 84 East Randolph Street, Chicago.

Foreign Notes. Biweekly. $1.00 a year.

Foreign Policy Association, 22 East 38th Street, New York 16.

Foreign Policy Bulletin. Weekly. $3.00 a year.

Foreign Policy Reports. Biweekly. 25 cents each issue or $5.00 a year ($3.00 to F.P.A. members).

News Map of the Week, 1512 Orleans Street, Chicago, Illinois.

World News of the Week – a Map. 18 weekly issues, $8.25.

The National Geographic Society, Sixteenth and M Streets, N. W., Washington, D. C.
Geographic School Bulletin. Weekly throughout the school year. 25 cents a year.

United States News, 24th and N Streets, N. W., Washington 7, D. C.
United States News. Weekly. $4.00 a year.

Weekly Bulletin of the United Nations, Educational Section, United Nations, Box 1000, New York 1. Published through International Documents Service of the Columbia University Press, New York 27. 15 cents a copy, $6.00 a year.

World Report, 24th and N Streets, N. W., Washington 7, D. C. $4.00 a year.

(3) Monthly Magazines

Air Age Education News. Air Age Education Research, American Airlines, Inc., 100 East 42nd Street, New York 17 Free on request.

Bulletin of the Pan-American Union. The Pan-American Union. Washington, D. C. $1 50 a year

Changing World. Monthly except August. American Association for the United Nations, 45 East 65th Street, New York 21. $1.00.

Classroom Clipper. Pan-American World Airways, 135 East 42nd Street, New York 17. Bimonthly. Free on request.

Current History. Events Publishing Company, 2030 Upland Way, Philadelphia 31, Pennsylvania. $3.00 a year. Special rates for class use.

Economic Affairs Institute of Economic Affairs, New York University, Washington Square, New York 3. Bimonthly. $1 00.

Intercultural Education News. Bureau of Intercultural Education, 1697 Broadway, New York 19.

International Conciliation. Division of Intercourse and Education, Carnegie Endowment for International Peace, 405 West 117th Street, New York 27. 25 cents a year.

Survey Graphic. 112 East 19th Street, New York. $3.00.

United Nations Weekly Bulletin. Columbia University Press, 2960 Broadway, New York 27. $6 a year.

(C) Teachers' Aids and Bibliographies

American Library Association, 510 North Michigan Avenue, Chicago 11. Excellent bibliographies and monthly bulletins.

Anderson, Howard R. (Editor) *Teaching Critical Thinking in the Social Studies.* Thirteenth Yearbook of the National Council for the Social Studies. 1201 Sixteenth Street, N W., Washington 6, D. C. $2.00.

Cornell University Curriculum Series Cornell University Press, Ithaca, New York. 40 cents each.

Canada.
Far East.
Latin America.
China.
British Commonwealth.

Kandel, I. L. *United States Activities in International Cultural Relations.* V 9, Series I, No. 23. American Council on Education, Washington, D. C 75 cents.

Packets for International Relations Clubs. Division of Intercourse and Education, Carnegie Endowment for International Peace, 405 West 117th Street, New York 27. Twice a year valuable packets of current pamphlets and materials are sent free to sponsors of international relations clubs.

School of the Air of the Americas. Department of Education, Columbia Broadcasting System, Inc., 485 Madison Avenue, New York. A teacher's manual, published yearly. Contains a valuable bibliography.

Social Education. Monthly organ of the National Council for the Social Studies. Each issue provides valuable suggestions on current literature. Comes with membership in the National Council at $3.00 for annual dues. 1201 Sixteenth Street, N. W., Washington 6, D C.

Social Science Foundation, University of Denver, Denver 10, Colorado. National Opinion Research Center.

Taba, Hilda, and Van Til, William (Editors). *Democratic Human Relations.* Sixteenth Yearbook, National Council for the Social Studies, 1201 Sixteenth Street, Washington 6, D. C.; 1945. $2 00.

VICKERY, WILLIAM E., and COLE, STEWART G *Intercultural Education in American Schools,* Proposed Objectives and Methods. Harper & Brothers, 49 East 33rd Street, New York 16, 1943. $1.00.

WIDUTIS, FLORENCE B. *Here's How It's Done,* a Popular Education Guide. Program Information Exchange assisted by the Carnegie Endowment for International Peace, 41 Maiden Lane, New York 17. $1.00. A detailed list on sources of pamphlets and audio-visual materials.

(*D*) UNITED STATES GOVERNMENT PUBLICATIONS

Selected United States Government Publications Semimonthly. Superintendent of Documents, United States Government Printing Office, Washington 25, D. C. Free on request. (More detailed announcements are also available on request.)

Office of Education, Federal Security Agency, 26th Street and Constitution Avenue, Washington 25, D. C.

List of publications available on request.

Records of radio transcriptions, speeches, etc., for loan or purchase. Write Radio Education Committee of the Office of Education.

Lending library of 75 subjects for teachers. For titles and packets write Information Exchange of the Office of Education.

For up-to-date materials and questions on what is available write Information Service of the Office of Education.

Write directly to departments, more often material is free. Department of State, Department of Commerce, or your Congressmen.

(*E*) HELPFUL REFERENCE WORKS

BREASTED, JAMES H.; HUTH, C. F.; and HARDING, S. B. *European History Atlas: Ancient, Medieval, and Modern European and World History.* Denoyer-Geppert Company, Chicago.

Hammond's Comparative World Atlas. C. S. Hammond & Co., Inc., 88 Lexington Avenue, New York 16. 35 cents. Quantity, 25 cents.

MACFADDEN, CLIFFORD H ; KENDALL, HENRY MADISON, and DEASY, GEORGE F. *Atlas of World Affairs.* Thomas Y. Crowell Company, 432 Fourth Avenue, New York 16, 1946.

MALLORY, WALTER H. *Political Handbook of the World.* Compiled annually by The Council for Foreign Relations. Harper & Brothers, 49 East 33rd Street, New York 16.

World Almanac and Book of Facts. Published annually. New York World-Telegram, New York.

(*F*) WORKS OF GUIDANCE

DALE, EDGAR. *How to Read a Newspaper.* Scott, Foresman & Co., Chicago; 1941.

HOWE, QUINCY. *The News and How to Understand It.* Simon & Schuster, Inc., 1230 Sixth Avenue, New York 20, 1940.

LONG, FORREST E., and HALTER, HELEN. *Social-Studies Skills.* Inor Publishing Company, Inc., 207 Fourth Avenue, New York 3; 1942.

THOULESS, ROBERT H. *How to Think Straight.* Simon & Schuster, Inc., 1230 Sixth Avenue, New York 20; 1939.

WREN, C. GILBERT, and LAWSON, ROBERT P. *Studying Effectively.* A pamphlet. Stanford University Press, Stanford University, California; 1941.

(*G*) AUDIO-VISUAL AIDS

Education Film Guide, compiled by Dorothy E. Cooke and Eva Smith. H. W. Wilson Company, 950–972 University Avenue, New York 52. $3.00 a year.

How to Use a Motion Picture. No. 1 in "How to Do It Series" by National Council for the Social Studies, 1201 Sixteenth Street, N. W., Washington 6, D. C. 10 cents.

MILES, J. ROBERT. *Recordings for School Use.* World Book Company, Yonkers 5, New York; 1942.

Monthly program announcements:

- Columbia Broadcasting Company, 485 Madison Avenue, New York 5.
- Mutual Broadcasting Company, 144 Broadway, New York 19.
- National Broadcasting Company, 30 Rockefeller Plaza, New York 20.

Service Bulletin of the FREC. Federal Radio Education Committee, United States Office of Education, Washington, D. C.

Sources of films:

- Your state university probably has an extension or loan service.
- Brandon Films, 1600 Broadway, New York 19.

Carnegie Endowment for International Peace, 405 West 117th Street, New York 27. ("Watchtower over Tomorrow," 16 mm., 10 minutes background for United Nations. Good.)

Encyclopaedia Britannica Films, 1841 Broadway, New York 23, and Chicago. (Includes Erpi and Eastman films.)

International Film Bureau, 84 East Randolph Street, Chicago 1.

March of Time Forum Films, 369 Lexington Avenue, New York 17.

Sources of records:

The local radio station. (16″ records ($33\frac{1}{3}$ revolutions a minute) that they use and require special equipment.)

Radio Education Committee, United States Office of Education. Both standard 78 revolutions a minute that can be played on regular phonograph and the 16″ that requires special equipment. Either loan or purchase. Write for long list available

World Wide Broadcasting Foundation, 598 Madison Avenue, New York 22. Valuable transcriptions. Write for details.

(*H*) Books on World Affairs

LANGSAM, WALTER C. *The World Since 1914* (Revised). (Contains an exhaustive bibliography.) The Macmillan Company, 60 Fifth Avenue, New York 11; 1943.

ADAMIC, LOUIS. *From Many Lands.* Harper & Brothers, 49 East 33rd Street, New York 16; 1940.

——— *Two-Way Passage.* Harper & Brothers, New York; 1941.

ARNE, SIGRID. *The United Nations Primer.* Rinehart & Co., Inc., 232 Madison Avenue, New York 16; 1945.

BEARD, CHARLES A. *America's Foreign Policy in the Making: 1932–1940.* Yale University Press, New Haven 7, Connecticut, 1946.

BENNS, F. LEE. *Europe Since 1914 in Its World Setting.* 6th Edition. F. S. Crofts & Co., 101 Fifth Avenue, New York 3; 1945.

BEUKEMA, HERMAN; GEER, WILLIAM M; and Associates. *Contemporary Foreign Governments.* Rinehart & Co., Inc., 232 Madison Avenue, New York 16; 1946.

CHURCHILL, WINSTON LEONARD SPENCER. *The Second World War,* Volumes 1–6. (Published in six volumes, with an individual title for each volume, over a six-year period.) Houghton Mifflin Company, Boston; 1948–1953.

CHASE, STUART. *For This We Fought.* Twentieth Century Fund, Inc., 330 West 42nd Street, New York 18; 1946.

DEAN, VERA MICHELES. *The Four Cornerstones of Peace.* Whittlesey House, McGraw-Hill Book Company, Inc., 330 West 42nd Street, New York 18; 1946.

DOLIVET, LOUIS. *The United Nations.* Farrar, Straus & Co., Inc., New York; 1946.

HERSEY, JOHN. *Hiroshima. The New Yorker,* 31 August 1946. Same, Alfred A. Knopf, 501 Madison Avenue, New York 22; 1946.

HUNTINGTON, ELLSWORTH. *Mainsprings of Civilization.* John Wiley & Sons, Inc., 440 Fourth Avenue, New York 16.

INMAN, SAMUEL GUY, and CASTAÑEDA, C. E. *A History of Latin America for Schools.* The Macmillan Company, 60 Fifth Avenue, New York 11; 1944.

MILLER, FRANCIS TREVELYAN. *History of World War II.* John C. Winston Company, Philadelphia; 1946.

PYLE, ERNEST TAYLOR. *Last Chapter.* Henry Holt & Co., Inc., 257 Fourth Avenue, New York 10; 1946.

Report on the International Control of Atomic Energy (The Acheson-Lilienthal Report) by Department of State. Write to Superintendent of Documents, United States Government Printing Office, Washington, D. C. 20 cents.

REVES, EMERY. *The Anatomy of Peace.* Harper & Brothers, 49 East 33rd Street, New York 16; 1945.

ROUCEK, JOSEPH, and Associates. *Central Eastern Europe: Crucible of World Wars.* Prentice-Hall, Inc., 70 Fifth Avenue, New York 11; 1946.

SIMONDS, FRANK H., and EMENY, BROOKS. *The Great Powers in World Politics: Third Edition.* American Book Company, 88 Lexington Avenue, New York 16; 1939.

STEWART, GEORGE RIPPY. *Man, an Autobiography.* Random House, Inc., 20 East 57th Street, New York 22, 1946.

WELLES, SUMNER. *An Intelligent American's Guide to the Peace.* The Dryden Press, Inc., 386 Fourth Avenue, New York 16, 1945.

ZIFF, WILLIAM B. *Two Worlds.* Harper & Brothers, 49 East 33rd Street, New York 16; 1946.

INDEX

A B C Powers, 254
A B C D Powers, 270
Act of Havana, 256
Africa, holdings of European powers in, 44, 59, 61, 71, 172 (map), 183 (map)
Air force, German, 73, 106, 279, 283, 290; British, 290
Air Navigation Convention (1919), 165
Alabama claims, arbitration of, 175
Albania, 180, 286, 358
Aleutian Islands, 264
Allied and Associated Powers, 55, 64, 65, 103
Allies of World War II, 321
Alsace-Lorraine, 3, 71
American Association for the United Nations, 335
Anti-Comintern Pact, 239, 278
Arab League, 358–360
Arbitration, 159–160, 173, 175–177, 180–181, 197, 251, 259
Argentina, 121, 122, 176, 254, 257, 259, 330, 357
Armaments, limitation of, 73, 74, 76, 106, 188, 239
Armistice, the (1918), 67, 103
Ataturk (Mustapha Kemal), 75
Atlantic Charter, 296–298, 324, 325
Atomic warfare, 304, 343, 364, 365
Australia, 94, 95, 96, 287
Austria, 42, 43, 44, 45, 46, 47, 52, 53, 74, 76, 77, 208–209, 212, 214, 225, 228, 229, 239–240, 355
Austro-Hungarian Monarchy, 54, 62, 63, 64, 65, 67, 74, 76, 241
Authoritarian state, 87
Aviation Conference, Civil, 328
Axis Powers, 239, 242, 268, 298, 321

Badoglio, Pietro, 103, 301
Balance of power in Europe, 54–55
Balkan countries, 55, 61, 62, 64, 65, 67, 88, 129, 285, 286, 355–356, 366
Balkan Wars, 26, 62
Belgian Congo, 59, 111, 113
Belgium (before 1914), 42, 44, 46, 59, (1914–1918), 64, 66, 67, 71; (1918–1940), 76, 104, 111, 173, 179, 196–200, (since 1940), 282, 283, 288, 352
Beneš, Eduard, 241
Bessarabia, 147, 286, 356
Big Five, the, 322, 343, 345
Big Four, the, 70, 76, 102, 322
Big Three, the, 70, 322
Bismarck, Otto von, 50, 52
Blum, Leon, 230, 238
Bohemia, 241. *See also* Czechoslovakia
Bolsheviki, the Russian, 67, 97–98
Brazil, 65, 118, 121, 128, 176, 254, 257, 259, 357
Brest-Litovsk, Treaty of, 67, 68, 98
Briand, Aristide, 225, 227, 235
British Commonwealth of Nations, 95
British Empire, 93–96
British loan of 1946, 350–351
Bulgaria, 62, 64, 67, 74, 286, 356

Cabinet, British, 91, 92, 93; French, 92
Cairo Conference, 327
Canada, 7, 95, 96, 122, 148, 259–261, 357
Caribbean Sea (map), 252
Casablanca Conference, 327
Chamberlain, Neville, 231, 232, 242, 279, 289
Chapultepec, Act of, 330
Charter of the United Nations, 334–336; amendment of, 360
Chiang Kai-shek, 221, 268, 327
Chile, 176, 254, 257, 259
China, 122, 143–144, 164, 181, 196, 198, 199, 261–262, 265, 266, 267–268, 271, 326, 362
Churchill, Winston, 289, 296, 298, 323–324, 326, 327, 329, 350
Colombia, 253, 256, 259
Colonies, development of, 59, 142–144; German, 71, 72, 76, 105; British, 93–96

Communism, and left-wing parties, 83, 84, 85, 87, in Russia, 98, 99, 101, 215, 216, 230, 239; in Germany, 104, 105, 235, 278; fear of, 215–216; theory of, 217; in China, 362
Concert of Europe, 45
Conferences, international, 195–197; table of, 198–200, 296, 326–330, 347 (map), 365–369, 371
Congo region, 59, 111, 113
Congress, of Berlin (1878), 51, 62; of Vienna (1814), 43–45, 48
Constantinople, 39, 55, 59, 60, 62, 65, 75, 286, 358
Constitution, of United States, 26, 166, 168, of Union of Soviet Socialist Republics, 100–101; of German (Weimar) Republic, 104, 105, 106
Copyright, international, 174
Court of International Justice, 161, 162, 163, 335, 341
Cuba, 65, 118, 119, 247, 256
Currency, 124, 125–126, 127, 128, 130, 173, 174, 210, 213–215
Czechoslovakia, 71, 74, 88, 184, 197, 240–242, 289

Danzig, 71, 186, 242–243, 278, 279
Dardanelles, the, 14–18, 65, 111, 358, 366
Declaration of Washington, 299, 324
de Gaulle, Charles, 288, 289, 322, 351
Denmark, 71, 282
Dictatorship, as political system, 82, 87–88, 138–139, 168; of the proletariat, 82, 97–101, in Italy, 102–103; in Spain, 215, 225, 226, 333; in Germany, 235–236. *See also* Franco, Hitler, Kemal, Mussolini, Stalin
Disarmament, attempts to advance, 176, 195, 196, 198, 199, 200; statement on, in Atlantic Charter, 297
Dodecanese, 356
Dominions, British, 90, 95–96
Dual Alliance (1894), 54, 97
Dumbarton Oaks Conference, 328, 330

East, the Far, 261–271, 362–363; Middle, Near, 358–362
Ebert, Friedrich, 104, 106, 234
Egypt, 287, 358, 359, 360
Eight Points, 296–298
Eire, 95, 279, 280 (map)
Eisenhower, Dwight D., 300, 305
Entente Cordiale (1904), 55
Epirus, Northern, 358
Estonia, 80, 99, 282
Ethiopia, 24, 59, 164, 181–184, 275
Export-Import Bank, 257
Exports, chief United States, 121

Far-Eastern affairs *See* East
Fascism, 83, 85, 86, 87, in Italy, 102–103, in Spain, 238, in South America, 259
Finland, 80, 88, 100, 111, 136, 180, 282, 356
Fiume, 102, 179
Five-Power Treaty (1922), 195, 198
Five-year Plans (U.S.S.R.), 99
Formosa (Taiwan), 266
Four-Power Peace Pact (1933), 200
Four-Power Treaty (1922), 196, 198
Fourteen Points, 68, 70, 75, 76–77, 148, 171
Fourth Republic (French), 302
France (before 1815), 5, 26, 39–42; (1815–1870), 43–50, 53, 54, 61, 250–253; (1870–1914), 51, 54, 56, 57, 60, 61, 63; in World War I, 64–67, treaties of 1919–1920, 69, 71, 74; political organization of, 82–86, 92; occupation of the Ruhr, 104, 179; economics of, 112, 117, 120, 126, 173, 206, 211, 213; treaty ratification, 169; in Africa, 183, 184; disarmament agreements, 195–200; events (1919–1939), 218–233, 237, 238, 242, 279–285, 288; in World War II, 279–281, 283–285, 288, 301, 322; events to date, 351–352, 363, 367
Franco, Francisco, 233, 238, 278
Franco-Prussian War, 173
Franz Ferdinand, Archduke, 62, 64
Freedoms, the four, 87, 101, 103, 106, 323, 325
Free French, 164, 184, 289, 351

General Assembly of the United Nations, 336, 337, 368, 371–372
Geneva, meetings at, 175, 189, 192, 199
Germany (to 1914), 3, 14, 42, 47, 50–52, 59, 63, 71, 84, 172, 173; and

World War I, 63–67, 97, 103, 173; and the Peace of Versailles, 68, 69, 71, 73, 74; Knox Resolution, 77; between wars, 83, 86, 103–107, 169, 234, 259, 292; economics, 114, 116, 117, 126, 128–130, 180, 190, 197, 199, 208–212, 214; events (1919–1939), 218–233; return to power, 233–244, in World War II, 243, 278, 290, 301–308, 353, 366
Good-Neighbor policy, 256, 259
Government, study of, 6; development of group, 37–39; democratic ideal of, 81–82; party, in Europe, 82–89, of Great Britain, 90–93; of British Empire, 93–96; French system of, 92, of U.S.S.R., 100–101; of Fascist Italy, 102; in Nazi Germany, 103
Great Britain, government of, 5, 83, 85, 86, 88, 90–96, (to 1914), 40, 42, 45, 54–55, 175, 248, 251, 253, 266, (1914–1919), 63–67, 69–70, 76; (1919–1939), economic conditions, 112, 117, 118, 122, 206, 213; and Ethiopia, 164, 182–184; events (table), 218–233; Munich Accord, 242; and U.S.S R, 278; in World War II, 279–296, 299, 305, 345; events to date, 350–351, 360, 367
Greece, 46, 62, 64, 65, 74, 174, 180, 286, 288, 356

Hague Tribunal, 176–177, 185
Haile Selassie, 164, 182, 184
Haiti, 65, 253, 256
Hemisphere cooperation in New World, 254–261, 291, 293
Hindenburg, Paul von, 66, 67, 106, 107, 223, 227, 229, 234, 236
Hitler, Adolf, rise of, 14, 107, 199, 221, 235; *Mein Kampf* by, 174, 235, 278; as dictator, 228, 229–231, 236, 238; annexations by, 232–233, 239–243, starts war (1939), 243–244, 247
Holland, 42. *See also* Netherlands
Hoover, Herbert, 139, 192, 212, 224, 239, 256
Hull, Cordell, 139, 256, 270, 271
Hungary, 47, 74, 77, 137, 208, 212, 216, 218, 219, 239, 242, 355

Iceland, 294
Immigration, 56, 166, 267
Indemnities (war), 51, 73
India, 138, 143, 359–361
Indo-China, French, 363
Indonesia, 362
Industrial Revolution, 39, 40
Inter-American System, 329–330, 339. *See also* Pan-American Union
International, the First, Second, Third, 215, 218, 239
International Copyright Union, 174
International Court of Arbitration (Hague Tribunal), 176–177, 185
International Justice, Court of *See* Court of International Justice
International Labor Organization, 178, 187–188, 192, 193, 194, 198
International law, 155–169
International Refugee Organization, 338
International Weights and Measures, 174
Iran, 358–359; Russians in, 344, 345
Iraq, 358–359
Irish Free State. *See* Eire
Isolationism, 56, 247, 291
Istanbul (Constantinople), 60, 286, 358
Italy, until 1915, 42–55, 63, 64, 97, 173, in World War I, 55, 64, colonies, 59, 183, 359, between World Wars, 73, 83, 86, 87, 102–103, 113–115, 220, in Ethiopia, 164, 180–184, 191–200, 275, in Axis, 239; at Munich, 242, in World War II, 285–287, 300–302, 304, 305, 308, 355

Japan, 2, 13, 26, 30, 64, 87, 102, 113, 114, 115, 117, 118, 122, 138, 164, 181, 195–200, 218–233, 239, 262, 266–271; in World War II, 296, 304; post-war, 362–363
Java, 115
Jefferson, Thomas, 60, 81, 82, 247
Jews, 31, 145, 360–361

Kang Teh of Manchukuo, 267
Kellogg-Briand Treaty, 160, 180, 182, 197, 199, 363
Kemal, Mustapha, 75
Kerensky, Alexander, 67, 88, 97
Korea (Chosen), 60, 260, 266, 267, 363
Kurile Islands, 264

Labor party in Great Britain, 86
Language, 135–138, in Europe, 136
Latin America, foreign trade of, 120–122; cultural cooperation of United States with, 139–141; countries of, 257; alignment of countries of, 259
Latvia, 80, 99, 282
Lausanne Agreement, 197, 199, 212
League of Nations, mandates under, 31, 267; Covenant of, 71, 73, 77, 250, and Danzig, 71, 243, weakness of, 73, 164, 192–193, 215, 238, rejection of, by United States, 75, 77, 291, services rendered by, 159–160, 180–181, 194, 237; origin and organization of, 177–179, 189–190, subsidiaries of, 184–188, 191, 192, withdrawals from, 181, 189, 267, 333, 343
Lease-Lend, 292, 293, 294, 350
Lebanon, 358
Lenin, Nikolai, 67, 97, 98, 99, 216, 222
Leningrad, 97, 100, 282, 287, 288
Liberia, 59, 65, 183
Libya, 287, 359
Lithuania, 71, 80, 99, 242, 282
Little Entente, 207, 242
Locarno, 197, 199, 235, 237
London Naval Disarmament Conferences, 196, 199, 200
Luxembourg, 281, 282

Macedonia, 62, 147
Magyars, 136, 137
Malta, 43, 44
Manchuria, 126, 181, 267, 362
Mandates, 31, 71, 75, 94, 95, 172, 190, 267, 269
Marines, U. S., 254, 256, 265, 266
Marshall Plan, 368–369
Martinique, 252, 257
Masaryk, Thomas G., 241
Memel, 71, 73, 242
Metternich, Prince, 44, 45, 47, 49
Mexico, French in, 56, 250; United States and, 128–129, 140, 176, 250, 251, 253, 254, 259, 357
Minority groups, rights of, 147–149
Missionaries, influence of, 144
Monroe Doctrine, 247–254, 256
Montenegro, 62, 77
Morocco, 61, 360
Moscow, 97, 287, 288, 326
Moslem world, 358–361
Munich Accord, 242, 289
Mussolini, Benito, 102–103, 105, 211, 220, 223, 224, 225, 232, 238, 239, 242, 243, 278, 301

Napoleon I, 42, 48, 52. 53, 54, 249, 289
Napoleon III, 47, 49, 50, 56, 250
Naval Limitation Pacts, 196, 198, 266
Nazism, 83, 84, 86, 103–107, 259, 292 *See also* Hitler, Adolf
Nazi Party, 84, 86, 87, 105–107, 235–236, 240, 241
Netherlands, the, 44, 46, 60, 103, 113, 196, 198, 199, 215, 282, 288
Netherlands East Indies, 113, 115, 268, 270, 345, 362
Neuilly, Treaty of, 74
Neutrality Act, 275, 276, 294
New Deal, 5
New Economic Policy (N E P), 99
Newfoundland, 95, 293
News, and propaganda, 28, and censorship, 29, agencies, 30
Newspapers, 8, 9–12, 22, 24, 141
New Zealand, 94, 95, 96, 269, 287
Nicaragua, 65, 253
Nicholas II (Russia), 67, 88, 97, 176
Nine-Power Treaty, 196, 198
North Africa, World War II in, 300
Northern Ireland, 280
Norway, 282, 288

Oil. *See* Petroleum
Open-Door policy (China), 196, 198, 262, 271
Orlando, Vittorio, 69, 70, 102
Ottawa, Imperial Conference at, 96
Ottoman Empire, 42 *See also* Turkey

Pacific region (maps), 115, 264, 269, in World War II, 299, 303, 304
Pact of Paris, 160, 180, 182, 197, 199
Palestine, 31, 67, 360
Panama, 65, 253, 256
Pan-American Conferences, 254, 256, 259
Pan-American Union, 193, 254, 260. *See also* Inter-American System

Paris, 42, 66, 69, 70, 74, 75, 158, 367
Parliament, British, 91, 92, 93, 95, 168
Parties (political), European, 82–86, 91, 93, 101, 104–106
Patent Union, 174
Peace Conferences at Paris (1919), 69–75; (1946), 367–368
Pearl Harbor, 161, 259, 261, 271, 299
Permanent Court of International Justice (World Court), 157, 159, 161, 178, 185–187, 191, 198. *See also* Court of International Justice
Petroleum, 115, 116, 117, 358–359
Philippine Islands, 16, 110, 115, 124, 262–265, 303, 305, 308, 362
Platt Amendment, 256
Poland (before 1919), 42, 43, 44, 46, 77, 111, 145; (1919–1939), 71, 73, 77, 88, 98, 145–146, 179, 185, 197, 212, 218, 223, 354
Polish Corridor, 71, 242
Political Bureau (U S S.R), 101
Portugal, 59, 60, 64
Potsdam Conference, 304, 313, 318, 365
Press, the, 10–12, 21, associations, 11, 12 *See also* Newspapers
Protection *vs* free trade, 123
Prussia, 42, 43, 44, 52, 53
Puerto Rico, 247, 253
Putsch, Munich, 235; Vienna, 240

Quadruple Alliance, 45
Quebec Conferences, 326, 327
Quezon, Manuel, 263

Races in Europe, 136–138, 241
Radio, information, 8, 9, 10, 12, 13, 56, 243, 279, cultural exchange, 141
Railway Tariff Union, 174
Reciprocal Trade Agreement (United States and Canada), 7
Reich, First, 52, Second, 52; Third, 104
Reichstag, German, 84, 104, 106, 107, 236
Religion, freedom of, 21; distribution of, in Europe, 136
Reparations, war, 73, 76, 104, 197, 199, 210–213, 355
Revolutions, American, 40, 93; French, 39–43, 82, 83, Russian, 67, 84
Rhineland, 71, 237
Rio de Janeiro, Conference at, 16, 259
Roman Empire, 5, 26–27
Rome, city of, 54, 102–103
Roosevelt, F. D., 5, 90, 139, 227, 228, 230, 231, 233, 256, 271, 276, 277, 292, 294, 296, 302, 323, 326, 327, 329
Roosevelt, Theodore, 253
Root, Elihu, 177
Rubber, 111, 115
Ruhr industrial area, 104, 179, 211–212
Rumania, 62, 64, 77, 286, 355
Russia (to 1914), 42–44, 46, 47, 50, 54, 55, 60–62, 218, 249, (1914–1918), 64–67, 76, 78, 88, 97 *See also* Union of Soviet Socialist Republics
Russo-Japanese War of 1904–1905, 164, 173, 266, 267, 296

Saar Basin, plebiscite in, 190, 237
St. Germain, Treaty of, 74
Sakhalin, 266
Sanctions, economic, 182, 194
San Francisco Conference, 329, 330, 333
Santo Domingo, 253
Saudi Arabia, 358
Scandinavian countries, 111, 215
Schleswig-Holstein, plebiscite in, 71
Scotland, 322
Second World War, 278–318
Secretariat of the United Nations, 337, 342
Security Council of the United Nations, 336–339, 341, 342
Self-determination of nations, 76, 77, 148–149
Senate, the U. S., and ratification of treaties, 70, 75, 77–78, 166, 168
Serbia, 62, 63, 64, 65, 67, 77. *See also* Yugoslavia
Sèvres, Treaty of, 74
Shanghai, 268
Siam (Thailand), 65, 268, 363
Siegfried Line, 237, 281
Silesia, 71, 73, 179
Singapore, 266, 268
Slovakia, 241
Socialism, 83, 84, 216, 238
South America, colonies in, 228; map of, 255 *See also* Monroe Doctrine
Soviet, definition of, 98

Spain (until 1931), 44, 46, 215, 225, 226, 253, 262; civil war in, 184, 226, 238; as colonial power, 247–249, 263; under dictatorship, 233, 238
Spanish-American War, 253, 262–263
Stalin, Joseph, 99, 101, 222, 243, 278, 327, 329
Statute of Westminster, 95
Stresemann, Gustav von, 180, 221, 234
Succession states, 240
Sudetenland, 241
Suez Canal, 300
Switzerland, 16, 97, 111, 147, 148 (map), 173, 215
Syria, 358

Taiwan (Formosa), 266
Talleyrand, Prince, 44
Tanganyika, 172
Tangier, 359
Tariffs and world trade, 123
Teheran Conference, 327
Third Republic (French), 51, 85, 86, 92, 93, 169, 284
Tobruk, siege of, 287
Totalitarian state, 87, 193
Trade agreements, 96, 121–122, 257, 258
Trans-Jordan, 358
Transylvania, 147, 355
Treaties, making of, by American government, 70, 75, 77, 166, 168–169; by British government, 93, 168; by various others, 169, secret, 171
Trials, war guilt, 363, 365
Trianon, Treaty of, 74
Trieste, 74, 102, 355, 366
Triple Alliance (1882), 54, 55, 63, 97
Triple Entente (1907), 55
Trotsky, Leon, 97, 98, 216, 225
Truman, President H. S, 302, 333, 351
Trusteeship Council of the United Nations, 337, 340–341
Turkey, 42, 46, 55, 60, 61 (map), 62, 64, 65, 67, 74, 75, 286, 302, 358
Tyrol, 74

Ukraine, 278, 287
Union of South Africa, 94, 95, 96, 172
Union of Soviet Socialist Republics (U S S R), established after Treaty of Brest-Litovsk, 67, 68, 84, 97–100, 209, 252, 353, 367
United Nations, 169, 193, 195, 299, 324–329, 333–345; chart, 338, admissions to, 361, agencies, 327–329, 337–339
United Nations Relief and Rehabilitation Administration, 328
United States, and policy of isolation, 56, 159, 247, 291; in World War I, 64, 65, 67, 71, 73, 81, 98; at Peace Conference, 68, 70, 73, 76, 177; rejects treaties, including League of Nations, 75, 77, 186–187, 192; drawn into World War II, 276, 291–296; in the war, 299–305, 313–318; recent, 349–350, 362, 365, 368
Universal Postal Union, 174

Venezuelan boundary dispute, 251
Versailles, Treaty of, 68–73, 76–78, 104, 105, 145, 146, 172, 179, 187, 189, 192, 194, 197, 235, 237, 239, 242, 267
Vichy government, 284
Victor Emmanuel III, 102, 103
Vienna, 47, 74; Congress of, 43–45
Villa, Francisco, 254
Vladivostok, 98

War debts, 210, 212–213
Washington Arms Conference, 195, 196, 198, 266
Weimar Republic, 104, 106, 107, 169, 234
Wilhelm II, Kaiser, 67, 103, 209
Wilson, Woodrow, 68, 69, 75, 77, 87, 90, 148, 171, 177, 211, 254, 256, 291
World Court (Permanent Court of International Justice), 178, 191–192
World Monetary and Economic Conference, 197, 200
World War I, uses of propaganda in, 28–29, ambitions leading up to, 55, 59–63, 64; main events of, 64–67; peace treaty with Germany (Versailles), 68–73, other treaties, 75–76
World War II, 243, 278–298, 301–318

Yalta Confe
Yemen, 358
Yugoslavia, 357
Zionists, 360